उत्तर साकेत

द्वितीय खंड

O152,150
M11

सोहन लाल 'रामरंग'

उतर साकेत

राज्याभिषेकोपरान्त श्रीराम कथा

द्वितीय खंड

दि दिल्ली रजिस्टर्ड स्टाकहोल्डर्स (आइरन एंड स्टील) एसोसियेशन लि०

© लेखक एवं श्रीमती सावित्री देवी जी गुप्त

प्रथम संस्करण : वि० सं० २०३८
2000 प्रति : १९८१ ई०

मूल्य : २००-०० सम्पूर्ण ग्रन्थ

0152,15D
ML1
मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
2545
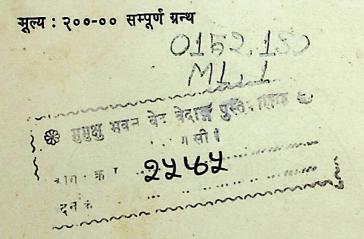
प्रकाशक :
दि दिल्ली रजिस्टर्ड स्टाकहोल्डर्स (आइरन एण्ड स्टील) एसोसिएशन लि०
जयसाव प्लेस, ५००८ हमदर्द मार्ग, दिल्ली-११०००६

मुद्रक : ब्रह्मा प्रिंटिंग प्रेस
१२३२, चौक शाह मुबारिक बाजार सीताराम, दिल्ली-११०००६

(प्रथम खंड कथा की कथा पृष्ट 'अः' का शेष)

'आचार्य देवो भव' 'मातृ देवो भव' 'पितृ देवो भव' ये नारे नहीं हैं। ये मंत्र हैं। मंत्र साधना से प्राणवान् होते हैं। साधनाहीन को सिद्ध मंत्र भी भयंकर विषधर सर्प बनकर डस जाते हैं। वेद-वेदांग का पंडित अपने स्तर से नीचे उतरकर जब बारहखड़ी और 'अ' से अनार तथा 'आ' से आम का ज्ञान करा कर अपने समान ही नहीं अपने से भी आगे का द्वार खोलकर दिखा देता है, तभी तो वह 'आचार्य देवो भव' कहला पाता है। रक्त से रक्त, मांस से मांस, शरीर से शरीर, प्राण से प्राण निकाल कर देने वाली, पुत्र को स्वामि का भी स्वामि बना देनें की क्षमता रखने वाली देवी ही तो 'मातृ देवो भव' कहला पाती है। अपनी तनी हुई कमर को झुकाकर धूलि में लोटने वाले की अँगुली थाम कर अपने से ऊँचा बनाकर, अयाचना का स्थायी-भाव प्रदान करने वाला प्रबल पुरुष ही तो 'पितृ देवो भव' कहलाने का अधिकारी हो पाता है। कमर को झुका कर ही तो कमर के झुकने वाले समय का सुदृढ़ आधार तैयार किया जाता है। यह सब कुछ अनायास नहीं होता, सप्रयास होता है।

आज की युवक-मनीषा गर्भ से चक्र-व्यूह का भेदन सीखकर प्रकट होने वाली नहीं है। छठी में शकट उलटने वाली और कलेऊ में अरुण को पिष्टक बनाने वाली नहीं है। इसे एकदम सुरसा का 'शत योजन तेइ आनन कीन्हा' और कुंभकर्ण का 'योजन चार मूंछ रह ठाड़ी' वाला न तो तामसी स्वरूप समझ में आने वाला है और न ही—

'जिमि-जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा। तहँ भुज हरि देखउँ निज पासा॥

और—

'उदर मांझ सुनु अंडजराया। देखेउँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया॥'

वाला परमसात्त्विक रूप समझ में आने वाला है। सात्त्विक और तामसी दोनों ही माया विराट हैं। इसे तो इसकी काया में प्रविष्ट मस्तिष्क में ही प्रविष्ट होकर, और उस समूचे मस्तिष्क को लेकर

अपने हृदय के सुदृश्यों का अवलोकन करा कर उसके हृदय में प्रविष्ट होना पड़ेगा अथवा उसके हृदय के शून्य का भटकाव दिखाकर अपने हृदय में से 'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण-मेवावशिष्यते ।।' की भांति पूर्ण का पूर्ण हृदय समर्पित करना पड़ेगा। तब इसे—

"अनादिमध्यांत मनतंवीर्य—
मनंत बाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्त हुताशवक्त्रं
स्वतेजता विश्वमिदं तपन्तम् ।।"

— सहज ही समझ में आ जायेगा। तर्कप्रधान मनीषा को तर्क से संतुष्ट करके ही विश्वास की सहचरी बनाया जा सकता है। प्रीति और श्रद्धा इसी युगल की संतानें हैं। पहले श्रद्धा के पश्चात् प्रीति जन्म लेती थी अब प्रीति के पश्चात् श्रद्धा जन्म लेती है। अनुजा अग्रजा और अग्रजा अनुजा बन गई है परन्तु इस भीषण दुष्काल में यह ही क्या कम संतोष का विषय है कि सहोदरा-भाव तो कम से कम बना हुआ है। यदि यह बना रहा तो अग्रजा फिर अग्रजा बन जायेगी और अनुजा फिर अनुजा बन जायेगी। अस्तु !

इसी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर, पृथ्वी के विशुद्ध तल पर खड़े होकर उत्तर-साकेत की रचना हो, ऐसा प्रयत्न किया है। युद्ध के प्रसंगों में जैसा कि हमारे एक मित्र का कथन है कि कुछ चमत्कार सा आ गया है। तो मेरा निवेदन है कि उसके लिए अपने प्राचीन शस्त्रास्त्र ज्ञान और विज्ञान की ओर दृष्टिपात् करना ही होगा। इस सत्य के राजपथ को छोड़कर भ्रम की पगडंडियों में भटकते हुए वास्तविक प्रतिष्ठा के गंतव्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। हमारे यहाँ वैष्णवास्त्र - ब्रह्मास्त्र - पशुपतास्त्र - आग्नेस्त्र-गरुड़ास्त्र ऐन्द्रास्त्र-शैलास्त्र-नागपाश-उच्चाटन-सम्मोहन-ज्वर-अनेकानेक माया-प्रपंचादि का बड़ा विस्तृत वर्णन है। उन्हें मान्य करना ही पड़ेगा।

ये चंद्र-मंगल-शुक्र-वृहस्पति-शनिलोक आज के वैज्ञानिकों को कहां से दिख गये ? हमारे पुराणों में जिस-जिस प्रकार की रंगीन परिधियों-वलयों आदि का वर्णन है, वही तो वैज्ञानिक बोल रहे हैं। अणु-परमाणु बमों के निर्माण की कल्पना का बीजारोपण कहां से हुआ ? ये प्रक्षेपणास्त्र 'सोषौं वारिधि विशिख कृशानू' वाला वही बाण तो है, जिसे देखकर समुद्र के अभिमानी देवता ने कहा था कि—

उत्तरेणावकाशोऽस्ति कश्चित्पुण्यतमो मम ।
द्रुमकुल्य इति ख्यातो लोके ख्यातो यथा भवान् ॥
उग्र दर्शनकर्माणो बहवस्तत्र दस्यवः ।
आभीरप्रमुखाः पापाः पिबन्ति सलिलं मम ॥
तैस्तु संस्पर्शनं प्राप्तैर्न सहे पापकर्मभिः ।
अमोघः क्रियतां राम तत्र तेषु शरोत्तमः ॥
वाल्मीकि रा० युद्ध० ३१-३२-३३/२२

(हे राम ! यहां से उत्तर की ओर अति पवित्र मेरा देश है। वह द्रुमकुल्य नाम से संसार में आपकी ही भांति प्रख्यात है। वहां पर भयंकर रूप वाले और भयंकर कर्म करने वाले पापी डाकू रहते हैं : जो मेरा जल पिया करते हैं। मुझे उनके स्पर्श भी सह्य नहीं हैं। आप अपने इस उत्तम बाण को वहीं गिराकर सफल कीजिए।)

और फिर—

तेन तन्मरुकान्तारं पृथिव्यां खलु विश्रुतम् ।
निपातितः शरो यत्र दीप्ताशनिसमप्रभः ॥
३५/२२

(वह वज्र के समान प्रदीप्त बाण जहां गिरा, वह स्थान मरुकांतार 'मारवाड़' नाम से प्रसिद्ध हो गाया।)

परन्तु—

वरं तस्मै ददौ विद्वान् मरवेऽमर विक्रमः ।
पशव्यश्चाल्परोगश्च फलमूलरसायुतः ॥
बहुस्नेहो बहुक्षीर सुगन्धिर्विविधौषधः ।
ऐवमेतैर्गुणैर्युक्तो बहुभिः सततं मरुः ॥
८०-८८ १/२/२२

(वह स्थान तीनों लोकों में मरुकांतार नाम से प्रसिद्ध हुआ, उस समुद्र-मध्यगत स्थान का जल सुखा कर दशरथनंदन श्रीराम ने उसे यह वर दिया कि यह देश पशुओं के लिए हितकारक, रोगरहित, फल-मूल-मधु-घी-दूध एवं अनेकानेक सुगंधित औषधियों से परिपूरित होगा। इस प्रकार वह मरु सदैव के लिए अनेकों गुणों से युक्त हो गया।)

अब आप देखें कि द्रुमकुल्य (वृक्ष बहुल) प्रदेश मरु-कांतार (निर्जन मरुस्थल) बनाया और फिर सुगधित घी-दूध-मधु-औषधि से परिपूरित किया। अस्त्र का प्रहार एक बात है, परिहार दूसरी बात है। श्रीराम ने दोनों तो किये ही परन्तु तीसरा प्रहार और परिहार के पश्चात् सफल प्रायश्चित् स्वरूप क्षति की पूर्णतः पूर्ति करने वाला पुरस्कार भी दिया। महाभारत में अश्वत्थामा द्वारा पांडवों पर ब्रह्मास्त्र-प्रयोग के संदर्भ में भगवान व्यास का कथन दृष्टव्य है —

अस्त्रं ब्रह्मशिरो यत्र परमास्त्रेण वध्यते ।
समा द्वादश पर्जन्यस्तद्राष्ट्रं नाभिवर्षति ॥
सौप्तिकपर्व २३/१५

(जिस राष्ट्र में ब्रह्मास्त्र को दूसरे उत्कृष्ट अस्त्र से दबा दिया जाता है, वहाँ बारह वर्ष तक वर्षा नहीं होती।)

विचारें नागासाकी-हिरोशिमा आदि पर अणु-प्रयोग करने वाले, देखने वाले, सुनने वाले कि संसार हमारे शस्त्रास्त्र-विज्ञान के

समक्ष कितना बौना है। सो उत्तर-साकेत में युद्ध-वर्णन समुन्नत-संस्कृतियों के युद्धों के वर्णन हैं। अविकसित-अल्पविकसित तथाकथित पाषाण-काल के युद्ध वर्णन नहीं हैं। चमत्कार से बचने का अर्थ धूल में लोटना और कीचड़ में सनना नहीं है। सौन्दर्य-प्रदर्शनों के दोष से मुक्त होने के लिए कृत्रिम सौन्दर्य-प्रसाधनों से बचना तो है परन्तु स्नान का परित्याग कर कालिख लपेटना नहीं है। जानकी-शतकंधर और भरत-शैलूष संघर्ष संग्राम हैं। गली-मुहल्ले के बलवे नहीं हैं कि जिसमें दो-छुरे पांच-लाठी और आठ बल्व-बम चल गये। तीन मर गये। पांच अस्पताल चले गये और सात को जेल हुई, बाकी छुट आए फिर बलवा मचाने के लिए। यहाँ तो 'निशिचरहीन करौं मही' प्रण विधिवत् भुजा उठाकर किये ही नहीं जाते अपितु अपने शिर को हथेली पर रखकर समुद्र की दुर्जेय छाती पर अभूतपूर्व कल्पनातीत सेतु का निर्माण कर शत्रु से निर्णायक युद्ध किया जाता है। चैतन्य-चेतना से किये हुए प्रणों से चमत्कार स्वयं प्रकट हो जाते हैं, प्रयत्नपूर्वक उनकी कथा घड़नी नहीं पड़ती। अस्तु। -

प्रिय स्वजनो !

कहने की तो बहुत सारी बातें हैं किन्तु क्या-क्या कहूँ ? कुछ बात मैं न कहना चाह कर भी बाध्य होकर कह रहा हूँ। समाज संस्कृति-साहित्य और धर्म के पिछड़ने पर दोष तो कवियों-लेखकों-चिंतकों को देता है परन्तु जो गम्भीरता से कार्य कर रहे हैं उनकी ओर गम्भीरता से देखने वाले कितने हैं? मैं तो 'इस उत्तरसाकेत' को इस परिवेश में, जिससे कि मैं स्वयं संतुष्ट नहीं हूँ, आपके सामने केवल श्रीराम-कृपा से ही जैसे-तैसे प्रस्तुत कर रहा हूँ। कई ऐसी त्रुटियाँ हो रही हैं जिन्हें क्या कहा जाये परन्तु मैं तो जानता हूँ क्योंकि वे त्रुटियें जानकारी में हो रही हैं और उन्हें सुधार नहीं पा रहा हूँ। चित्त में दुःख और ग्लानि के साथ-साथ पंगु आक्रोश भी है। द्वितीय संस्करण तक यदि शरीर रहा और राम जी ने चाहा तो देखा

जायेगा। अन्यथा तो…छोड़िये। फिर भी कुछ निवेदन है कि अष्टम-भुवन में जो पदावलि मुद्रित हुई है लगभग उतनी ही अभी और है। ग्रंथानुसार टिप्पणियें देना चाहता था, वह भी नहीं हुई। कई अक्षम्य अशुद्धियें भी हैं। उनका शुद्धि-पत्र भी नहीं लग पा रहा है। स्यात् पृथक से छप सके। किन्तु इस सब के मध्य में "सूली ऊपर सेज हमारी" का ज्ञान प्रबुद्ध-जनों को अवश्य हो जायेगा।

इस संदर्भ में देश और समाज के कर्णधारों से केवल मात्र इतना निवेदन है कि वे प्रमाद को त्याग कर देश-काल-परिस्थिति के अनुसार एवं अपने सम्मुख प्रस्तुत विषय के स्वरूप को पहचान कर व्यवहार करें। मैं सूत्र रूप में संकेत कर रहा हूँ। स्पष्टतः कहूँगा तो स्यात् आत्मश्लाघा जैसी लगे परन्तु अब मैं अपने लिये नहीं अपितु उनके लिए कह रहा हूँ जो अन्य महानुभाव इस पथ पर चल रहे हैं अथवा चलेंगे या जिन्हें इस पथ पर चलाने के लिए प्रेरित करना हमारा परम धर्म है। समाज-साहित्य-संस्कृति-धर्म और मानवता की प्रखर दृष्टि से यह वही प्रार्थना है जो कि महाराज मयूरध्वज नें अपने शरीर की प्रसन्नतापूर्वक दो फांके कराकर प्रसन्नचित्त सम्मुख समुपस्थित प्रभु श्रीकृष्ण से की थी कि "जनार्दन भविष्य में किसी की ऐसी परीक्षा कृपा करके मत लेना क्योंकि आगे भयंकर कलिकाल आ रहा है।"

भाषा-छंद-अलंकार आदि की त्रुटियों पर ध्यान न देते हुए भारतीय जनो! भारतीय से संस्कृति के प्राण-पुरुष प्रभु श्रीसीताराम की यह गाथा अपने अबोध बालक से ग्रहण करें, यही आप सब से पृथ्वी पर मस्तक टिका कर करबद्ध याचना है। कृपया स्वीकार कीजिए।

रामरंग

विषयानुक्रमणिका

प्रथम-खण्ड

प्रथम-भुवन

साकेत

द्वितीय-भुवन

श्रीराम राज्य की व्यवस्थायें

तृतीय-भुवन

श्रीराम-यात्रा

षष्ठम-भुवन

श्रीजानकी-वनवास

सप्तम-भुवन

श्रीहीन अयोध्या

अष्टम-भुवन

श्रीजानकी वन-निवास

नवम-भुवन

लवणासुर-वध

दशम-भुवन

राजसूय

एकादश-भुवन

कौशल्या-निर्वाण

द्वादश-भुवन

सुमित्रा-कैकेई निर्वाण

त्रयोदश-भुवन

शैलूष-वध

महाप्रयाण

चतुर्दश भुवन

★★★

पंचम-भुवन

मंगलाचरण

शक्ति-वंदना

हिम-कुंद-इंदु-कर्पूर-क्षीर, नव-नवनीवा छवि परम धवल ।
मुक्ता स्वहंस को चुगा रहीं, छहराता छत्र विभा-मंडल ।।
उर श्वेतसरोरुह-हीर हार, चंपक-कलियों का मुकुट कलित ।
लहरातीं विस्मित केशराशि, पुस्तिका स्वत: गाती सस्मित ।।
फिर रही सुमरनी पोरों पर, वीणा पर अँगुली नाच रहीं ।
यों मानस में विचरण करतीं, ज्यों सगुण चेतना गाज रहीं ।।
जिनकी स्तुति करते शब्द-ब्रह्म, सादर सस्वर स्वर-अलंकार ।
वे परम-सात्त्विका सरस्वती, जगतीतल का कल्याण करें ।।

तन तपित कनक सा परम कलित, तारक-मंडित पट-पीत ललित ।
कच कुंचित मंदारक-गुंफित, अंगांग विविध भूषण शोभित ।।
सिंहासन पर अति सौम्यभाव, बैठीं शशिशेखर के आंगन ।
लखतीं गुह-गणपति के कौतुक, लेतीं सुर-मुनि-मनु-दनु वंदन ।।
अधरों से 'शिव-शिव-शिव' जपतीं, करतीं रघुपति-लीला चिंतन ।
मंजीर बजातीं ताली से, वादित्र सरिस बजते कंगन ।।
जिनकी रोमावलि सरसातीं, अविरत वात्सल्य सरस निर्भर ।
वे सिद्धिदायिनी शर्वाणी जगतीतल का कल्याण करें ।।

संशोभित क्षीर-पयोधि मध्य, कमलासन से कमलासन पर ।
चंचलाराशि चंचला अचल, अतिशय प्रसन्न-मुद्रा मनहर ।।
कल कमल-लोचनी चतुर्भुजी, शतदल सनाल कर लहराते ।
दिग्गज-शुंडों में कलश धार, अभिषेक दिव्य करते जाते ।।
शृंगारों की जननी जननी, हरि-प्रिया सकल सौभाग्य-मूर्ति ।
शतपत्र-सत्र की शरद्-सत्र, अपनी शोभा की स्वयं पूर्ति ।।
जिनकी सेवा में अष्टयाम, प्रस्तुत रहतीं निधि-ऋद्धि-सिद्धि ।
वे पद्मा-रमा जगन्माता, जगतीतल का कल्याण करें ।।

षोडश भुज विविध-विविध आयुध, शोभित मृगाधिपति स्कंधासन ।
अधराग्र चाटतीं मदिर-दृगी, मधु-कलश पटकतीं सतत झनन ।।
झटकी कच-माल, खुली वेणी, कुछ कटि-तट से कांची लटको ।
रुष कंपित सी अटपटी गिरा, टकटकी महिष-मुख पर अटकी ।।
"रे मूढ ! गरज ले क्षण भर को, मधु-पान कर रही मैं जब तक ।
तव अंत निरखकर ये त्रिभुवन, निरखेंगे हँसते वृंदारक ।।
जिनके शूलानल का बलि-पशु, खल बना बदलता हुआ वेष ।
वे महिषमर्दिनी मातंगी, जगतीतल का कल्याण करें ।।

शनि सा श्यामल वपु, अष्ट भुजी, त्रय-दृग बड़वा-संयुत दधि से ।
कच खुले घने काले कुंचित, संवर्तक-नैश्य निरवधि से ।।
सतलड़ी कंठ में मुंडमाल, भुज कटे दनुज-दल के कटि-पट ।
खांडा - खट्वांग - त्रिशूल-मुंड, उद्दीप्त - कुंड नव-शोणित-घट ।।
पी रहीं रक्तबीजों का मद, द्युति लज्जित करतीं निज गति से ।
कर अट्टहास पर अट्टहास, दिखलातीं शुष्क-गिरा रति से ।।
जो प्रलयंकर के वक्ष सजीं, प्रलयंकर खल-दल प्रलय मचा ।
वे रक्तदंतिका कालरात्रि, जगतीतल का कल्याण करें ।।

अति गोरवर्ण, ज्यों स्वर्णपत्र, दिनकर-मणि-महिमा प्रतिबिम्बित ।
प्रत्यंग-अंग अश्रुत-सज्जा, ज्यों शोभा शोभा सानंदित ।।
मणि-खचित पारदर्शी-दुकूल, नीलम-माला मैली करता ।
अव्यक्त अगोचर ईश्वर में, जग-सृजन भाव-संकुल भरता ।।
मधुवन के कुंज-निकुंजों में, शिर धरे सरति रीती-गागर ।
'लो नंदलाल-गोपाल-लाल,' कहतीं हरि-रंग-रँगीले स्वर ।।
जो परिधि प्रेम कीं, भक्ति मूर्ति, श्रृंगार-गात्र की प्राण-शक्ति ।
वृषभानुनंदिनी वे राधा, जगतीतल का कल्याण करें ।।

रत्नाकर-दुहिता हरिप्रिया, साधना-मूर्ति भावनामयी ।
लावण्यमयी कारुण्यमयी, वात्सल्यमयी जग-विपद्-जयी ।।
जो स्मरण राम के करते हीं, बन गईं जानकी पंचवटी ।
भू-भार-हरण नाटक के नट, मन ही मन माने सफल नटी ।।
मृग दिखा भगाया यों प्रभु को, ले गईं भगाती लंका तक ।
यों रमी रमा कर भावों को, कर सके न अज भी शंका तक ।।
तप रहीं त्रिकूटा-घाटी में, तप कर त्रिकूट-घाटी में, मां ।
वे महावैष्णवी शुभ-त्रिमूर्ति, जगतीतल का कल्याण करें ।।

वह नित्य नवल साकेत धाम, विरजा-सरयू के पुण्य पुलिन ।
रहते हैं खड़े दर्श-हित नित, बहु-भुवनों के सुर-त्रय अनगिन ।।
उस कनकभवन के द्वारों पर, जिसके दौवारिक भक्त विमल ।
उसमें षोडश-दल-शैया पर, श्रृंगार करे षोडशी नवल ।।
बैठीं प्रिय सह अति प्रमुदित चित, ले दया-भाव शिशु जीवों पर ।
अति कृपा करातीं रघुपति की, रच मान-स्वांग मनुहारें कर ।।
ज्यों धूलि-धू सरित बालक पर, लौकिक-मां स्नेह लुटाती हो ।
वे जनकनंदिनी मां सीता, जगतीतल का कल्याण करें ।।

दोहा

उतरा तल-नभ घहर कर, पुष्पकराज विमान ।
किया तुरत रघुनाथ ने, विजय-धनुष संधान ।।
सायुध रणबांके दनुज, निकले सुन टंकार ।
लगीं डुबाने क्षितिज-तट, शर-पावस मँझधार ।।
लगे लोटने जगजयी, एक-एक कर वीर ।
अपलक सेतु, तली बने, शोणित-स्रोत शरीर ।।
गरजा कुहु-कुहरे सरिस, शतकंधर सोन्माद ।।
मानो पातक-मूल का, युक्ति-युक्ति अनुवाद ।।

वनमाला

क्षणभर में ही रण-चौसर पर,
निर्भय दुर्दैव लगा फिरने ।
निशिचर-परिकर-जयकारि लगे,
सरि-तट के भूरुह से गिरने ।।

हो गये राम-लक्ष्मण वंदी,
साश्चर्य लगे लखने त्रिभुवन ।
संयमनी - अलका - भोगवती,
सुरपुरियों में छाया क्रंदन ।।

तल-अतल-तलातल-सुतल - वितल—
पाताल-रसातल सतल हिले ।
नभ रवि-शशि - ग्रह - तारामंडल,
पतझर-दल दल सम सकल हिले ।।

पथ-भ्रष्ट हुए दिग्गज-समूह,
मर्यादा त्याग प्रकृति डोली ।
शाश्वत् विधान व्यवधान भरे,
संवर्तक-गिरा सृष्टि बोली ।।

रह गये खड़े अंगद-मारुति,
रघुजन को बालधि-कोट छिपा ।
यश-फलक अलौकिक आभामय,
ज्यों लगा पराजय-तिमिर लिपा ।।

शतकंधर के निष्फल प्रहार—
कपि करते-करते हुए विकल ।
त्रैलोक्य-जयी वरवीरों का,
हो चला क्षीण क्षण-क्षण में बल ।।

देखा समाधि में मारुति ने,
सम्मुख समुपस्थित मातृशक्ति ।
बहुमुख-भुज सजी अमित आयुध,
मन कोप, विलोचन रणासक्ति ।।

रह गये स्तब्ध, मुख प्रमुख देख—
विकराल कालिका सीता - छवि ।
कौटिल्य भरी मुस्कान अधर,
ज्वाला दृग-त्रय,चितवन ज्यों पवि ।।

शिशु सा शतकंठ छिपा आंचल,
अभया-मुद्रा का मुकुट पहन ।
भय के भय सभय हुए मारुति,
पथरा से गये चपल लोचन ।।

यह क्या माया, यह क्या लीला,
परमेश्वर-परमेश्वरी तुमुल ।
समिधा-शाकल्य बना पल में,
जिस मख का मनु-दनु-कुल संकुल ।।

फिर कपि ने ध्यानावस्था में,
की श्रवण परम दिव्या-वाणी ।
"इसके वध में केवल समर्थ,
भगवती मैथिली कल्याणी ।।

जाओ, लाओ सिय को तुरंत,
भव - बंधन - हरण समर - बंधन ।
सक्षम प्रहरी हैं बालिपुत्र,
निर्भय निर्जर-गुरु रघुनंदन ।।"

अवगत अंगद को कर मारुति,
मन-गति लज्जित कर पुर आये ।
रह गये चकित सुन समाचार,
सहसा न भरत कुछ कह पाये ।।

बोलीं कौशल्या मां "सिय वधु,
तन-मन की परम सुकोमल सी ।
मंजुलता निधि, नवनी प्रतिमा,
शुचिता-शमता-द्युति निर्मल सी ।।

वन गमन राम का एक बार,
रह गया तनिक सा खलकर ही ।
अब तक भी सिय-वनवास न मैं,
प्रिय ! भुला सकी पर पल भी ।।

जो पली पालनों में पल-पल,
प्रिय की पलकों की छांव चली ।
करुणा-वरुणालय राम बना,
जिसके कारण रण-रंग छली ।।

उस सिय को समर - वेष पहिना—
कर तिलक विदा कैसे कर दूं ।
जो थकता हार-भार से तन,
तन-त्राणों से कैसे भर दूं ।।

जो कसी कंचुकी की तनियां,
सरकाती फिरती छिप-छिपकर ।
वह चढ़ा सकेगी प्रत्यंचा,
सोचो तो मारुति ! धनुषों पर ।।

जिसमें रघुकुल -तरु का अंकुर,
है धीरे-धीरे पनप रहा ।
उससे रण, पथ-श्रम विषम अरे,
कैसे जायेगा कहो सहा ।।

मानसिक-व्यथा सहने की तो,
नारी में है अद्‌भुत् क्षमता ।
पर शारीरिक-पौरुष में कब,
पुरुषों की कर पाई समता ।।

जिसने अगणित रण विजय किये,
हर को शिर-माला पहनाई ।
अति धन्य हुई उस सुत की मां,
यदि उसने क्षत्रिय - गति पाई ।।

मैं अपनी वधु को कभी नहीं
रण जाने की आज्ञा दूंगीं ।
हां देव, दिया जिसने यह वर,
दे शाप उसे शिक्षा दूगीं ।।

करलो उत्पन्न नई दुर्गा,
मेरी वधु-सिंय को क्षमा करो ।
अन्यथा अशक्त अमर्त्यवरो!
आसन्न-मृत्यु अविलंब वरो ।।"

जल लेने को कौशल्या का,
ज्यों हाथ बढ़ा, बोले वशिष्ठ ।
नृप दशरथ-महिषि "राम - प्रसवनि,
कल्याणि देविके ! तिष्ठ-तिष्ठ ।।

हमको विचारने दो दो - पल,
सिय-राम युगल जग के लोचन ।
दोनों त्रिभुवन के आभूषण,
दोनों मर्यादा के तन-मन ।।"

मंत्रणागार में इतने में,
एकत्र हुआ रनवास सकल ।
निज विषय जान कर चपल हुईं,
सीता बैठी रह गईं अचल ।।

फिर सास समीप सरक आईं,
बोलीं धीरे से पद छूकर ।
"माँ ! क्षमा करें गुरुजन समीप,
मैं बोल रही परवशता पर ।।"

सिय-दृग दृढ़ता की रेखा लख,
कौशल्या के दृग भर आये ।
'ना-ना' ही अधरों पर उतरा,
कुछ और न शब्द उभर पाये ।।

ली लगा हृदय से वैदेही,
अंतःपुर सारा चकित हुआ ।
अवलोक कार्य-गुरुता तथैव,
सिय-कोमलता चित व्यथित हुआ ।।

हो गया स्नेह - वश हृदय विवश,
पर परवश धर्म लगा करने ।
कर्तव्य सुपथ पर सुदृढ़ हुई,
"दो विदा" लगीं सीता कहने ।।

"रघुराजरमणि! निमि-नृप -नंदिनि!
रविकुल - भामिनि ! तू गर्भवती ।
दुष्कर रण में कैसे भेजें,"
व्याकुल हो बोली अरुन्धती ।।

"ज्यों मां ! छोटी मां को तुमने,
शंबर-रण में भेजा सादर ।
त्यों मंगल - कंकण बांध वही,
रख दो मंगल-मय कर शिर पर ।।

तव आशिश से मां ! शैव्या मां,
पति-पुत्र सहित लौटीं सकुशल ।
पलकों में कटा विपल सा वन,
रघुरक्षिणि ! तव आशीश प्रवल ।।

वह संकट देख उन्हीं प्रिय पर,
भवनों में बैठी रह जाये ।
क्या समुचित यह क्षत्राणी - हित,
ब्रह्माणि ! आप ही बतलाये ।।"

कर त्रिपुरजयी का धनु खंडित,
साकेत अखंड जिसे लाये ।
जिसके कारण पाथोधि बांध,
प्रभु पद-चर हो परपुर धाये ।।"

पति का अनुमोदन मौन देखा,
ऋषि-तिय न बोल पाई विह्वल ।
नभ में पसार कर कर बोली,
"जा रानि! दशों दिशि तव मंगल ।।"

बोले रिपुदमन-भरत दोनों,
"मां से पहले हम जायेंगे ।
जब ये शिर रण चढ़ जायेंगे,
तब ये कर शर ले पायेंगे ।।"

"अधिकार प्रयोग कहो तो कुछ,
कर ले यह आज महारानी ।"
अति सकुचा कर सीता बोली,
"युवराज न तजें राजधानी ।"

शिर झुका भरत बोले "सुराज्ञि !
क्या उचित अकेले तव जाना ।"
"शंबर-रण जेता की दासी,
फिर धारेगी रण का बाना ।।'

सबने साश्चर्य लखा सम्मुख,
कैकेई खड़ी हुई तन कर ।
अद्भुत उमंग प्रत्यंग-अंग,
छा रही छटा सी वृद्धा पर ।।

जिनकी बुझ चुकी ज्योति युग से,
वे दृग शिव-शिर-दृग से धधके ।
जो भाव चेतना शून्य बने,
वे उठे प्रदीप्त शिखा बन के ।।

पुतली डोलीं ज्यों दावानल—
व्याकुल वन की हिरणी डोलीं ।
कच - राशि उड़ी, बड़वाविदग्ध—
ज्यों मानस हंसों की टोली ।।

"वधु वैदेही कैकयी की—
छांया में रण में जायेगी ।
किंकरी कीर्ति के भाग्य जगा,
रानी-राजा को लायेगी ।।

अभिनव अवतरण रणांगण में,
जग देखे दुर्गा का होता ।
तज मूर्च्छा सूर्यकुमार उठे,
देखे अरि चिरनिद्रा सोता ।।"

बोले वशिष्ठ "शत्रुघ्न पुत्र !
रघु-सैन्य दुरन्त तुरन्त सजा ।
पुरुषों का पौरुष समर- भूमि,
वधु का विक्रम दे आज लजा ।।

बज उठा नृसिंहों पर मारू,
रण राग रँगा साकेत सकल ।
रथ जुते, झूम मातंग उठे,
हिनहिना उठे तुरगों के दल ।।

संवर्तक - पारावारों की,
लहरों से लहराये पदचर ।
राघव निकले निशिचर उबले,
जय-जय करते उछले वानर ।।

यों लगा उठा नभ योजन भर,
क्षितिजों के पार दिशा फैलीं ।
धरणीधर-कमठ - कोल - अहि की,
पदरज से मँजीं पीठ मैलीं ।।

कुल-देवी का पूजन करके,
वैदेही राजद्वार चलीं ।
द्विज मंत्रोच्चारों के स्वर में,
प्रत्यक्ष शारदा सी निकलीं ।।

मंगल गायन करतीं पुरतिय,
मंगलदीपों की पांति सजा ।
दोपावलियों को श्री प्रदान—
करतीं श्री देवी, दृश्य लगा ।।

मणिमय किरीट जगमगा उठा,
झिलमिला उठे हिलते कुंडल ।
दमदमा उठा कंचन - कंचुक,
झनझना उठे मंजीर युगल ।।

पद - चुंबित चिकुर-जाल लहरा,
कौशेय दुकूल उठे फहरा ।
तन्वंगी सिय के अंग-अंग,
शुभ-रौद्र स्वरूप उठा छहरा ।।

चंचला शिशिर-निशि झंझा से—
ज्यों आंख मिचौली ठान चली ।
त्यों अंतःपुर से कैकेयी,
अति प्रमुदित द्रुत-गति से निकली ।।

जयकारों से भर उठा अवध,
कण-कण जागा ले अँगड़ाई ।
ऋषियों की शांत चेतना में,
बौरें उमंग की बौराई ।।

गुरुतिय ने तिलक लगा, बांधा—
सिय उत्तर-भुज मंगल - कंकण ।
बोली केकई स्व-कंकण ले,
"मम प्रिय वधु ! यह भी तव अर्पण ।।"

सिय ने सकुचा शिर झुका लिया,
कौशल्या आगे बढ़ आई ।
आंचल कर, उठा स्वोत्तरीया—
केकयी - कंध पर लहराई ।।

बोलीं "तू जीती कैकेई,
धर्मत: राम की जननी तू ।
मैं पंक- कुरंध्र नील-दल की,
मम मुदिता शरद - चांदनी तू ।।

तेरे सिय-राम तुझे अर्पित,
विष-पायी शिव की नव छवि तू ।
संसार-छंद विधिना-गति गति,
यश-अयश शब्द सुसफल कवि तू ।।"

यों सजल केकई-कौशल्या,
भर परम अलौकिक मोद मिलीं ।
ज्यों भागीरथी - अलकनंदा,
उज्ज्वल तुहिनाचल गोद मिलीं ।।

फिर पद-वंदन करती सीता,
कौशल्या ने ली हृदय लगा ।
"मिथिलानंदिनि ! इस रघुकुल का,
तव शुभागमन सौभाग्य जगा ।।

मैं तब भी रज सी पड़ी रही,
मैं अब भी शिल सी गड़ी रही ।
पर धरा-सुता तू धरती पर,
सद्धर्म-खड्ग पर खड़ी रही ।।"

सुन कर कौशल्या-वचन सिया,
बोली "आशीश तुम्हारी मां ।
बन गई घटायें संकट की,
निष्कंटक छटा हमारी मां ।।"

मां बोली "जब तक रवि-शशि नभ,
गंगा-यमुमा में बहना जल ।
तब तक तेरी सौभाग्य-कथा,
निज तिलक कहेंगी, कथा सकल ।।"

कर फिर-फिर नमन सुमित्रा का,
तीनों बहिनों का आलिंगन ।
बैठी, कैकेयी को बैठा—
सिय रथ में, कर प्राणेश-स्मरण ।।

धरती पर सादर शीश झुका,
वंदना भरत ने बढ़कर की ।
सस्नेह मौन आशिश देकर,
कर पर शासन-मुद्रा धर दी ।।

ली कषा-वल्गु रिपुसूदन ने,
हनुमान शिखर पर चढ़े उछल ।
बज उठे दमामे शंख-ढोल,
ध्वनियों की व्योम बना दल-दल ।।

मस्तक पर दिव्य छत्र झूला,
उज्ज्वल शतदल से चँवर खिले ।
घनघना उठीं घंटिया अमित,
अरिहन-इंगित हय तुरत हिले ।।

यों लगीं साथ कैकेयी के,
रण-वेष सजीं सिय वेदी पर ।
ज्यों धूम्रावती भगवती सह,
श्रीभुवनेश्वरी सजीं सुंदर ।।

धनु - शर - खट्वांग-त्रिशूल-परशु,
असि-भिंदिपाल भालों से सज ।
सिय लगीं वीररस-वांसती—
की ललित त्रिभंगी कुसुमध्वज ।।

ऋषियों ने देखा सीता में,
त्रिभुवन का तेज समाया है ।
यह आदि-शक्ति ने आदिपुरुष—
का बढ़कर, हाथ बँटाया है ।।

उस काल, दृष्टि में सीता की—
काली का नृत्य कराल दिखा ।
नूपुर में डम-डम डमरु का—
मुखरित प्रलयंकर ताल दिखा ।।

यम-महिष - घंट का घोष प्रखर,
कटि किंकणिका झंकार उठा ।
कंकणियों में कैटभरिपु का,
शुभ पांचजन्य गुंजार उठा ।।

प्रत्यक्ष गदा में शक्र दिखे,
कृतिका-सुत कुपित शक्तियों में ।
झंझा-पावक धनु-बाणों में,
तड़िता की तड़क ऋष्टियों में ।।

करते प्रशस्त पथ विकट लगे,
सिद्धियां लगातीं फुलवारीं ।
पथ छांया करते पारिजात,
पथ शीतल मेघों की झारीं ।।

रवि-ध्वज द्वितीय रवि सा फहरा,
दिशि-दिशि में करता अठखेली ।
चल पड़ा हरावल गौरव से,
छवि की छवि लगो तनिक मैली ॥

सेना खगपति-गति से चलती,
उड़ती पद-रेणु प्रंभजन सी ।
मनगति करती लज्जित उमंग,
सिय-सेना अनुपम सिय-प्रण सी ॥

श्रीगंगा-सरयू संगम से,
भृगु-आश्रम पर सेना आई ।
कर पार अंग-भू शस्य-श्याम—
बंगीय-भूमि पर लहराई ॥

सागर सुहासिनी गंगा के,
तट पर कर काली का अर्चन ।
अभिषेक दक्षिणेश्वर का कर,
जय-वर का लेकर अभिनंदन ॥

चलती सागर तट साथ-साथ,
कोणार्क-क्षेत्र रवि-पूजन कर ।
प्रभु जगन्नाथ के नीलाचल—
बहु भेंटें चढ़ा सुदर्शन पर ॥

भुवनेश्वर का दर्शन करतीं,
आईं उस तीर्थाधीश्वर पर ।
सह्याद्रिराजनंदिनी जहाँ,
छवि-सप्त सुभग शुभ धारण कर ॥

प्राची-समुद्र का आलिंगन—
करतीं सर्वस्व समर्पण कर ।
ज्यों देखी गोदावरी शुभा,
आये वैदेही के दृग-भर ॥

बोलीं "मां ! तेरे हीं तट पर,
ज्यों हुआ बिछोह, मिलन भी हो ।
प्रियतम-प्रिय देवर मातृ सहित,
प्रसवनि ! फिर तव दर्शन भी हो ।।

दो सुपथ, महासागर तर कर,
कर लूं रघुपति का पद-वंदन ।
निर्विघ्न कालिका-पायल की—
अर्चना करूँ शोणित-चंदन ।।

लघु-प्रजा राम-राजेश्वर की;
लघुतम-कणिका धरती-रज की ।
कर रही याचना आंचल कर,
गौतमी अंब ! जग-मंगल की ।।"

ध्वनि हुई "मैथिली जगदम्बा,
तुम अखिल-लोकपति की रानी ।
जग संभव-पालन-लयकर्त्री,
तुम कल्याणों की कल्याणी ।।

गायत्री - सावित्री - गंगा;
रति-शची-स्वधा-स्वाहा-श्रुति-ध्वनि ।
ब्रह्माणी - रुद्राणी - कमला,
सीते ! तव कण-कण की निःस्वनि ।।

इस अकिंचनी को यश देने,
तुम त्रिभुवन-नट की नटी चलीं ।
मर्यादापुरुषोत्तम प्रेयसि !
मर्यादा की महिमा रख ली ।।

तव स्मरण-मात्र से पापी-जन,
करते भवसागर पार सहज ।
इस सागर से पथ मांग रहीं,
निमिराजसुनंदिनी ! दो पद-रज ।।

जिसने लंका के दनुजों को,
यमपुर का पथ निर्विघ्न दिया।
जिसने पग-पग पर जन-जन हित,
वैकुण्ठधाम अति सुलभ किया॥

जग को सत्पथ देने वाली,
पथ देने वाला कौन तुम्हें।
यह गला जा रहा लज्जा से,
सागर जो लगता मौन तुम्हें॥

आज्ञा दो तो मरुभूमि बने,
केवल पद-तल तक रह जाये।
जल में थल-सम तव अजय सैन्य-
पछवा-पातक सम फहराये॥

आज्ञा - आदेश-निदेश - शिष्टि—
अनुमति - शासन - अनुशासन दो।
हे भुवनेश्वरि! रघुनाथ-प्रिये,
तुम तनिक परीक्षण क्षण-कण दो॥"

वैदेही अति संकोच भरीं,
ज्यों गांठ कृपण की उघड़ गई।
अतिशय विचार अति मृदुल गिरा,
धीरे से बोलीं कृपामयी॥

"क्या देवि! क्षुद्र मानवी कहे,
इतना ही ला सकती मुख पर।
मैं उन चरणों की दासी हूँ,
जो तरे सेतु ही से सागर॥

फिर गुरुजन-भूति भरे गुरुवर—
रत्नाकर, इनका तो वंदन।
हों पार तुरत अश्रम सकुशल,
यह मात्र अंबिके! आवेदन॥"

"सिय ! तव निषंग में सुपथ भरे,
चाहो जितने विस्तार करो ।
यह सेना, कितनी सेना है,
चाहो त्रिभुवन को पार करो ।।"

राघव-रमणी के दृग विलोक,
रिपुदमन उठे पदवंदन कर ।
कह कर "जय-जय-जय सिया राम,"
शैलास्त्र चढ़ाया कार्मुक पर ।।

बिछ गईं तलातल तक पल में,
गिरिमाला समतल जल-तल पर ।
कर सिंधु-गौतमी का पूजन,
सिय-यान चला करता घर्घर ।।

रथचर - गजचर - हयचर - पदचर,
करते अति विस्मित सचराचर ।
जा पहुँचे शतकंधर के पुर,
निर्विघ्न पार करते सागर ।।

भयभीत हुआ दानव-समूह,
सिय का चतुरंग-व्यूह लखकर ।
बोलीं "देखो अरिहन ! कपीश !
हैं कहां सहिष्णु युगल रघुवर ।।"

शत्रुघ्न कर उठे शंखनाद,
किलकारे मारुति अंबर पर ।
त्रैलोक्य भरा घन-घोषों से,
पर मिला न कोई प्रत्युत्तर ।।

वीरों के अति गंभीर-नाद—
गर्वोन्नत ग्रीव झुका बैठे ।
पर राम-लखन कपि युव-नृप के—
श्रवणों में स्वल्प न स्वर पैठे ।।

भर गईं कोप से आदि-शक्ति,
नयनों में धधके अंगारे ।
ले लिया चंडघंटा कर में,
घन-घन-घन-घन स्वर गुंजारे ॥

"जागो रघुपति ! राजेन्द्र ! राम !
धनुधारि दशाननजयि ! राघव ।
दुर्जय दानव-दल-दलन देव !
अघ-अकूपार प्रलयंकर-दव ॥

हे संभव सहज असंभव के,
भव-प्रिय ! रघुनाथ ! स्वयं-संभव ।
सीता लेने आई जागो,
हे प्रियतम ! भैरव के भैरव ॥"

चैतन्य नित्य - चैतन्य हुए,
बोले "लक्ष्मण ! सीता आई ।
सुस्पष्ट घोर घंटध्वनि में,
कंकणियां वे ही मुस्काईं ॥

जीता हूँ जीता प्रिय सीते,"
बोले उच्चस्वर से रघुवर ।
प्रभु-स्वर से दशदिशि सहित हिला,
शतकंधर का दृढ़ बन्दी-घर ॥

कर अट्टहास शतकंध उठा,
"कैसी बलवती आश राजन् ।
आ गई प्रियतमा करने को,
मानों प्रियतम का द्विरागमन ॥

दशकंधर से मैं शतकंधर,
कितना बड़भागी रघुराई ।
वह जिसको गया स्वयं लेने,
वह मेरे यहां स्वयं आई ॥

बहु युग बीते अर्चन करते,
पर कर पाया प्रसन्न थोड़ी ।
वे देवी आज प्रसन्न पूर्ण,
होंगी पा सिया-राम जोड़ी ।।

आयोजित करो महा-पूजा,
आलस्य त्याग उपरोहित-गण ।
खोदो दनु - सुभट - शिरोमणियो,
आंगन-आंगन से मद-भाजन ।।

कल्था - खर्जूरी - मैरेयी,
मधु - कादम्बरी - सुरा - हाला ।
वारुणी - यावकी - द्राक्षामद,
करदे दनु-दनु को मतवाला ।।

कर दो विमुक्त अज-महिष - मेष—
खर - कुक्कुट - पारावत - सारस ।
ले आज दनुज - कुल मन भर कर,
मनु - वानर सरस मांस का रस ।।

हो दृष्टरजा - रज से भू पर,
भैरवी - चक्र की संरचना ।
मध्य में रामसिय की जोड़ी,
कर दो संस्थापित निर्वसना ।।

दो खुली खड्ग, दे लक्ष्मण बलि,
यदि न दे, करें बलिदान इन्हें ।
भरकर अंजुलियों में शोणित,
कर डाले दनु-कुल पान इन्हें ।।

त्यों ही देवी को भेंट करो,
अंगद - नल - नील-ऋक्ष-कपिपति ।
कापुरुष विभीषण कुल-द्रोही,
कैकेयी - रिपुसूदन - मारुति ।।

दिशि-दिशि धधका दो यज्ञकुंड,
भूनो-भूनो हय-गय-कपि-नर ।
मज्जा चट-चट, मंत्रों की ध्वनि,
दे गुँजा तलातल का अंबर ॥

खांड़े खोलो खड्गें खींचो,
यमघर शिल-शिल पर करो प्रखर ।
कर दो सुतृप्त, पीती स्वरक्त,
है रिक्त छिन्नमस्ता-खप्पर ॥

दनु-सुन्दरियां नूपर-मणियां,
कंकण-किंकणियां खनकातीं ।
सागर मंथन - की मोहिनीव,
नाचें मधु-गगरी छलकातीं ॥

लाली गहराये लाल-लाल,
आसव में मिले लहू-लाली ।
अधमुँदी पलक खप्परवाली—
काली को करदे मतवाली ॥

यह किसका नर किसकी नारी,
बस दिखे कि यह नर यह नारी ।
मैं मन्मथ, तू रति, यह वसंत,
हों एकाकार सुरा-झारी ॥

दो सजा, करा मज्जन रघु-नर,
मैं रानी को रण से लाता ।
जो जोड़ न पाया दशकंधर,
वह शतकंधर जोड़े नाता ॥"

महिरावण कर मधुपान उठा,
लक्ष्मण के दृग-द्वय अरुणाये ।
अंगद की बांहे फड़क उठीं,
रघुनन्दन केवल मुस्काये ॥

इतने में आकर प्रतिहारी,
बोला "प्रासाद घिरा राजन ।
रण में रघुनन्दन की रानी,
रणचंडी सी करती नर्तन ॥"

शतकंधर गढ़-प्राचीर चढ़ा,
देखी अपार सेना उमड़ी ।
पड़ गया सोच में यह सिया—
प्रलयंकर-भाल-पलक उघड़ी ॥

दनु काट रही, ज्यों काट रही—
कृषि नवल-कृषक की अलबेली ।
हो रहा समर, हो रही कि यह—
विकराल-काल की अठखेली ॥

इतनी सुन्दरीं भयंकर भी,
प्रलयंकर सी क्या हो सकती ।
यह द्विभुजी या कि अनन्त-भुजी,
सिय नहीं कालिका ही लगती ॥

यह स्वयं वैष्णवी चक्रधार,
धारे त्रिशूल या रुद्राणी ।
यह शक्ति लिये कौमारी है,
या वज्रधारिणी इन्द्राणी ॥

गर्जना नारसिंही करती,
वाराही धरती खोद रही ।
या प्रेत-पौध-हित ईशानी,
हल से नभ खेती जोत रही ॥

यह खड्गधारिणी चामुण्डा,
जो बार-बार कर वार रही ।
या महाकाल मोहित करती,
यह विश्वमोहिनी नाच रही ॥

कब बढ़ते हाथ निषंगों पर,
कब धर देते सायक धनु पर ।
लेती कितने शर एक बार,
शिर कितने हर लेता हर-शर ॥

पहले लखती है दृष्टि लक्ष्य,
शर-वृष्टि कि सृष्टि प्रथम हरती ।
यह नारी है, या चपला है,
जिसकी छवि से दिशि-दिशि बलती ॥

यह दावा सी नभ को छूती,
यह बड़वा सी तल धधकाती ।
यह शौर्य-धैर्य के अचल, अचल—
शूरों पर उल्का सी धाती ॥

मिल पाती क्षण भर दृष्टि न, पर—
जिस ओर दृष्टि जाती, दिखती ॥
गिरती जाती सेनायें ये—
जाती दिखती आती दिखती ॥

यह वशीकरण या उच्चाटन,
पढ़ रही मंत्र मोहन-मारण ।
बीती रण करते वय सारी,
पर देखा सुना न ऐसा रण ॥

मातंग-मत्त यों लोट रहे,
ज्यों फूट रहे घट माटी के ।
भागे जाते यमपुर तुरंग,
ज्यों रवि-हय संध्या-घाटी के ॥

घुन खाई बांसों की कुटिया,
सावन की झंझा उड़ा रही ।
ध्वज लहराती रथ-मालायें,
त्यों शोणित-सरिता डुबा रही ॥

हय-गय-रथ अपने, अपने ही—
पदचर-परिकर को रौंद रहे ।
रण का कण-कण चित्कार रहा,
दुर्दशा भयंकर बिना कहे ।।

जैसी यह सीता महारथी,
सारथी शत्रुसूदन वैसा ।
यह झंझानिल दावानल का,
संयोग प्रचंड मिला कैसा ।।

यह पढ़ा तुरंगों की भाषा,
या पढ़े तुरग इसकी भाषा ।
इसके दृग फिरने से पहले,
फिरती धाराटों की नासा

यह सप्त-वल्गु मुख-कांख दाब,
घुटने तलवों से खींच कभी ।
स्यंदन-संचालन संग-संग,
परिचालन करता शस्त्र सभी ।।

ये अद्भुत देवर-भाभी हैं,
या जोड़ी भैरव-काली की ।
या वहन कर रहा गौर-महिष,
यह शिविका मृत्यु-कराली की ।।"

दे कर काली को शोणित बलि,
पीकर गट-गट मदिरा घट भर ।
ले सिद्ध-खड्ग गढ़ से निकला,
भूकंप-चंड सा! शतकंधर ।।

डग-डग-डग डोल उठी धरती,
अट गया अट्टहासों से नभ ।
दनु-खड्ग शिखा की प्रखर-ज्वाल,
रघु-सैनिक बनने लगे शलभ ।।

सिय सैन्य हटा पीछे, बोली—
"ले चलो वहाँ अपना स्यंदन ।
पामर शतकंधर खड़ा जहां,
त्रिभुवन का पातक शत्रुदमन ।।"

सिय ने देखा बढ़ रण-दुर्मद,
शतकंधर घोर समर करता ।
वह खड्ग-हस्त, कज्जलगिरि से—
ज्यों कालानल लावा बहता ।।

काला-काला सुगठित शरीर,
मानो यम-पाश कराल बँटा ।
जलते-जलते दृग पास-पास,
मानों विधर्म से पाप सटा ।।

भुज, पृथुल प्रलंब प्रचंड क्रूर,
वारों पर वार अभय करतीं ।
फण फैला कर ज्यों अजगर की,
जिव्हायें विपिन प्रलय करतीं ।।

तन चर्म-वर्म क्षतजात सद्य—
टप-टप-टप-टप कर टपक रहा ।
अटपटी आंत लिपटीं ललाट,
कलगी सा पंजा कसक रहा ।।

पशु-मुंड-मालिका कंठ अटीं,
अधपट सी कटि भट - भुजा कटीं ।
दुर्गंध भरी लेता डकार,
मद पटी कुटिल भौं, पलक लटीं ।।

प्रत्यक्ष पाप सा त्रिभुवन का,
सिय-सम्मुख आया शतकंधर ।
रह गया चकित सौन्दर्य देख,
मद उतरा पल में योजन-भर ।।

कुंदन में दिनमणि-मणि सी छवि,
करती छवि-छवि छविहीन सुछवि ।
चितवन ज्यों कमल-कोष में पवि,
क्या उपमा दे संसारी-कवि ।।

तन कनक-कवच में कसा-कसा,
कण-कण में यौवन हँसा-हँसा ।।
लहराता झीना रक्ताम्बर,
अलकें माया की मंजु कषा ।।

तन्वंगी गगन-वल्लरी सीं,
युग-बाँह ध्वजा सी फहरातीं ।
अधरावलि ज्यों अरविंदों की—
आषाढी - कलिका बलखातीं ।।

ज्यों ज्येष्ठ-मेरु उत्तुंग-शिखर,
उद्दीप्त-प्रकम्पित दोपहरी ।
त्यों फड़-फड़ फड़क रही सिय की—
नासिका नुकीली कोप भरी ।।

अत्यधिक निखर सौन्दर्य उठा,
स्वाभाविक सीय सुन्दरी का ।
नग निकला, लगा हथेली पर—
उज्ज्वल उत्साह-मुंदरी का ।।

अवलोक अपूर्व अलौकिक - श्री,
व्यामोहित हुआ काल-कवलित ।
चर चतुर बनाया एक दनुज,
मन्तव्य बताया प्रस्तावित ।।

निश्शस्त्र पताका-श्वेत लिये,
दनु-दूत गया सम्मुख सिय के ।
बोला "दनुपति - संदेश सुनो,
रघुरानि ! प्राण यदि प्रिय, प्रिय के ।।

यह बन्द व्यर्थ संहार करो,
भैरवी-चक्र स्वीकार करो ।
उन्मुक्त-भाव इस यौवन का,
दनु-दनु के प्रति शृंगार करो ॥

मतवाली कर दो दिशा-दिशा,
नायिका महा-पूजन की बन ।
अन्यथा रहो तत्पर तुरन्त,
करने को खंडित प्रिय-दर्शन ।"

हँस पड़ीं सरलता भरी हँसी,
पल में हो उठीं भ्रकुटि बांकी ।
करि-परिकर निरख केशरी की—
ज्यों नवल किशोरी-वधु झांकी ॥

चौंकी सी पल में चपल हुईं,
हो गया तिरोहित मौन सकल ।
"जा कह दे, पिया न जायेगा—
रघु-शौर्य-सिंधु का खारी जल ॥

सिय दनु-दनु के संहार-हेतु,
सुर-सुर शृंगार - हेतु आई ।
जो वह शृंगार चाहता खल,
उसके अधिकारी रघुराई ॥

रघुपति की जो छू छांह सके,
वह रचा न शस्त्र विधाता ने ।
सिय उसकी छांह, जना जिनको —
पावन कौशल्या माता ने ॥

शतकंध लखे खंडित छाया,
निज शत-खंडित होते तन की ।
सीता सचक्र - भैरवी - ज्वाल—
बलि लेगी इस दनु-इंधन की ॥

आगे आ रहा चक्र मेरा,
पीछे-पीछे मैं आती हूँ ।
इसकी ही काली के खाली—
खप्पर मैं इसे चढ़ाती हूँ ॥

तुम भोग-पिपासा - वशीभूत,
सारा सद्धर्म भुला बैठे ।
पाखंड-पाश के झूलों में,
अपना अविवेक झुला बैठे ॥

यों पिन्हा धर्म का कपट कवच,
निज निपट वासना-परिकर को ।
तुम शूर, क्रूरता-चिथड़ों में—
दिखते लपेट कायरपन को ॥

काली की काली छाँव जान,
तुम करतूतें करते काली ।
उसकी आँखों में आंख डाल—
देखो, क्या दिखा रही लाली ॥

वह मां है सब कुछ पीती है,
तुम समझे वह मद पीती है ।
वह रक्तबीज पीने वाली,
केवल दुस्सह-मद पीती है ॥

वह त्रिभुवन-भरण-पोषिणी है,
जगदंबा है क्या पीती है ।
पर रक्तपायियों का सुरक्त,
पीने को युग से रीती है ॥

जो हृदयेश्वर के भाव भरी,
हृदयेश-वक्ष पर चढ़ बैठी ।
वह परम कौतुकी काली है,
तुम समझे भोगों में पैठी ॥

वह भवप्रिया भव-भोगों की—
जननी, किन भोगों की भूखी ।
दृग दिखा रही रूखे-रूखे,
जिह्वा निकाल सूखी-सूखी ।।

वह शुम्भ-निशुम्भ घातिनी की—
चेरी-रक्षिका-सहेली है ।
वह शक्ति समस्त शक्तियों की,
चामुण्डा स्वयं पहेली है ।।

तुम फूल रहे हो, विजय किये—
रघुनाथ सदा ही अविजित हैं ।
वे महाकाल के क्रीड़ांगण,
रण-क्रीड़ा-हित समुपस्थित हैं ।।

इस दासी को यश देना ही—
इस बार अभीप्सित रघुवर का ।
बँध गया बांधने वाला ही,
जो बंधन-हर त्रिभुवन भर का ।।

यह दिव्य महामाया-पति की—
माया है, इसका वंदन है ।
मुझ नारी का आगमन यहां,
उस माया का ही पूजन है ।।

शतकंधर को कर सावधान,
ले शीघ्र स्वामि से क्षमा मांग ।
अन्यथा काल उसका रण में—
सन्नध्द खड़ा मम रचा स्वांग ।।"

चर आया शतकंधर-समीप,
वैदेही का संदेश दिया ।
हो उठा कुपति विक्षिप्तों सा,
शर-पुंज धनुष पर चढ़ा लिया ।।

छोड़ा सिय-स्यंदन लक्ष्य बना,
व्रण भरे जानकी-रिपुसूदन ।
लख सिय सरक्त कैकेयी का—
जागा सहसा क्षत्राणीपन ।।

वार्द्धक्य तिरोहित हुआ तुरत,
ले लिया भयंकर धनु कर में ।
शतकंध सारथी-अश्व-यान—
ध्वज काट गिराये पल भर में ।।

कूदा रथ से बोला "तुझ को—
वृद्धा समझा, यह उसका फल ।
सुत-वधु बलि से पहले ही तव—
दूं चढ़ा मृत्यु को तुलसी-दल ।।

मां कैकेयी को लक्ष्य बना,
फेंका शतकंधर ने भाला ।
मारुति ने गदा चला पल में—
नभ में ही खंड़ित कर डाला ।।

बोला "अच्छा तू भी बैठा,
अक्षय-अहिरावण-रिपु जीवित ।"
"जीवित न मात्र चिरनिद्रा हित—
तव सेज बिछाने को जागृत ।।"

बोला, "कपि ! बोल रहा यूं ही,
शतकंठ न तूने पहिचाना ।
निर्जन का बूढ़ा कालनेमि,
अनजाने में मुझको जाना ।।

तू बना वीर कुछ अबला छल,
सुरसा-सिहनी-लंकिनी सी ।
तुझ में अभिमान बढ़ा इतना,
लख मम असि-ज्योति अंकिनी सी ।।

'कितने कालों से कालों से—
भर महाकाल के थाल चुका।
कितने विकराल भुवाल-भाल,
माला में डाल निकाल चुका॥

यह भित्ति न भीत दशानन की,
यह वक्ष अभीत शतानन का।
यह अरुण-खिलौना गगन का न,
तरु-झुंड न लंका-कानन का॥

निर्जीव पाश घननाद का न,
यह द्रोण न दुर्वा-तिनकों का।
यह सिंधु न मछली-घोंघों का,
नभ-पथ न विहग-कुल-पटलों का॥

यह शर न पादुका-दासों का,
यह वज्र न मूर्ख पुरन्दर का।
यह शौर्य-धैर्य ऐश्वर्य-पुंज,
जगजयी खड्ग शतकंधर का॥

आ इससे टकरा कर दिखला,
कितना पय पिया अंजनी का।"
कपि कुपति हुआ सुन मातृ-नाम,
लहु खौला धमनी-धमनी का॥

"हो सावधान, ललकारी है,
तूने मेरी जननी पापी।
यह दुमुँही खेल न, महिफणि की—
मणि ठोकर से तूने नापी॥"

मारी छलांग विद्युत-गति से,
"जय सिय-प्रभु"कह कपि-कुंजर ने।
टकराये अंजन-कंचन गिरि—
ज्यों महाप्रलय के प्रांगण में॥

शिर से शिर छाती से छाती,
करतल से करतल टकराता ।
होता चट-चट स्वर बार-बार,
मानों ब्रह्माण्ड फटा जाता ।।

वे झूम-झूम फिर घूम-घूम,
झुक-झुककर तक-तक तमक-तमक ।
वारों पर वार अभय करते,
नयनों से उठती चमक चमक ।।

हय-गय-रथ नभ में फिरा-फिरा,
यों लगे पटकने उठा-उठा ।
मानों दो भैरव जूझ रहे हैं,
भू पर शोणित-घट लुठा-लुठा ।।

कहते कुलिशों से कठिन वचन,
प्रतिपक्ष-क्रूरता भड़काते ।
वृष-महिषों से भू पर लड़ते,
नभ उछल केतु से टकराते ।।

बोले रघुपति "लक्ष्मण ! अंगद !
स्वर सुनते हो ये प्रलयंकर ।
निश्चित शिर धरे हथेली पर,
करते कपिराट विराट समर ।।"

अति चकित अपूर्व द्वन्द लखते,
नभ पर सुर-किन्नर-विद्याधर ।
भू विस्मय भरे, तटस्थों से—
रह गये खड़े रघु-दनु परिकर ।।

दोनों की घावों भरी देह,
शोणित सरितायें सरसातीं ।
ज्यों कनक-लौह माणिक-मंडित,
दो जागृत प्रतिमा छवि पातीं ।।

वे मल्ल-विशारद युगल लगे,
यों गिरा-गिरा गिरते फिर-फिर ।
प्रज्ज्वलित कुंड में ज्वाल-धूम्र,
घेरते परस्पर ज्यों घिर-घिर ।।

देखा रघुनन्दन-रमणी ने,
हो गये पवनसुत अमित श्रमित ।
बोली "आ मेरे चिरंजीव !
रघुनाथ-दुलारे अपराजित ।।"

लौटे कपि नत, सिय-चरणों में,
कर पद-प्रहार दनु-छाती पर ।
वैदेही उतरीं वेदी से,
कर नमन केकयी को झुक कर ।।

आ खड़ी हुईं अरिहन-समीप,
शर लिये भरा ज्वालाओं से ।
ज्यों घिर आई स्वर्णिम-बदली,
भूषित उल्का-मालाओं से ।

"अब मृत्यु-वरण को तत्पर हो,
बोलीं "हो चुका समर पामर ।
तव अल्प-क्षणों के प्राण अतिथि,
यदि खड़ा रहा सम्मुख क्षणभर ।।"

ले महा-खड्ग कर अट्टहास,
दश-दिशा प्रकम्पित सी करता ।
शतकंध लगा, सम्मुख बढ़ता,
ज्यों प्रलयकाल बड़वा बढ़ता ।।

कर 'प्रभु जय' धनु मंडलाकर—
सीता ने छोड़ा कर का शर ।
कर खंड-खंड शतकंठ-खड्ग,
नाचा प्रमथाधिप सा नभ पर ।।

गूँजा ब्रह्मांड-अंड सारा,
ज्यों अंधकूप के स्वर प्रति-स्वर।
भागा शतकंधर धैर्य त्याग,
आंखें न मिला पाया पल-भर।।

रिपुसूदन ने भिड़ते-भिड़ते,
गढ़ के कपाट ड्योढ़ी पाटी।
पट कर्पट जैसे छलनी कर,
शर-फलकों से आगल काटी।।

शर-विवर प्रवेश किया कपि ने,
पौर में पौरिये संहारे।
फट गये जाल से मकड़ी के,
पसरे पसार पग, पथ सारे।।

गज-घाटी में पंचानन सा,
धाया दनु-गढ़ में सिय-स्यन्दन।
पग-पग पर करती चलीं तुमुल,
शर लगे बनाने सुगम अयन।।

नभ-वारी से संध्या झाकी,
सिय क्रोध-विषाद लगे बढ़ने।
लख, उठे फेंट में रास खोंस,
ले लिया धनुष रिपुसूदन ने।।

सावन के तरुण तडित्घन से,
शर लगे समर में बरसाने।
जिस ओर उठीं पलकें पल भर,
जो बचा, जना किसी माता ने।।

हो प्रत्यालीढ़ालीढ़ कभी,
समपद-विशाख-मंडल गति से।
करते अर्णव घनघोर घोष,
लहराते कुपित विहगपति से।।

नाराच - विशिख - इक्षुप्र-पुंख—
खग - गृद्धपंख - आशुग - कराल ।
करते विदीर्ण नभ की छाती,
धधकाते दिशि-दिशि-हर्म्य ज्वाल ॥

फुंकार मार चलते अविरत,
यों लगे बाण रण-अंतराल ।
नाचीं सुभाल की मणि उछाल,
ज्यों महाकाल की व्याल-माल ॥

घमसान समर करते-करते,
सुनसान कर दिया रण-मंडल ।
नभ रहा दिशा-दल लाल-लाल,
भू, दनुपुर लाली लिये सकल ॥

कैकेयी बोली व्याकुल हो,
"देखो तो प्यारे पवनसुवन ।
डाले हैं कहां पामरों ने,
वंदी कर मेरे राम-लखन ॥"

कपि लगे देखने दिशा-दिशा,
बस दिखी भयानक निर्जनता ।
किस तल में छिपी तलातल के—
सेना, यह कैसी नीरवता ॥

वालक-स्त्री तक भी नहीं वहीं,
दिखते न विहग-मृग एक कहीं ।
यह कैसा अद्‌भुत इन्द्रजाल,
त्रिभुवन में देखा कहीं नहीं ॥

वृक्षों के झुरमुट में सहसा,
दुर्गंधित धूम्र दिखा उठता ।
सर्वव्यापी के व्यापकत्व—
का ध्वज मानों नभ में उड़ता ॥

वाराहदेव कल्मष-कर्दम,
दंष्ट्रा-सुबाहु ले प्रिया धरा ।
ज्यों हिरण्याक्ष को देख रहे,
प्रत्यक्ष दृश्य सहसा उभरा ।।

मारुति झांके देखा दनुकुल—
कर रहा यज्ञ तल-प्रांगण में ।
कर लोट्टहास पर लोट्टहास—
पी रहे नाच मद क्षण-क्षण में ।।

वेदी पर मद-शोणित न्हाई,
प्रतिमा विकराल कालिका की ।।
भय देती अधिक अँधेरों में,
अरुणाई मुण्ड-मालिका की ।।

वेदिका भैरवी - चक्र-नेमि,
सुन्दरियों से घिर शतकंधर ।
यों बैठा जैसे महापाप—
पसरा ले कामादिक परिकर ।।

तन के घावों का मदिरा से—
उपचार कर रहीं मधुबाला ।
चंचल विडाल-पुत्तलिका सा,
दनु चमक रहा काला-काला ।।

भयभीत बँधें पशु यूपों से,
शिल-शिल करते दनु खड्ग प्रखर ।
कुछ हटकर एक विशाल-मंच,
जिस पर वंदी लक्ष्मण-रघुवर ।।

दो मणि-मय कंचन खंभों में,
प्रभु बँधें मौन, कच बिखराये ।
कर रहे नाग परिहास क्रूर,
फुफकार रहे फण फैलाये ।।

प्राकट्य पूर्व मानों नृसिंह,
नभ देख रहे, शट उलझाये ।
लट-लट से झटक रहे पल-पल—
मुस्का, रघुपति दायें-बायें ।

रघुवीर धीर गंभीर भाव,
'शिव-शिव शिव' जाप अभय करते ।
क्रोधित लक्ष्मण अहिपति समान,
क्षण-क्षण में दीर्घ-श्वांस भरते ।।

नल-नील - विभीषण - जांबवान—
वानरपति-अंगद - मकरध्वज ।
सेनप शशिकेतु, सुमंत्र सचिव,
लक्ष्मीनिधि मिथिलापति-अंगद ।

मुख घृणा, दृगों में मौन क्रोध,
हिय मोद, बुद्धि में महामथन ।
चित शांत, भरा विश्वास अहं,
कण-कण पाशों के अलंकरण ।।

यों वंदी बन कर खड़े हुए,
वे विश्वजयी वरवीर सुभट ।
ज्यों देख रहे दर्शक विमुग्ध,
अति दत्तचित्त विधि का नाटक ।।

मारुति ने प्रभु का नमन किया,
संदेश दिया रथ में आकर ।
सिय चलीं, साथ ले कैकेई,
अरिदमन पृष्ट, आगे कपिवर ।।

चहुँ-दिशि दनु-भट ले प्रखर शस्त्र,
पवि-प्राचीरों में अटे हुए ।
रण-दुर्मद धारे सुदृढ़ कवच,
भूधर - माला से सटे हुए ।।

निर्भीक हुए निर्लज्ज दनुज —
भर अमित नारियां बाँहों में ।
पामर पशुओं से पड़े हुए,
उन लाल-अँधेरी राहों में ।।

भर गया घृणा से सिय का मन,
नयनों से निकलीं चिंगारीं ।
बोलीं "मां ! क्या हो सकती हैं,
हा ! इतनी अधिक पतित नारीं ।।"

कैकेई बोली "चली चलो,
अब इनका अंत समीप बहू ।
पी लेने दो, जो पीते है,
इनका पीयेगी भूमि लहू ।।"

कपि ने बढ़ कर दनु-पौरों को,
शिर से शिर टकरा कर मारा ।
"जय सियाराम" का प्रबल घोष,
संपूर्ण शक्ति से गुंजारा ।।

जब तक अरि-मित्र लखें यह क्या,
तब तक शर सिय-रिपुसूदन के ।"
छा गये भैरवी-मंडप में,
विभु वामदेव के गण वन के ।।

मद उतर गया मतवालों का,
मतवाली सिय के बाणों से ।
दनु लगे जूझने शस्त्र धार,
ज्यों प्राण खेलते प्राणों से ।।

शतशिर बोला "लो घेर इन्हें,
बचकर न एक जाने पाये ।
भगवती भैरवी युग-युग के—
हित तृप्त आज ही हो जाये ।।

प्रियतम की दुसह्-दशा लख कर,
सीता के भर आये लोचन ।
केकई बढ़ी विह्वल होकर,
जिस ओर बँधें थे राम-लखन ।।

बलि-खड्गें लेकर एक साथ—
बहु कॉणपियां मां पर टूटीं ।
ज्यों श्रावण-क्षीण-कौमुदी पर,
दश-दिशि से मेघ-माल छूटीं ।।

लेकर कटार करती प्रहार,
यों बार-बार बचती बढ़ती ।
ज्यों सेमल डाल फली-फूली,
झंझाओं में नर्तन करती ।।

झुर्रियों भरा मुख माता का,
यों कोपाकुल आरक्त हुआ ।
ज्यों सांध्य-शरद्-शीतल नभ पर,
बालारुण-विक्रम व्यक्त हुआ ।।

कंचन किरीट गिर गया भूमि,
रण करते-करते झन्ना कर ।
ज्यों बना मानसर प्रलयोदधि,
त्यों फैले श्वेत-केश कटि पर ।।

न्हा गई रक्त में कैकेई,
पर गति न तनिक अवरुद्ध हुई ।
मां लगी सरकने गिरी-गिरी,
अहिपति-व्याली सी क्रुद्ध हुई ।।

उद्दीप्त हुई सह-सह प्रहार,
विक्षिप्तों सी करती प्रहार ।
घुन खाई वृद्धा कैकेई,
उठ-उठ कर गिरती बार-बार ।।

कहती जाती "क्या जीते जी,
बलि होने दूंगी लालों की ।
मृत्यु की चीर दूंगी छाती,
डाढ़ें तोड़ूंगी कालों की ।।

क्या हुआ, हुआ यदि चौथापन,
केकयी-भू की क्षत्राणी हूँ ।
हूँ चंड-वंश की वधु प्रचंड,
प्रिय शंबरारि की रानी हूँ ।।

घननाद - दशानन - कुम्भकर्ण—
मारीच - सुबाहू - खर - दूषण ।
त्रिशिरा - विराट - बाली - कंबध—
रण वधे जिन्होंने, राम-लखन ।

वे पिये इसी छाती का पय,
जिनसे पिनाक की नाक कटी ।
साकेत-राजमाता रण में—
नाचेगी वन नटराज-नटी ।।

सद्धर्म-स्वसंस्कृति-संतति हित,
चंडी-प्रांगण में समर-मरण ।
पाये भारत की क्षत्राणी-
तो क्यों न करे उठ दौड़ वरण ।।

सिय-राम-लखन से वधु-बेटे,
क्या अनायास ही मिल पाते ।
वे बलि देने को खड़े हुए,
मैं प्राण रखूं जाते-जाते ।।"

कहते-कहते माता उछली,
जा चढ़ी मंच पर बिजली सी ।
अहि-पाश काटने लगी तुरत,
तम-तार अरुणिमा उजली सी ।।

"उस वय विक्रम कैसा होगा,
इस वय का भीम पराक्रम यह।"
लख अंब-त्वरा निज-पर नर-तिय-
विस्मित हो उठे स्वतः ही कह॥

लड़ती जाती, करती जाती,
रघुपति-अहिरजु पर भी प्रहार।
कटते जाते, डसते जाते,
क्रोधित भुजंग फुंकार मार॥

विष चढ़ता जाता, मदमाता—
मां का न हाथ पर रुक पाता॥
अक्षय अहि-बंधन क्षत-विक्षत्—
हो-होकर अक्षत हो जाता॥

वंदी कपि-दल चित्कार उठा,
"मां चली-चली हा चली-चली।"
सिय-कपि-रिपुसूदन बढ़ न सके,
यों घिरी घेर सी दनु-बदली॥

जननी का जीवन-संकट लख,
गरुडास्त्र चले सिय-रिपुहन के।
कर डाले सकल स्वकीयों के—
भक्षण, भुजंग-दल बंधन के॥

अंगद-नल - नील-कपीश - ऋक्ष—
कूदे मंडप किलकारि मार।
लक्ष्मीनिधि - लंकापति - सुमंत्र,
जो मिले वही शस्त्रास्त्र धार॥

मणि-खंब खींच दौड़े लक्ष्मण,
"जय रघुपति-सीता रानी की।
बलिपशु सा दो शतकंध भेंट,
दशकंधर-काल भवानी की॥"

मच गया घोर घमसान समर,
मद-भाँड लुढकने लगे भूमि ।
रघु-वीर बन गया एक-एक,
संवर्त - सिंधु - आवर्त - ऊर्मि ॥

भव-बंधन-हर ने हो विमुक्त—
गिरती-गिरती मां अंक भरी ।
ज्यों नील-नीरनिधि लहरों में,
अंबर से मंदाकिनी झरी ॥

प्रभु बोले "मां ! बोलो-बोलो,"
बोली "तू सदा बोलता रह ।
मेरे प्रिय राम ! त्रिलोकी में,
धर्मध्वज लिये डोलता रह ॥

हो गया राम मेरा स्वतंत्र,
तन पिँजरे के जीवन विहग ।
हो जा स्वतंत्र, हो स्वतंत्र,
चल करें गगन में रास-रंग ॥"

पथराने लगे नयन मां के,
विष रोम-रोम में लहराया ।
वय-पाला वार-वज्र - दंशित—
हेमन्त-कमल-तन मुरझाया ॥

"मां ! राम तुम्हारा यों न तुम्हें,
निज जीते जी जाने देगा ।
वय भर विषपायिनि ! तव तन क्या-
यह लघु विष पल भर में लेगा ॥"

उपचार तुरत प्रभु को सूझा,
सहसा घावों पर अधर धरे ।
उस काल-कूट पीने वाले—
शिव-प्रिय के नयन प्रमोद भरे ॥

विष चूस-चूस प्रभु ने फेंका,
दृग हुए चपल, मां के ठहरे ।
उठ बैठी, चेतन होते ही,
कैकेई कहती "अरे-अरे ।।

धर दिया दांव पर जीवन ही;
पगले ! तू कब होगा स्याना ?
कितना उज्ज्वल मन अंचल में—
बैठा ले यह श्यामल-बाना ।।

उठ मुझे छोड़, वधु-सहित देख—
दनु-व्यूह, समूह घिरा सारा ।
रण हुआ जा रहा परिधि-हीन,
भू डुबा रही, शोणित-धारा ।।

प्रभु बोले "समर नित्य के ये,
होते हैं, होंगे, होने हैं ।।
रणरंग-धीर बहु शूरवीर—
हँस-खेल रहे, खल सोने हैं ।।

मां चली गई यदि तुम जैसी,
तो उसे कहा मां ! खोजूंगा ।
प्रभु-जय करती, जय-वर देती,
लेटो तुम, तुम्हें न छोडूंगा ।।

निश्चिन्त रहो ये एक-एक—
जय भुवन अनेकों कर सकते ।
ये सृष्टि प्रलय की कर सकते,
ये सृष्टि प्रलय में रच सकते ।।

तुमने देखे, ये मौन नम्र,
अब देखो उग्र भयंकर-छवि !
शिव-शेखर शशि से तव शिशु मां !
क्या नाच रहे, ज्यों गिरि पर पवि ।।

खिँच रहे भ्रकुटियों में त्रिपुंड,
दृग यज्ञकुंड से धधक रहे।
जो हाथ लगा जिसके लेकर,
संवर्तक-घन से गरज रहे।
रह-रह जाते दनु स्तब्ध हुए,
रघु-भट रण-रंग-उमंग निरख।
कच छितरे-छितरे खंभ लिये,
ये लखन कि नखरायुध श्रीसख॥"
यह मारुति या कि मंदराचल,
मथ रहा दनुज-सेना सागर।
यह अरिहन या कि पुलिन-भूधर,
ले रहा पर्व-दधि से टक्कर॥
यह अंगद, ज्वाल उगलता या—
भव-भालनयय का भाल-नयन।
ये वयो वृद्धऋक्षेश या कि—
यमपुर के संयम-हीन अयन॥
सुग्रीव-विभीषण या भैरव,
दो-दो उद्ग्रीव विभीषण ये।
झंझा से रहे सुमंत्र बिफर
नय-उपवन-सुखद-समीरण ये॥
सुत नृप विदेह के हो विदेह—
जूझते गुणाकर-श्रीनिधि ये।
कर देते चकित समर-पंडित
नः-नील कला-कुल वारिधि ये॥"
हो उठा तरुण-रण अरुण-वर्ण,
शस्त्रों के विविध प्रहारों से।
बन गया काल का रमणस्थल,
हुंकारों हाहाकारों से॥

एकैक वार से दनु अनेक,
रज-लेख समान लगे मिटने ।
शव-कूट रिसाते रक्त लगे—
दिविघाट उषा-घट से उठने ॥

रण करते लक्ष्मण-लक्ष्मीनिधि,
सिय-सूदन पास लगे आने ।
पद्मिनी-कोष पर ज्यों प्रदोष—
शशि-शरद् लगे श्री सरसाने ॥

नक्षत्र बने रवि, तिमिर निगल,
क्रम-क्रम से दनुज लगे घटने ।
घेरे ने घेरा घेरों को,
भक्षक ही भक्ष्य लगे बनने ॥

शोणित की लाली देख-देख,
उतरी दनु-दृग की मद-लाली ।
विकराल पुतलियों पर छाई,
काल की छांह काली-काली ॥

तीनों दिशि घिर शतकंधर ने,
चौथी दिशि देखी निज काली ।
कल की कमनीय कालिका-छवि,
देखी भूखी खप्परवाली ॥

अग्नि से लगे पूजन-दीपक,
वेदिका चिता प्रत्यक्ष लगी ।
कुलदेवी की वह मौन मूर्ति,
क्रोधित मैथिली समक्ष लगी ॥

विक्षिप्त हुआ, बलि-खड्ग उठा,
धुंए सा झपटा काली पर ।
कर प्रभु-वंदन वैदेही ने,
खल खींच पछाड़ा धरती पर ॥

"पामर ! माता पर ही प्रहार,
सन्निकट निपट तव अंतकाल ।
कर स्वानुरूप विद्रूप रूप,
मति तरी लीलने चली पाल ।।

फिर हुंकारीं "रे असुराधम !
रण खेल बहुत तू खेल चुका ।
तव अनाचार त्रिभुवन-निकाय—
रह मौन बहुत दिन झेल चुका ।।

सद्संविधान व्यवधान-मूर्ति,
रे यातुधान ! हो सावधान ।
प्रभु - धर्मस्थापन - यज्ञकुंड—
गिर सिय की लघु आहुति समान ।।

महिषासुर - मानमर्दिनी सी,
छाती पर चढ़ीं शतानन की ।
कंकणी - किंकणी - कंकणिका,
यम-महिष घंटिका सी खनकी ।।

तड़िताचल चंचल धूम्रकेतु—
ज्यों युगल विपुल क्रीड़ा करते ।
त्यों दिखे लहरते दो त्रिशूल,
सीता के हाथों में उठते ।।

प्रलयंकर की पद - थापों से,
भूमि पर दनुज-भुज धमक गये ।
खंडित दिक्कुंजर-शुंडों से,
भुज-दंड कंध से छिटक गये ।।

पा पदाघात नक्षत्रों की—
माला सी दंतावलि टूटी ।
फिर उन्हीं त्रिशूलों से कटकर,
मुँड़िया मृतिका-घट सी फूटी ।।

दनुवक्ष रक्त - रंजित प्रशस्त,
यों हुई सुशोभित रघुरानी ।
ज्यों रची श्रावणी-तमसा पर,
छविमयी पूर्णिमा कल्याणी ।।

ज्यों महाकाल का तेल चढ़ी,
काली हो मंगल-पाटी पर ।
विकराल ज्वाल बड़वानल की,
या महाकमठ की काठी पर ।।

उस महज्ज्योति के सम्मुख दृग,
क्षण भर प्रभु के भी टिक न सके ।
लख अद्भुत विक्रम स्वजन-शूर—
साश्चर्य, सहज कुछ कह न सके ।।

दृग उठे अचानक लक्ष्मण के,
जो रहे सदा नत चरणों में ।
जिन कपि से लंक जली पल में,
हट गये भरे भय नयनों में ।।

नल-नील - सुषेण - सुमंत्र-द्विविद—
सुग्रीव - विभीषण - रिपुसूदन ।
रह गये मौन कर जोड़े ही,
करते सादर स्तुति मन ही मन ।।

सिय लगीं पदों से दनुज-वक्ष—
मथने, त्रिशूल टेके भू पर ।
ज्यों पंक-कुंड में कुंजरिणी
क्रीड़ा करती सुध - बुध खोकर ।।

हो शांत नृसिंही यह कैसे,
इस समय बने प्रहलाद कौन ।
अभिनव अभियान कालिका का,
किस शिव का झेले तेज-मौन ।।

गंभीर विचार-विमंश लीन,
सस्मित विस्मित सुर-संघ हुआ ।
ये कोमलता की मूर्ति मात्र,
सीता-विषयक-भ्रम भंग हुआ ।।

उपवन में कुसुम-चयन करते,
जो दिखी प्रथम दिन नव-बाला ।
सखियों के साथ लजाती सी,
आई पहिनाने जय-माला ।।

नव-पंकज की पंखुरियों सी,
जिसकी मंजुल पद-अंगुलियां ।
कनकालय का कालीन मृदुल,
छूते-छूते भरता कनियां ।।

जिसके मधुराधर बार-बार—
सूखे, डग-भर भरते वन में ।
जिसने की सिद्ध सजीव-प्रकृति,
चेतना भरी जड़-चेतन में ।

जो बैठी दिखी सदैव मौन,
सिय यही अशोक-वाटिका की ।
जो नत-शिर बनी निमिष में ही—
पथिका प्रज्ज्वलिता-शिविका का ।।

माता ने समझा जिसे सदा,
चित्रित-कपि से डरने वाली ।
पर्यंकों पर सोने वाली,
मृदु-पलनों में पलने वाली ।।

निमिराज-कुमारी सुकुमारी,
वधु परम दुलारी रघुकुल की ।
यह ललित लाजवंती-लतिका,
कल्पांत-कौमुदी दनु-कुल की ।।

कैसे रह गई दशानन की—
वंदिनी बनी, आश्चर्य यही ।
रघुनाथ यशस्वी बने रहें,
मन में यह निश्चित् चाह रही ।।

देखे भयभीत सकल मां ने,
धीरे से आगे बढ़ आई ।।
"जय-जयति जयिनि! मैथिलि! सियवधु!"
ध्वनि सहसा अंबर तक छाई ।।

कैकेई को सम्मुख लखकर,
वैदेही के झुक गये नयन ।
बढ़ चले त्रिशूल ग्रहण करने,
दोनों दिशि लक्ष्मण-शत्रुदमन ।।

सिय-कर कर थाम कैकेई ने,
धीरे से; ली उतार भू पर ।
सिय ने आंचल ले लिया शीश,
सम्मुख विलोक कर प्राणेश्वर ।।

मां के प्रियतम के चरण तुरत—
छू लिये जानकी ने बढ़कर ।
भर ली बांहों में माता ने
'मम वीरांगना सुवधु, कहकर ।।

फिर बोली "राम दशाननजयि !
ले वधु विजयिनी शतानन की ।
यह काल-परिधि से परे रहे,
जोड़ी सिय-राम सनातन की ।।"

नत युगल-शीश पर माता ने,
प्रमुदित हो रखे युगल-करतल ।
घिर गई भारती कंठ-कुंज,
दृग छलकी परवशता छल-छल ।।

फिर झुके सभी शिर एक साथ,
मां ने आशिष दी हाथ उठा ।
घुल गये रौद्र-वीभत्स भाव,
रसराज शांत-रस-कलश लुठा ।।

मानो निरभ्र-नभ रंग-भूमि,
नव संध्या-सायंकाल मिले ।
त्यों कैकेई के दोनों दिशि,
मैथिली तथा रघुनाथ खिले ।।

सौमित्रियुगल - रघु - ऋक्ष- कीश,
विहगों से 'जय-जय' चिँहुक चले ।
अन्त्येष्ठि करा शतकंधर की,
काली का वंदन कर निकले ।।

दनु-राज्य सुमाली-माली का,
लौटे प्रभु सौंप विभीषण को ।
जय-नाद कर उठी सैन्य मुदित,
सम्मुख विलोक प्रिय भारत को ।।

जय मातृ-भूमि, जय पितृ-भूमि,
जय धर्म-भूमि, जय पुण्य-भूमि ।
जय आदि-भूमि, जय देव-भूमि,
ममतामयि ! जय प्रिय भरत-भूमि ।।

रज-तिलक लगा, उतरे ससैन्य—
राघव सुरम्य गौतमी-तीर ।
कर सिंधु-स्नान प्रभु ने पूजो,
गौतमी शुभा गौतमी-नीर ।।

चंदन-कुंकुम - फल - फूल-क्षीर—
मधु - मंगल द्रव्य समर्पण कर ।
न्हाये समस्त सिय - राम सहित,
स्वर्गीय-जनों का तर्पण कर ।।

दी राजमहेन्द्रम् की संज्ञा,
कैकेयी ने शुभ संगम को।
प्रभु पहुँचे गया, मान देते—
कोर्णाक - पुरी-भुवनेश्वर को॥

विधिवत् पितरों को कर सुतृप्त,
रघुपति रथ बढ़ा अवध-पथ पर॥
यमुना सम भरत, राम गंगा—
ले चले नगर सागर सादर॥

सोरठा

सिंहासन सिय-राम, बैठे सब से मिल, मुदित।
आशीर्वाद प्रणाम, यथा-योग्य लेते हुए॥
परम विनीता सीय, झुकीं, झुकीं ही रह गईं।
वासंती कमनीय, ज्यों नव दल-फल-फूल मय॥
सुस्मिति मंद फुहार, चितवन ललित बयार सी।
नील-गगन के द्वार, छवि-चर्चित बदली-कपिल॥
बसी सुदेह सनाह, लसी धनुष-तूणीर असि।
थाम सुमित्रा बांह, कनकभवन में ले गई॥

षष्टम-भुवन

मंगलाचरण

श्री गंगास्तवन

श्रीरंग-पदारविंद-निःसृत, जगदंबे ! अंबे ! गंगे ! जय ।
विधि-वासन-वासिनि ! पुण्यलते ! शिवमौलि-सुरमणि ! अभंगे जय ।।
भूपाल भगीरथ-कीर्ति-ध्वजे ! जलकुंजरवाहिनि ! अघ-हारिणि ।
गिरिराज विहारिणि ! सुरह्लादिनि ! नृपसगर-प्रजावलि-उद्धारिणि ।।
जन्हू-दुहिते ! शांतनु-दयिते ! वसुजन-जनयित्रि ! त्रिपथगामिनि ।
त्रिभुवनवंद्ये ! अग-जग पावनि ! दिवि-आरोहिणि ! श्री सम्मोहिनि ।।
जो परमा-धवला मुखरा-छवि, शाश्वत् संसृति-गति हर लेती ।
तव कृपा-दृष्टि की वृष्टि वही, मम पातक-पुंज विनाश करे ।।

हँसती खिलती भरती कुलांच, करती शृंगावलियाँ विदीर्ण ।
जंगल-जंगल मंगल करती, दलती अघ-पथ कंटकाकीर्ण ।।
कंदरा-मंदिरों में रमती, शिल-शिल से झरती शिल-शिल पर ।
छम-छम करती विद्युत्गति से, करती किलोल छवि अगणित धर ।।
वेतों का अभिवंदन लेती, इठलाती देवदारुओं को ।
नहलाती सुभग पलाश-शाल, हर्षाती वारिज-वधुओं को ।।
जिससे दुर्गम-निर्जन हिमगिरि, तीर्थाकर, तीर्थाकार बना ।
मनहर जाह्नवि ! तव शुभ्रधार, मम पातक-पुंज विनाश करे ।।

तट-तरुओं पर प्रातः-सायं, कूजतीं विविध नभगावलियाँ ।
वैदिक-छंदों में अभिनंदन, ज्यों करतीं निर्जर-मंडलियां ।।
होतीं प्रतीत कुछ झुकी-झुकी, वे हरित-प्रफुल्लित तरु-माला ।
ज्यों स्वागत-तोरण-द्वार सजीं, वंदनवारों पर ध्वज-बाला ।।
संध्याओं में रवि-शशि छवि बन, करती प्रमुदित आरती प्रकृति ।
पहले दिन के तव पूजन सी, होती नित-नूतन पुनरावृति ।।
मृग-मृगपति तृषित प्रार्थितों से, पाते पीयूष प्रसाद सदा ।
तव भेद-भाव-गत मृदुल-भाव, मम पातक-पुंज विनाश करे ।।

हिम गिरिवर के उत्तुंग शृंग, दुर्भेद्य सुदृढ़ तव गढ़ दुर्गम ।
क्रोधित अबाध विद्युत-गति से, उतरा करतीं करतीं धम-धम ।।
धौंसे से धमकाती चलतीं, दलने अघ महिष, कालिका बन ।
फेनिल-धारा ज्यों अट्टहास, मधुपान-निरत करती तल रण ।।
नहरों पर नहर शक्तियों सी, लहरों पर लहर प्रकट करतीं ।
करतीं स्वधार बहुधार लीन, जो पथ-पथ श्रमित हुई मिलतीं ।।
दिखलातीं चंडी-चरित ललित, खो जातीं शिव-भुज सिंधु-लहर ।
तव शिवारूप दानव-स्वरूप, मम पातक पुंज विनाश करे ।।

जलक्रीड़ा-रत किन्नरियों के, अंगों का मृग-मद धुल घुलकर ।
ज्यों ही तुममें होता प्रविष्ट, अविलंब अधम-गति से छुटकर ।।
वे मृग होकर देवस्वरूप, बैठे वर व्योम-विमानों में ।
उनसे ही करते केलि मुदित, सुर-द्रुम-सज्जित उद्यानों में ।।
फिर सदा षोड़शी-कामिनियाँ, दुर्लभ-दुर्लभ देवावलियाँ ।
अनुचरी-प्रकृति मणि-सद्मिनियाँ, अश्रुत-अलक्ष्य भोगावलियाँ ।।
कह फीकी, वीतराग होकर, हरि-छवि हरि-पुर हरि-रस रमते ।
तव भोग-योग-दायक वैभव, मम पातक-पुंज विनाश करे ।।

शशि-शिशु विलसित शिव-शेखर पर, तव मुदित केलि अवलोकन कर।
प्रिय-अंकासीना गिरिजा की, जल उठीं शिरा ईर्ष्या-दव भर ।।
तव हरण-हेतु, कर भ्रकुटि वक्र, भुज-हार पिन्हा मुस्का नत-मुख ।
प्रस्ताव रखा हर के सम्मुख, बोलीं "लें प्रियतम ! कैतव-सुख ।।"
शिव लगे खेलने, दे बैठे, शशि-शूल-शृंग-डमरू-अहिपति ।
शिरमाल-कमंडलु-नंदि-भृंगि, लख निकट बाघ-पट की दुर्गति ।।
चित पासे पड़े भवानी के, ले गईं बहा, शिव-शिवा न्हिला ।
त्यों हार-ग्लानि - हर तव स्वभाव, मम पातक-पुंज विनाश करे ।।

लिखते-लिखते जिनके कुकर्म, चक्रित रह जाते चित्रगुप्त ।
यमदूत नाम जिनका सुनकर, हो जाते अहि-दंशित प्रसुप्त ।।
लेखा-जोखा सुन अनायास, अंतक ही 'हरि-हरि' कह उठते ।
वैतरणी के पावक-कण भी, जिनको लखकर भुनने लगते ।।
प्रज्ज्वलित महारौरव होते, वैवस्वतपुर की क्या गणना ।
कहते निगमागम एकस्वर, जिनका न कभी संभव तरना ।।
वे तारे अधिक तारकों से, क्या दर्श-स्पर्श लघु नाम-स्मरण ।
तव पतित - पावनो पुण्य-नाम, मम पातक-पुंज विनाश करे ।

मां ! तव कछार के कण-कण पर, चिंतामणि-आकर न्यौछावर ।
चतुफल-फुलवारी का वसंत, तव धवल धार का स्वर हर हर ।।
तव दिव्य-विरद-विग्रह विचार, हर्षित हो जाता चिंतित-मन ।
उठने लगती याचना स्वतः, जड़ जड़ता होती प्रण चेतन ।।
'हो क्षार देह यमुना-तट पर, पर मुख में हों तुलसी-तवकण ।
तव रज मस्तक, हरि-नाम अधर, तव अंक करें सुत अस्थि-क्षरण ।।
हों पंचतत्व में तत्व लीन, भारत के क्षिति-जल-दव-नभ-खग ।'
तव करुणार्द्रे ! सहजा स्वीकृति, मम पातक -पुंज विनाश करे ।।

६२५

युगलमालिनी

लघु ललित सघन गगनांगन छिटके तारे,
नीलमशैला पर हीरक-माला बिखरी ।
मन कहीं, कहीं तन, उस सद्यस्नाता सी,
निशि-कर-निशिकर-किरणों की गगरी बिखरी ।।

मानों मुँह फेरे खड़ी नहाकर आई,
पद-चुंबित कच-माला से बूंद टपकती ।
मुख-चंद्र फिरा फिर फिर सकुचा सी जाती,
छवि झोंक झरोखे झिलमिल झुकी झलकती ।।

नव-अवगुंठन सी चन्द्रवदन पर बदली—
आती, पल में पूरी पलकें खुल जाती ।
उवटन सी कुँकुम घुल जाती धुल जाती,
गगरी की मदिरा चषकों में ढुल जाती ।।

नभ-गंगा में क्रीड़ा-रत किन्नरियों सी,
छप-छप करतीं तारावलि छिप-छिप जातीं ।
अलबेली नवल-नवेली आंख-मिचौली,
छिप-छिपे ढूंढ़कर चंदन सी लिप जाती ।।

सिय मुदित मृदुल शैया पर लेटीं-लेटीं,
थी देख रहीं, करतीं शीतल-मन शीतल ।
पट-फरफराट प्रिय-पग आहट सी लगती,
लखतीं पथ पलकें पलट-पलटकर पल-पल ।।

"मैं अभी सभा-गृह से रानी जी ! आई,
थी राजसूय की अविरल चर्चा चलती ।
सानुज नृप गुरुवर मंत्रीजन के मुख पर,
गंभीर-विमर्षण मुद्रा स्पष्ट झलकती ।।

लवणासुर पर थी केन्द्रित सबकी शंका,
चिंता विशेषतः शिव का शूल भयंकर ।
उसके जीते जी जगती-तल पर कोई
हो सकता सफल न सहज किसी का अध्वर ।।

कहते सोत्साहित लखन-दमन "दें आज्ञा,
खल-बींध शूल में पल में करें समर्पित ।
प्रज्ज्वलित अग्नि तो करें देव ! देवी सह,
होने तो दें द्विज-घोष गगन गुंजारित ।।"

पर भरत कह रहे थे सकुचा धीरे से,
"इस वर्ष न देवी बैठ सकेंगी सुख से ।
यज्ञाश्व-हरण क्यों बने बहाना रण का,
जग को छुटकारा ज़बकि दिलाना दुख से ।।

दीक्षा-सुपूर्व दक्षिणा दक्षिणेश्वर को—
दें लवण-शीश की, करें शांत आयोजन ।
जो करना है वह करो, मुहूर्त न देखो,
जग समझे राजसूय को राघव दंभ न ।।"

बस फिर गुरुवर से ज्यों दृग मिले अचानक,
मैं सकुचा कर आ गई तुरत ही रानी ।
आ रहा हमारा भावी राजा भूपर,
यह बात आज तो सकल अयोध्या जानी ।।"

"यदि सुता हुई तो" "नहीं-नहीं हो सकती,
कर गये उसे तो वृद्ध-भूप ही दत्तक ।
अब रानि ! बोलना शुभ-शुभ वाणी केवल,
नृप - सह नृपसुत भी होंगे यज्ञायोजक ।।"

सिय बोलीं "अच्छा बहुत हो गई चंचल,
जा सो, तव राजा बाट देखता होगा ।
कैसी रानी के फँसी चक्र में श्यामा,
इस चंद्र-चांदिनी को लख कहता होगा ।।"

सकुचातीं प्रमुदित चलीं दासियां झुक-झुक,
सिय अँगडाई ले मुकुर देख मुस्काईं ।
"नृप-सह नृप-सुत भी होंगे यज्ञायोजक,"
इन शब्दों ने बहु हलचल हृदय मचाई ।।

फिर सोचा, "चारों ब्याही आईं सँग-सँग,
कुछ आगे-पीछे चारों ग्रंब बनेगी ।
चारों कोनों में चार जड़ाऊ पलने,
इस कनक-भवन की मणि-मणि झूम उठेगी ।।

किलकारी पुचकारी मृदुलोरी ताली,
मुखरित कर देंगी जन-जन मन का कण-कण।
गाती सम्हालतीं गातीं कहती 'ग्रातीं',
दौड़ेंगी श्रुति-उर्मिला-मांडवी क्षण-क्षण ।।

ज्यों मां कहतीं, न सहज पहिचाने जाते,
हैं कौन भरत वे, कौन लखन-रिपुसूदन ।
तब हटा झगुलिया चरण-चिन्ह हिय लखतीं,
अलकों में मणि-तिल लख कहतीं ये लक्ष्मण ।।

कह रही निषादी चित्रकूट पर उस दिन,
जब भरत ससेना शृंगबेरपुर आये ।
सब बोले कुछ दिन पहले विपिन सिधाये,
वधु छोड़ कहां, ये सैन्य कहां से लाये ।।

तब वृद्ध एक बोला वे बींध गये मन,
शिर जटा-जूट धारी मृगछाला - धारी ।
पर इनके मन तो बिँधे-बिँधे से लगते ।।
यद्यपि किरीट-धारी स्यंदन - ग्रसवारी ।।

तब समाचार सब गुप्तचरों से पाकर,
गुह मीन-पीन-पाठीन पुरानी लेकर ।
तन पाल लपेटे, कूंड़ी का कनटोपा,
डांडों में कांटे गाड़, लिये भट धींवर ।।

तरणियें हाथ भर डुबा, सजा रण सज्जा,
मन्तव्य ग्रौर गन्तव्य जानने ग्राये ।
यदि हुईं युगल-छवि फिर से मिलती-जुलती,
क्या जाने फिर पहचान कौन सी पाये ।।

पय कभी पिला देगी ऊर्मिल श्रुति-सुत को,
मांडवी ग्रार्यसुत-सुत को ले जायेगी ।
सो जायेगी, फिर भरी नींद में उठकर,
छम-छम कर रोता शिशु लेकर ग्रायेगी ।।

यदि खुली न मेरी नींद, आर्य-सुत बोले,
क्या बोलेगी वह, ये भी क्या बोलेंगे ।
मैं पट समेटती, उठती क्या बोलूंगी,
प्रातः सुन परिजन 'ग्रहा-अहा' बोलेंगे ।।

इस मधुर कल्पना में डूबी वैदेही,
कब खड़े हुए प्रभु आकर जान न पाई ।
कर रख कर कंधे पर धीरे से बोले,
"किन सपनों में मिथिलेश-लली ललचाई ।।"

सिय उठीं सेज से सकुचाकर हर्षाकर,
कर नमन कहा "प्रिय! आप किधर से ग्राये ।"
"क्या कहूं किधर से ग्राये," दिखा प्रिया को,
हिय-नयन राम ने कहा "इधर से आये ।।

ग्रब जान गया कैसे शकुन्तला देवी,
ऋषि दुर्वासा का ग्राना जान न पाई ।
पर सिय ! तुम उससे दो -पग आगे निकलीं,
दी निज प्रिय की पद-चाप न तुम्हें सुनाई ।।"

"क्यों दुर्वासा को दोष व्यर्थ प्रिय ! देते,
प्राणेश ! पुरुष वह कौन ग्रापसे कम था ।
वह पुर जाकर तो गान्धर्वी का भूला,
तुम जहां सुदेवी भूले वह तो गृह था ।।

जिसने सुरेन्द्र-सुत बना अनाथ सरीखा,
प्रति भुवन-भुवन में फिरा,तजा दृग लेकर।
जो चोंच मार कर भागा, उसको यह फल,
जो ले भागा, उस पर न छुटा वह शर-वर ॥

क्या दोष आपका पुरुष-प्रकृति ही ऐसी,
फिर राजा हो तो उसका तो क्या कहना।"
"इस वय भुज-हार पिन्हाने वाली प्रेयसि!
क्यों पिन्हा रही हो उपालंभ का गहना ॥"

"क्या कभी-कभी स्वर्णिम-पिंजरे की मैना,
ले पूंछ न "राजन्! ये क्षण कहां गँवाये,
"क्यों एक बार, सौ बार सारिके! पूंछो,
विधि ने इस हित ही निशि-क्षण मृदुल बनायें ॥

तपते दिन की तपती रातें की छोटीं,
हिमकर-दिनकर की भरी यामिनी यौवन।
जब चपल चपलता भरी चमकती चपला,
तब रवि भी शशि बन जाता लख सावन घन ॥"

"ये सीखे मीठी बातें कोई तुमसे,"
"पर मैं तो सीखा इन श्यामल-नयनों से।"
"मैं कैसी पगली, आप खड़े प्रभु! कब से,
बैठा न सकी पद-पूजन कर अलकों से ॥"

दोहा

सिय को दे पटुका का मुकुट, लेटे प्रभु पर्यंक।
लगीं चांपने चरण श्री, मृदु कर मंजुल अंक ॥
उठ बैठे, हिय पर रखे, लिये हाथ में हाथ।
"श्रम-रेखांकित शशिवदन," बोले रघुकुलनाथ ॥

"दुर्बल वय करतल ललित, निशि का प्रहर द्वितीय।
क्या चर्चा रनवास की, सुन्दर सुन्दरि! सीय॥"
लगीं प्रिया प्रियतम-हृदय, नयन खिली मुस्कान।
"बोलीं क्या दोगे कहो, प्रिय-संदेश सुजान॥"
"हृदयेश्वरि! सोचो हृदय, क्या कब रहा अदेय।
तुम्हीं राम की श्रेय-श्री, प्रियतम प्रियतम ध्येय॥"
"किंतु आज की बात ही, कुछ ऐसी भगवान।
हुईं उर्मिला-मांडवी-श्रुति तव सीय समान॥"
दो-पल में ही समझ कर, उठे खिलखिला राम।
"भरत-लखन-रिपुदमन अब, समझा तव स्मिति-वाम॥
क्या मांओं को भी पता, सिया किया स्वीकार।
"तभी सूदगण पा रहे, नित निर्देश अपार॥
मैं तो जाना हो रहा, प्रिया-अतिथि सत्कार।
अब समझा रघुकुल-विपिन, चली वसंत-बयार॥
कहो तनिक कब मिल रहे, किस-किस से उपहार।"
"तव लीला पश्चात् ही, क्रमशः अनुज प्रसार॥"
"रिपुसूदन-लक्ष्मण-भरत, राम नवीन शरीर।
किलकायेंगे केलिकर, कनक-भवन गंभीर॥
मांग-मांग मैथिलि प्रिये! प्रिय से प्रिय उपहार।"
"क्या लेगी उपहार वह; जिसे मिला भुजहार॥"
"प्रिये! भोज पश्चात् ही, पाया जाता पान।
त्यों ही अपने मान्य का, रखो सुमानिनि! मान॥"
"क्या मांगू, पाया न क्या, दिया आपने क्या न।
सिया राम के ध्यान में, राम सिया के ध्यान॥"
करती पट अठखेलियां, बोलीं सिय सप्रीति।
"मांगू भी यदि प्राण-प्रिय! तो मांगू किस रीति॥"
प्रभु बोले 'कुछ आज तो, प्रमुदित प्रिये! विशेष।
सकुच-सकुच उठतीं पलक, ललक व्यंग-परिवेश॥

बोलीं सीता खिलखिला, "समझ गई मैं नाथ ।
कुल - परम्परा आपकी, पालूं, पसरा हाथ ।।
हेतु सपत्नी - तनय के, मां ने लिया अरण्य ।
मुझे सपत्नी - तनय हित, दो वनवास सुरम्य ।।"
"कौन सपत्नी-तनय तव, जिसके हित वनवास ।
मांग रही प्रिय से प्रिये, यों करती परिहास ।।"
बोलीं हँस "समझी सिया, अन्तर्यामी दीठि ।
जान गये सिय - सपत्नी, एक अवध की पीठि ।।
उसका सुत भी एक ही, घोर नृपतिपद - कार्य ।
"जिसने दी विस्मृत करा, तव परिणीता आर्य ।।"
"कहो-कहो तो त्याग कर, राघव ले सन्यास ।"
"नहीं, विरह कुछ दिन सहें, देकर सिय-वनवास ।।"
"कहो स्पष्ट, समझा नहीं, मैं न अधिक विद्वान ।"
"अधिक न प्रियतम अधिकतम, भुवन-प्रसिद्ध सुजान ।।"
फिर होकर गंभीर सिय, बोलीं दृग भर नीर ।
"आती है निशि-दिवस ही, वन की सुधि रघुवीर ।।
मन करता है इस समय, मिले मुनीशाशीश ।
कहूँ धरोहर लो पुनः - अपनी, मेरे ईश ।।
कई दिवस से नित्य ही, दिखते अद्भुत - स्वप्न ।
ज्यों मैं विजनारण्य में, फिरती नीर-निमग्न ।।
चन्द्रकला ज्यों शीश की, लेती आंचल गंग ।
और तरंगें रँग गईं, रत्न-रत्न के रंग ।।
विमल-वारि दिखती कभी, पड़ी हाथ भर पास ।
छांया सी जाती फिसल, नभ कर उठता हास ।।
कभी हमारे पूज्य पितु, धार-धार ऋषि वेष ।
दिखते देते धैर्य सा, 'शुभ- शुभ सुते ! न क्लेश' ।।
कभी सजातीं चुन कुसुम, सुर -बालायें देह ।
कभी मीचतें नयन आ, दो-बालक सस्नेह ।।

कभी देखती डोलते, धरा-धूलि भूडोल ।
रावण सी आकृति बना, सहसा उठते बोल ।।
कभी दिशायें कर हिला, करती हैं आह्वान ।
कनकभवन दिखता गगन, भरता हुआ उड़ान ।।
अद्भुत रत्नासन सजा, अमित भुजंगाधार ।
उस पर दिखतीं मां धरा, किये सकल शृंगार ।।
रघुलक्ष्मी करती विदा, ले नीराजन-थाल ।
और मुझे मां ले गई, क्षीरताल पाताल ।।
यद्यपि दिखते प्रिय ! न तुम, सुनती स्वर कमनीय ।
"लौटा दे मेरी मुझे, धरे ! तुरत ही सिय ।।"

सोरठा

लगा राम ने ध्यान, देखा सब कुछ निमिष में ।
बोले परम सुजान, "प्रिये ! करो हर-हर स्मरण ।।
पूर्ण करें अभिलाष, आशुतोष प्रभु आशु ही ।
किंतु रखो विश्वास, समय बड़ा वलवान है ।।
करो शयन अब सीय, कितनी कजराई निशा ।"
रमण-भुजा रमणीय, सोईं सीता शांत-चित ।।
कर सुमन्द मणि-दीप, लगे लेटने राम ज्यों ।
"जय-जय महामहीप, चार-प्रमुख प्रभु! द्वार पर ।।"

दोहा

शैया - शीर्ष - गवाक्ष - पट, बोली दासी एक ।
"आता हूँ" कह सीय-शिर, उठे सहज में टेक ।।
"कहो" पौर पर पहुँच कर, बोले चर से राम ।
विह्वल चर पद पर गिरा, "जय-जय करुणाधाम ।।

रजक-वीथि पुर घूमता, अभी गया मैं नाथ ।
हाय, कहूं क्या, क्या सुना," रहा मौन नत माथ ।।
"कहो-कहो निर्भय कहो," रख कंधे पर हाथ ।
"कुछ भी हो शुभ या अशुभ," बोले रघुकुलनाथ ।।
"एक रजक कर ताड़ना, कहता प्रभु ! निज तीय ।
'मैं न राम, रख लूं स्वगृह, रही परालय सीय ।।"
घर-घर से निकले रजक, सुनकर तीय-विलाप ।
किन्तु न बोला एक भी, बोल रहा क्या पाप ।।
नाव न वर्षा में मिली, पीहर सरयू - पार ।
अनुज साथ संध्या फिरी, यह हो दोषाधार ।।"
उठे विदा कर चार को, हुए राम गंभीर ।
प्रभु आये शैया - सदन, लिये निढ़ाल शरीर ।।
करतल पर मस्तक रखे, टिके तल्प - उपधान ।
हुए भुवन - संकट - दमन, चितांतुर भगवान ।।
रहे देखते सीय - छवि, करते रहे विचार ।
कभी बैठकर टहल कर, लेते निशा निहार ।।
ज्यों पंखों में हंसिनी, छिपा स्वछवि सुकुमार ।
हंस भरोसे सो रही, ललित कमल - कासार ।।
चला निकल दुर्वचन-गज, रजक-कुवदन-अलान ।
वह क्या जाने स्वप्न-गृह, बनने को शमशान ।।
और हंस बंदी बना, क्रीड़ा - कमल - मृणाल ।
दंड-पाश ले युगल - भुज, लगा तांक में काल ।।

सोरठा

दोषी हुआ अदोष, निर्दोषी दोषी हुआ ।
राज-दंड का रोष, झेल राम राजा स्वयं ।।

उठी सुप्त सिय बोल, "देखो प्रिय! गुरु-गृह घुसे।
निर्भय मांसक खोल, सुरभि सवत्सा ले चले।।"
आया कठिन भविष्य, बोला मन "सियशयनकर।
मुनि वसिष्ठ का शिष्य, कायर किया कु-काल ने।।"

ऊर्मिका

उठे राजाधिराज रघुनाथ,
सुप्त सीता को उढ़ा दुकूल।
मुँदे दृग, भरे दृगों से देख,
दबाकर उर का उठता शूल।।

लगी भावों की भारी भीड़,
घिरी ज्यों खर-दूषण की सैन्य।
चढ़ी चित-चाप बुद्धि की डोर,
तर्क-शर-माला चली अदैन्य।।

प्रथम तो लगा अकेलापना,
दिखे फिर भाव-भाव निज रूप।
प्रखर प्रत्येक प्रकार असह्य,
परस्पर फिर होते विद्रूप।।

रक्त - सागर में रक्तिम - कुमुद,
उषा चुनती देखी प्रत्यक्ष।
भाव - सुमनावलि - माला गूंथ,
खड़ी दासी सी सीय - समक्ष।।

प्रीति-प्रत्यंचा धनु-वैराग्य,
ज्ञान-शर चढ़ा अनुज प्रिय धैर्य।
जानकी का संरक्षक खड़ा,
राम का मूर्त वीर्य - ऐश्वर्य।।

बिजय-श्री नीराजन कर रही,
मैथिली चली सम्हाले चीर ।
कल्पनातीत अल्पना रचा,
रक्तदधि देता श्री सशरीर ।।

परीक्षित मर्यादा ! मुद्रिके,
परीक्षा दे फिर निस्संकोच ।
तपाकर तन-मन कण-कण लौट,
लगा लूं कंठ पुनः गतशोच ।।

मिलेगी निश्चित् यह मैथिली,
पलों-कल्पों में इस-उस कूल ।
इसी सीता का अक्षय - बीज,
बनेगा उस सिय का दृढ़ मूल ।।

उगेंगी कोंपल कोमल कलित,
चोर इस राघव का हिय-थाल ।
जगत-पतझड़ चुन ले प्रति-पात,
चिनेगा पात-पात मधु - काल ।।

नियति-वृष राजदंड-हल जोत,
अरे बढ़ राजा राम किसान ।
जगत को क्रूर अकाल अ - काल,
न कर डाले कंकाल समान ।।

लगा मृतिका की पीवर परत,
उढ़ाया झीना स्वकर दुकूल ।
सबीजा सीता सीता लगी,
गर्भ में किये समाहित फूल ।।

सांध्य-रवि सम रविकुल-मणि राम,
हृदय का डाल पदों पर भार ।
आगये थकित कृषक से मौन,
खुला निशि सा निशि मंत्रागार ।।

बंधुओं को धावक - गण निपुण,
बुला लाये पा प्रभु - संकेत ।
बिठाये अति समीप त्रय-बंधु,
किये स्वीकार नमन - समवेत ।।

थकित - चिंतित पथिकों से लगें,
परस्पर वदन देखने मौन ।
राम राघव गम्भीर समुद्र,
थाह ले इस अथाह की कौन ।।

क्षितिज-पर्यन्त सलित ही सलिल,
लहरतीं लहरें हहर दिगन्त ।
अतल के अन्तराल बड़वाग्नि—
सींचतीं सरिता अमित अनन्त ।।

विलोका, कभी मींच-दृग धरा—
देखते अपलक कभी वितान ।
नयन मल, लेते कभी उसांस,
तान तन सरकाते उपधान ।।

कि ज्यों हिमगिरिवर का उत्तुंग,
हिमानी - शृंग चूमता व्योम ।
पड़े चपला से घायल जलद,
थपकता थके-थके कर सोम ।।

ठिठकते जम-जमकर हिम - बिंदु,
सिमटते चन्द्र उषा के अंक ।
प्रकट कर अरुण अरुणिमा घोर,
तरुणिमा पाते लगते रंक ।।

हिमोपल शनैः - शनैः गल चले,
स्रोत से खुले युगल दृग-द्वार ।
सिसकियों के प्रवाह स्वर उभर,
लगे लहराने तपती धार ।।

कपोलों की श्यामल तल-भूमि—
न्हा गई, हुए तिरोहित कूल ।
सपल्लव सफल सफूल सशाख,
हुए पल में करुणा - कृषि - मूल ।।

शून्य की लुप्त, फड़फड़ा पंख—
हुई प्रभु-वाणी कुररी प्रकट ।
शीश स्मृति - फुंगिराजि पर पटक,
प्रसंगों की डालों को पलट ।।

बिलखने लगे राम "हा प्रिया !
मैथिली रानो हा हा सीय ।
लिखा लाई क्या लेख ललाट,
व्याध ने वधी मृगी कमनीय ।।

कुमुदिनी मिथिला - कुल की कलित,
कमलिनी सूर्य-वंश की ललित ।
अमर - वन पारिजात की अजर,
मनोरथ-वेलि अमर-फल फलित ।।

राम के इस दुर्भागे हृदय—
मरुस्थल की वांसती-कली ।
वृद्ध-विधि ने बन मत्त मतंग,
लोक-निंदा दल-दल में दली ।।

भाग्य-शशि ग्रहण - मुक्त क्या हुआ,
राहु की झलक झलकती रही ।
षोड़शी हुई पूर्णिमा इधर,
कालिमा उधर उभरती रही ।।

आह दुर्दैव-योग छल गया,
जला जो तिल-तिल दीपक दीन ।
पवन बन ज्योति अर्चचित कर,
बिखेरा काजल धूलिं मलीन ।।

कामिनी - नयन अनंजन रहे,
दिठौना बना न बाल-सनाह ।
खड़ी लेखनी चातकी रही,
देखती सरस स्वाति की राह ।।

आह तू छली जानकी गई,
हवन में भस्म हुआ यजमान ।
अग्नि - सम्मुख जो पकड़ा हाथ,
हाथ में किसके दूं भगवान् ।।

अतल - तल नीचे बधिर कठोर,
मूक । नभ ऊपर अंध अनंत ।
करें क्या तेरे, तेरा सिया,
सुजीवन का ही सम्मुख अंत ।।

पतित-पावनी शंभु से छीन,
क्षार में जिस खल ने दी डाल ।
वही विधि मम बांहों से आज,
चल रहा मेरी सिया निकाल ।।"

हुए विक्षुब्ध लखन-रिपुदमन,
भरत ने अनुज युगल कर शांत ।
पूंछ आंचल से प्रभु का वदन,
डाल आजानु - भुजा कटि- प्रांत ।।

सजल जलधर से बोले, "नाथ !
रात में हुई कौन सी बात ।
उठा चिरनिद्रा लेने कौन,
मैथिली-माता पर उत्पात ।।

विधाता हो या काल कराल,
आप की दो - बांहों के बीच ।
लखेगा मां की छांया तभी,
बनें जब तव यें छह-भुज कीच ।।

कृपाकर देव! बतायें मर्म,"
राम ने दुर्मुख - मुख की बात ।
कही विस्तार - सहित शिर थाम,
हुए नत एक वार तो भ्रात ॥

किन्तु रद पीस, अधर फड़फड़ा,
भ्रकुटि कर कुटिल, मुष्टिका बांध ।
उसी क्षण बोले लषण सकोप,
कुअवसर समझ गिरा कुछ साध ॥

"प्रात से प्रथम, अधम वह रजक—
गँवायेगा निश्चित निज प्राण ।
अंबिका का यह असत-कलंक,
अभी धो डालेगा यह बाण ॥"

"नहीं प्रिय ! नहीं,उचित यह नहीं,
नहीं यह समाधान, व्यवधान ।
काटना ही यह निजकर स्वयं,
सूर्य-कुल यश - प्रतान उत्तान ॥

काट लें जिसके बदले शीश,
बोलना क्या ऐसा अपराध ।
मार दो रजक, मरेगा दीन—
मौन जो बहु बैठे पर साध ॥

कनखिय़ाँ कह जातीं कुछ सूत्र,
कर गया टीका यह असहाय ।
प्रश्न तो रक्तबीज बन खड़ा,
कहो क्या उसका करें उपाय ॥

एक कट, प्रकटित करे अनेक,
अनेकों एक - हेतु दें काट ।
सीय का एक असत्य-कलंक,
सत्य बन सबके लगे ललाट ॥

यही क्या राम-राज्य का न्याय,
धर्म-मर्यादा के अनुकूल ।
शूल खा, एक फूल को तोड़—
कहें, कर दिया वृक्ष निर्मूल ।।

पंक से किसका धुला कलंक,
असत से हुआ असत्य परास्त ।
धरा पर लाया सरस वसंत,
कौन से जलधर का पविपात ।।

धरा पर पैर टिका कर तनिक,
बंधुओ ! नापो नभ का छोर ।
बुद्धि अकुंश से मन मातंग—
स्ववश कर, देखो जग की ओर ।।

जगत ही की क्यों, अपनी ओर—
लखो तो, लख पाते हैं एक ।
सूंघते सुनते छूते एक—
एक चख, कर अनुमान अनेक ।।

अनेकों खोजा करते सत्त्व,
न आता किंतु समक्ष महत्त्व ।
अंत में निज-निज मति अनुसार,
प्रगट करते मतिमान स्वसत्त्व ।।

विचारो तनिक अवध का दोष,
दंड - निर्धारण तत्पश्चात् ।
सुनी शत-वदन द्विशत दे श्रवण,
दृगों की देखी कह दी बात ।।

पटी पाटम्बर - पट पालकी,
वधू लिपटी अवगुंठन एक ।
कलित-कलियों पर हौले हौल—
चरण रखतीं दासियाँ अनेक ।।

सिमटती सकुचाती सी सरस,
लाजवंती सी नत अधखिली ।
पालकी-पलने - पीठ - पलंग—
पंक्तियां हिलीं, तनिक वह हिली ।।

सुकोमलता सुशीलता स्मिता—
स्वतः सुन्दरता, सीता रूप ।
धरा पर उतरी धारण किये,
स्वप्न-भुवनावलि अलख अनूप ।।

सुने जैसे चर्चा आख्यान,
विलोकी वैसी, पहली बार ।
दूसरी बार नमित-मुख मौन,
पहेली सी तजती घर-बार ।।

सोचने लगे लोग सब तभी,
चली यह क्यों कुसमय वन साथ ।
समाया जो - जो जिसके माथ,
कहा वह-वह उसने कर हाथ ।।

किसी ने कहा प्रीतिवश चली,
किसी ने कहा निभाती धर्म ।
किसी को लगी वासना मात्र,
किसी ने कहा कठिन कुछ मर्म ।।

तिमिर में परछांई सी घुली,
पुनः वह चित्रकूट में मिली ।
अनखिले काव्य कमल-की लगी—
पंक्ति - कलिका सौरभ से किली ।।

वंदना आते-जाते हुई,
वंदि से सम्बन्धी मिल चले ।
कीश-संदेश सफल - तरु तले,
स्वतः संदेह - शूल कुछ उगे ।।

गया राघव करने आखेट,
गया क्यों लखन, रहा अस्पष्ट ।
हरण कर कुटिल ले गया लंक,
झेल पायी होगी क्या कष्ट ।।

अवध ने दशमुख - अत्याचार,
निहारे कर करुणिम-चित्कार ।
वीथिका - बा- - हाट - वाटिका,
डूबते लखे रक्त- कासार ।।

व्यथा की कथा खड़े कह रहे,
राजगृह के कंगूरे-कोट ।
चिकित्सा शिल्पि - भिषक् कर चुके,
चिन्ह कुछ फिर भी कहते, चोट ।।

इन्हीं सन्दर्भों की भूमिका,
परिस्थिति चित में तोलो लेश ।
प्रियतमो ! सोचो उचितानुचित,
कहो फिर, त्याग क्षणिक आवेश ।।

अवध ने दशमुख - बल-कौटिल्य,
मैथिली का अति निर्मल-शील ।
एक विधि एक दिशा से लखे,
सरित को समझे सीमित झील ।।

प्रतीची-मुखी एक, मरुभूमि—
धूलि में चिरसमाधि ले मुक्त ।
एक ने पुरवा सी जग लहर,
जगादीं सागर - लहर प्रसुप्त ।।

एक भड़का, ज्यों बुझता दीप—
भीति दिखलाता बारम्बार ।
एक गंभीर सिंधु को चीर,
बढ़ी बड़वानल सी किलकार ।।

एक करता झूठी मनुहार,
एक करती सचमुच धिक्कार ।
शुम्भ सा एक जिताता प्रीति,
शिवा सी करती एक प्रहार ।।

एक दशशीशों वाला पुरुष,
शीश-कृषि करता गिरा अशीश ।
एक शिरवाली बाला एक,
शीश लाई ऊँचाकर शीश ।।

एक से अवा बना ब्रह्मांड,
लगा कण-कण में बन कर आग ।
एक ने झेली छत बन तपन,
आ गई लगा आग में बाग ।।

अवध-जन किंतु न पाये देख,
यहीं पर यही समस्या एक ।
दिलायें किसे-किये विश्वास,
हृदय को चीर, शीश को टेक ।।

दिखायें किसे ग्रीष्म की दहन,
दिखायें किसे शीत की चुभन ।
कठिन कांतार कंदरा-दर्भ,
गहनतम गर्भवास की घुटन ।।

योजनों आंख-मिचौली खिला,
ले गई मृग-छवि छल कर दूर ।
अन्त में अन्तिम-वयस विलोक,
प्रेत सा बोला क्या खल-क्रूर ।।

शुष्क हो अधर बने मरुभूमि,
रखा मुस्कान सुबिरवा तरल ।
बतायें किसको कितने कष्ट,
दिखायें किसको धीरज उपल ।।

दंडकारण्य-क्षेत्र के कठिन,
कुटिल कंटक वे गज-चित्कार।
दिखायें किसे कि कैसे किया—
किन्होंने किन में अभय विहार॥

शक्र-सुत का वह चंचु-प्रहार;
न्हा गई धरा रुधिर की धार।
किसे बतलायें, विष दृग मींच—
पी गई कैसे पसा पसार॥

दशानन की लंका में एक—
वस्तु ही जिसे सुहाई मात्र।
स्वयं सी चंद्रहास वह, कहा—
"अरी आ कर आलिंगन गात्र॥"

लोभ से लड़ी, मोह से लड़ी;
काम-मद-दम्भ-क्रोध से लड़ी।
अकेली सुकुमारी पर-दुर्ग,
उषा अभिनव दुर्गा सी खड़ी॥

दिखायें कैसे, कैसे अग्नि—
परीक्षा- समय हुए हिम-मलय।
अचल अचला-तनुजा का किसे—
दिखायें अडिग-धैर्य हम अभय॥

आज इन अवध-जनों के मध्य,
कहेगा सत्य-साक्षि मैं, कौन।
मौन ये किससे होंगे मुखर,
मुखर ये किससे होंगे मौन॥"

उठाते शिर बोले शत्रुघ्न,
"बुद्धि में आता एक उपाय।
उचित यदि लगे आपको देव!
बुलालें निशिचर-कीश निकाय॥

कौणपीं वे, जो थीं उस समय—
चरीं - अनुचरीं - पौर-प्रतिहारि ।
विभीषण - जाम्बवान - सुग्रीव,
अन्य विश्वस्त चमूपति - झारि ।।

अयोध्या आ जायें अविलम्ब,
करें प्रभु बृहद्-सभा उद्घोष ।
साक्षि दें, साक्षि स्वेष्ट कर सभी,
प्रमाणित हों माता निर्दोष ।।

कल्पना को फिर भी दे पंख,
जल्पना - रत हों जो उद्दंड ।
आपका राजदंड दे दंड—
दमन कर दे वे कुटिल प्रचंड ।।"

श्रवण कर शत्रुदमन की उक्ति,
चमत्कृत हुए लखन के नयन ।
रहे नत-शिर दृग मूंदे भरत,
न कह पाये कोविद लघु-वचन ।।

किंतु रघुपति बोले तत्काल,
"आज तक जो केवल सन्देह ।
वही धर बहु छवि सबल सदेह,
बसेगा कल जन-जन मन - गेह ।।

अमरवल्ली होती है अमर,
लगा कर माटी का सिंदूर ।
भक्ष्य कर पुरोडाश को भषी,
मनोरथ-फल कर देती चूर ।।

अकारण प्रक्षालन, प्रत्यक्ष—
पंक का करता सिद्ध प्रमाण ।
बुलाकर स्वयं सभा इस भांति,
करेंगे भ्रम-निष्प्राण स-प्राण ।।

वंश-मर्यादा के प्रतिकूल
प्रदर्शन सत्ता का यह, अहम् ।
निरस्त्रों पर ब्रह्मास्त्र - प्रयोग,
हमारा अंत करेगा स्वयं ।।

न होगी राजसभा वह सभा,
समर्थन - नट का केवल स्वांग ।
समर्थक-स्वर संवर्तक-ज्वार,
क्रांति के अग्निचूड़ की बाँग ।।

करेगी सूर्य-कीर्ति निर्वंश,
करेंगे या हम शोणित-श्राद्ध ।
बंधुओ ! करो-करो सुविचार,
विचारो मत केवल पक्षार्ध ।।"

भरत बोले "निश्चित्-रूपेण,
समस्या-सिंधु अथाह-अपार ।
धर्म - संकट झंझानल विकट,
आर्य ! लें सबल-युक्ति-पतवार ।।

दिखायें समाधान अनुकूल,
कूल दिख रहा बवंडर-लीन ।
बुद्धि-चित भ्रमित-पथिक से व्यथित,
हो रही जीवन-आशा क्षीण ।।

सुरक्षित ले मर्यादा-पाल,
करें यश-तरी वभँर से पार ।
कुशल कैवर्तक केवल आप,
नाथ ! कर सकने में उद्धार ।।

आपका निमिष-मात्र का मौन,
चतुर्युग सा हो रहा प्रतीत ।
दांव पर एक साथ ही लगे,
आज प्रतिपन्न-भविष्य-अतीत ।।"

"नीति यह, यदि कुल के हित एक—
पड़े करना कर दो बलिदान ।
आज इसके अतिरिक्त न अन्य,
भरत ! दिखता श्रुति-शास्त्र प्रमाण ।।"

"नाथ ! क्या बोले, बोलें पुनः,
सूत्र का समझ न पाये भाव ।"
तुरत ही बोले तीनों-बंधु,
खुल गये ज्यों मर्मान्तक घाव ।।

नमित-मुख लेकर शीत - उसांस,
स्वतः मुँदते नयनों को मींच ।
कठिनता से बोले रघुवीर,
गिरा को अतल-गर्त से खींच ।।

"जानकी-परित्याग के बिना,
न सम्भव समाधान कुछ अन्य ।
ठेल दो लगा कलेजे सेल,
तरे तरि सिंधु परिस्थितिजन्य ।।"

"कहा क्या, कहें पुनः रघुनाथ !
जानकी माता ही का त्याग ।
त्याग भी दें, तो क्या यह त्याग—
हमारा त्यागेगा दुर्भाग ।।

नाथ ! यह समाधान क्या किया,
स्नेह-हित दीप बुझा ही दिया ।
रोग इति हित रोगी के हेतु,
हलाहल ही हा ! निश्चित किया ।।"

झुके प्रभु पद कहते सौमित्रि,
बह चली अरुण-नयन जलधार ।
"कार्य की क्या विचित्र यह पूर्ति
किया कारण का ही संहार ।।

आपसे राजेश्वर! क्या कहें,
न माने अनुचित, अनुचित -बोल।
न जिसके प्रामाणिक परिमाण,
तुला तुल जाये पासँग तोल॥
उसी में न्याय तुले यदि, कहो—
कहेगा कौन उचित परिणाम।
सत्य है, अंधा होता न्याय,
न लेता किंतु अनय का नाम॥

अभी कुछ समय पूर्व ही सुना,
अंब बनने वाली हैं अंब।
तरेंगी कैसे विरह-पयोधि,
अकेलीं इस वय, क्या अवलंब॥
विचारें प्रभु! प्रत्येक प्रकार,
त्याग का यह कठोरतम कर्म।
मानते साधन जिसे अनन्य,
करेगा वृद्धि, वृद्ध या धर्म॥

प्रथम प्रभु श्रुति पुरुषोत्तम स्वयं,
निरन्तर प्रति-अंतर तव वास।
छिपा जिनसे किसका क्या भाव,
प्रकाशित हित क्या करें प्रकाश॥
आपका एक वेष सम्राट,
राजरानी भी तो तव प्रजा।
कहें अपराध, कहें फिर दंड,
सके जो नीति सुन्दरी सजा॥

प्रिया - प्रति प्रियतम का प्रिय-भाव,
बना किस अनुभव-वश दुर्भाव।
देव! दें इस अनाम को नाम,
हुआ क्यों विचलित चित का चाव॥

छोड़ दें नाम रूप यदि अन्य,
मनुजता भी क्या मनुज - शरीर ।
शेष रहते, त्यागेंगे आज,
शूल सी हूल रही हिय पीर ।।

हमारा कर्तव्याकर्तव्य,
हमारा करणीयाकरणीय।
समा यों रहे तत्व में तत्व,
न दिखता कुछ महत्व महनीय ।।

घोर नीरद-निर्भरिणी निशा,
सतत करती नभ-भू जल-लीन ।
चपल चचला व्याज ही अचल—
क्षपाकर-छांह दिखा क्षण क्षीण ।।

परिस्थिति क्या प्रभात की क्या न,
बता जाती बिखराती हास ।
त्यों न क्यों, क्या अपने को अभी,
सत्य का होता सत्याभास ।।

घोर संकट-वेला में सदा,
बनी जो रहीं सुदृढ़ आधार ।
उन्हें हम निराधार दें छोड़,
छोड़ परलोक-लोक व्यवहार ।।

झपटता यदि वन में मृगराज,
गर्भिणी - मृगी देख एकांत ।
वक्ष को ढाल, सुशृंग त्रिशूल—
बनाकर, बनकर क्रूर कृतांत ।।

भागता मृग हो जाता खड़ा,
प्रिया की सुनकर करुण - पुकार ।
त्याग मां को, क्या लें इस समय,
वन्य-पशुओं से भी धिक्कार ।।

अधिक क्या इससे निंदित-कर्म,
धर्म भी तो यत्ति रावण-रूप ।
लोक-मर्यादा सरि से बड़ा,
राज-मर्यादा का क्या कूप ।।

दया कर एक बार रघुनाथ !
पूर्णतः पुनः विचारें आप ।
लोक-परलोक कर रहा लोप,
पुण्य यह कैसा, पापी पाप ।।"

"लखन ! यह समय तर्क का नहीं,
बंधु ! यह वय विवाद की नहीं ।
इसे पोना ही है, यों पियो,
गरल की घूंट, स्वाद की नहीं ।।

अस्थि दीं जिसको मुदित दधीचि,
खिलाया शिवि ने जिसको मांस ।
उढ़ाया हरिश्चंद्र ने जिसे,
पुत्र-शव-वस्त्र, खींचकर स्वांस ।।

बनाये जिसने शिव शितिकंठ,
मिला जिससे बलि को पाताल ।
कर दिया परशुराम ने जिसे—
काटकर भेंट प्रसवनि - भाल ।।

दिया जिसको वशिष्ठ ने वंश,
विभीषण ने ली जिससे लात ।
सहा तुमने जिसके हित स्वयं,
ग्रीष्म-हिम-वात कठिन - आघात ।।

राजमुद्रा दे जिसको भरत,
ले चुके नंदिग्राम-प्रवास ।
वही निष्पाप-पाप यह खड़ा,
जानकी को देने वनवास ।।

0152,150
ML1

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।
आगत क्रमांक 2545
दिनांक

अनेकों नारद-ध्रुव-प्रह्लाद,
न जकड़े जिसने किस-किस पाश।
न जिससे क्या-क्या पा संकोच,
न किसने क्या-क्या किया विकास॥

हमारा वही सनातन-धर्म,
खड़ा है धैर्य परखने द्वार।
वंश-मर्यादा के विपरीत,
करेंगे क्या राघव व्यवहार॥

किसी ने सुनी न 'ना' जिस द्वार,
उसी पर इस याचक का शाप।
कहो क्या राघव लेंगे आज,
झुका शिर अपना, अपने आप॥

धधकती अग्नि देख यह शंक,
कहेगी क्या, कंचन सकलंक।
उठो यह ब्रह्मद्रव आ रहा,
तुम्हारा धोने कलुषित-पंक॥

परीक्षा से डरते असमर्थ,
याचकों से नत होते रंक।
सारमेयों से होंगे सिद्ध,
आज क्या राघव-सिंह अशंक॥

नहीं यह हुआ, न होगा कभी,
परीक्षा दुस्तर देंगे अभी।
चिता में बैठ अविचलित चित्त,
सिद्ध कर दो हम कुंदन सभी॥

न सोचो यह निर्णय दे रहा,
भरा मैं भावावेश-विशेष।
प्रफुल्लित चित्त, अविचलित हृदय,
मैथिली को करता अनिवेश॥

दिखाऊँ कैसे छाती चीर,
गहन अंतर के क्षत गंभीर।
ढके हैं, ढके-ढके ही काल—
बना ले अपना ग्रास शरीर॥

स्वर्ग से मनु इक्ष्वाकु-विकुक्षि,
पुरंजय - रघु - अज - सगर-दिलीप।
भागीरथ - अंशुमान - काकुत्स्थ,
हरीचँद-मांधातादि महीप॥

और वे महाराज पितुदेव,
जिन्होंने सत्य-हेतु दी देह।
पूज्य वे देख रहे है हमें,
पालते हैं कर्तव्य कि स्नेह॥

भित्ति पर सम्मुख वे कुल-जनक—
सप्त-सैन्धव मध्यान्ह-मरीचि।
पूंछते निर्निमेष हो मौन,
पुत्र! दोगे प्राची कि प्रतीचि।

अर्ध-इंद्रासन सजे स्वकर्म,
बना दे नहुष उन्हें कुल-कर्म।
कौन सी वे देंगे आशीश,
कौन सा हम पालेंगे धर्म॥

निहारो प्रश्न-चिन्ह प्रज्ज्वलित,
शलभ बन, लें अंतक-आघात।
या कि बन सागर धीर प्रशांत,
छिपालें अंतराल अक्लांत॥

विचारो, मुनि वसिष्ठ के शिष्य,
विचारो, रघुकुल-कमल दिनेश।
इधर अंगार-हार ले उषा,
उधर संध्या, शीतलता वेष॥

घाव का द्विगुण पीड़ सा दुखद,
एक है शल्य-क्रिया उपचार ।
दूसरा मद्यपान कर, शांति—
मृतक-वत् लें मूर्च्छा स्वीकार ।।

कौन अस्थायी स्थायी कौन,
करूं मैं विश्लेषण क्या व्यर्थ ।
आप हैं सभी प्रबुद्ध समर्थ,
विचारो सब विधि अर्थ-अनर्थ ।।"

सभी को मौन देख कुछ समय,
तिलक माथे का मल निज हाथ ।
भरी अति घायल अहि सी आह,
सिसकते से बोले रघुनाथ ।।

"जहां गंगा-तट मुनि-वाल्मीकि,
वहीं दो निर्जन-वन में छोड़ ।
उषा की प्रथम-किरण के साथ,
मैथिली कलित-कुमुदिनी तोड़ ।।"

रह गये तीनों बंधु अवाक्,
बोलते ये सीता-प्राणेश ।
राज-राजेश्वर में कर गया,
प्रीति-प्रतिशोधी-प्रेत प्रवेश ।।

नमन कर, आज्ञा पाये बिना,
भरत-शत्रुघ्न गये नत माथ ।
"राम का अग्नि-परीक्षा समय,
आप भी लखन ! छोड़ दो साथ ।।"

"पिता जी से ही तब क्या कहा,
आप से अब क्या कहना नाथ ।
खड़े जब बलि लेने, ले खड्ग,
झुका तो स्वामि ! लखन का माथ ।।

झेल जब चुका इंद्रजित-शक्ति,
वज्र सा निठुर कलेजा घोर ।
करें संजीवनि-प्रद निर्देश,
भृत्य प्रस्तुत हिय-हीन कठोर ॥"

"जानकी नें कल की थी प्रकट—
विपिन-तापस-दर्शन की चाह ।
इसी मिष ले जाओ रथ चढ़ा,
प्रात ही विजन-विपिन की राह ॥"

"कौन है" प्रभु-स्वर सुनकर एक—
आ गया प्रतिहारी नत-भाल ।
"राजरानी को सूचित करो,
चले वन-दर्शन हित तत्काल ॥"

दोहा

दासी वोली "स्वामिनी, द्वार लखन ले यान ।
खड़े, शीघ्र वन-दर्श हित, देवि ! करें प्रस्थान ॥"
'नाथ कहां' 'थे तो अभी, भूप मंत्रणागार ।'
सिय ने सोचा 'व्यस्त प्रभु' हुईं शीघ्र तैयार ॥
मुनियों हित वल्कल नवल, लिये अमित पकवान ।
की सासों की वंदना, पा आशिष कल्याण ॥
आईं, देखे द्वार पर, लखन नवाये शीश ।
बैठीं रथ, कह जानकी, 'जय राघव जगदीश' ॥
बैठे धनु धारे लखन, मौन सूत के पास ।
रथ चलता लख, मूंद दृग, रघुपति हुए उदास ॥
भवन गये, कर बंद पट, भूमि गिरे निरुपाय ।
बैठ गये फिर स्वयं ही, कहते 'सीते हाय' ॥
करता पल-पल में नगर, ग्राम-सरित-सर पार ।
आया गंगा-तीर रथ, घोर विजन कांतार ॥

कर प्रणाम उतरे लखन, सिय लीं पुनः उतार ।
नाव बांध पल में हुए, सुर-सरिता के पार ।।
सीता बोलीं लखन से, "क्यों उदास सुकुमार ।
लगता अतिशय थक गये, पा श्रम पंथ अपार ।"
सहसा फड़की सीय की, रुचिर दाहिनी आंख ।
सम्मुख कुररी रो गिरी, दबे बाज - मुख पांख ।।
छाती धक से रह गई, कुशकुन लखकर घोर ।
शंकित सी बोलीं "लखन, धनुष चढ़ा लो डोर ।।
कहते हैं ये अपशकुन, कुछ अनहोनी पास ।
क्या जाने क्या शेष है, विधि का अब परिहास ।।"
छुटा धनुष, लक्ष्मण गिरे, नयन बही जल धार ।
बालक जैसे रो उठे, शेष धरा-आधार ।।
"हां मां! मैं ही अपशुकन, कठिन अमंगल घोर ।
इस पापी के हाथ से, चली टूटने डोर ।।"
सिय अकुला लखने लगी, जड-वाणी अनिमेष ।
"कहो-कहो क्या बात है, निर्भय होकर शेष ।।"
"क्रूर-विधाता ! ज्योति हर, जीभ गला दे कोढ़ ।
प्राण खींच इस नीच के, छिपे भस्म-पट ओढ़ ।।"
"अलम्-अलम् लक्ष्मण! अलम्, कहो, न करो विलम्ब ।
नाथ-भरत-रिपुदमन सब, सकुशल कोसल अंब ।।"
"सब सकुशल, किसकी कुशल, फूटे कोसल-भाग ।
क्या बोलूं सम्राट ने, किया आप का त्याग ।।"

सोरठा

"मेरा इस वय त्याग" ' गिरीं भूमि भू-नंदिनी ।
ज्यों झुलसी बड़वाग, पड़ी पंक में हंसिनी ।।
ग्रसी अचानक राहु, उषा, निशा से निकल कर ।
बिछुड़ गया ज्यों साहु, मँझधारा में पोत से ।।

"करो रानि मां ! चेत, जीभ खींच लो लषण की ।
जा बस नरक - निकेत, ले गंगाजल शाप दो ।।"

ऊर्मिका

बिलखतीं उठी जानकी विकल,
"करूं किस कारण तुम पर रोष ।
पाप का कोष, पोच वह जीव,
तुम्हें जो माने लखन ! सदोष ।।

किन्तु वह कारण किंचित् कहो,
मैथिली दी जिससे प्रभु त्याग ।"
रजक का सुनकर सकल प्रसंग,
सिंधु सी किये समाहित आग ।।

प्रलय का लख पवमान-प्रवाह,
प्रकंपित ज्यों होता हिमवान ।
तनुज-जलप्लावन बारम्बार,
विगत कल्पों सम करता स्नान ।।

जानकी पूर्व-कष्ट कर स्मरण,
वहातीं नयनों से जलधार ।
मौन हो बैठीं मन को स्वयं—
सांत्वना देतीं बारम्बार ।।

शून्य में टिकी रह गई दृष्टि,
सृष्टि से जीवन हुआ तटस्थ ।
लखन को लगा, हुई अब हुई—
दिवसपति-कुल की आभा अस्त ।।

दौड़ पल्लव-पुट लाये सलिल,
"धैर्य धर तनिक पियो मां ! पाथ ।"
"सिया का जीते जी ही हाय,
अन्न-जल छीन लिया रघुनाथ ।।"

"नहीं मां ! नहीं, अशुभ यह हाय,"
"कौन अब रहा शेष ! शुभ शेष ।
निराशा भरे शेष ये स्वांस,
अभागिन के हित केवल क्लेश ।।
गंग ! दे गोद, धरे ! दे स्थान,
गगन! दे उल्का, दिशि! लो समा ।
करेगी क्या कलंकिनी सिया,
जगत की घोर तमिस्रा अमा ।।"

"न सोचो मां ! मन में यों तनिक,
आपमें हंस-वंश का अंश ।
अकारण ही असमय मत करो,
महाममतामयि ! सब विध्वंस ।।
उठाकर कैसे शिर सकलंक,
करूं किस नाते से उपदेश ।
न किस-किस दृष्टि-कोण से सोच—
दिया वन, होकर बाध्य जनेश ।।

आप नर-वर राघव की शक्ति,
आप ईश्वर रघुवर की भक्ति ।
आप निज प्रियतम की आसक्ति,
मुखर पर इस वय नृप-अभिव्यक्ति ।।
कहो तो धनुष धार कर अभी,
रजक का भस्म करूं साकेत ।
कहो लाऊं यमपुर कर ध्वंस—
दशानन, कर यमराज अचेत ।।

कहूं, कह ले शिव-विग्रह हाथ,
सत्य कह मां-पावित्र्य-वृतान्त ।
अन्यथा राम-वधित लख पुनः,
लखन को अपना अन्य कृतान्त ।।

कहो तो, कहूं हाय क्या अंब!
भाग्य ने रखा न कहने योग्य ।
किया किस विधि, क्या विधि विपरीत,
वने हम हा, भोगों के योग्य ।।

क्लैव्य-कर पड़े अशोभित हुए,
तुम्हें धिक्कार अरे धनु-बाण ।"
भाल से फेंका भूमि किरीट,
"त्याग रे! लक्ष्मण के तन, प्राण ।।"

धूलि में खाते हुए पछाड़,
रो उठे लक्ष्मण मार दहाड़ ।
भरे क्रन्दन से दशदिशि-क्षितिज,
हुए क्षत-विक्षत ज्यों वन-झाड़ ।।

लगा ज्यों गिरा शुक्र-नक्षत्र—
धरा पर करता घोर विलाप ।
तलातल धसते जाते शेष,
भयंकर प्रलयंकर पद-थाप ।।

छप्पय

तृण दाबे मृग रहे, रहे सहमे से वनचर,
सरी-सर्प हो विकल, निकल आये तज कोटर ।।
ठहरीं गंगा-लहर, बयारें हहरीं अम्बर ।
रोते देवी-देव, प्रलय आ गई मही पर ।।"
कहते वनचर भागते, सचराचर दुख देखकर ।
सीता बोलीं उठ तुरत, भूल विपद निज निमिष-भर ।।

सुखमालिनी

इंद्रजीत के अरे! विजेता,
आज तुम्हारे नयनों में जल ।
रघुवंशी भी रोया करते,
जान सकी यह मर्म, इसी पल ।।

तमहर में भी तम को प्रश्रय,
कैसे जग विश्वास करेगा।
यदि आधार अधीर स्वयं हो,
कौन कहो फिर धीर धरेगा ।।

असमय परिधि त्याग, क्या वारिधि—
प्रलयंकर का स्वाँग रचेगा।
महाकाल ही करे पलायन,
कालकूट फिर कहां पचेगा ।।

चेतन ही सुख-दुख सहता है,
जड़ के हेतु एक से सब क्षण ।
प्रभु चैतन्य, चेतना उनकी,
आज हुई मैं निर्गुण लक्ष्मण ।।

कैसे कहूं सुखी अपने को,
कैसे बोलो दुखी बतादूं ।
दासी होकर राजपत्र पर,
कैसे मुद्रा स्वकर लगादूं ।।

जननी जिन्हें न जनकर जानी,
तुमसे अनुज नहीं पहचाने ।
योगि - जनों के वे अगम्य प्रिय,
पर मेरे तो कुछ-कुछ जाने ।।

मैं तो दासी जन्म-जन्म की,
ज्यों चाहें लें प्राण चाकरी ।
पास रखे या दूर देश में,
मृदु शैया या कठिन सांथरी ।।

जिन वीरों ने पर-पुरियों में,
अग्नि-देव के सदन सजाये ।
अपने घर की चिंगारी को,
तनिक धीर वे देख न पाये ।।

कुछ हँसकर, कुछ रो कर जीवन—
पार करूंगी, मैं तो नारी ।
किंतु अकेले खेलेंगे वे,
कैसे, संसृति प्रखर दुधारी ।।

जो होना, हो लिया सिया का;
इससे अधिक न अब कुछ होना ।
जिन्हें देखनी हैं अनहोनी,
उनकी अनहोनी का रोना ।।

रोये, जग का-पुरुष कहेगा,
हँसे, कहेगा भूप विलासी ।
चर्चा की, विक्षिप्त कहेगा,
न की, कहेगा निठुर उदासी ।।

बोले तो क्या बोलेंगे प्रभु;
अनबोले तो, बोल सहेंगे ।
खुली खड्ग से परिजन-पुरजन,
किसको ढाल - निढ़ाल कहेंगे ।।

वे मेरे संकोची प्रियतम,
जिनकी भावावलि सुकुमारी ।
कैसे पार करेंगे लक्ष्मण !
यह जीवन का सागर खारी ।।

उनके तन में छिपा मृदुल मन,
किससे अपनी बात कहेगा ।
फिर उस मन को, कौन स्वमन दे —
मौन घड़ी भर बैठ, सुनेगा ।।

कैसी कठिन परीक्षा विधि की,
कैसा अभिनय क्रूर कराता ।
वैरागी के अंग-राग मल,
अनुरागिन के भस्म रमाता ।।

क्या सीता की कठिन परीक्षा,
शिक्षक स्वयं परीक्षा देते ।
सिद्ध साधना स्वयं कर रहे,
सिद्धि असाध्य अन्य को देते ।।

कहना, मेरी करें न चिंता,
निज चित चिंतातीत बनायें ।
यह जगती दोमुँही सर्पिणी,
कुशल सँपेरे सरिस खिलायें ।

साधु - वेष में छली गई मैं,
ध्यान रखें वे 'साधु-जनों' का ।
कनक-मृगों के पीछे जाकर,
करें न फिर आव्हान रणों का ।।

छद्म स्वरों में, मैं तो बहकी,
तुम कठोर वचनों में बहके ।
मेरा हरण हुआ क्यों, छोड़ो,
उन्हें बचाना लखन ! सम्हल के ।।

ये स्थूलों - हित स्थूल धनुष-शर,
किन्तु सूक्ष्म-हित, सूक्ष्म धार कर ।
हृदय चाप पर चढ़ा बुद्धि शर,
रहना प्रिय-प्रतिहारी तत्पर ।।

उनको हुआ तनिक यदि कुछ भी,
रखना स्मरण निरन्तर लक्ष्मण ।
यहां नहीं तो वहां किसी दिन,
लूंगी पूंछ थामकर दामन ।।

वचन कठोर गई हूँ कह मैं,
पर न तात ! तुम बुरा मानना ।
कठिन आवरण, परित्यक्ता की,
नारिकेल सी विमल भावना ।।

पल-पल पीकर घोर हलाहल,
प्रिय के प्रिय में हुई समाहित ।
प्राणनाथ के प्राण धरोहर—
रखे, रखूंगी प्राण सुरक्षित ।

कल की प्रबला, क्षणभर अबला—
होकर फिर सबला की सबला ।
अतल बिछाकर, गगन ओढ़कर,
बैठूंगी अचला की अचला ॥

जनकपुरी की दूब सलोनी
अवधपुरी की कल की कमला ।
लंका की विकराल कालिका,
आज शून्य, बन निश्चल चपला ॥

तम में खो जावें को तम मे—
चमकेगी, पथ - तम हरने को ।
बैठी हरी-चुनर दे मां को,
जल-जल कर पल-पल गलने को ॥

जो बीती, वह देखी सारी,
बीतेगी, देखी जायेगी ।
पर जिस हित यह रचना की, वह—
मर्यादा क्या बच पायेगी ॥

देख रही हूं स्पष्ट - स्फटिक सा,
मैं भविष्य को इस अंकुर के ।
पुष्ट हुआ सिय की बलि लेकर,
शिर चढ़ने को राम-मुकुट के ॥

राम-कीर्ति निर्वासन की यह—
पूर्व - भूमिका, राम-प्रिया वन ।
मैं हूं आज, रहूँगी कल क्या,
देह-धर्म यह निश्चित् लक्ष्मण ॥

देश-काल की सीमाओं से—
किंतु परे प्रभु का यश उज्ज्वल ।
जो हैं आज सरोष ग्रहण पर,
देगें दोष, त्याग पर वे कल ।।

सुनकर आये आज गुप्तचर,
गुप्त-रूप से विपिन पठाई ।
कल जब बोलेगा सचराचर,
तब क्या बोलेंगे रघुराई ।।

छल से हर कर, रखी वैरि ने,
बल से जय कर, लौटा लाये ।
अग्नि-परीक्षा ले ली, फिर भी—
'भद्रा' भद्र नहीं कह पाये ।।

सीय-हरण तो अगणित होंगे,
कितनी सिय पर लौट सकेंगी ।
कितनी सीता सी लौटेंगी,
कितनी अग्नि-परीक्षा देंगी ।।

मेरा है यह अहं न किंचित्,
किंतु आ रहे कल द्वापर-कलि ।
कितने राम-सिया जन्मेंगे,
लेगा कौन, कौन देगा बलि ।

देख रहीं हूँ मैं भावी को,
भावुक हूँ न भूत-बलिहारी ।
मेरे सम्मुख बिलख रही है,
अबला बनकर कल की नारी ।।

हुआ कभी आक्रांत देश यदि,
मिले न भरत-लखन से भाई ।
तो प्रिय भारत की सिय कपिला,
ले जायेंगे खोल कसाई ।।

भ्रष्ट करेंगे, नष्ट करेंगे,
कष्ट उठा यदि कोई निकली ।
दौड़ेगी बाँहें पसार कर,
स्वजन याद कर, यह सिय पिछली ।।

यदि तज बैठे तो क्या होगा—
वह भी यदि, न क्षमा कर पाईं ।।
तो यह निश्चित् जानो लक्ष्मण !
असमय प्रलय-घटा घिर आई ।।

चंचल मन, लघु-वामन जीवन,
अमित-व्यसन, मित-अशन करेगी ।।
जन्मेगी अब सृष्टि, सुनिश्चित्—
अग्नि-परीक्षा, गल्प लगेगी ।।

ढह जायेंगी सब मर्यादा,
गंगा शिर धुन रह जायेगी ।
सुता सुपावन किये बिना यह,
पतित-पावनी बह जायेगी ।।

इन्द्र करेंगे राज स्वर्ग में,
पड़ी अहिल्या रह जायेगी ।
किस रघुपति की पद-रज पाकर,
नारी नारी कहलायेगी ।।

नारी ही क्या अन्त्यज-गिरिजन,
परम-सरल अधनंगे भूखे ।
अष्ट-प्रहर सेवा में रहते,
पाते टुकड़े रूखे-सूखे ।।

कह कर भाग्य, मूक हो जाते,
लोचन किंतु ललकते रहते ।।
उधर विचार निशाचर-जन के,
दोनों पृथक-पृथक कुछ कहते ।।

प्रखर-कृपाणों की नोकों पर,
लालच-लोभ-रूप के बल से ।
होंगे नित्य धर्म-परिवर्तन,
सरल-जनों के छल-कौशल से ।।

संध्या को यदि संस्कारों-वश—
फिरे, कौन तो पट खोलेगा ।
रोटी-बेटी देकर, मन से—
मन को मिला, कौन बोलेगा ।।

जब भटका वह बंधु फिरेगा,
क्या न शाप देकर जायेगा ।
पाप हमारा हम को असमय,
अतल अतल लेकर जायेगा ।।

धर्म-विमत से आज नहीं कल,
राष्ट्र अल्प मतवाला बनता ।।
फिर उन धिक्कृत मतवालों से,
पर-ध्वज घर पर सहज लहरता ।।

देख चुकीं यें आँखें लंका,
अमृत नाभि का, नाभि धधकते ।
धनिक-वर्ग से कहना, धन पर—
बैठें अहि से स्वांस न भरते ।।

वितरित करते रहें मान से,
दोनों हाथ खुले मन निशिदिन ।
प्राण सहित अन्यथा किसी दिन,
ले जायेंगे यही गिने बिन ।।

वर्ग-भेद का गहरा होना,
है समाज का परम अमंगल ।
किसे पीस दे साथ चने के—
घुन सा, वह आने वाला कल ।।

भूख पिशाचिन ही मानव को,
देती दानव रूप - विपल में ।
वास काल का सदा-सदा से,
मनुपुत्रों के स्वेदज-जल में ।।

आवश्यकतायें, ईश्वर-पर—
लोक-लोक का कंठ काटतीं ।
राशिप-राशि स्वराशि स्वकर से
अतः मुदित चित रहें बांटतीं ।।

कहना स्मृतिकारों से लक्ष्मण,
निज त्रिकाल-दर्शी दृग खोलें ।
देकर मान समय - मांगों को,
निगमागम की वाणी बोलें ।।

न तो पुस्तकागारों में ही,
पड़े-पड़े वे गल जायेंगी ।
निर्जल-मरु के वपित - बीज से,
निर्जन में ही जल जायेंगी ।।

इस धरती पर हिम ही हिम है,
इस धरती पर रज ही केवल ।
व्यर्थ धरा यह, निखिल पंक मय,
मूर्ख-कायरों का वाणी-छल ।।

जो अपना मरु बचा न पाता,
उससे विदा मालवा लेता ।।
स्वप्न जान्हवी उसकी बनती,
जो अपना हिमगिरि दे देता ।।

जो जड़, जड़ को अनघड़ कहकर,
फल-फूलों की आस लगाते ।
धर्मद्रोही प्रेतोपासक,
प्रेत मसानों के बन जाते ।।

अपनी धरणी अपनी गृहिणी,
निज कर चाहे कुशा उगायें ।
कल्पलता - हित देवों से भी,
नहीं कभी जुतवायीं जायें ।।

नारी धरा, वृक्ष-माला नर,
कभी न बँटने - कटने देना ।
कभी न लुटने-पिटने देना,
कभी न कण - भर छँटने देना ।।

प्रथम, न बंधु बिछुड़ने देना,
बिछुड़े, बढ़कर गले लगाना ।
स्वयं द्वार पर यदि आ जाये,
लखन ! भरत वह, शंक न करना ।।

कृच्छ और चांद्रायण से व्रत,
पंचगव्य आदिक शौद्धोदन ।
करें श्रेष्ठि, सामर्थ्यवान जन,
निभा न पायेंगे साधारण ।।

सर्वाधिक सर्वदा शुद्ध, जल,
उसमें भी अतिशय गंगाजल ।
त्यों ही ब्रह्मपुत्र, कावेरी,
सिंधु, नर्मदा का जल निर्मल ।।

मिलें न वे यदि, कूप-सरित-सर—
भरा कहीं का या स्वकमंडल ।
दो, दो छींट विशुद्धि तुरत ही,
भारत का सब जल गंगाजल ।।

रखना यदि भारत को भारत,
सरल बनाना शुद्धि-व्यवस्था ।
देश-धर्म-संस्कृति की संज्ञा,
होगी लुप्त तुरन्त अन्यथा ।।

राम-सिया का उदाहरण दे,
पामर भ्रष्टाचार करेंगे ।
निर्दोषी-अबला को तजकर,
क्रूर, राम का स्वांग भरेंगे ।।

प्रगतिशील कहला कुछ पापी
कुल्टाओं में रास रचेंगे ।
कुछ पर-चाकर देशद्रोही,
संस्कृति का उपहास करेंगे ।।

सिय-निर्वासन के महत्व को,
सही-सही समझेंगे कितने ।
शिव के अशुभ वेष की शुभता—
समझे होते, होते इतने ।।

जिन असुरों से समर रचाने,
आना पड़ा स्वयं ईश्वर को ।
नाम पतित-पावन का गाकर,
क्या जानेंगे वे रघुवर को ।।

कितने होंगे ऐसे जगमें,
त्याग भरा हो, ऐसा जिनमें ।
महामोह के कीच- कीट वे,
क्या न करेंगे प्रभु बन, जग में ।।

कहना प्रभु से, ग्लानि त्याग कर,
इन भावी-प्रश्नों के उत्तर ।
देते जायें, थोप न पाये—
यह जग, निज करनी सिय-प्रिय पर ।।

लखन ! लखो मध्याह्न ढल रहा,
अब तुम अवध तुरंत पधारो ।
अपलक बैठे लखते होंगे,
जाकर प्रभु की चिंत निवारो ।।

वैदेही की वत्स! वंदना,
कहना सादर प्रभु - चरणों में।
माताओं-बहनों से कहना—
रखना सीता-स्मरण मनों में॥

पारावार अपार जगत का,
लहर समय की आती, जाती।
बहुतेरे मोती लाती हैं,
पर माला कुछ की गुँथ पाती॥

उनमें से भी सूत्र टूटकर,
जाये बिछुड़ कहीं मणि कोई।
तो न तजी जाती है माला,
जाती बँटकर सूत्र पिरोई॥

कहना मां से परिजन-माला,
हृदय लगाकर रखें, सम्हाले।
फिरते वेष बदल कर तस्कर,
कोई प्रमुख, न सुमणि चुराले।"

"चोरी हुई प्रमुख मणिका तो,
कोई गूंथों माला कितनी।
मणि - भर बांचा रह जायेगा,
या छोटी होगी मणि जितनी॥

पहनी तो, दारिद्रय कहेगी,
रख दी, जग दारिद्रय कहेगा।
सिय-मणि गई, गई शोभा ही,
अब तो शोभा पिटक लहेगा॥

दिवस-निशा-ऋतु-संवत्सर तो,
क्रम से आयेंगे-जायेंगे।'
पर छत-हीन अवध-मन्दिर में,
कितना सुख वे सरसायेंगे॥

खायेंगे भी सोयेंगे भी,
बैठेंगे भी बोलेंगे भी ।
जन-जापे भी होने, होंगे,
पर क्या आंसू सूखेंगे भी ।।

रघुकुल के असाध्य रोगी का,
जीना-मरना एक बराबर ।
जिसको प्राण - शिला ढोनी है,
मरु-भू - क्षितिजों तक जीवन-भर ।।

दोनों विदा हो गये हमसे,
लोक और परलोक हमारे ।
उन निर्लज्जों का क्या जीना,
जिनको, जिनका मन धिक्कारे ।।

प्रति-दिन की निशि, प्रति-निशि का दिन,
विश्व-चक्र उत्थान-पतन मय ।
कीर्ति पूर्णिमा की यह मावस,
यह प्रदोष-यश सूर्य-पराजय ।।

सुर-ध्वज से आगे ध्वज फहरा,
जो रघुवंशी सुरपुर उतरे ।
क्या जाने अब कहां टिकेंगे,
किस पाताल, तलातल गहरे ।।"

दोहा

कहते कहते रो उठे, पुनः लषण बलवीर ।
शिर छू कर बोलीं सिया, "धरो-धरो प्रिय ! धीर ।।"
सूत बढ़ा संकेत पा, "प्रस्तुत नौका नाथ ।"
"हाय अंत कैसा दुखद, सुखद लगी जो गाथ ।।"
मस्तक सिय-पद-रज रखी, कर साष्टांग प्रणाम ।
पुनः-पुनः विह्वल गिरे, सूत ले चले थाम ।।

लखते जाते घूमकर, बहती जाती धार ।
ज्यों चौसर पर वार धन, जाता साहूकार ।।
ज्यों कायर रणभूमि लख, कर उठता चित्कार ।
'हा मां' कह बिलखे लखन, उठती लख पतवार ।।
चली तरी सुरसरित के, अति प्रतिकूल प्रवाह ।
"जा न अकेली छोड़ कर" ज्यों कहतीं आ राह ।।

सोरठा

जोड़े अश्व सुजान, वन-पशु सम काठिन्य से ।
कहते 'हा भगवान', चढ़े विवश सौमित्रि हो ।।

सप्तम-भुवन

मंगलाचरण
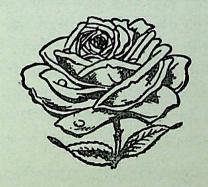
आत्मनिवेदन

रस-भँवर-ऊर्मिका मीन-मिथुन, श्रावण-नभ के झिलमिल तारे ।
लोहित-सित-असित कमल-सर से, दृग अरुण-धवल कुछ कजरारे ।।
रतिपति-मधु ने धनु धरे धरा, ज्यों हार-हार त्यों भँव बांकी ।
हिय-हिय के भावों सरिस सरस, रस-पीठासीन कृपा-झांकी ।।
पिकवल्लभ के अभिनव-दल से, करुणा-निर्झरिणी-जनिता से ।
भय-चिंता-क्लेश-कलुष दलनी, निर्भयता-ममता-मुदिता से ।।
जिनकी चितवन जग ललचाती, कर देती पल में प्रलय-निलय ।
उन कारुणीक नयनद्वय से, सीतापति ! शिशु न पृथक करना ।।

अनुपातमयीं अनुतापक्षयीं, सुन्दर-सुडौल करिवर-कर सी ।
केयूर-वलय धनु-शर सज्जित, दुर्लभ वरदानों के वर सीं ।।
शारंग-सुदर्शन-पांचजन्य, रत्नतसरु-कौमोदकी गदा ।
जिनसे चलकर शोभा पातीं, जिनमें फिर सजतीं हर विपदा ।।
उपधान जानकी रानी कीं, शुभछत्र अंजनीनंदन कीं ।
जो एकमात्र एकैव पात्र, त्रिभुवन अभिनंदन-वंदन कीं ।।
भव-भय-भीतों की अभय-प्रदा, सर्वदा सदा सुखदा शुभदा ।
उन महाबाहु-छांया-श्री से, रघुनंदन! शिशु न पृथक करना ।।

विकसित अलसी-वन सा विशाल, छूता छितिजों सा बाहुमूल ।
जिन वृषस्कंध से वृषस्कंध, उन्नत, विलसित उपवीत-कूल ।
कौस्तुभ-सुपीठ द्विज-चरण-चिन्ह, मणिरत्नमाल-शोभित, शोभित ।
कमलासन-कमला सनावास, त्रिभुवन-प्रदीप्ति करता मोहित ।।
अभिलषित-जनों-प्रति परम सदय, करुणा-वरुणालय मधुर हृदय ।
करता जिसमें अविरत विहार, ले भावावलि रसराशि-निचय ।।
जो त्रिभुवन-श्री की रंग- भूमि, संकल्प-द्वादशात्मोदयगिरि ।
उस आर्द्र-हृदय वक्षस्थल से, खल-कुल-रिपु! शिशु न पृथक करना ।।

पल में वामन तल-अंकुर से, छाये वटपति से नभस्थली ।
शिव-शीश-माल विधि-जाल-काल,सुरसरि रसाल जिनसे निकली ।।
दंडक-कंटक-संकुल दुलार, जो बने कपट-मृग के सहचर ।
वन-वन विचरे गो-गोप संग, गोपीजन में थिरके सस्वर ।।
कीशेश छत्र, लंकेश चँवर, मणिमय किरीट विहगेश्वर के ।
भरतेष्ट-पादुका श्रेष्ठ-स्वामि, अरविंद शंभु - अंतर सर के ।।
ध्वज-छत्र-कुलिश-यव-पद्मांकित, अरुणिम-श्यामल-कोमल-मंजुल ।
उन अशरण-शरण चरण-कण से, रघुभूषण! शिशु न पृथक करना ।।

नभ-सिंधु-क्षितिज दल सी श्यामल, नीलम नीरज नव-नीरद सी ।
वृष शीतलता, धनु रश्मिलता, पावस संमद, माधव मद सी ।।
वाल्मीकि-व्यास वाणी की श्री, वाणी के अन्तर की प्रतिमा ।
सुषमा-परिक्रमा की गरिमा, जो अपनी आप स्वयं महिमा ।।
कौशेय कुशेशय-किसलय से, पिंगल-झिलमिल केशर-चय से ।
परिधान अलौकिक आलोकित, जरतारी-रत्न कलालय से ।।
लघु झलक एक जिसकी लखकर, नवरस नव नव-रस नित पाते ।
उस छवि के नित्याकर्षण से, अवधेश्वर ! शिशु न पृथक करना ।।

पल भर न रहेगा पितु-शरीर, यह जान, न देखी अवध विपल ।
कब हुआ जगत में कंचन-मृग, यह जान, चढ़ाया मस्तक छल ।।
यह भी सुर-द्वेषी असुर रहा, यह जान, विभीषण अपनाये ।
ये कंटक-फल कहलाते हैं, यह जान, बेर ले-ले खाये ।।
उपयुक्त वालि रावण-रण में, यह जान, मित्र सुग्रीव किया ।
सुरपति-सुत-दृग-हर शर भू पर, यह जान, न सिय-हित किंतु लिया ।।
अतिशय प्रतिकूल भाव में भी. त्यागा न निमिष भर जो स्वभाव ।
मम दोष देख, तज निज स्वभाव, हे अच्युत! शिशु न पृथक करना ।।

शिव से वैरागी युग-युग से, पग-पग सुनते अनुरागी बन ।
जिसको पल-पल सुनने का पथ, गिरिजा जानी तन परिवर्तन ।।
जिसकी सुश्रवण लालसा ने, पृथुराज बनाये सहस-श्रवण ।
पद-दंभ त्याग खगपति पहुँचे, जिसके सुनने को काग-भवन ।।
ऋषि शौनकादि सुनते सचाव. जो सूत-जाति अनदेखी कर ।
जो सुनकर भूप परीक्षित ने, ली मृत्यु, प्रेयसी सी भुज भर ।।
श्रोता-वक्ता पद-आयु-बोध, जग भेद-भाव सारे हरती ।
उस निज मांगलिक-कथासरि से, लीलाकर ! शिशु न पृथक करना ।।

जो नाम, विहग को तनिक पढ़ा, गणिका गोलोक गई पल में ।
जो एक नाम भ्रमवश लेकर, तल का खल चमका नभ-तल में ।।
जिस अर्धनाम के कारण ही, श्री-श्रीपुर-खगपति-चक्र छुटे ।
जिसके विपरीतोच्चारण से, वाणी के अक्षय-स्रोत लुटे ।।
ध्रुव-पीठ, जिसे जप शिशु पाया, जिसके प्रताप से खंब फटा ।
जिससे शिल तरीं तरीं सी जल, सिय-क्षय-तम बना सुनील-घटा ।।
जिससे सब दुर्लभ सुलभ हुए, जो अखिल -लोक-गुरु ! तव गुरुवर ।
उस नाम-स्मरण से क्षणभर भी, करुणाकर ! शिशु न पृथक करना ।।

मालिनी

अंबिके ! विलोकें, लखन वही क्या ये ही ।
निशिचर भय खाते, जिनकी चर्चा से ही ।।
जिनका दुष्कर व्रत-पालन अवलोकन कर ।
मुनि रहे ललकते, ले न सके पद-रज पर ।।
लख जिन्हें, विजन में सोये धनुधर धनु धर ।
रो उठे विलख, लख जिनको सोता पल भर ।।
प्रभु-हित तज माता-पिता-प्रिया-पुर-परिजन ।
वन चले, सांवले की स्वर्णिम-छाँया बन ।।
मां ! देख देख, हम भूल कहीं क्या करते ।
ये वही शेष, फण मणि सी धरती धरते ।।
बहु-वार जिन्होंने की भू क्षत्रिय-हीना ।
जिनके व्यंग्यों ने, उनका पौरुष छीना ।।
जिनकी लख बांकी-भ्रकुटि दिशावलि दहली ।
अनबुझी नृपों को लगे पहेली पहली ।।
वह शूपर्णखा जिससे जगती भय खाई ।
क्या इन्हीं गरुड़ के वश व्याली सी आई ।।
वन-राह जिन्हें लख, बोल उठे नारी-नर ।
यह स्वर्ण-शिखर उतरा सुमेरु का भू पर ।।
रस-राज वीर-रस पाया जिनसे संज्ञा ।
क्यों उपा-मूर्ति वे, वने आज निशि-संध्या ।।
यह ललित मालती-लता, चखी क्या चांकी ।
इस कनक-कमल-कासार कुहू क्या झांकी ।।
शशिमुख पर छाईं क्यों आजानु -सुबाहू ।
कर छल असमय यह चला कौन सा राहू ।।
लख जिन सुलोचनों में डोरे रत्नारे ।
सेंदुर सुलोचना का लीला अंगारे ।।

वे आज विकल मां ! रथ में कैसे आते ।
ज्यों यम-दूतों से पापी खींचे जाते ॥
ज्यों-ज्यों पुर आता पास, वेदना उठती ।
मानों रौरव की अग्नि धधकती दिखती ॥
यह रथ है, क्या रथ वही अजय दशरथ का ।
उपमान न जग में मिला आज तक जिसका ॥
जो गया लक्ष्य पर, क्षण भर में खर शर सा ।
जो फिरा रणों से, जय पाकर जय-स्वर सा ॥
खो गई उसी रथ की श्री कहाँ अचानक ।
मनभावन सहसा कैसे बना भयानक ॥
यह रघुसिंहों का शैल, सर्प-कोटर या ।
यह दिनमणि-ध्वज का शिखर, अतल-गह्वर या ॥
श्रुति-छंद नाम प्रारम्भ-काल से धारे ।
सप्ताश्व वही क्या लाते यान सँवारे ॥
जो जल पर थल सम चले, विहग से उड़ते ।
ये आज अशिक्षित वन-पशु से क्यों लगते ॥
ये देख रहे, क्या बार-बार फिर-फिर कर ।
ये दो पग बढ़ कर, अड़ क्यों जाते पथ पर ॥
इन जग-जयियों को बाघ कौन सा दिखता ।
जो एक न पद इनका स्वाभाविक उठता ॥
हिनहिना, दीन-मणिहीन भुजग से गिरते ।
उठ-उठ कर सम्मुख-दिशा त्याग क्यों फिरते ॥
ये नये-नये इस रथ में आज जुते क्या ।
ये अनियंत्रित, निर्जीवन रंग पुते क्या ॥
ये सुन सांकेतिक 'शीं-शीं' हर्षित होते ।
फिर रीती वेदी देख, क्षती से रोते ॥
ये जिस गति से वन गये, कहां वह भूले ।
ये पा किसका अभिशाप हो गये लूले ॥

ये लांघ गये पशु किस ऋषि की अग्यारी ।
गति बँधी विपिन, पढ़ मूठ किसी ने मारी ॥
ये वन-दर्शन सीता को गये कराने ।
या कनक-भवन की रानी विपिन बसाने ॥
मां ! थाम हाथ, क्या यही दिखाने लाई ।
किस युग का वैरिन ! वैर साधने आई ॥
मैं शिशु था परम-अबोध, कहां भटकाया ।
यह रामायण, मैं जिसे देखने आया ॥
रघुनाथ ! श्याम तुम मन के श्यामल निकले ।
लूंगा यों जननी छीन, न बोले पहले ॥
प्रभु ! तुम्हें सदा ही मां के साथ निहारा ।
मां बिना अवध वह वधशाला सो कारा ॥
छाती - पीता शिशु छीन, धूलि में डाला ।
यह दृश्य दिखाने को क्या दिया उजाला ॥
क्या इस दिन के ही लिए गिरा दी, स्वामिन ।
घर-घर गाऊँ 'की पितु ने मां निर्वासिन ॥
मैं हा ! अनाथ हो गया, मुझे धीरज दो ।
साकेत-नाथ के सुत को अभय सहज दो ॥'
यद्यपि तुम पर नरपति ! अभियोग असंभव ।
पर किया आपने भंग न्याय का अवयव ॥
तुम शाप-योग्य हो, हाय ! हृदय क्यों माने ।
पर क्षम्य मानती बुद्धि न, तव हिय जाने ॥
क्या करूँ बहुत समझाता यह मन क्षण-क्षण ।
पर धधक रहा मां-त्याग अनल सा कण-कण ॥
हो मूक देखता चला, कहो कब बोला ।
मुख खुला अचानक आज, न मैंने खोला ॥
तव भक्ति-चातुरी मैं अब बाबा ! माना ।
क्यों लिखा न उत्तर - रामचरित, सब जाना ॥

क्यों गये बिठा कर प्रभु-परिकर अमराई ।
तुम देख चुके थे आगे खारी-खाई ।।
क्या कहूँ उसे, तुम प्रथम गये जो कह कर !
मम जान नवल-प्रति दंभ, हुए चुप हँस कर ।।
तव व्यंग्य-हास्य का अर्थ आज मैं जाना ।
क्या गाऊँ रोकर चक्र-व्यूह में गाना ।।
अब किसे बुलाऊँ, आकर कौन निकाले ।
आ पड़ा मूढ़-बालक राजा के पाले ।।
यह विपिन-पथिक छवि नहीं, पथिक भी लख ले ।
यह भव्य-अवध-प्रासाद, गँवार ! समझ ले ।।
है एक प्रार्थना नाथ ! मान वह लेना ।
इस अंध-बुद्धि में भेद न आने देना ।।
तव अंतर्द्वन्द मुकुंद ! समझता सारा ।
क्या करूँ चित्त का छलक गया था पारा ।।
जो पवन, उड़ा ले गई भरत सा भाई ।
इस शिशु-मन पर भी छांव उसी को छाई ।।
मम उचितानुचित विवेक हरा हा ! उसने ।
पर फिर भी अद्भुत मौन रखा प्रभु ! तुमने ।।

सोरठा

रखा स्वभाव कृपालु, बिना मुख चढ़ा मुख-चढ़ा ।
लीला कठिन दयालु, सरस दिखाते ही चलो ।।
बीती किस पर क्या न, कौन दुखित तुम से अधिक ।
कर अपना ही ध्यान, खड़ा मूढ़ मैं रह गया ।।
चल मां ! उनकी ओर, रथ-तन-मन सब ठेलते ।
दीप-कोर ध्वज - छोर, शलभ-भाव लख, जा रहे ।।

मालिनी

पहुँचे रथ को दो योजन घुमा फिरा कर ।
दिन ढलते सरयू के अति निर्जन तट पर ।।

घर्घर करती सरयू की धारा पावन ।
यों लगीं कि ज्यों धिक्कार रही हो क्षण-क्षण ।।
"सीता के जय रे धर्म-सुपुत्र! अनोखे ।
छोड़ी मृगारि की मांद मृगी मृदु-धोखे ।।
तुझसे आज्ञाकारी यदि कुछ मिल जायें ।
अश्रम प्रतिपालक सहज वधिक पद-पायें ।।
यों लगा, लखन को जैसे चूक गया शर ।
जो म्लेच्छ छेदने चला, लगा सुरभी पर ।।
विधि लिखते-लिखते चन्द्र, लिख गया राहू ।
स्याने साहों ने लूटा मिल कर साहू ।।
घन नयन स्वजन से दिखे, लगे ज्यों रिसने ।
सिय-छवि सी छवि, जो पल-पल लगी गरजने ।।
नभ-देव अश्रु सी धार लगे बरसाने ।
भू सिसक-सिसक कर तन को लगी गलाने ।।
ज्यों पूंछ रही हो, "मेरी कहां दुलारी ।
मानस-मरालिनी वधिक ! मांस हित मारी ।।
मम हिय मणि को, हिय-हीनों सजा न पाये ।
किस लाल चिता में गाड़ लालड़ी आये ।।"
नित के दृश्यों से डरे सुमित्रानंदन ।
निशि चढ़े, घुसे पुर तस्कर से तज स्यन्दन ।।
ढक मुकुट, वीथि से होते, नृप-गृह आये ।
अँधियारी - बारी में बैठे नृप पाये ।।
गिर पड़े पदों में लखन तुरन्त बिलख कर ।
"प्रिय धरणीधर ! तू मुझे देख धीरज धर ।।"
आ गये भरत-रिपुसूदन भी तत्क्षण ही ।
"अंबिका कहां, क्या तज आये सचमुच ही ।।"
शत्रुघ्न - गिरा सुन, लक्ष्मण लगे बिलखने ।
आ गये लखन, सुन, परिजन लगे उमड़ने ।।

सहमी सीं श्रुति-उर्मिला-मांडवी आईं ।
मणि-दीवट-पाटी तनिक भरत सरकाईं ।।

नत-मुख कैकेई बैठी अति सकुचाई ।
लख विपति धेनु सी कौशल्या डकराई ।।
"सिय कहां" सुमित्रा सिंहिन सी गुर्राकर ।
बोली, धीरे से सुत के सम्मुख आकर ।।

जिसकी न सुनी कटु कभी किसी ने वाणी ।
जो मृदु स्वभाव-वश कहलायी कल्याणी ।।
मां की अद्भुत मुद्रा लख, लखन सहम कर ।
रह गये सभय स खड़े मौन दृग भरकर ।।

"राजाधिराज ! कह, कहां बहू वैदेही ।
कोमल दिखते, पर निठुर पिता जैसे ही ।।
पूंछा न तनिक, हम लघु-गुरु क्या हैं तेरी ।
अब केवल तुम राजा, स्वच्छंद अहेरी ।।

इस वय उजले-माथे काले कर डाले ।
क्या कहें, पड़ीं हम कपिला किसके पाले ।।
जग पूंछेगा तुम तीन-तीन के रहते ।
यह हुआ, कहेंगी क्या, चुप क्यों, क्या कहते ।।"

लख मौन राम को बिलख उठी कौशल्या ।
"खा गई सिया को हाय ! अयोध्या कृत्या ।।
दी तार अहिल्या पापमूर्ति परकीया ।
दी डुबा गंग सी विमला स्वयं स्वकीया ।।

सौमित्रि ! बता, सिय छोड़ी कहां अकेली ।
किसलय सी कोमल, कुवलय-कली नवेली ।।"
"जान्हवी पार वन मे" सुन गिरा सिसकती ।
गिर पड़ीं जननियां भू पर छाती धुनती ।।

वधु विलख उठीं, कुररी सी दे गल-बांही ।
"बिछुड़ी, अब जीजी की दुर्लभ परछांही ।।

खा गये हाय ! वन-विजन अवध की रानी ।
बन गई जानकी कल की आज कहानी ।।
क्या इस दिन के ही लिये एक घर व्याहीं ।
रह जायें मूल-विहीन कुरुह की छांही ।।
शिव-धनुष तोड़ तृण सम, जो नाता जोड़ा ।
तृण सम ही,पल में नृपति-शिरोमणि! तोड़ा ।।
वह प्रमुख - मृगी सी गई अकेली क्या वन ।
हम हुईं मृगी सी पगली सब इस निर्जन ।।
हम करती थीं यदि याद कभी निज जननी ।
"मैं अरी मरी क्या" गोद बिठाकर अपनी ।।
जो कहती थीं, वह रहो न आज धरा पर ।
हम लगतीं लाई गई बलात् हरण कर ।।
मुँह खोल भूप ! हम प्रथम याचना करतीं ।
मर रही हमारे भार तुम्हारी धरती ।।
क्या पता कौन किस समय विषय में किसके ।
क्या बात कहे अन-हुई कान में नृप के ।।
क्या दंड विचारें, राजा बिना विचारे ।।
दें हमें भेज कब किस रौरव के द्वारे ।।
जौ धनु-छवि-छांया चली, सुछवि सी निकली ।
जब वह भी मैली हुई, कौन फिर उजली ।।
मां ! रख लो आज दुलार, पसारे आंचल ।
लेकर आभूषण-वस्त्र, पिन्हा दो वल्कल ।।
सब यान-पालकी रखो, विदा दो पैदल ।
हम स्वयं खोज लेंगी गंगा का थल-थल ।।
इस पार नहीं, उस पार कहीं तो होगी ।
संसार पार यदि हुई, वहीं तो होगी ।।
हम समा जान्हवी-लहर-तरी खोजेंगी ।
इस पार नहीं उस पार कहीं मिल लेंगी ।।

थी वर्ष चतुर्दश सीमा तो उस वन की ।

है प्राण परिधि ही हा ! इस निर्वासन की ।।

वह रही न कंचन - तनी छांह हम कैसी ।

मणि-मुकुट हमें कह रहे,पिशाचिन जैसी ।।"

शिर लगीं पटकने खंभ-खंभ पर देकर ।

यों लगा, लगी ज्यों दावानल वन-परिसर ।।

मांओं ने बढ़कर तुरत लगा लीं छाती ।

"धीरज धारो वधु ! यहीं हार स्त्री जाती ।।"

बोली मां "चारों एक एक से सुविमल ।

वधु प्रिया हमारी चतुफल - मंडल - संबल ।।

क्या कहें रात ले गई लूटकर सीता ।

हो गया विधाता वैरी का मन-चीता ।।

मैं देख चुकी हूँ, सारे शकुन मनाकर ।

यह देख न सकती सुखी मुझे तो पल भर ।।

जग होता सुख से सुखी, सहम मैं जाती ।

देखा करती अब नई विपद क्या आती ।।

इस अंत-समय, यह व्रण ले गया कलेजा ।

क्या कहूं अधम-तन यह किस हेतु सहेजा ।।

दोहा

बिलख रहा यों रुदन कर, जब सारा रनवास ।

तब ही वह घटना घटी, तनिक न जिसकी आस ।।

भुजंगप्रयात

अचानक उठा एक भूचाल जैसा,

टँगे स्वर्ण पिंजरे लगे डोलने से ।

प्रलय सी मची अन्न-जल की कटोरी—

गिरा, निज गिरा खग लगे बोलने से ।।

उठे फड़फड़ा मार ठोंगे चतुर्दिश,
हुए रक्त-रंजित करुण स्वर बिलखते ।
सहम कर पुनः हो परम संकुचित से,
फिरा निज नयन पूंछते ज्यों सहमते ।।

उठी हूंक सी मूक सी कूंक कोकिल,
"महाराज ! राजेन्द्र ! राघव ! बताओ ।
हमारी प्रसविनी सरिस स्वामिनी वह,
कहां मैथिली है छिपाई दिखाओ ।।

तुम्हारा महामौन मथता हृदय को,
कृपाकर अधर हे अवधनाथ ! खोलो ।
तुम्हीं से न पूंछे दुलारे तुम्हारे,
पुकारें किसे कौन से द्वार बोलो ।।

धसे वक्ष में बालि-मारीच के जो,
उड़ा शीश दशशीश के जो उड़े शर ।
उन्हीं से हमें बींध डालो कृपाकर,
न मारो सिया-बिन निराश्रित बनाकर ।।

बिना खिलखिलाये खिलाये न खाती,
न्हिला कर, नहा कुंतलों में सुखाती ।
न करती कभी दूर पल भर पलक से,
पहर भर खड़ी पालनों में झुलाती ।।

बजाती सुनूपुर सरस ताल देकर,
हृदय से लगा लोरियां गा सुलाती ।
बजा कँगनियां भैरवी गुनगुनाती,
उषा से प्रथम उठ, स्वयं ही उठाती ।।

किसी मानवी के उदर से जनम कर,
जनम भर न ऐसे ललित लाड़ पाते ।
मिले जो कि इन पिंजरों में सिया के,
हमें अंडजों को अमर-गीत गाते ।।

किया क्या महाराज! यह आपने हा!
विभा के व्यसन में सदन ही जलाया।
गया बींट कर काग उड़कर विपिन में,
उठा चाप, अंडा पिका का गिराया ।।

किया पाप किसने, दिया दंड किसको,
अनोखा यही न्याय राजन्! तुम्हारा।
वहीं जायँगे हम जहां राजरानी,
उड़ा दें हमें खोल पिंजरा हमारा ।।

निवासी गगन के, प्रवासी बने भू,
अहो! हेतु जिसके, वही जब नहीं हैं।
करेंगे यहाँ कौन से मख अधम हम,
जहाँ सीय, साकेत अपना वहीं है ।।

निकाली सिया जाल फैला सभी ने,
यहाँ एक को एक क्यों दोष देते ।
अरे शूरमाओ! दिखाओ न पौरुष,
उठा कर दृगों को, न क्यों श्रेय लेते ।

गये चित्र पादाति-पादाति कल जो,
रचा आज म्हेंदी विराजे हुए हैं ।
जिन्होंने चरी मंथरा मार डाली,
रजक देख, वे मौन साधे हुए हैं ।।

'हुए गंग से पार प्यारे' सुना ज्यों,
महाराज सुरपुर पधारे निमिष में ।
उन्हीं की प्रिया तीन बैठीं शिला सी,
पसीजी नहीं एक भी मोह-रिस में ।।"

दोहा

"अरी पिके! मत बोल तू, ऐसे निठुर कु-बोल ।
कैसे दिखला दें हृदय, छलनी जैसे खोल ।।"

कौशल्या के साथ ही, बिलख उठा रनवास ।
पल में पुर जाना सकल, हुआ सिया-वनवास ।।
बुझा दिया सिय त्याग कर, हा हा ! दीपक भूप ।
ढहा दिया निज हाथ ही, अपना कीर्तिस्तूप ।।

सोरठा

छिटक गईं भयभीत, प्रिय-शैया से सुन्दरीं ।
बालु-भीत सी प्रीत, पति की रघुपति हाय की ।।
अरुणिम उषा विकास, ज्यों-ज्यों नभ होने लगा ।
होने लगा उदास, त्यों-त्यों पुर-कज कुमुद-सम ।।

मालिनी

यों मिले एक से एक प्रात उठ नित - सम ।
ज्यों मिलें अपरिचित युग-युग के पथ - दुर्गम ।।
दृग मिलते-मिलते सहज चुरा वे जाते ।
ज्यों भेदी को लख भद्र-पुरुष सकुचाते ।।
कहते न एक से एक मर्म, बच चलते ।
हिम-सम सिय-त्याग गभस्ति-ग्लानि में गलते ।।
अधखुलीं हाट पुर बाट-बाट पट-पट पर ।
चर्चा करते जन जुट-हट-पलट-सिमट कर ।।
कुछ लगे पूंछने, सुना गई क्यों रानी ।
कुछ लगे बताने घड़कर कई कहानी ।।
कुछ बोले, "करने गईं तपस्वी-दर्शन ।
हम गये नित्य - सम करने सरयू-मज्जन ।।
पौ फटी न पूरी, झांक रहे थे तारे ।
वे लखन साथ रथ बैठीं धरे पिटारे ।।
कल राज-सभा में भी थी चर्चा ऐसी ।
कुछ सभ्यजनों से सुनी रात को जैसी ।।

इन दिनों रीति कुछ होती होगी कुल की ।
पटरानी वन में गईं पूर्ति हित जिसकी ।।"
उठ कुछ बूढ़े बोले सुन बात युवक की ।
"यह आयु हमारी याद हमें कब-कब की ।।

बहु गर्भवती देखीं रघु-रानी हमने ।
पर गई विपिन का दर्शन एक न करने ।।"
तब बात काट कर एक वृद्ध झट बोला ।
"क्या इसे पता, यह अभी बावला भोला ।।

है मुझे याद जब भूप गर्भ में आये ।
इनकी मांओं को रवि-शशि देख न पाये ।।"
की शंक एक ने, स्यात गई हों मिथिला ।
कह उठा अन्य,फिर आज गई क्यों मिथिला ।।

कल तो मिथिला से सोत्सव होकर आई ।
दो दिन में मिथिला फिर दे गई दिखाई ।।
कह बात स्वयं, स्वयमेव नागरिक हटते ।
है भेद गहन कुछ संकेतों में कहते ।।

कुछ राज-भवन में विग्रह फिर से उभरा ।
है यही बताता रुदन रात्रि का गहरा ।।
जब गये राम वन, वृद्ध-भूप सुरपुर को ।
हम भूल गये क्या कल के उस रोदन को ।।

इस रोदन के सम्मुख वे लघु से रोदन ।
यों लगा फटा ज्यों राजभवन का कण-कण ।।
तब बोला बढ़कर एक बहुत सकुचाकर ।
"है रजक-टोल के बहुत पास मेरा घर ।।

परसों निशि की तो बात,सत्य परसों की ।
उस काण-रजक गृह-निकट भीड़ रजकों की ।।
थी जुड़ी, क्रूर वह रौंद रहा था नारी ।
था पूछ रहा फिर-फिर, तू रही कहां री ।।

जो बोल रहा था वार-बार, क्या बोलूं ।
उस पाप-वचन हित कैसे जिव्हा खोलूं ।।"

लख आग्रह बोला "वोल रहा था पामर ।
'पर-सदन रही तिय रखूं, न मैं नृप सा नर ।।

दूंगा चीलों को बांट स्वैरिणी टुकडे ।'
पर एक रजक के भी जड़ होंठ न उघड़े ।।

हां, एक हिली पिछवाड़े पर परछाईं ।
तम लीन हुई क्षण में, फिर दी न दिखाई ।।

बस उसी प्रात ही रानी देखी रथ पर ।
या आज रात फिर रोदन सुना भयंकर ।।

इन घटनाओं का तारतम्य प्रभु जाने ।
क्या कहें िसे, क्या रचना की विधना ने ।।"

कुछ बोले, यदि इस हेतु घटी यह घटना ।
तो समझो संकट विकट निकट ही लखना ।।

सिय त्याग न यह, त्यागा राजा ने जीवन ।
यह है न सीय - निर्वासन, श्री - निर्वासन ।।

यह अवध-जनों का मौन, पाप प्रलयंकर ।
यह कल्प-कल्प हित अमिट कलंक भयंकर ।।

जग सिया-राम-गाथा जब - जब गायेगा ।
तब अवध नाम पर स्वाद सिमट जायेगा ।।

जग देख हमारी भावी संतानों को ।
छोड़ेगा मुख-धनु चढ़ा व्यंग्य - बाणों को ।।

सौ बार न कहकर नीच-कृतघ्न-विनाशी ।
विग्रह-क्षण कहकर मात्र अयोध्यावासी ।।

सब शाप एक ही साथ शत्रु को देगा ।
सब झंझट से अवकाश क्षणों में लेगा ।।

कल देश-देश के नृप सुनकर आयेंगे ।
हम किसे-किसे मुख कैसे दिखलायेंगे ।।

क्या कह देंगे, ये एक रजक की नगरी ।
है अन्य प्रजा सब अन्धी-गूंगी-बहरी ।
रे चलो, रजक की बढ़कर जीभ निकालो;
इस असमय की साकेत-विपद को टालो ।।

जिसके तप से वह गया दशानन मारा ।
जिसनें रौरव था जग कर डाला सारा ।।
पूंछो नृप से, वह कहां हमारी रानी ।
हम रानी देखे बिना न लेंगे पानी ।।

तब पडी सुनाई एक वृद्ध की बोली ।
'कुछ करो प्रतीक्षा, देखो फाग कि होली ।।
सहसा निर्णय कर. विपद् नवीन न लाओ ।
जुड़ने दो नृप की सभा, अभी घर जाओ' ।।

उस ओर घरों से गईं नारियां मन्दिर ।
हर-उमा न्हिलाये नयन-नीर ने गिर-गिर ।।
घिर गई अँधेरी आंख, न वेदी सूझी ।
पुर-पौरिनियों ने पौर पैर की पूजी ।।

रह गये थाल में कुंकुम-चंदन-चावल ।
अनसिँचे रह गये वट-पीपल-कदलीदल ।।
व्रत - कथा घुटीं की घुटीं कंठ में पैठीं ।
ज्यों बहु-तन धर करुणा देवांगन बैठीं ।।

'कुछ सुना' सुना ज्यों, जीभ कई ने खोलीं ।
जो सुना सदन-पथ, सुना-सुना कर बोलीं ।।
"जब रानी की यह दशा जहां हो क्षण में ।
तब धीर धरेंगी हम सी कैसे मन में ।।

भर वचन अग्नि-सम्मुख जो वाम बिठाई ।
वह रोटी पर की टेंटी सी लुढ़काई ।।
प्रिय-प्रिया-प्रेम जो जन्म-जन्म का लेखा ।
वह बालु - भीत सा क्षण में ढहते देखा ।।

क्या एक रजक, दो - बोल कुबोला बोला ।
मन मैना का पिँजरा ही नृप ने खोला ।।
जग सुता-जन्म यों कहता तवा बजाकर ।
क्या पता मिलेगा कहाँ इसे कैसा वर ।।
कल समाचार जब ये मिथिला जायेंगे ।
कैसे विदेह नृप देह धार पायेंगे ।।
पगली होकर वह वृद्ध सुनयना रानी ।
खाकर पछाड़ धुन लेगी देह पुरानी ।।
क्या धीर धरेगी, क्षण में देह तजेगी ।
वह कुपित सती क्या भस्भ न अवध करेगी ।।
सिय सरिस सती को बता कलंकित छोड़ा ।
यह तीय - जाति पर भूप पंक-घट फोड़ा ।।
अब फेरे ले कर किसको कौन वरेगी ।
अब स्वाभिमानिनी स्नेह न सुत को देगी ।।
नृप ! सिय रानी क्या वन में हाय निकाली ।
संसार - प्रेम पर गाज गिरा ही डाली ।।
अब कौन कहेगी किसको मन से अपना ।
हो गया जगत - संबंध रैन का सपना ।।
जो मन का मन-मोहक,तन का तन उज्ज्वल ।
वह प्रेम-मुकुर सहमा भ्रम - रेखा दल-दल ।।
ले गोद बेटियों को सरयू में कूदो ।
बेटों से कह दो, अब तुम धरती खूंदो ।।
हम चलीं पराई - जाई जाई लेकर ।
अब हम न रहेंगी इस राजा की भू पर ।।
तुम स्वर्ग-लोक से अप्सरियां मँगवा लो ।
उन स्वैरिणियों से अपने वंश चला लो ।।
इतनी न नीच है नारी इस भारत की ।
हो जिसे न चिंता लाज-धर्म-प्रण तक की ।।

वह बचा-खुचा-बासी-झूठा खा लेगी ।
वह हर अभाव में महाभाव पा लेगी ।।
वह अंकशायिनी गीली भू पर सोकर ।
नर को दे देगी जन कर वैसा ही नर ।।
पर जगती यदि लांछित नारीत्व करेगी ।
वह प्राण-प्रिया तो बलि प्राणों को देगी ।।
वे हुईं राजमाता तो क्या, हैं नारी ।
उनसे पूछेगीं चलो आज हम सारी ।।

यह खेल भवन में खिला, कहाँ तुम सोईं ।
इस समय बारहों हिय-माथे की खोईं ।।"
कुछ बोलीं, यह दिन देखो क्या होता है ।
इस वैतरणी का दिखे कहाँ स्रोता है ।।

क्या-क्या किसका मत तनिक सामने आये ।
दिन निकला है, देखो हल कुछ आ जाये ।।"
सब चलीं मनौती मान-मान शिर नाये ।
'ज्यों गई, लौट त्यों सीता - रानी आये ।।

सब लगे देखने बाट, घंट कब घहरें ।
कब जुटे सभा, कब भूप भवन से उतरें ।।
क्या कहें कि किस हित कहां गई है रानी ।
तब पता चलेगा क्या है सत्य-कहानी ।।

सोरठा

आये राजा राम, भरा सभास्थल पूर्णतः ।
गुरु को किया प्रणाम, बैठे सिंहासन नमित ।।
क्या बोलेगा कौन, एक-एक को देखते ।
छाया अद्भत् मौन, लेते स्वांस सम्हाल कर ।।

मालिनी

बोले गुरु वातावरण देख नीहारी ।
यों लगी गिरा, ज्यों खिँचती रिसती झारी ।।
"बहु सभ्य प्रात से मिले, मिला मैं नृप से ।
कुछ बातें मुख से हुईं शेष दृग दृग से ।।
है उपरोहित का कर्म बहुत दुखदायी ।
पर रघु - भूपों से हुआ सहज सुखदायी ।।
हमने न कभी बलि सत्सिद्धांत चढ़ाये !
यद्यपि त्रिशंकु-कलमाषपाद टकराये ।।
रवि-कुल ने किन्तु प्रमाण हमें ही माना ।
हमने भी प्रति-नृप औरस-सुत ही जाना ।।
नरपति दशरथ ने देश-काल को लख कर ।
बैठाना चाहा रघुपति को आसन पर ।।
पर जो अनहोनी हुई विदित है सबको ।
है उसका पश्चाताप केकई तक को ।।
पा मम निदेश आ गये तुरन्त भरत भी ।
की शंक चरों से पथ भर में न तनिक भी ।।
पुर आकर ही सब सत्य - सत्यता जाने ।
जगविदित, बन्धु को कैसे गये मनाने ।।
यद्यपि नृप पादुक रहे अमात्य भरत वर ।
पर चला अवध-शासन मम अनुशासन पर ।।
कर रहा प्रात से स्मरण, बुद्धि मथ डाली ।
पर स्मृति न राम ने कभी बात हो टाली ।।
जो भेद न सिय-जननी-अनुजों ने जाना ।
वह मुझसे जाने राम न कभी छिपाना ।।
अपवाद उपस्थित आज एक सहसा यह ।
मैथिली-त्याग का घोर-कर्म यह दुस्सह ।।"

मैथिली-त्याग सुनकर मुख से गुरुवर के ।
रह गई सभा पा शंका-पुष्टि सिहर के ।।
ब्रह्मर्षि -गिरा भर गई नारियां सिसकीं ।
"त्रुटि बनी त्याग का हेतु कौनसी,सिय की ।।"
सुन कर सचिवों के वचन, प्रशांति बनाकर ।
फिर मुनि वशिष्ठ बोले अपना धीरज धर ।।
"कर एक कभी कुछ पाप, कभी फल पाते ।
अपराध एक कर, दंड तुरत पा जाते ।।
कुछ भावी - हित तप करते कष्ट उठाते ।
पर कुछ जग-शिक्षण निमित जगत में जाते ।।
जग सुखी-दुखी होता लख सुख-दुख जिनका ।
पर उनको लगता दुख प्रसून, सुख तिनका ।।
वे जगत-हेतु जगहेतु धारते जीवन ।
जगती सर संसृति कीच कमल दल से बन ।।
सुख-दुख की पुरवा पछवा सहते दिखते ।
समयानुसार परिपक्व रसावलि करते ।।
संवत्सर भर बहु-वेष बदलता अंबर ।
रहता, परन्तु संवत्सर भर ही ऊपर ।।
त्यों नृप रघुनंदन जनकनंदिनी रानी ।
कर रहे अलौकिक अंकित एक कहानी ।।
ज्यों युगल धैर्य में एक-एक से बढ़कर ।
त्यों प्रजा प्रेम में एक-एक से चढ़कर ।।
ज्यों कहे सुने कुछ बिना राम ने सिय से ।
कर दिया प्रिया का त्याग,सींच हिय विष से ।।
त्यों एक शब्द भी सिय न स्वामि-प्रति बोली ।
शिव सम विष पी हिमगिरि सी रही अडोली ।।
ये पचा गये विष युग-युग के विषपायी ।
पर विष-दाताओं ने गगरी छलकायी ।।

है मुझे उसी की चिंता अपने मन में ।
यह दाह भरेगी गरल-लहर त्रिभुवन में ।।
वनवास-समय जिसने जिस सिय के कारण ।
कर सिन्धु पार संहारा सकुल दशानन ।।
उसने उस सिय - हित राजदंड के होते ।
अपयश पारद पी लिया धैर्य को ढोते ।।
दे शाप, भस्म की स्वर्ण-लंक जिस सिय ने ।
वह बोली एक न बात कहा क्या किसने ।।
त्रिभुवन-भविष्य-प्रति कर सचेत लक्ष्मण को ।
वन गई, 'बनी वन-हित सिय' समझा मन को ।।
यह जानबूझ कर प्रजा अवध की सारी ।
क्या पूंछ रही, क्यों नृप ने त्यागी नारी ।।
बन गया दीन वह रजक पात्र कलमष का ।
क्या मैं न जानता भाव कौनसा किसका ।।
मैं राज्याचार्य, न मुनि वनवासी केवल ।
तुम अवध-जनों के बाल-बाल का बल-वल ।।
मुझसे न छिपा है तनिक, किंतु क्या बोलूं ।
क्या काल - हलाहल में कोलाहल घोलूं ।।
पा रामचन्द्र से राजा, सिय सी रानी ।
वेला रघुकुल-शासन की परम सुहानी ।।
स्वयमेव हंस हो, तजकर मानसरोवर ।
क्या कहूं बसे भ्रम-क्षारधि उनको, मुंह भर ।।

सोरठा

'दे रे ! दारुण-शाप,' गरज रहा ब्रह्मत्व मन ।
'हत न पाप से पाप,' रोक रही ऋषि-चेतना ।।
हा! त्रिशंकु सा दीन, यह वसिष्ठ क्यों हो रहा ।
इन्द्रासन-आसीन, बना दिया नृग नहुष सा ।।"

दोहा

अधर भिंचे धधके नयन, लिया कमण्डलु थाम ।
बोले गुरु पद थाम कर, उठ तुरन्त श्रीराम ।।

सोरठा

"क्षमा करें अपराध, थी विधि की रचना यही ।
आप पयोधि अगाध, शोभा मर्यादा परिधि ।।"
ज्यों तनु-समिधा-क्षार, अग्नि छिपा शिर बैठते ।
त्यों अन्तर - आगार, बैठा क्रोध दया भरा ।।
किंतु न रुके मुनीश, स्वाश्रम गये तुरन्त ही ।
अपराधी सा शीश, सकल झुकाये रह गये ।।
देखे उठते राम, गये सभासद सब स्वगृह ।
घर-घर बोलीं वाम, "स्वागत विमल मनस्वियो ।।
सुन रानी का त्याग, सकुशल आये लौट गृह ।
धन्य हमारे भाग, मिले आपसे नर-प्रवर ।।"
व्यंग्य-बाण की मार, छलनी सी छाती लिये ।
बिना किये आहार, पड़ा रहा सारा नगर ।।

मालिनी

सिय बिना लगा यों कनक-भवन जन जन को ।
ज्यों देख रहे उपवन-मृग विपिन गहन को ।।
शिशु हटक दिये माताओं ने पय पीते ।
"तुम पुरुष बनोगे निठुर रहे यदि जीते ।।
तुम बिना सिखाये सीख गये हो वह पथ ।
किस विधि छीना जाता नारी से गृह - रथ ।।
मिल गई कृतघ्नों! तुमको स्वतः कुशिक्षा ।
तव अर्थ रखेगी, अर्थ न अग्नि-परीक्षा ।।

दे गई जिसे कल सिय मिथिलेशकुमारी ।
कल दे पायेंगी कौन जगत की नारी ।।
हम नहीं जियेंगी मातृ - शक्ति बन अबला ।
हम वंश ध्वंस कर देंगी अगला-पिछला ।।"
राम ने त्याग दी सती स्वसीय सरीखी ।
ज्यों पड़ी शांति-तुष जलती तीली तीखी ।।
यह समाचार दावानल जैसा फैला ।
हो उठा विमल सब का मन अविकल मैला ।।
ऋषि-मुनि-किन्नर - गंधर्व-यक्ष - रजनीचर ।
कपि-भालु-भिल्ल-गुह-कोल सकल नारी-नर ।।
कर अविश्वास वक्ता पर पहले बरसे ।
रह गये सन्न फिर सहसा सुन मुख-मुख से ।।
फिर एक बार यों रुदन कर उठे सारे ।
भू-भरे करुण - रस के ज्यों पीन पनारे ।।
सिय-राघव-प्रेम विचार मौन हो कुछ पल ।
फिर बोले "पय में छाछ बना कोई खल ।।
अंगार-धानिका अवसर पा धधकाई ।
आगया प्रकट होकर, बन स्वयं खटाई ।।
जो जैसे बैठे जहां, वहीं से उठकर ।
चल पड़े अवध-दिशि कँपा धरित्री-अंबर ।।
सिय सी तिय का कर त्याग किया क्या रघुवर ।
धरती खो धर्माधार टिकेगी किसपर ।।
गुह-जांबवान- अंगद - सुग्रीव - विभीषण ।
नल-नील-केशरी प्रमुख-प्रमुख वानर-गण ।।
आ पहुँचे नृप के द्वार पछाड़े खाते ।
"प्रभु! इस निर्णय से पूर्व हमें बुलवाते ।।
हम हाथ-हाथ पर अग्नि रखाकर रखकर ।
सिय-सत्व-सिद्धि में नहीं लगाते पल भर ।।

पर दुग्ध-मक्षिका सरिस - आपने फेका ।
यह घाव अग्नि का हाय! अग्नि से सेका ।।
है विरुद आपका रघुपति ! संकट-हारी ।
क्या किया, डाल दी संकट में निज नारी ।।

क्या करें, किसे हम कैसे वदन दिखायें ।
हम धँसें धरा में या नभ में उड़ जायें ।।
कल जिसके हित शिर रख कर खुली हथेली ।
रण किया, निकाली वन में वही अकेली ।।

वह विकट धर्म-संकट क्या सम्मुख आया ।
जिस पर वैदेही का बलिदान चढ़ाया ।।
क्या कहें देव ! कानों के कैसे निकले ।
क्या कहें मेरु आसाढ़ - प्रथम दिन बिचले ।।

विश्वास-दुर्ग पर कटक अविश्वासों का ।
कर रहा आक्रमण, समय न परिहासों का ।।
अब उठो नाथ ! रघुनाथ ! जानकी लाओ ।
सिय-राम एक मन दो तन सत्य, दिखाओ ।।

प्रभु ! चलो, जानकी कहाँ कौन से वन में ।
हम क्षमा मांग कर लायें मना अवध में ।।
अब मौन त्याग कर स्वीकृति दो रघुनन्दन ।
खल रहे हमें खल-दल के वदन - प्रहर्षण ।।"

अति शून्य दृगों से तांक शून्य में रघुपति ।
बोले "कुछ करो प्रतीक्षा लखो समय-गति ।।"
रह गये मींज कर हाथ, माथ नीचा कर ।
कुछ पूछ न पाये, क्या है अर्थ नृपतिवर ।।

दोहा

बोले सकुचा केशरी, "नृपति ! कहां हनुमान ।"
देख भरत-दिशि शिर झुका, रहे मौन भगवान ।।

मालिनी

देखा सबने आ साथ भरत के सत्वर ।
शुभ-सलिला सरयू के अति विजन पुलिन पर ।।
अंजनीलाल बदरीवन-कुंज गहन में ।
निर्धूम-शिखा से समाधिस्थ, व्रत मन में ।।
आहार त्याग कौपीन मात्र तन धारे ।
नीहार कमल-माला - सर सरिस निहारे ।।
रोमांचित जन-जन हुआ देख कपिवर को ।
चैतन्य करें किस भांति चेतनाकर को ।।
"श्री राम-राम" सब बोले चेत न आया ।
अंगद ने 'सीताराम' तनिक दुहराया ।
खुल गईं विपल में पलक पवननंदन की ।
की यथा-योग्य वंदना तुरत जन-जन की ।।
सस्नेह केशरी ने सुत हृदय लगाया ।
फिर कहा "देखने तुझे मात्र सुत ! आया ।।
इस अनहोनी की प्रतिक्रिया क्या तुझ पर ।
तू राम - भक्त या अवधेश्वर का चाकर ।।
भव-भोग-युक्त या भोग-लुप्त सुन मेरा ।
कैसे उतार निशि का ला रहा सवेरा ।।
इस समय नृपति-पद तुझे देख यदि लेता ।
तो सत्य, शाप तुझको अमोघ दे देता ।।
रुद्रावतार पवनप्रहर्ष मम अंशी ।
तू शिष्य सूर्य का, सत्य तिमिर-विध्वंसी ।।
जो कहा अमित ऋषि-जन ने समय-समय पर ।
उससे भी सत्य विराट विलोका आकर ।।
क्या दूं इस मुख से एक-एक वर कहकर ।
मैं तुझकर प्रियतम पुत्र ! सकल न्योछावर ।।

अब दो कपीश! निर्देश चला यह वानर ।"
कर नमन केशरी वृद्ध न ठहरे पल भर ।।

दोहा

अंगद बोला शिर झुका "दें आज्ञा कपिनाथ।
धारण कर लूं अंब-व्रत, पवनपुत्र के साथ ।।"

सोरठा

विमल विलोचन नीर, भरे-भरे सब रह गये ।
"मैं तव साथी बीर," बोले गुह-नृप भाव भर ।।
खड़े रह गये मौन, चलें कि ठहरें क्या करें ।
किससे बोले कौन, क्या कह, ले मुख कौन सा ।।
कर-कर बारम्बार, आलिंगन अति प्रेम-वश ।
पूंछ-पूंछ दृग-धार, चले रक्ष-कपि भरत सह ।।

मालिनी

अंगद-गुह बैठे मारुति - सह अनशन पर ।
सुन समाचार रह गये मौन ही रघुवर ।।
चर बोला आकर "गई सुनयना रानी ।
ले तीनों रानी अनुज जनक - विज्ञानी ।।
अति शोकाकुल लक्ष्मीनिधि को पुर देकर ।
तप-हेतु गये अज्ञातस्थल हिमगिरि पर ।।"
उठ खड़े हुए रघुनाथ न बैठे पल भर ।
कर बंद पद्म - प्रासाद गिरे धरती पर ।।
बोली कौशल्या "शेष निशा में कुछ क्षण ।
खोला न प्रात से द्वार राम ने लक्ष्मण ।।
शिव करें सुमंगल, देख बात क्या चलकर ।"
पहुंचे, पूंछा, कुछ बोला एक न अनुचर ।।

लक्ष्मण बोले "खोलो कपाट अग्रज-वर ।
अति श्रमित बड़ी-मां खड़ीं द्वार पर आकर ।।
यदि लगे न सच तो वातायन से झांको ।"
प्रभु द्वार खोल हट गये, देख करूं माँ को ।।
सिय-चन्द्रकला नृप-मुकुट रखे शैया पर ।
तज वस्त्राभूषण कुश-सांथरी बिछाकर ।।
बैठे धरती पर राम बने जलझारी ।
ज्यों की त्यों देखीं भरी थालियां सारी ।।
सब, देख समझ, मां बिलख गिरी धरती पर ।
"क्या पखवारे में दशा बना ली रघुवर ।।
दूं हीरक-कणिका चाट प्राण मैं पल में ।
यह दशा देखने की सुत ! शक्ति न मुझ में ।।
मत अंत अवध का असमय कर अवधेश्वर ।
यह काटेगी दिन दुखद, धीरधर किस पर ।।
दे मुझे हलाहल राम ! त्याग फिर भोजन ।
या जो जी चाहे कर फिर नव आयोजन ।।
छलनी सा कण-कण प्रथम घाव खा-खाकर ।
यह असह - घाव अब सह न सकेगा अन्तर ।।
मन की पीड़ा माँ नहीं जानती मेरी ।
कुछ बोल बुद्धि क्या समझ रही है तेरी ।।"
"मां ! नहीं-नहीं यह नहीं, कहूँ क्या मुख से ।
मैं दुखी हो रहा हूँ किस-किस के दुख से ।।
मेरा मारुति बैठा कब से अनशन पर ।
मिल गये आज तो गुह-अंगद भी जाकर ।।
कल कौन मिलेंगे हाय ! विधाता जाने ।
रख प्रजा-मान, मैं चला प्रजा को खाने ।।
सो जाये भूखा एक प्रजाजन जिसका ।
वह भरे उदर नृप, नृप कि कुकीट नरक का ।।"

बोली उठ माता तुरत "ठहर तू रघुवर ।
मैं लाती कपि-जन गुह को अभी उठाकर ।।
रख लखन - कंध पर हाथ गई मां वन में ।
देखे कपि-जन गुह कंटक भरे विजन में ।।

गौ सी डकरा कर बोली, बैठ धरा पर ।
"कर रहे सुपुत्रो ! यह क्या, पागल बनकर ।।
तुम देखो मेरी ओर पिशाचिन बैठी ।
लेकर छलनी सा हृदय न रौरव पैठी ।।

धिक्कार रहा क्षण-क्षण मुझको मेरा मन ।
दूं त्याग पात पतझर का सा कैसे तन ।।
सब देख रही, पर किसको कर अनदेखा ।
किस एक नाम पर लिख दूं मन का लेखा ।।

सिय-हृदय, चेतना-राम, युगल कपि-लोचन ।
गुह पुत्र पांचवा, बसी अयोध्या कण-कण ।।
मैं किसका करूँ अमंगल माता होकर ।
क्या रखूं गिलोय नीम पर धीरज खोकर ।।

मेरे दोनों ही ओर कुँआ औ खाई ।
किस ओर गिरे यह दीन राम की माई ।।
जिस दिन से बैठा कीश ! अन्न तू तजकर ।
तब से निर्जल ही पड़ा राम धरती पर ।।"

दोहा

उठ बैठे तीनों तुरत, "निर्जल रघुकुलनाथ ।"
बोले "दर्शन अंब के, लिखे न विधि ने माथ ।।"
बोली माता शीश छू, "रखो सुवीरो! धीर ।
करो न हृदय निराश यों, गंगा अभी सनीर ।।

जिसे न पाई भू छिपा, पचा न पाई लंक ।
लुभा न पाई अवध -श्री, रही मुदित निश्शंक ।।

चमकेगी वह अग्निजा, शुभद - अग्नि सी सीय ।
सिंधु-ग्रौर्वि वन-विजन-दव, नभ-छवि छवि कमनीय ।।
रचा न कोई आवरण, विधि न वह संसार ।।
सीय-चरित-छवि - गर्भगृह, जोकि बने ग्रोहार ।।
किस मिष कब वह किस निमिष, जाने बस कर्तार ।
किस सुवेष किस स्थल दिखे, दुर्गा सी साकार ।।
रहूं कि जाऊं क्या पता, क्या तन का विश्वास ।
किंतु करेगी एक दिन, सिय तव दृग सोल्लास ।।
चलो लाडलो! हो रही, विपल-विपल की देर ।
पीड़-विडाली तांकती, मन-मूषक मुख फेर ।।"
बार-बार दृग पूंछते, भर-भर ग्राता नीर ।
धरते धीर अधीर हो, वीर वीर की वीर ।।

मालिनी

ले चले विठाकर लखन सभी को रथ में ।
जुड़ गईं देखने को भीड़ें पथ-पथ में ।।

बोले "ये मानव तीन जगत में निकले ।
कर चले स्वकृत से जो कि वदन निज उजले ।।"

दृग-पुलिन सलिल, तन मलिन मौन धारण कर ।
देखे ग्रति मंद प्रकाश भूमि पर रघुवर ।।

ग्रति सकुचाते पछताते निज करनी पर ।
भू गिरे, बिलखते "क्षमा करें करुणाकर ।।

भर भुजा हृदय से लगा स्वजन रघुनन्दन ।
बोले "अनुचित कुछ नहीं समय-प्रतिबन्धन ।।

प्रिय लखन ! करा भोजन इनको लेजाकर ।
तुम करो स्वयं भैया ! सबको समझाकर ।।"

गुह बोला "स्वामिन ! आप पधारें पहले ।
हैं आप प्रसादी, दास-निकर तो तब ले ।।

"कुछ दुग्ध भेज दो सुहृद!" अवधपति बोले ।
"इच्छा-प्रतिकूल न बाध्य करें, व्रत खोलें ।।"

बोले उसांस भर! "अभी कार्य कुछ करना ।
देना तन को आधार, धरा पर रहना ।।

इस संकट में मित्रो! मत नयन फिराना ।
यह राम तुम्हारा ही है पार लगाना ।।"

दीपमालिका

एक ही बार कुछ पय-फलों का अशन,
रात्रि के दूसरे ही पहर कुछ शयन ।
कुछ सभा के समय राजपट आभरण,
शेष दिन-रात अविशेष दो ही वसन ।।

अनमने भी नहीं, उन्मने भी नहीं,
उन्नयन भी नहीं, नत-नयन भी नहीं ।
मौन भी तो नहीं, पर मुखर भी नहीं,
पर न मन-वश न वश मन, प्रमन भी नहीं ।।

केन्द्र हो कर सभी से जुड़े पर पृथक,
चक्र रखते चपल ध्रुव, अचल ज्यों बने ।
साथ सबके, न साथी किसी को बना,
वेंत जैसे झुके पर स्वयं के तने ।।

स्यात् ही नाम मुख से सिया का लिया,
किंतु मन से न पल भर बिसरने दिया ।
राग वैराग्य में यों स्वतः लीन कर,
राम ने राम का रूप धारण किया ।।

सोरठा

छिपा-छिपा कर मर्म, एक एक को देखते ।
बहु नैमित्तिक-कर्म, लजा-लजा करने लगे ।।
दुष्कर कृच्छ पराक, चांद्रायण असि-व्रत प्रभृति ।
मान न क्लेश मनाक, लगे अमित जन पालने ।।
पैतृक-पुर दव-कूप, सिय-दुख-दाह विरह-दहन ।
राम-राज्य का रूप, प्रभु ने कुंदन सा किया ।।

दोहा

जन-जन की इच्छा हुईं, अर्पित अन्तर - केन्द्र ।
युग-युग सिय रानी मिले, रामचन्द्र राजेन्द्र ।।

अष्टम-भुवन
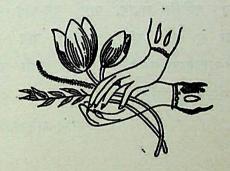
मंगलाचरण

दशावतार-स्तोत्र

प्रलय - पयोधि अपार, पार मनु-नाव लगाई ।
लीला से वट लील, वंटिका पाग सजाई ।।
श्रुति-श्रुतिगाता सृजन कर, दी वाणी उपहार ।
मधु-कैटभ-मद-पीठिका, किया धरा - श्रृंगार ।।
मत्स्य-छवि-धारि जय ।।

चले अमृत के लोभ, असुर-सुर ललक-ललक कर ।
नेंती बने अहीश, बनाया मंथक मंदर ।।
बन-बन वननिधि-तल-कणी, बना गगन का पात ।
किया अचल अपलक अचल, की मधुऋतु वृष-वात ।।
कमठ जगदीश जय ।।

"मेरी भू मैं स्वामि, किंकरी कौन बताता ।
जल का कच्छप-मीन, पंक में कोल कहाता ॥"
रिपु-शोणित उबटन माला, न्हिला-न्हिला दधि-नीर ।
की प्रमुदित पृथ्वी प्रिया, दंष्ट्रा-बाँहु सुधीर ॥
शेष-शीशासना ॥

खंब लाल, दृग लाल, लाल करवाल सम्हाली ।
अति कोमल लघु लाल, नाम की मुख पर लाली ॥
'कहां' 'कहां न' 'यहां' 'यहीं', हुआ शब्द विकराल ।
हुई लीन लाली सकल, खल-शोणित-सरि लाल ॥
नृहरि असुरारि जय ॥

ललित पाणि, लघु छत्र, कमण्डलु कलित अपर-कर ।
भरते लघु - डग चरण, वदन पर वचन मनोहर ॥
हँसे असुर "क्या याचना, तीन चरण भू - दान" ।
हुई भीत स्मिति चकित हो, देख शरीर - प्रमाण ॥
भुवन वामन बने ॥

रक्षक भक्षक बने, बना पय गरल-विवर्द्धन ।
रँगे अवभृथस्नात गात ऋषि-रक्तोत्सादन ॥
जगती-स्मिति विस्मृत हुई, लगी सुरीति अनीति ।
क्षत्र-रीति द्विज-वेष में, बनी श्रुतिस्मृति-प्रीति ॥
परशुधर राम जय ॥

मर्यादा मिट चलीं, सिमटता चला धर्म-ध्वज ।
ऋषिजन-अस्थि समूह, बना पथ-पथ की पद-रज ।।
तजे पिता-माता-प्रिया, पुत्र-पुरी-परिवार ।
पल-पल अगणित ताप सह, किया सुखी संसार ।।
राम राजेन्द्र जय ।।

चक-अघ-केशी-कंस-नरक-मुर भँवर भयंकर ।
दंतवक्र-शिशुपाल-शरासुर-कौरव जलचर ।।
पातक पावस, समय सरि, फँसी धरा मँझधार ।
केशव केवट, धर्म तरि, उठा चक्र पतवार ।।
उठे गाते हुए ।।

ले निगमागम - ओट, बढ़ी हिंसा अति भारी ।
बने पुरोहित पोच, श्वपचकर्मी कुविचारी ।।
कौल-वाम पथ में छिपा, धर्म सनातन शुद्ध ।
बलि-दशकंधर-मख-दलन, बने स्वयं हरि बुद्ध ।।
त्याग अनुराग मय ।।

रागहीन - विज्ञान, ज्ञान - उपहास उड़ाता ।
संविधान का स्वांग, सकुल व्यवधान रचाता ।।
सत्य सूर्य से पीठ कर, कहते अघ-निशि प्रात ।
करते मनु-सुत दनु बने, घूकों सम उत्पात ।।
कल्कि हरि ! देखिये ।।

दोहा

कर प्रणाम लक्ष्मण चले, हो रथ पर असवार ।
सिया देखती रह गई, रेख क्षितिज के पार ।।
सूना नभ सूनी धरा, सूनी दिशा अगेह ।
मानो आत्मा हो खड़ी, तज नास्तिक की देह ।।
"कब से तू लहरा रही, लहरें अमित अभंग ।
जलधि-जलद तव सु-जल से, पाये प्राण उमंग ।।
तव उज्ज्वल जल सा सरल, तव निर्मल मन गंग ।
किंतु बता बीती कहां, ऐसी किसके संग ।।
निश्चित ही तुझ में समा, करती बाल-विनोद ।
उदर धरोहर आर्य की, सौंपूं किसकी गोद ।।"
एक बार करुणा, जलधि, उठा भयंकर ज्वार ।
लौटा छूकर कोर-तट, निज मर्यादा धार ।।
बोली बुद्धि 'उघाड़ दृग, सीते ! लख संसार ।
'किसकी वधु, किसकी सुता, आकुल ! कुल न बिसार ।।'

सोरठा

भँवर प्रथम ही बार, रामकीर्ति-तरिका फँसी ।
तेरे कर पतवार, खेल प्रभंजन, पाल बन ।।

मालिनी

सीता सीता सी उठी गंग में उतरी ।
यों लगी सलिल में चली सुनहरी शफरी ।।
प्रत्यंग-अंग, लक्तक पहरे ही पहरे ।
यों मल-मल धोये, रचीं रंजिनी लहरें ।।

झिलमिल करती भूषा के भव्य सितारे ।
कर एक-एक तन के आभूषण सारे ।।
डाले निर्मल-गंगाजल में निर्मल-मन ।
डूबे भूषण ज्यों मिला न पाये लोचन ।।

प्रिय-हृदयेश्वर का मंगल-सूत्र हृदय पर ।
कबरी में शुभ चूड़ामणि स्वामि-वरद-कर ।।
प्रिय-दत्त स्नेह-मुद्रिका एक उँगली में ।
दो-दो बिछुवे पद-तल अगली-बिचली में ।।

या बचे कलाई पड़े कांच के कंकण ।
सर्वांग - भूषिता सीता के आभूषण ।।
बोलीं शरीर लख "राजकुमारी रानी ।
वह गई आज, ले गंगा ! तेरे पानी ।।

यह प्रिय-विरहिन सिय देह-त्याग तक तव तट ।
अब सुख से रहने आई, पाने नव-पट ।।"
तन-अंगराग के साथ राग जीवन का ।
भव-भोग भोग सा किया जान्हवी-जल का ।।

निकलीं जल से यों लगीं विदेहकुमारी ।
ज्यों शतावरी अवभृथ-कृत किये पधारी ।।
गंगातट के निर्जन निकुंज में जाकर ।
बैठीं रघुनन्दन-प्रिया वस्त्र फैलाकर ।।

ज्यों देवलोक की दिव्या-देवी कोई ।
धरती पर उतरी भाव-जगत में खोई ।।
वह लगीं देखने अपलक गगन-फलक को ।
रस-रिते कनकमय कल के काल-कलश को ।।

पल-पल चलती जीवन की चित्रावलि को ।
उस किले कमल से निकले इस कंदलि को ।।
दृग कभी फैलते फिर अधमुंद भिंच जाते ।
उठ अधिकाधिक झुक-झुक कर भर-भर आते ।।

लख मन-महीप इनका अनुशासन पालन।
प्रहरी से पुनः बनाया सचिव-सनातन॥
सहसा प्रतीत कुछ हुई समीरण शीतल।
आ बाह्य-जगत में लखा, रहा वासर ढ़ल॥

सिय चिंतित किंचित हुई, सांझ घिर आई।
उपवन-हिरणी वन-हिरणी सी मुस्काई॥
'डर रही सांझ से, क्या होगा निशि आई।
जी ली फिर तो पगली ! धरती की जाई॥'

इतने में ही लय-बद्ध छंद के सुस्वर।
यों लगे कि आते जाते पास निरन्तर॥
अति चकित हुईं अपनी ही गाथा सुनकर।
फिर उठीं, देखने लगीं सहज में छिपकर॥

'जो सियास्मरण करती यह किसकी वाणी।'
झलकी पल्लव-पुट ऋषि की छवि कल्याणी॥
शुभ-श्मश्रु-शुभ्र शुचि जटाजूट-मंडल शिर।
पहिचानी यह वाल्मीकि तपी ब्रह्मस्थिर॥

कर सायं-संध्या-कृत्य जान्हवी-तट से।
देखे कवि-तापस जाते परम निकट से॥
'बोलूं, ना बोलूं, बोलूं तो, क्या बोलूं।
कैसे ज़ड़-हिय रख शिला जीभ-जड़ खोलूं॥'

इस असमंजस में घिरी गिरा, मति मन की।
सहसा रघुपति-रमणी की कँगनी खनकी॥
ऋषि-दृष्टि उठी, पल्लव-कुल झलकी झांई।
देखी दो डग भर, दी मैथिली दिखाई॥

"सिये! मैथिलि! जानकि! रामरमणि! वैदेही।
इस वेला वन में यहां, कहां प्रभु स्नेही॥
यह जागृति स्वप्न सुषुप्ति सत्य या छलना।
दुर्दैव सुदैव कहो तो किसकी रचना॥"

सिय - सकुच देखकर बोले पुनः मुनीश्वर ।
"कह बेटी ! सब वृत्तांत भ्रांति-भय खोकर ।।"
सिय सिसक उठी, ज्यों भँवर पुलिन पर भटका ।
रह गईं ठगी सी खड़ी तना गह वट का ।।

मुनि ने रख शिर पर हाथ तुरत बैठाया ।
वृत्तांत सिया ने आद्योपांत सुनाया ।।
ज्यों मार गया हो काठ, रहे मुनि बैठे ।
फिर योग-शक्ति से सूक्ष्म-जगत में पैठे ।।

दृग खोल कहा "कल्याणि ! पूंछले लोचन ।
यदि बही एक भी बूंद, बहेंगे त्रिभुवन ।।
तव नयन सिंधु, स्वांसों में प्रबल प्रभंजन ।
इस वय तवाह त्रैलोक्य - विदाह - निकेतन ।।

तू बन कर ढाल सम्हाल, जगत शरणागत ।
वाणी-आश्रम में विपनदेवि! तव स्वागत ।।
उठ सुते ! सुपावनि ! निर्भय हो, कर शोक न ।
इन मुकुलों में कर कल के वट दर्शन ।।"

ऋषि के पीछे सिय लगी सजीव शची सी ।
संकल्प - मेरु - प्राकार अचल धरती सी ।।
"अब जान जानकी ! इसको जनक-निकेतन ।
भद्रे ! अभाव-मय यह सद्भाव भरा वन ।।"

देखी मुनि ने हर्षित आश्रम - जिज्ञासा ।
बोले "करने तव पूर्ण अखिल अभिलाषा ।।
कर कृपा आज वन-देवी स्वयं पधारी ।
इनकी सेवा से सुलभ सिद्धियां सारी ।।

इनका नूतन आवास बनाओ सुन्दर ।
इनको पहिनाओ मुनि-परिधान परिष्कर ।।"
क्षण में बाँसों का भव्य उटज छा डाला ।
ऋषि-आश्रम-तट सिय - आश्रम बना निराला ।।

मुनि - बालक सुंदर बिरवे लगे लगाने ।
कुछ लगे मृदुल मंजुल सांथरी सजाने ।।
वन-देवी का आवास त्रिखंडा समतल ।
मृतिका-लेपन कर, शीतल किया विमल जल ।।

आंगन-वातायन-द्वार-प्रकोष्ठ विभाजन ।
लख लज्जित हुए विश्वकर्मा-मय निज मन ।।
अनुभव-श्रद्धा-ममता की मुदित त्रिवेणी ।
जानकी-वास की बनी ललित निश्रेणी ।।

फूले फूलों की लटकीं वंदनवारें ।
मृग-पट कपाट पाटों से पाटे द्वारे ।।
दी मध्य - वेदिका सजा, बिछा बाघम्बर ।
पद-पीठ सुमनमय सुमन-छत्र ही शिर पर ।।

बहु रखे कलश भर कर निर्मल गंगाजल ।
किसलय-पनवारे भरे अमित मृदु ऋतु-फल ।।
रख दिये पात्र बहु ठौर-ठौर घृत भर कर ।
प्रज्ज्वलित कर दिये दीप अरणि-मंथनकर ।।

बोले मुनि बालक जाकर कई "मुनीश्वर ।
पूज्या - वनदेवी-वास विलोकें चलकर ।।"
निज सरस - कल्पना सरिस कुटीर मनोहर ।
लखकर, प्रसन्न अति हुए तपस्वी कविवर ।।

देखा, तापस-परिधान पिन्हा ऋषि-नारी ।
सादर लेकर आ रहीं विदेहकुमारी ।।
"वनदेवि ! विपिन की है यह भेंट अकिंचन ।
स्वीकृत कर करिये मुदित, यही तव परिजन ।।"

उत्सुक मुनि लखने लगे कि अब क्या कहतीं ।
अनदेखी ये वनदेवी कैसे रहतीं ।।
छलछला उठे सीता के युगल विलोचन ।
मन-कर्म-वचन से निश्छल निरख विपन-जन ।।

बोलना चाह कर भी कुछ बोल न पाई ।
रचना सी रही निरखती रोक रुलाई ।।
जो हृदय विकट-संकट में तनिक न बिचला ।
वह शीतल-स्नेह-तपन लोनी सा पिघला ।
मुनि बोले "अंदर चलो, निहारो रचना ।
अब करो सुशोभित विपनदेवि! गृह अपना ।।"
फिर बोले वेदी बिठा "धैर्य धर सीता ।
क्या उसका करना स्मरण समय जो बीता ।।"
मुनि - बालाओं को बुला सीख सिखलाई ।
"स्वाध्याय समय मम देवि ! निशा घिर आई ।।"
कवि ने स्वाश्रम आ बँधा काव्य फिर खोला ।
कर दीप प्रज्ज्वलित त्यों मसि में जल घोला ।।
ज्यों पूर्णाहुति आचार्य रह गये करते ।
यजमान कह उठे, मंत्र अभी कुछ बचते ।।
कर गुरु-गणेश-वागीश- राम-सिय वंदन ।
बैठे ले चिरसंगिनी लेखिनी स्वासन ।।
उस ओर तापसी साग्रह मधुर-मधुर फल ।
सीता को देने लगीं जान शुभ-विधि-बल ।।
तारावलि सी मुनि - कन्यायें घिर आईं ।
सिय-चंद्र कला सी वेदी शोभा पाईं ।।
बाला उत्सुकतावश मुख लगीं निरखने ।
लख सिय-गांभीर्य लगीं आपस में कहने ।।
"अलि ! देखी कभी न, सुना,कहां से आईं ।"
"कुलपति ने गंग-निकुंज विराजी पाईं ।।"
"उस दिन शतदल में झिलमिल झलकी झांई ।
मैं बोली 'कोई', तू बोली 'भरमाई' ।।
फिर चंपक-मंजु निकुंज बजीं पायलियां ।
मैं फिर बोली, तू बोली 'छपदावलियां' ।।

कर याद, कहा यह चंपा नहीं, चमेली ।
इनमें कब पगली! अलि ! अलि-माला खेली ।।
आषाढ़-मास जव बरसी वर्षा पहली ।
तू बोली 'गदली', मैंने लखी 'सुनहली' ।।
मैं बोली, किसको देख मयूरी नाची ।
तू बोली बदली दिखा, 'देख यों नाची' ।।
मैं नटी, नटी सी तू नटखट रिसियाई ।
मैं बोली फिर 'ये अमराई बौराई' ।।
दिख रही मुझे तो, चंपा की परछाईं ।
न्हा गंग, मांग जो भर पलाश से आई ।।
तव हँसी, हँसी सी फँसी-फांस सी मन में ।
मैं रूठ रुंआसी हुई अकेली वन में ।।
सव बोलीं 'जा वनदेवी से मिल पगली' ।
अव बोलो, वनदेवी निकली कि न निकली ।।"
सुन उस बाला की बात समस्त लजाईं ।
लख विमल सरलता सिय केवल मुस्काईं ।।
फिर लगीं पूछने सभी "छिपीं क्यों स्वामिनि ।"
वह फिर बोली "तव भाषा निपट गँवारिनि ।।
कुलपति सुकाव्य की भाषा वोल रहीं हम ।
बोलो श्रुति-भाषा में इनसे कम से कम ।।
क्या लौकिक-गिरा अलौकिक ये जानेंगी ।
कुछ मूढ़ मानिनी इन्हें अभी मानेंगी ।।
वृद्धा तपस्विनी नंदा मां कल्याणी ।
बोली मृदु प्रांजल वैदिक विदुषी वाणी ।।

शार्दूलविक्रीडित

हे दिव्ये ! वनदेवि ! देवि ! विमले ! सौभाग्य-आल्हादिनी ।
वासंती चपलालया शशिकला राकाहला रोहिणी ।।

प्राची-माँग - सुहाग -फाग-कुशला प्रत्यूष आरुण्यिमा ।
गीर्वाणी अभवा भवा सु-सुरमी अघ्न्या विधात्री सती ।।
द्यौगंगा-यशवल्लरी त्रिपथगा पावित्र्यराशिस्मिता ।
पारावारनृराजराजतनुजा वाराह-श्रद्धास्पदा ।।
पौलोमी मखभूमि-भूरि-भरणी, आसक्ति सी कौन हो ।
या राजा रघुनाथ-प्राण-प्रतिमा सीता स्वयं आप हो ।।

मालिनी

सिय की श्यामल आंखें अतिशय गहराईं ।
शतदल कलिका स्मिति,अधर ताल लहराईं ।।
नत शिर उकसा ज्यों हँसीं, तनिक सी वाणी ।
ऋषि बोले आकर "सहसा हे कल्याणी ।।
निशि आधी बीती लखो! चंद्रमा बाती ।
श्रमिता वनदेवी, कन्या चपल सतातीं ।।
ये यहीं रहेंगी अब सब सोओ जाकर ।"
चल पड़ीं अतृप्ता वालायें सकुचाकर ।।
लखतीं फिर-फिर कन्या वल्कल सुलझातीं ।
तन बरबस सा ले जातीं, हृदय गँवातीं ।।
नंदा ठहराई, सकल मर्म समझाया ।
ऋषि चले, सिया के पास उसे ठहराया ।।
पट सरका सिय सादर सांथरी सुलाई ।
स्वयमेव शयन-हित उठ कर आंगन आई ।।
जो कल तक तल पर सरस-सरित लहराता ।
वह लखा चंद्रमा गगन अग्नि बरसाता ।।
"कल का प्रसाद बन गया आज की भिक्षा ।
पा कनकभवन की रानि ! समय से शिक्षा ।।
बन गये शिला - ऋण भेंट-सुमन वे कल के ।
जो हार सबल के, वे बंधन निर्बल के ।।

उपवन की क्रीड़ा-मृगी मृगेन्द्र-गुहा में ।
हिय-कमल-कुंज की भ्रमरी भ्रमित भ्रमा में ॥
प्रियतम ! मानस की मीन गर्त में डाली ।
मुक्ता अजीर्ण, शैवाल निदान मराली ॥"

दृग पूंछ सांथरी बैठी मौन जानकी ।
आ पहुँची प्राची तभी विहान-पालकी ॥
पलकों के पलने में जो पल-पल पाली ।
वह निशि तनुजा कर विदा, विदा की लाली ॥

ले नयनों में, धीरे से पट सरका कर ।
निकली सिय को तज, वनदेवी मुस्काकर ॥
मुनि-बाला झुकीं चरण छूने को ज्योंहीं ।
"हम सखीं सखीं" सिय सहसा बोलीं त्योंहीं ॥

दोहा

आईं गंगा तीर पर, लिये तापसी संग ।
नमन परस्पर कर उठीं, सिय-सुरसरित तरंग ॥
निखरी गंग निहारकर, सीता निखरी धार ।
लसे विमल तन सलिल-कण, कमल-कुंज नीहार ॥
किसकी शोभा से शुभा, हुई सुशोभित कौन ।
देखी निर्णायक गिरा, बैठी विह्वल मौन ॥
लिये सलिल-कलशी चली, चिकुर विचरतीं बूंद ।
उषा तरल वधु-शिर खुला, अरुण रहे दृग मूंद ॥
यज्ञ-भूमि की भूमिजा, बनी नित्य-यजमान ।
शोभित हुई मखाग्नि-तट, सती तपाग्नि समान ॥

मालिनी

मुनि-बालक कभी पढ़ातीं कभी खिलातीं ।
क्रीड़ा - मृगियों को लिये अंक दुलरातीं ।।
मुनि-बालाओं को गृही-धर्म सिखलातीं ।
नव-नव सुरीति से वल्कल ललित सजातीं ।।

आश्रम के शुक-सारिका मुदित नहलाकर ।
श्रुतिगान करातीं केशों से सहलाकर ।।
वे अधम-योनि खग तरु-तरु फुदक - फुदककर ।
मूर्च्छना सहित गाते मंत्रावलि सस्वर ।।

रह जाते पैतृक वेदाचार्य नमित मुख ।
सव्याज विरागो लेते, आ विस्मित सुख ।।
तज मांसाहार मृगेन्द्र मृदुल तृण चरते ।
वनदेवी के उपधान मौन हो बनते ।।

विषदंती त्रिकट भुजंग खेलते तन पर ।
शितिकंठ तानते छत्र पंख फैलाकर ।।
उस काल जानकी लगतीं प्रकट भवानी ।
ऋषि बरबस कह उठते 'जय-जय शर्वाणी' ।।

जब उठतीं, लगते निर्माणों के मेले ।
जब हँसतीं, लगता हर्षित ऋतुपति खेले ।।
हो गया रच - वय में वन वनदेवी-मय ।
जंगम क्या, जड़ पाये सिय-स्वांस-सुपरिचय ।।

नित रवि-परिक्रमा पल-पल युग से करती ।
अचला अचला सी दिखती, धुरी न तजती ।।
त्यों वन का हर व्यवहार निभातीं चलतीं ।
'श्री राम-राम' प्रति स्वांस-स्वांस सिय जपतीं ।।

तन बना रहे जितने से, उतना खातीं ।
जब पलकें ही झप जातीं तो सो जातीं ।।
निशि-दिन-ऋतु -संवत्सर जल-थल नभ-आंगन ।
रघुनाथ - प्रिया को दिखते निज रघुनंदन ।।

दोहा

प्रभुमय कण-कण देखतीं, गा उठतीं सोन्माद ।
राम-रंग में रँग गये, सकल विषादाल्हाद ।।

पदावलि

तुम्हारे चरण-कमल वे रघुवर ।
कब देखूंगी इन नयनों से, सुखद शुभद अति सुन्दर ।।
जन्म-जन्म की दासी की निधि, गुहराजा के निर्जर ।
भरत साधना की सुसिद्धि शुभ, कपट-हिरण के अनुचर ।।
कलित किरीट कपीश-शीश के, लंकेश्वर के चामर ।
दंडक-कानन का प्रक्षालन—किया जिन्होंने झर-झर ।।
शंकर-मानस-कमल-दिवाकर, कपि-कर-सरसिज-मधुपर ।
पोत-विमान उभय-लोकों के, सीय-शिरोमणि मनहर ।।

रघुपति ! तव चरणों में अटके ।
मेरे रोम-रोम लोचन बन, पल-पल पलट-पलट के ।।
पोत-कपोत-मिथुन से उड़-उड़, पुनि बैठे सट-सट के ।
चुगतें स्वांस बँधे आशा गुण, पी-पी कर घट घट के ।।
ऊपर अगम-अतीत गगन-सम, सजा दिगम्बर पटके ।
नीचे दुर्गम विरह-वारिनिधि, दर्शन दुर्लभ तट के ।।

मेरे दो नयनों की श्यामल-पुतली श्याम ।
प्राण-प्राण के जीवन जी के, रोम-रोम के राम ॥
मन-मंदिर छवि-देव कजासन, उभयलोक परधाम ।
अंतर-मरु के, मंजु मालवा वासंती-आयाम ॥
पलकों के झूलों के सावन, मन-भावन अभिराम ।
भव्य-भाव-अविभूति भूतिमय, काम-अकाम-निकाम ॥

कौन सा वह दिन होगा नाथ ।
बैठोगे मालती-कुंज में, लिये हाथ में हाथ ॥
नयनों से नयनों की होगी, प्रथम-दिवस सी बात ।
होगा अरुणिम अमर प्रात कब, जिसकी कभी न रात ॥
सभी परिधियें सिमट-सिमटकर, वरण करेंगी केन्द्र ।
मेरा मैं तुममें लय होगा, रामचंद्र राजेन्द्र ॥

तुम्हीं से ये सारे सम्बन्ध ।
सुरभित होते दिग्दिगन्त ज्यों, कमल-कोष की गंध ॥
गगन समाहित इन श्रवणों में, सृष्टि सकल दो-गोलक,
रसना रस की सागर, जब तक प्राणों का अनुबंध ॥
पोषण करता पूषण जब तक, नीरज नीराधार,
निराधार का रूप-गंध-रस हर, करता नत-स्कंध ॥

मान, मत रज में मान मिला ।
रुक न सकेगी यह पयस्विनी, पगली शैल-शिला ॥
प्रगटी तेरी कुलिश कोख से, तेरी गोदी खेली,
निकलेगी तव दर्प चूर्ण कर, अमर-प्रेमसलिला ॥
मिल जायेगी निज सागर से, सींच वियोग मरुस्थल,
रह जायेगा धरा धरा पर, तेरा दंभ किला ॥
कितनी ग्रीष्म तपाले, कितने—पतझर पात सुखा लें,
क्या जानें वासन्ती बरखा, कब दे सुमन खिला ॥

बने यामिनी घोर तमिस्रा, या कि मनोहर राका,
उषानाथ का शुद्ध-स्नेह कब, कण भर सकी हिला ।।

छुआयी छूकर सुमन-छड़ी ।
क्या इस दिन देने को प्रियतम! तीखी जलन-जड़ी ।।
बैठी नहीं उठायी तुमने, सोती नहीं जगायी,
मांगा जल न स्वयं आगे से, सहली प्यास कड़ी ।।
शिविका से सिंहासन पलने, शैया स्वयं सजायी,
क्यों कर उस निज छुई-मुई पर, रख दी शिला बड़ी ।।

सब कुछ बदला साथ तुम्हारे ।
निशिदिन का पल-पल तक बदला, बदले रवि-शशि तारे ।।
परिचित बने अपरिचित, परिजन अरिजन बने हमारे ।
रक्षक भक्षक बने, सुरक्षित दीवारों में द्वारे ।।
निर्जन भवन बने, वन उपवन, मन में पड़ीं दरारें ।
सरवर निर्झर, भँवर-गर्भ में—डूबे सकल किनारे ।।
झरी झारियां अंजुलियों से, क्षय अक्षय भंडारे ।
ऋतुपति ने झारे अंगारे, मलयानिल के झारे ।।
पंकज पंक, शिला-दृढ़ दल-दल, शाप-रूप वर धारे ।
खड़ी शिविर-सोपान अकेली, अबला बिना सहारे ।।

मिलूंगी तुम्हें देखती बाट ।
यहां नहीं तो वहां प्राण-प्रिय ! सजा रूप की हाट ।।
देर हुई, मैं तो जाऊँगी, तुम युग-युग तक रह कर,
आ जाना, कल्पों को पल-सम—अपलक लूंगी काट ।।
समय-सरित के घाट-घाट पर, यहां विरह-जल बहता,
उस परलोक सरोवर पर तो, अमर मिलन का घाट ।।
इतने बंधन इस जगती के, कितने भूषण-दूषण ।
क्षितिज पार, भर तुम्हें भुजा में, दूंगी भेंट विराट ।।

मैं-तुम क्या, हम होंगे केवल, सुखद सेज तारों की ।
वह अखंड-साम्राज्य मिलन का साम्राज्ञी-सम्राट ।।

सालता मन को एक त्रिशूल ।
बोले नहीं, न चलते देखा, दिया सँदेश न भूल ।।
कुछ तो रहता, यदि कह देते, सीते ! यह तव भूल ।
धीरज धरती यदि दे देते, तनिक चरण की धूल ।।
तर जाती संदेश-तरी से, विरह-पयोधि-अकूल ।
करती सद्यस्मृति आरे से, व्यथा-वृक्ष निर्मूल ।।
अब क्या कहूँ, हूल कुछ छाती, किसी डाल लूं झूल ।
या गंगा में करूं समर्पित, प्रिय को जीवन-फूल ।।

रे मितवा ! अंतर पीर अपार ।
कैसे सहे अकेली अबला खड़ी विजन-कांतार ।।
धधक रहा चित-आंगन फागुन, दृग सावन-जलधार ।
हरे हृदय के घाव वसंती, मन-उपवन पतझार ।।
जीवन-द्वीप प्रशांत-अंधदधि—घिरा, विरह शशि ज्वार ।
जर्जर पाल, तला छलनी सा, नाव बिना पतवार ।।
विपद सलिलचर वदन पसारे, दिश-दिशि दुसह-बयार ।
करुणाकर तारक ! करुणा-कर, खींचो भुजा पसार ।।

सारी गांठें खुली-खुलायीं ।
देकर! लेकर वचन बँधीं जो, गाँठ याद यदि आयीं ।।
उन गाँठों की मनुहारों को, ये सब गांठ लगायीं ।
क्या करना फिर इन गांठों का, गाँठ न वें गँठ पायीं ।।

यामिनी ! हौले-हौले ढ़ल ।
स्वप्न-भवन की कलित-केलि के, दो-पल करूँ सफल ।।
अभी-अभी तो नयन चुराते, बैठे प्रियतम आकर,
करले चरणों का प्रक्षालन, झर-झर झर दग-जल ।।

मैं पूँछू उनके श्रम-सीकर, वे पूंछे ये लोचन,
खोलें मन की गुँथी ग्रंथियां, ग्रन्थि खुले आँचल ।।

बिना प्रिय एक और दिन बीता ।
सांध्य आरती सजी उषा की, मौन मुखर मन सीता ।।
नीड़ों में पांखी फिर आये, लगीं कमलिनी खिलने ।
मिलने आते होंगे प्रियतम, विरहिन लगी तरसने ।।
तारक-चुनरी ओढ़ यामिनी, चली खेलने झुरमुट ।
मैं क्या ओढूं, मैं बंजारिन, गई राज - पथ में लुट ।।
लौटे बाट देखकर दिनकर, दिनकर - नाथ न आये ।
कैसे मुख दिखलाते वधु को, जिसे ब्याह कर लाये ।।
वर्षों बरसा, स्वाति न बरसा, प्यास, न चातक पीता ।
जग के सागर भरे श्याम - घन, पर मेरा घट रीता ।।

आली ! वे कैसे होंगे ।
जैसे मेरे साथ रहे प्रिय, सच क्या वैसे होंगे ।।
कहकर कौन जगाती होगी, 'उठो प्राण-प्रिय प्यारे ।
तारे छिपे, उठ रहे प्राची, कुलगुरु नाथ! तुम्हारे' ।।
तंद्रिल करतल रख कपोल—मुख, किसका लखते होंगे ।
किसकी उलझी लट सुलझाते, हँसते उठते होंगे ।।
रख पादुका ललित-आश्रय दे, कौन उठाती होगी ।
कोरें चीर दंत-धावन की, उबट न्हिलाती होगी ।।
दे पटपीत पिन्हा आभूषण, मुकुर दिखाती होगी ।
करते रेख देखते किसको, कुछ हट जाती होगी ।।
जिनके सम्मुख गिरि-गुरु वामन, भीत भुवन-दल झुकते ।
प्रीति - सहित झुक वे नृप किससे, होंगे मुकुट-पहिनते ।।
सूत - सुसेवित द्वारावस्थित, शुभ स्यंदन में चढ़ते ।
दर्शनीय वे, किसको होंगे, अब फिर-फिर कर लखते ।।

स्नेह-सहित साग्रह षटरस मां, बिठा जिमाती होंगी ।
किन्तु शेष दो-कौर-प्रसादी, कौन उठाती होंगी ।।
तूर्य बजा अब सभा उठ रही, अभी लौटते होंगे ।
नयन-मिथुन अब किसके आकुल, बाट देखते होंगे ।।
आंचल से श्रम-सीकर मुख के, कौन पूंछती होंगी ।
बात पूंछती अंतर्मन की, खीझ रीझती होंगी ।।
चरण पखार अंक में शिर ले, कौन दबाती होंगी ।
कौन हृदय पर हृदयेश्वर - पद –रख, सो जाती होती ।।
आधी रात "ठहर रे! तस्कर", स्वप्न चौंकते होंगे ।
कहती होगी कौन "रही यह" किसे खोजते होंगे ।।
" क्या रावण,न दैव को दूंगा, मैं जीते जी सीते" ।
स्मरण किये,रह जाते होंगे, तृषित,लिये घट रीते ।।
वे संकोची परम, मर्म क्या, किससे कहते होंगे ।
मेरे मन में यही दाह वे, कैसे रहते होंगे।।

कैसा बदला मेरा भाग ।
जब दिन रहा रही मैं सोई, रात रही मैं जाग ।।
उस दिन पूंछा अंजानों से, तरु-तरु गिरि-सरि-सर से ।
आज न कहा जान कर भी सब, कुछ अपने अंतर से ।।
उस दिन सेतु बांध सागर पर, सेना लेकर धाये ।
आज अकेले ही न नाथ वे, दर्शन देने आये ।।
उस दिन कंचन - मृग के पीछे, धाये चाप चढ़ाये ।
आज न अपनी घायल हिरणी, हृदय लगा ही पाये ।।
उस दिन एक शपथ ही कपि ले, सारा कपि-दल लाया ।
आज दे रहीं मैं शत शपथें, नहीं स्वयं भी आया ।।
कह'सिय राम-राम सिय'उस दिन, चित्रकूट जो आये ।
आज भरत वे एक बार भी, 'सिया' नहीं कह पाये ।।

उस दिन निठुर वचन भी सुन कर, जो पद रहे पकड़ते ।
आज लषण वे तनिक, न मेरी—विनय हृदय में धरते ।।
उस दिन तक तो पल-पल युग-युग, मां ने शकुन मनाये ।
आज मनायें भी तो किसके, उनके उनके साये ।।
मैं भी क्या बावली अभागिन, इतनी समझ न पाई ।
भादों की मावस को होती, परछांई पर-छांई ।।

रावण एक वार जी जाये ।
हे विधि ! विधि हो चाहे कोई, दो दिन जीवन पाये ।।
प्रभु भ्रम-मृग के पीछे भटकें, मैं निर्जन निर्जन में ।
पुनः हरण हो पुनः मरण हो, साधक पुनर्मिलन में ।।
अग्नि-परीक्षा का अगले क्षण, स्वागत शत्-शत् सादर ।
एक बार ही जल जाऊँगी, मिल पाऊँ यदि क्षण भर ।।

रही मैं, मैं मेरा विश्वास ।
उल्टा सब व्याकरण भाग्य-सम, पलटा सकल समास ।।
अब प्रधान बहुव्रीहि तृतीय न, प्रेम-अर्थ सिय-राम ।
उभय-प्रधान प्रधान द्वन्द अब, सिया राम दो नाम ।।
व्यक्ति सु-सूचक प्रथम राम-सिय, पुनः प्रेम-गुण वाची ।
परित्याग सिय, राम त्याग अब, कैसी संज्ञा नाची ।।
सियाराम का सर्वनाम हम, अव वे मैं में बदला ।
मिला दूध जल सगुण विशेपण, अगुण दूध जल गदला ।।
कारक-क्रिया-वचन-संबोधन, संधि-लिंग-पदपरिचय ।
विधि ही अपनी विधि-गति जाने, उलट-पलट सब अन्वय ।।

किसी की कैसीलगी कुदृष्टि ।
दुर्भागिन बहुओं की होती, कनक-भवन हित सृष्टि ।।
कैसे दानी हरिश्चंद्र नृप, जिनकी शैव्या रानी ।
बिकीं हाट,सुत-शव ले भटकीं, भरती पर-घर पानी ।।

प्रिया सगर की सुभग केशिनी, साठ-सहस्र प्रसूती ।
खड़ी रह गई सागर के तट, मलती भस्म निपूती ।।
लेने बैठी राज्य पुत्र-हित, दे बैठीं सिंदूर ।
स्वप्न-भवन मां के स्वप्नों में, हुए अयश-शर चूर ।।
सजीं, सजा आरतो खड़ी मां, अब होगा अभिषेक ।
श्यामल-साड़ी मिली, उसी से—हृदय रह गईं सेक ।।
झुलसीं आग पराई मँझली, अश्रु निकाल न पाई ।
"जा बेटा ! वन, अवध वही तव, जहां तुम्हारे भाई ।।"
पृथु-प्रिया ये पृथ्वी मां जो, अधर धरी वाराह ।
क्या न झेलती जड़ बन चेतन, भरतीं तनिक आह ।।
एक कथा क्या व्यथा अनेकों, अन्तःपुर की आली ।
धन्य-धन्य विधि! इस वधु से भी, कुछ कुल-रीति कराली ।।

कैसी रानी मैं अलवेली ।
वन से वन में बसी, न पल भर,—कनक-भवन में खेली ।।
परिचारिका पीर, श्रम परिजन, विपदा बनी सहेली ।
स्वामी सखा एक जगदीश्वर, गगन गिरी, भू झेली ।।
सूत्र न मंत्र न,खुले ग्रन्थ की, कथा व्यथा की केली ।
जितनी बुझी अनबुझी उतनी, सीता जटिल-पहेली ।।

कितनी मौन रहूँ क्या बोलूं ।
इस मर्यादा-बंदीगृह के, द्वार दिवारों जैसे,
इतने सुधियों के वातायन, कितने मूंदू खोलूं ।।
कल तक का शृंगार दिठौना, आज कलंक कर्म का,
इतना प्रायश्चित जीवन-जल,कितना पूंछू धोलूं ।।
विश्व-चक्र के नियति-दंड से, बँधी नयन बँधवाये,
इतने बोये बीज पेरने, कितनी सोलूं डोलूं ।।
मेरे जाने मुझे विरानी, वीरानों को अपनी,
इतने संबन्धों में कितने, काल-तुला पर तोलूं ।।

ऊपर देखूं, नीची लगती, नीचे देखूं ऊँची,
गति विचित्र इतनी त्रिशंकु सी, कितनी हँसलूँ रोलूँ ॥
कितना सोचूँ कितना समझूँ, तर्क व्यूह का इतना,
गणित शून्य का शून्य गणित-फल, शून्य ! शून्य मैं होलूँ ॥

उनके कमल न होना म्लान ।
मेरा वासंती मन-उपवन, मेरे दृग जल-खान ॥
पंक कलंक अंक में होगा, असहनीय अनुचित भी,
कनकभवन की छत ने दी यदि, बूंद एक भी छान ॥
मैं धरती की बेटी, धरती मेरा क्रीड़ास्थान,
झड़ी छत्र की लघु-मणि भी यदि, होगा अशुभ महान ॥
गला दंड, यदि हुआ न दंडित, तो ध्वज खंडित होगा,
उठे दंड भुज-दंड, ध्वजेश्वर—भरते रहें उडान ॥
अंधी होकर सुन तो लूँगी, बहरी बोलूँगी तो,
गूँगी हुई चरण छू लूँगी, बने रहो तुम प्राण ॥

केवल एक बार आ जाते ।
अपनी पावक-परिणीता को, इतनी बात बताते ॥
ऐसे बिता दिवस-निशि सीते ! ऐसे पल, संवत्सर ।
इन बांहों से काट भँवर, तर—विरह-वारिनिधि दुस्तर ॥
इस अंजुलि में अश्रु पान कर, शेष पूँछ इस आँचल ।
इससे सजा सिंदूरी बिंदिया, यह डिबिया भर काजल ॥
जब दुध-मुँहे युगल शिशु पूँछे, 'पिता बता मां ! कौन',
तब वैदेहि ! बता यह संज्ञा, त्याग सनातन-मौन ॥
किस विधि किस गति कैसे गिनने, कितने पतझर स्वांस,
प्राणनाथ ! ये प्राण पातकी, रखूँ कौन सी आस ॥

धरोहर लेना जी राम! घनी ।
कैसे कब तक नाथ ! सम्हालूँ, जी पर आन बनी ।
भूली ज्योति कोर व्यूहों में, रचना तानु सटी,
तन दुर्बल मन भी निस्संबल, कटि-भूषण कँगनी ।।
अलकों में वल्मीकि समाईं, धूनी मांग रमी ।
स्वांसों के पग मन-मन भर के, दुस्तर-विरह-वनी ।।
छूटे ताल-ताल से शतदल, दुपहर कुम्हलाये ।
रानी को लगती दर्पण में, प्रेत छांह अपनी ।।
यह जग केवल लेना जाना, कब देना सीखा,
हीरा मिला कांच के बदले, जगत-रीति ठगनी ।।
टूटा गर्भ-दम्भ सीपी का, मुक्तामाल गली,
छूटा भार, फूल सी काया, रज की करो कनी ।।
क्या कह गई, न कहना था कुछ, धूनी धुँआ भरी,
कल की अपनी मत बिसराना, विनय मात्र इतनी ।।

किसीको मेरी याद न आई ।
क्या सचमुच ही मैं ऐसी थी, जो ऐसे ठुकराई ।।
समझी थी शिरफूल स्वयं को, दंभ भरी इठलाई ।
'केवल भार,रहस्य खुला अब,यों शिल सी सरकाई ।।
पूंछा, रूप दिखा दर्पण से, 'बोल मोल परछांई' ।
कमल-कुमद को जननी निकली, निर्मल जल की काई ।।

जीव ने ली संज्ञा अपराध ।
यही सोंच तव पतित-सुपावन, भाव सदा निर्बाध ।।
मरुत-प्रवाह दाह पावक का, जल का शीतलपन,
कब किसने बदला स्वभाव, दो! उदाहरण एकाध ।

बोलो देव! हृदय-मन्दिर के, मेरा कितना दोष,
तव स्वभाव का कौन अहेरी, जन्मा जग में व्याघ्र ॥
कह दो मुझसे दृष्टि मिलाकर, मौन न दृष्टि चुराओ,
मन के चोर ! कौन वह साहू, पूर्ण करे जो साध ।
सर्वेश्वर अपनालो अपनी, भुजा बढ़ा आजानु,
लील न जाये विरद तुम्हारा, विरह-पयोधि अगाध ॥

सपनों के श्यामल-चषक, छवि छलका दो श्याम ।
दुखद-कृष्ण-अभिसार के, सुखद सुरस श्रीराम ॥
रसिक प्रिय ! आज रचायें रास ।
यह सूना पतझड़, बन जाये अजर-अमर मधुमास ॥
रोम-रोम के छिद्र- छिद्र में, राग बिखेरें हास ।
रीती होती जाये गगरी, बढ़ती जाये प्यास ॥
यति-मति-स्वर-लय-छंद भंग हों, लांघे सप्तम लास ।
परिधि समाधि महावर में ले, भू-विलास में व्यास ॥
दिव्य-दैन्य चैतन्य हो उठे, भव्य-भाव सोल्लास ।
मेरे घुंघरू सूत्र तुम्हारे, हों बहुव्रीहि-समास ॥

पाहुने ! रात भर रुकजा ।
चिर-प्रतीक्षत मिलन-क्षण में, सृष्टि-वय भरजा ॥
सुधि-गगन से उतर आया, स्वप्न आंगन में,
निठुर हृदयेश्वर ! हृदय से, हृदय से लगजा ॥
युगों से अपलक खड़ी मैं, पलक पट डाले,
स्वांस-स्वांस प्रसून चुन-चुन, आस-सेज सजा ॥

अवध रे! वध की करता मांग।
सिंदूरी-रानी का लखता, सिंदूरी तो स्वांग॥
होती मुक्त स्वामि-कोपानल, पा सरयू की झाल।
लेती स्वगति कुलीना-कुलवधु, पति-गृह आँगन थाल॥
चिता न देते, तो कर लेते—भोजन श्वान-शृगाल।
पथ-रज बन प्रिय-पद-रज पाती, कभी किसी तो काल॥
किसी पर्व पर किसी समय तो, जी लेती निश्शंक।
घोर-अपरिचय में न सिमटती, भू-दुहिता भू-अंक॥

आली! टूटे मनके मन के।
प्राण पखेरू कब उड़ जांये, पिँजरे से तन के॥
नेह-मेह से सिंची डाल पर, यौवन सावन के।
छुटे नयन-शर चढ़े कान तक, काल-शरासन के॥
प्रिया वेष में मृत्यु सामने, स्वजन प्रेत बन के।
विदा-विदा दो! अरे विदा अब, दर्शन पल-क्षण के॥

प्राण रे प्राण हो गये भार।
कल के अपने आज विराने, वीराना संसार॥
गया लहरता पाल रसातल, लहर बनी पतवार।
नैया भँवर खिवैया जलचर, कूल क्रूर मँझधार॥
अपना आंजा काजल कालिख, अंगराग अंगार।
ताली मार ठिठोली करता, स्वयं किया शृंगार॥
सावन नयन, हृदय में फागुन, आंगन जेठ बयार।
मन में अगहन, चन्द्रवदन पर राहू विरहाकार॥

दिठौना फैल गया आली ।
कर श्रृंगार सजाया जिसको, की उसने छवि काली ॥
हंसराज ने तो मानस में—थी पहिचान निकाली ।
किंतु न जग को समझा पाये, काकोली कि मराली ॥
रख उर उपल उन्होंने अपने, अपनी बात बनाली ।
भस्म-रमी पर प्रेम-योगिनी, हाय ! भस्म कर डाली ॥

कितना क्रूर रे ! तू मोह ।
निर्मोही ! अति सम्मोहित कर, पीछे करता द्रोह ॥
सागर शांत अशांत बनाता, निज शीतल-कर ढोह ।
तट से टकरा, फिरा, परस्पर टकराता दे छोह ॥
पशु को ऐसा सुघड़ सजाता, जग रह जाता जोह ।
सुना मत्र फिर फँसा यंत्र में, देता तीखा लोह ॥
व्यथित-हृदय को पुरस्कार में, मत दे ऊहापोह ।
लेकर नाम भाग्य का सो जा, अन्तः-पुर की खोह ॥

निराशे ! मत कह भार कपाल ।
किस सावित्री को पति दे दे, काल कौन से काल ॥
किस की निष्ठा प्राण-प्रतिष्ठा, किस पाहन में कर दे,
निकले नरहरि लाल-खम्ब से, किये विलोचन लाल ॥
जो कुल का कुल भस्म हुआ कल, जन्मे वहीं भगीरथ,
कब फैला दे भस्म-भूमि पर, गंगाजल का जाल ॥
सोच रही, मन समझाने को, सुनी सुनायी कहती,
कल के पतित-पतंग देख नभ, नव-पतंग की चाल ॥
कमल-कुलीन प्रदोष-काल में, कौन न सकुल सदोषी,
पर किस किसलय भरी न थिरकन, उषा-गान अलि-ताल ॥
किसके झड़ते पात न पतझड़, कौन सुमन तरु रहता,
हुआ न वासंती-कटाक्ष से, कौन प्रमत्त रसाल ॥

कहां लंकगढ़ परिखा सागर, रक्षक कोटि निषंगी,
मृत्यु मांगती, पर कपि ने दी, वहीं मुद्रिका डाल ।।
सुख-दुख जन्म-मृत्यु, निशि-वासर, सृष्टि-चक्र की चापें,
किस पल अंक प्रसुप्त कौनसा, भाल उठाले भाल ।।

उसकी कौन बनेगा ढाल ।
जिसको डस कर चढ़ा भाल पर, महाकाल के व्याल ।।
वह पापी हो कैसे पावन, जिसको देख तनिक ही,
शास्त्र मौन मुरझाई तुलसी, गंगा उठे उबाल ।।
मेष लग्न शनि, अस्त शुक्र - गुरु, वक्र भौम-बुध-केतु,
उसके अंक कपाल-अंक क्या, रीता हाथ कपाल ।।
उदित अगस्त्य, ध्वस्त घनमंडल, तड़ित तड़कती जाए,
भुने बीज उस भूमि भुनाये, क्या पृथु-हल की फाल ।।
दिन में दिनमणि राहू निगला, तमस खा गया चन्द्र,
उस सावन-वन-विजन-कुहूनिशि, कौन दीप दे ताल ।।
उस असाध्य-रोगी पापी सी, मैं दुर्भागी सीय,
भटक रही नीरव रौरव में, लो रघुनाथ ! सम्हाल ।।

लहक री ! धीरे-धीरे आंख ।
पकड़ न पाऊँ, मन न जाए उड़, कहीं लगाकर पांख ।।
परम-चपल करतल-पिंजरे में, बैठी दाबे कांख ।
कुलिशार्गला भाग्य की आड़ी, पृष्ट झरोखे झांख ।।
चोंच गँवा बैठा यह पगला, जाना नीलम दाख ।
क्या समझाऊँ यह न धवलिमा, दग्ध-चिता की राख ।।
दिशि-दिशि के संकेत देख री ! एक न, लाखों-लाख ।
रख न दांव पर बिना विचारे, शकुन-शास्त्र की साख ।।

मेघदूत

पूर्व-मेघ

धरती तपती गगन सिलगता दशदिशि बलतीं ।
विरहिन की सी आह दाह सी समिरन चलतीं ।।
शीतलता सपना हुई, वनी कु-राह कुराह ।
केकी-पिच्छ कुटीर अहि, ज्यों प्रिय प्रिया-सुबांह ।।
ग्रीष्म यौवन चढ़ा ।।

बीत चले वैशाख-जेठ आषाढ़ पधारा ।।
एकाकी बज उठा एक दिन गगन नगारा ।।
धरती पर रिसने लगीं, नन्हीं-नन्हीं बूंद ।
पलकें पलभर खोलकर, लीं अधमुंद फिर मूंद ।।
सिसक सीता उठीं ।।

मम नयनों की धर्म-स्वसा से श्यामल-श्यामल ।
पूर्व - सिंधु-सुत मिथुन-उत्तरायण के बादल ।।
अंक चंचला प्रियतमा, नभ - पर्यंकासीन ।
आशा प्यासी भूमि की, तू ही जलद! नवीन ।।
तुम्हारी वंदना ।।

हैं सम्बन्ध अनेक करूं किससे संबोधन ।
जन-जन जीवन-बंधु तुम्हीं से जीवन कण-कण ।।
सुता रही उस सिंधु की, जिसके तुम सुकुमार ।
अपनी अबला बहिन की, लो राखी स्वीकार ।।
बिरन रे ! धर्म के ।।

मेरे मन के कुंड प्रबल बलता दावानल ।
शुष्क समिध सी देह निगलता तिल-तिल पल-पल ।।
करता जाता प्रज्ज्वलित, प्रति निःश्वास-समीर ।
तपन-हरन हर मम तपन, दे रे नीरद ! नीर ।।
द्वार अनुजा खड़ी ।।

इस बंजर में बरस अपव्यय मत निज निधिकर ।
अतिशय श्रम से घाट-घाट से घट-घट भर-भर ।।
मेघावलि पनिहारियां, लाईं यत्न अनेक ।
यों कर निठुर ठिठोलियां, 'मत दिखला अविवेक ।।
विवेकी! बात सुन ।।

गत वसंत की बौर प्यार पाकर बौराईं ।
मेरी अंकुआ आंक आँख सी भर-भर लाईं ।।
अंबर के घनश्याम ने, करली धरती याद ।
धरती के घनश्याम ने, सुना न धरा-निनाद ।।
भाग्य का फेर क्या ।।

पा प्रिय की मनुहार चलीं शिखिनी प्रिय-आंगन ।
पातीं अधर पसार प्यार प्यारे का सुनयन ।।
मैं प्रियतम के दृग-कमल, खोजूं किस कासार ।
वासन्ती बरखा सपन, पतझर लिखा लिलार ।।
दोष दूं भी किसे ।।

सूखीं सरिता सकल नवल - यौवन गदराईं ।
खनके कंकण पुलिन लहर पायल लहराईं ।।
ज्यों गौने की पत्रिका, लाये बारी द्वार ।
उगे पांव में पांख से, निखर उठा श्रृंगार ।।
अभागिन एक मैं ।।

हो जायेगा धन्य पुण्य रे ! अति पायेगा ।
जो मेरा संदेश देश प्रिय ! ले जायेगा ।।
युग-युग विरहिन नारियां, गायेंगी तव गीत ।
श्वांस-श्वांस गज-ग्राह का, बन हरि मीत पुनीत ।।
नभध्वज सिंधु के ।।

यह मेरा अज्ञातवास क्या ज्ञात न, सच रे ।
रूई सी धुन गई छिपी क्या, तू भी सुन रे ।।
सोई निशि प्रिय-बांह में, मिली प्रात वन-राह ।
मनमंदिर के देव की, दिखी न फिर लघु-छांह ।।
छांह मैं ही हुई ।।

बीती बात बिसार याद क्या बीती करनी ।
कहते गंगा जिसे बनी मम-हित वैतरणी ।।
इस सरि को कर पार चल, फिर निज दिशि वायव्य ।
गंग-क्षुधानल की जहां, बनती यमुना हव्य ।।
तीर्थपति विश्व का ।।

श्यामल-धवल हिलोर पवन में डाल हिंडोले ।
प्रथम - दिवस के राम-सिया से सुहृद अबोले ।।
नित प्रति प्रमुदित झूलते, झाँझन सी झंकार ।
गूंथ सुमन मनुहार के, गलबांहों के हार ।।
पिन्हा कर झूमते ।।

मरकत मणि से पात, गुँथे माणिक मणि से फल ।
पिंगस्फटिक समान चूमतीं जटा थली-स्थल ।।
चरण-कमल ले कर-कमल, वदन-कमल में डाल ।
अक्षयवट, जिस पर खिले, श्रीपति बन नव बाल ।।
सृष्टि के आदि में ।।

भरद्वाज मुनिराज विराजे वहीं सु-आश्रम ।
प्रतिष्ठानपुर ललित पार करते ही संगम ।।
रमी रमण में उर्वशी, जहां स्वर्ग को त्याग ।
प्रियतम भी ग्राहुति बने, प्रिया-प्रीति-प्रिय-याग ।।
प्रतिष्ठा प्रेम की ।।

उससे उत्तर तनिक भक्ति सुरभी का सा खुर ।
त्रिभुवन का विख्यात सुपावन श्रृंगवेरपुर ।।
मुनिवर श्रृंगि स्व-स्वामि सह, पूरित ब्रह्मानंद ।
शांता मेरी नंदिनी, रहती हैं सानंद ।।
नमन करना सहज ।।

अनतिदूर ही वहीं तीर के किसी तीर पर ।
भरे दृगों में नीर लगाये दृष्टि नीर पर ।।
बैठे होंगे भूमि पर, लिये हृदय सविषाद ।
हो निढ़ाल से सेक पर, धींवरराज निषाद ।।
प्रेय प्राणेश के ।।

असमय वृद्धा हुई लिये पतवार सहारा ।
गुहराजा की प्रिया, बहाती दृग जलधारा ।।
मेरी मुँहबोली हला, करती कुछ-कुछ याद ।
कहती होंगी तांक नभ, कर कुररीव निनाद ।।
'हाय नृप! क्या किया' ।।

प्रेम-प्रीति सशरीर सत्य गुहराजा - रानी ।
सत्य-प्रेम की सत्य मर्त्य-भुवि अमर-कहानी ।।
महिमा लघिमा की बढ़ी इनकी महिमा देख ।
इनके गरिमा - क्षेत्र की, गरिमा लघु सी रेख ।।
पंक-कुल के कमल ।।

इनके मन की तपन मिटाना सहज न संभव ।
तन की तपन परन्तु शक्ति भर हरना गाड़व ।।
कुछ धीमे-धीमे बरस, करना शांत कछार ।
ज्यों गुहरानी को लगे, ललित हला-ग्रँकवार ।।
'धीर धर ग्रालि ! रि' ।।

गंगा के ही साथ निरन्तर चलते जाना ।
विंध्यवासिनी - चरण-रेणु नत शीश चढ़ाना ।।
शुंभ-निशुंभ विनाश कर, करती हैं विश्राम ।
ग्रार्त-प्रार्थनीया शिवा, देतीं सिद्धि - सुधाम ।।
सदा रखना स्मरण ।।

फिर उत्तर में विश्वनाथ की पुरी सुहानी ।
राम-भक्ति की खानि चतुष्फल-दल की दानी ।।
जहां त्याग कर देह को, पाता जीव न देह ।
तारक-मंत्र-सुसिद्धि शिव, देते हैं सस्नेह ।।
शुभा-वाराणसी ।।

खेल रहे थे द्यूत एक दिन हर गिरिजा से ।
चंद्रकला-वृष-शूल गँवा बैठे वर्ज्या से ।।
देख स्वयं को दांव पर, देख शिवा-शिव दृष्टि ।
बहा ले गईं विपल में, सकल सारि-सर सृष्टि ।।
चंचला जान्हवी ।।

कूट केलि लख,उठीं, भरीं रति-रोष भवानी ।
पासे पाईं यहीं त्रिपथगा से शिवरानी ।।
क्या पाईं पाईं न क्या, भूल गईं कैलास ।
अचल-दुलारी का बना, काशी अचलावास ।।
ग्रन्नपूर्णा सुछवि ।।

प्रिया-प्रीति-वश ईश पधारे परवश-छवि धर ।
रिता न गिरिजा-पात्र शंभु का भरा न खप्पर ।।
होता पोषित बाल सा, अनायास संसार ।
गौरीशंकर की यहां, महिमा अपरम्पार ।।
भिक्षु-दाता विरल ।।

अद्‌भुत काशी-कांति जान्हवी त्रय-दिशि घेरे ।
ज्यों सभर्तृका - माथ मालती माल - सकेरे ।।
हर कंदर्प-कुदर्प-हर, करदर्पिणी - कपर्द ।
ज्यों अघ-काजल पान कर, वृष-दृग-ज्योति अकर्द ।।
सिद्धि-गंगोत्तरी ।।

उठते दशदिशि जहां मृदंगों-घंटों के स्वर ।
करते कण-कण घोष 'नर्मदे हर' 'गंगे हर' ।।
लहर-लहर पर लहरती, संध्या दीपक -माल ।
करती शिव-नीराजना,ज्यों निशि तारक-थाल ।।
मुक्ति केलिस्थली ।।

विश्वनाथ - अभिषेक बरसकर फिर-फिर करना ।
रिता-रिता कर कलश कलित सुरसरि-जल भरना ।।
कहना 'रखें न चित्त में, क्षोभ रंच भी घोल ।
दुखित हुआ मन बावला, बोला तुम्हें कुबोल ।।
क्षमा कर गंग मां' ।।

गरज-गरज, कर घोष 'शंभु-शशिशेखर-शंकर ।
भावनाथ-भव-भव्य-त्रिलोचन-त्रिपुरहरण - हर' ।।
कहते पग-पग शर्व - शिव, शाम्भवीश-ईशान ।
बढ़ना प्रिय! ईशान-दिशि, करते जोवन-दान ।।
हरितिमा बांटते ।।

कोल-भील-संथाल लिये अंजुलि की थाली ।
निर्निमेष तव ओर देखते दे-दे ताली ।।
दिखें दूर से बीर ! ज्यों, करना ध्वनि सोल्लास ।
तन उघड़े मन के ढके, लिये तुम्हारी आस ।।
खड़े होंगे जहाँ ।।

ऊंचीं-नीचीं ललित शिला - मालायें मनहर ।
करता जिन्हें अलाव हृदय पर शिला ग्रीष्म धर ।।
करना प्रमद प्रदान प्रिय! सरसा प्रेम-प्रपात ।
झुलस न जाँये पथ निरख, दृग-भूषण वे गात ।।
त्वरित जा तोयधर ।।

इक्षुमती-वाग्मती- भूयसी - विरजा - मँडना ।
रचतीं जिसके अंग-अंग बहुरंगी - रचना ।।
तीरभुक्ति नितमंगला, कृपापीठ श्रीक्षेत्र ।
निमिकानन निर्कल्मषा,मुदित श्रुतिस्मृति-नेत्र।।
ललित मिथिलापुरी ।।

कारंडव कलकंठ भरे कज-कुमुद - कुंज सर ।
सोनचिरैया-पिका-पपैया-गोरैया वर ।।
तीर-तीर अमराइयां, पंख पसारे मोर ।
पारावत-चकवा-लवा-शुक-सारिका चकोर ।।
प्रकृति-केलिस्थली ।।

याज्ञवल्क्य से विदुष, गर्गजा सी कल्याणी ।
मानो उतरे ब्रह्मलोक से भू विधि-वाणी ।।
मुनिवर अष्टावक्र से, धर्म-व्याध से संत ।
शतानन्द-मांडव्य से, द्विजवर जहां अनन्त ।।
ज्ञान-शृंगाटिका ।।

अटा-अटा पर अटे जहां वे विहग अनोखे ।
जिनके श्यामा ऋचा झांकतीं चंचु झरोखे ।।
जहाँ पिंगला - दृष्टि से, पाया पिंगल सृष्टि ।
प्रामाणिकता सिद्धि-हित, निज कृति की पटु-कृष्टि ।।
नित्य आते नमित ।।

पुष्प-वाटिका वहीं एक वह सरस सुहानी ।
जहां गणप-गुह सहित विराजीं मुदित भवानी ।।
उनसे कहना "मां! दिये, जो तुमने वर श्याम ।
उन्हें छीन कर ले गया, सीता से विधि-वाम ।।
छिपा क्या आप से ।।"

रखना सुस्थिर, चित्त वहां मन मत्त बनाती ।
बहती एक बयार अनल जल में धधकाती ।।
जिससे रहती हैं सभय, नन्दन-चैत्र - समीर ।
कर देतीं परकीय-हिय, हृदय थामना वीर ।।
हँसी मत मानना ।।

सुभुज-ताडका प्राण बाण जिनके हर लाये ।
वहीं किंकणी-नाद वीर वे झेल न पाये ।।
ले जिसने अजगव सहज, धोई भू घट-नीर ।
उन भीतों को देख वह, धार न पाई धीर ।।
धरा की अंगजा ।।

देख खड़ी की खड़ी रह गई हुई दिवानी ।
भूले नयन स्वभाव, अधर-पथ भूली वाणी ।।
बरबस फेरे से फिरी, फिर-फिर लखती बाल ।
'सखि! क्या''सखि! वह शशक-शिशु,''या शशांकदलजाल' ।।
निरत रति-तस्करी ।।

करना हरिता हरित-हरित चित बरस-बरसकर।
भर-भर कर सर-सरित रसा-रज सरस-सरस कर॥
तब जाना पितुवर-भवन, जहां नयन भर स्नेह।
होंगे तुम्हें निहारते, हुए विदेह विदेह॥
भाव-भट-व्यूह में॥

कृषक जोतने भूमि चले होंगे हल लेकर।
उभरी होंगी अमित-अमित सीतायें सत्वर॥
बूढ़ी आँखें खोजती होंगी, हिय ले शूल।
ज्ञान हुआ होगा मलिन, सोच, गये नृप भूल॥
एक गृह, खड्ग दो॥

उनको देते धीर दिखेंगे वीर! वीर वे।
जिनसे पाया धीर क्षीर सशरीर नीर वे॥
गुणनिधि गुण-निधि बंधु मम, धरे हथेली माथ।
पत्रा लख, पूनम निरख, राखीवाला हाथ॥
बिलखकर देखते॥

वहीं पास ही कहीं, दबाये फटती छाती।
मांजा खाई दीन मीन सी देह छिजाती॥
'हो विधना तेरा भला,' कहतीं ले-ले श्वांस।
बैठीं होंगी खिन्न, ज्यों, बेरी - कुंज कपास॥
सुनयना अंबिका॥

सावन आया जान, सहेली आई होंगी।
भर नव-रंग उमंग नवेली लाईं होंगी॥
जैसे ही होगा सुना, वैदेही-वनवास।
अविश्वास-विश्वास पथ भूलीं सकल हुलास॥
हुई होंगी विकल॥

पुनः एक ही बार पछाड़ें भू-पर खातीं ।
रोईं होंगी फफक धरित्री-गगन गुँजातीं ।।
होंगे झूले झूलते, सूनी तरुवर-डार ।
करतीं होंगी शून्य में, सूनी आंख विचार ।।
'हाय क्यों आ गईं' ।।

रोए न होंगे कौन कौन यह देख मातु-पितु ।
लगी न होगी किसे ग्रीष्म-दारुण यह रस-ऋतु ।।
हुआ न होगा उस समय, किस हिय पर पवि-पात ।
निकली होगी एक ध्वनि, 'हा बेटी की जात ।।
वधिक की गाय सी' ।।

दावानल से दग्ध विपिन सी उस मिथिला पर ।
अन्तर का सा स्नेह मेह बरसाना जलधर ।।
कर सीता-सीता हरित, दे सरि-सानु प्रवाह ।
पाने दुर्लभ विष्णु - पद, जाना सिंधु अथाह ।।
बताते तीय-गति ।।

फिर बढ़ना नैऋत्य-दिशा की ओर हर्ष कर ।
पाना अभिमत श्रीश-शिला गंडकी दर्शकर ।।
जिसके तट पर ग्राह से, रखने गज की लाज ।
दौड़े पदचर चक्र ले, शैया तज व्रजराज ।।
ओढ़ श्री-नीलपट ।।

कुछ चलते ही शोण-जान्हवी का शुभ - संगम ।
ज्यों उमंग प्रत्यंग - अंग की प्रकट मनोरम ।।
धानी-धानी चूनरी, उकरे उभरे फूल ।
डाल प्रकृति भू-भुज भुजा, फहरा नवल-दुकूल ।।
मुदित मन नाचती ।।

इससे पश्चिम दृश्य और भी अधिक मनोहर ।
करतीं लोल विलोल चक्रिका- माला घर्घर ।।
सरिवर सरयू रथ रुचिर, आतीं सुरसरि-गेह ।
लातीं कर पद-वंदना, गंगा देतीं स्नेह ।।
सजातीं शीश-मणि ।।

वहीं दिखेगा जलद ! सत्ययुग त्रेतायुग का ।
मंजुल अभिमत-कुंज सु-आश्रम गाधि-तनुज का ।।
शोभित प्रत्यंचा - वलय, आहुति देते हाथ ।
स्ववश अवश परवश नयन, नभ लखते मुनिनाथ ।।
दिखेंगे यज्ञ-रत ।।

उमड़-उमड़ कर घुमड़-घुमड़ कर वहां बरसना ।
धो-धो धरती-अंग गंग-धोवन ले मिलना ।।
यहां दंडकारण्य-सम, कर ऋषिजन-आहार ।
कीं दनुजों ने ढेर थीं, पावन - अस्थि अपार ।।
सजाना शिव-जटा ।।

कहना मुनि से पुनः वंदना बार-बार कर ।
"लाकर जिनको आप" बना आये थे सियवर ।।
लाये जय कर जो चरी, तव "सुपौर घनश्याम ।
करती बन वन-वासिनी, पुत्री वही प्रणाम ।।
अवध-दृग-कंकरी ।।"

उत्तर-मेघ

फिर जाना आग्नेय, सुशीतल करते कण-कण ।
बढ़ते जाना सरस सु-रस सरसाते क्षण-क्षण ।।
पुर-परिखा-प्राचीर से, प्रथम पणव - उद्घोष ।
श्रवण पड़ेगा अरि-भयद, परिजन-मन-संतोष ।।
अवध नगरी वही ।।

अद्वितीय सा मेरु, द्वितीय सुमेरु - कुधर का ।
दर्शन होगा कनक-भवन के कनक-शिखर का ।।
सूर्य-भ्रांति हर चँवर सा, सूर्यांकित ध्वजराज ।
करता होगा गगन में, कलित-केलि गति-व्याज ।।
अमर-जन प्राण-प्रिय ।।

घेरे चारों ओर नगर-प्राकार सुसंघट ।
ज्यों सावित्री-सूत्र -सप्तकी शुभ अक्षयवट ।।
कंगूरे मंगलकलश, किँगरी वंदनवार ।
सजीं शतघ्नीं चतुर्दिक, मंगल-द्रव्य अपार ।।
लिये ज्यों श्री खड़ी ।।

धोती परिखा-चरण कमल-दल खिले चढ़ाकर ।
करती उवटन उषा, अरुणिमा नित्य लगा कर ।।
भरती सिर सिंदूर शुभ, गाती सांझ सुहाग ।
सानुराग तनुराग सा, मलता पवन पराग ।।
अवध-प्राकारिका ।।

खड़ी हठीली सुता सूर्य की ज्यों नभ-आंगन ।
बहलातीं दे ज्योति-वारि छवि-भूषण क्षण-क्षण ।।
ठिनक-ठिनक कर फेंकती, ठुमक-ठुमक फिर धार ।
हुई चाव में बावली, रच-रच नव शृंगार ।।
सती दृढ़ चित्त की ।।

मध्य-मध्य में द्वार सकल दिशि शीश उठाये ।
सुन्दर कुलिश कपाट, सुभट ज्यों कवच सजाये ।।
जब देखोगे दूर से, अद्भुत दृश्य ललाम ।
'करते यें हरगिरि - गुहा, शिवा-सिंह विश्राम ।।'
कहोगे तुम स्वयं ।।

ज्यों कर गोपुर पार बढ़ोगे मारुत-स्यन्दन ।
अवध-धरा - परिधान दिखेंगे अद्भुत उपवन ॥
कहीं सेतु पर सर-नहर, कहीं नहर-सर सेतु ।
फिरता ऋतुपति मत्त सा, फहराता झष-केतु ॥
भूल मंदार-वन ॥

कहीं मालती लता, कहीं वेला अलवेली ।
कहीं सप्तला ललित, झूलती कहीं चमेली ॥
कहीं केतकी-कर्णिका - वकुलावलि - करवीर ।
चंपक-कुंद-कंदव कण, करते नृत्य समीर ॥
हुए सशरीर से ॥

कदल-रसाल-शिराल-तितिली-बेल - श्यामला ।
मृदुफल-कुचफल-निकुच-राजफल-पनस-आमला ॥
प्रमुदित होकर कूंजते, विहग-वृन्द आवास ।
लगता मानो रच रहे, राग-रागिनी रास ॥
उभय-संध्या-समय ॥

पुर-पथमाला रुचिर, बिछी चौसर सी विधि की ।
तट-तट अगणित हाट, ठाट प्रति वस्तु-परिधि की ॥
अटे घटा - अट्टालिका, पंच-सप्त-नव खंड ।
मानों फटे तुरन्त के, सृष्टि - विहगी-अंड ॥
इन्द्रधनु-दंड से ॥

मरकत-माणिक-कुलिश-नील-विद्रुम-मुक्तामणि ।
पुष्पराग-वैदूर्य-तमोमणि-स्फटिक-हरित कणि ॥
जड़े द्वार-वारी - सुपट, वलभी-तट आरोह ।
मानो आये अवध-श्री, लखने शेष सु-मोह ॥
सौंप भू श्रीश को ।

सजीं विचित्रा चित्र-मालिका चित्रसारियां ।
ज्यों प्रस्फुटिता स्वप्न-सृष्टि की दृष्ट क्यारियां ।।
लजा न जाये सृष्टि मम, देख शिल्पि-जन-सृष्टि ।
सृष्टा छिप बैठा, छिपा, प्राणदायिनी - वृष्टि ।।
दीन का ब्रह्मशर ।।

मंत्रमुग्ध जलयंत्र - रँगीले चित को करते ।
पथ-पथ का निशि-दंभ नागमणि-दीपक हरते ।।
भरते, भरे विराग मन, स्वतः सिद्ध अनुराग ।
पींग बढ़ातीं भावना, भाव रचाते फाग ।।
जिन्हें अवलोक कर ।।

घर-घर धेनु सवत्स, कूप, तुलसीस्मित आंगन ।
होते नित गणराज-शिवा-शिव-रवि-हरि अर्चन ।।
सप्तवार त्यौहार नव, नित-नित नूतन पर्व ।
लिये सबल चारों चरण, शोभित धर्म सगर्व ।।
सत्ययुग से अधिक ।।

उषा-आगमन पूर्व, छांव तारा-मंडल की ।
पाते मुदिताशीश नारि- नर सरयू-जल की ।।
सुन घंटध्वनि श्रुति-ऋचा, देख मांगलिक-वेष ।
पद्मराग-शृंगार कर, आते हैं दिवसेश ।।
दिव्य-सप्ताश्व सज ।।

कर गृहमार्जन-स्नान-देवपूजन जब मिलकर ।
लेकर चाकी हाथ, अन्न पात्रों में भर-भर ।।
कंगन स्वर, मंजीर ध्वनि, गातीं सुपद रसाल ।
विहग चुगातीं रहँसते, प्रमुदित नयन विशाल ।।
रमा ज्यों नाचती ।।

जलधर ! उत्तर -छोर ग्रवध के सरयू बहती ।
त्रिभुवन - पातक -चंड चंड चंडी सी दलती ।।
रद-माला विल्लोलिनी खिला, खिली जगदंब ।
बनती ग्रमित दुलार दे, संसृति-जन-अवलंब ।।
दर्श देगी तुम्हें ।।

करते क्षीण स्व-ग्लानि स्नान जिन में प्रयाग कर ।
स्वर्गङ्गा के पथिक,ग्रमर जिसकी रज कण भर ।।
सदा चाहते चित्त में, अभिमत देती दान ।
चतुफलि छार कछार की,विमल वारि निर्वाण ।।
वंदना भक्तिदा ।।

करना सर्वप्रथम नमन, उन मां सरयू का ।
फिर आना नागेश-भवन जो सेंदुर भू का ।।
शत-शत बार सहस्रघट, कर-कर हर-अभिषेक ।
वीर ! मांगना एक वर, अवध-हेतु सुविवेक ।।
शंभु दानी बड़े ।।

धूम्र चैल, दव दंड, बटुक - मंत्रस्वर मर्मर ।
जहां धर्म-ध्वज गगन उड़ाता निर्भय अध्वर ।।
विमल वसिष्ठाश्रम वहीं, जहां नंदिनी-धेनु ।
वे ग्ररुन्धधती दृष्टि निज,करतीं जो शुचि रेणु ।।
भव्य गुरुकुल पुलिन ।।

जटा-श्मश्रु सुश्वेत, देह काषाय सुहावन ।
मूर्तिमान भगवान - धर्म गुरुदेव - तपोधन ।।
नमित-नम्र-निर्मल-नयन, ज्ञानोदधि गंभीर ।
मृग-मृगेन्द्र उरधान, ज्यों, रस-गुरु शांत शरीर ।।
नमन कर नृत्यकर ।।

फिर फिरना साकेत नगर पर गर्जन करते ।
जल थल करते हुए, लिये छवि-केतु फहरते ।।
धैर्य-ध्वजा धर अधर का, हरते अंतर-धीर ।
यों बढ़ना ज्यों जान लें 'आया सिय का बीर ।।
देख वनवासिनी ।।'

किंतु इसी के साथ नम्रता भरी प्रार्थना ।
मेरी प्यारी प्रजा, अमंगल स्वल्प न करना ।।
हरना तन-मन की तपन, अनजाने का पाप ।।
किसी दिवस दे दे न आ, कोई कोई शाप ।।
गलेगी मैथिली ।।

लाँघ नगर जब राजभवन की परिधि छुओगे ।
किसी वृक्ष की ओट, कीश तुम एक लखोगे ।।
सिमटा कुंडलिनी सरिस, दे घुटनों में शीश ।
भार भरी हिय-भूमि ज्यों, धारण किये फणीश ।।
मौन फुंकारता ।।

धीमे-धीमे बंधु ! बरसना उस मम प्रिय पर ।
कर दे तुम्हें न भस्म कहीं लोचन तरेर कर ।।
शौर्य-धैर्य जिसका अगम, गुणनिधान बलवान ।
रत्न अंजनी-खानि का, पवन - पुण्य हनुमान ।।
दूत रघुनाथ का ।।

जब वह देखे तुम्हें, उठाकर तनिक विलोचन ।
करते रहना, सतत् कराते मज्जन, वंदन ।।
सब विधि सब कुछ जानले, जब तव अंतर झांक ।
चलना रस से सींचकर, चिरे हृदय की फांक ।।
सीय-आशीश दे ।।

पुनः दिखेंगे कहीं पौर में परम सलौने ।
गोरे-गोरे राज-मृगी के से दो - छौने ।।
वे ही लक्ष्मण-रिपुदमन, मेरे देवर बाल ।
सावन-सर-सरसिज सरिस, भरे लुनाई लाल ।।
जुते वृष राज-हल ।।

मौन एक का, बंधु ! खोजता होगा वाणी ।
कहता होगा एक, 'मौन ही रह कल्याणी ।।'
खड्ग एक की खोजती, फिरती होगी लक्ष्य ।
एक लक्ष्य पर, ढाल सा, ढकता होगा वक्ष ।।
उहापोहों भरे ।।

इतना करना सिक्त रिक्त हो बरबस पल भर ।
धायें अंतः-वास बदलने भूषा सत्वर ।।
लख लें इस मिष निमिष भर, प्रियतम प्रिया प्रकाश ।
इतना ही मन मान कर, दे लूं दुख-पग-पाश ।।
विपल हित ही सही ।।

किसी भवन में कहीं डाल ओहार अकेली ।
लेकर तन-मन पीर, पीर की बनी पहेली ।।
तीन सहेली सी बहन, दे-दे गल-गल बांह ।
बैठीं होंगी दाह को, दिये सजल-दृग-राह ।।
मौन भू-डोल सीं ।।

प्रथम चलाकर पवन, भवन-ओहार उड़ाना ।
मन्द्र घोप कर पुनः चित्त चैतन्य बनाना ।।
फिर बरसाना द्वार से, शीतल-मंद फुहार ।
आई घनरथ अग्रजा, जाने देने प्यार ।।
मृगीं वन-दव घिरीं ।।

जिनकी पौर अपौर बहुत दिन से घन ! रहतीं ।
जिनसे प्रजा-कलत्र हृदय का सुख-दुख कहतीं ।।
समाधान देतीं सहज, सुनतीं वेद-पुराण ।
दया-धर्म की खानि सी, अपनी ही उपमान ।।
प्रसवनी प्राण की ।।

जगमोहन के मध्य चतुष्का एक बिछाकर ।
मध्य-मातु के कंध कांपता हाथ टिकाकर ।।
शुभ्र केश सुश्वेत पट, श्वेत सुचन्दन भाल ।
तुलसी की माला हृदय, सत्त्व-रसारुह-छाल ।।
विराजीं देखना ।।

कर उन मां का नमन बरसना सम्मुख छम-छम ।
पल-पल चपला चला चपल हो सहज सहज! मम ।।
सुनना, बोलेंगी तुरत, "देख सुमित! " भर नीर ।
"मेरी वधु का यह जलद, कानन से मंजीर ।।
चुरा लाया अरी" ।।

बता नीरधर ! बता कहाँ देखी सिय मेरी ।
प्रष्ठौही का बना-क्रूर दुर्दैव अहेरी ।।
कैसी है किस विपिन में, क्या लेती क्या धार ।
जीवन-नौका खे रही, भीरु बिना पतवार ।।
विपद् की बाढ़ में ।।"

उस वय सिक्तक ! सिक्त सकल स्वर होंगे तेरे ।
रह जायेगा हृदय, विचारे-शव्द सकेरे ।।
बरबस बरसाता नयन, बरसेगा तू मौन ।
किसकी पाती, दूं किसे, सत-अधिकारी कौन ।।
सकेगा सोच क्या ।।

खो-खो पल-पल धैर्य परस्पर धीरज देतीं ।
दे-दे शापाशीश तुरत ही लौटा लेतीं ॥
सागर पोत-कपोत ज्यों, युग-पुष्कर-विस्तार ।
पाता रंगागार निज, दारुण कारागार ॥
अंब त्यों परवशा ॥

वहीं पास ही कहीं, एक बिछुड़ी इनमें की ।
होगी भू पर मौन, शेष ज्यों केंचुल फेंकी ॥
स्निग्ध आवरण गांठ तन, गांठ-गांठ दव-डांस ।
विरहित पल्लव-फूल-फल, निर्जन की सी बांस ॥
हाय ! मां केकई ॥

बहुतों ने बहु दिया मान, मन मना न पाई ।
कल की रविपुर-प्रभा, आज धुंधली परछांई ॥
जग का वैभव कौन सा, हुआ न जो पद-दास ।
त्रिभुवन का गुण कौन सा, जो न घोर उपहास ॥
करा मां से गया ॥

लक्ष्मी सा सौन्दर्य, साज शुभ इन्द्राणी सा ।
गिरितनया सा धैर्य, गिरा-वैभव वाणी सा ॥
रोष शेष-श्यामा सरिस, मंत्र-शक्ति सम बोध ।
अश्रुत-शौर्य त्रिमूर्ति सा, अरि-पयोधि-अवरोध ॥
धैर्य-तट तुंग सा ॥

लघु-मां जग-कल्याण-हेतु मख निकट रचाकर ।
हरि सी मूर्ति विलीन हुई देकर दर्शन-वर ॥
अग्नि सबल की, क्या न दे, सुख-सुपुत्र-सिंदूर ।
पाई क्या, हा ! क्या कहूं, शाप भरी पद-धूर ॥
केकई-केकई ॥

कैकेई से सीख जगत! प्रायश्चित करना ।
सीख सीख! केकई मातु से जगत-विचरना ।।
किया किसी ने यदि कभी, लघु मां-प्रति दुर्वाद ।
देगी निश्चित जानकी, शाप उसे सविषाद ।।
भुवन-त्रय जान ले :।

मन ही मन कर नमन मौन उन मां का मन से ।
सावधान हो वीर! झांकना पुनः गगन से ।।
कनक-भवन की झांझरी, दृष्टि क्षणिक, क्षण डाल ।
असमय पतझर झेलता, झंझा-व्यूह तमाल ।
दिखेंगे भूप त्यों ।।

कैसे भूलूं वीर! धीर दूं कैसे हिय को :
सौंपू किसे निकाल, पंच-तत्वों से जिय को ।।
यह विदेह की पोषिता, होती हुई विदेह ।
होती स्नेहिल देह पर, प्रियतम का प्रिय स्नेह ।।
हृदय में याद कर ।।

सुनते ही 'प्रिय' शब्द याद प्रियतम की आती ।
प्रथम दिवस की प्रथम-प्रीति-प्रतिमा बलखाती ।।
हो जाती सम्मुख खड़ी, लिये सुमन-दल-पुंज ।
क्षण-क्षण में लेता छिपा, वैरी विरह-निकुंज ।।
तरल कर-कर नयन ।।

फिर वह श्याम किशोर रूप चित-चोर सलौना ।।
मंजुल खंजन मेघ, मेघ - वल्लरि का छौना ।।
गजपति गति, मृगपति प्रगति, रतिपति यति मुस्कान ।
कमल - सनाल मराल-मुख, त्यों अपलक संधान ।।
किया धनु शंभु का ।।

शीश किरीट, पटीर ललाटक हाटक केशर ।
माणिक मणि से अधर, नासिका मुक्ता मनहर ।।
श्याम नयन, श्यामल वदन, कुंतल-दल सुश्याम ।
नीलकमल रविजा-सलिल, सजल जलद विश्राम ।।
मुदित ज्यों कर रहे ।।

पीन वक्ष,कटि क्षीण, खिलातीं मीन भुजायें ।
करतल छूते जानु, भानु सी मणि-मुद्रायें ।।
बाहु-मूल कल स्थूल से, कलित कनक-उपवीत ।
शील-परिधि-निधि-पदक सम, भृगु-पद चिह्न पुनीत ।।
अन्य कौस्तुभ सरिस ।।

मणिमय-कुंडल लोल झूमते, दीप्ति झुलाते ।
कलगी-कुंतल श्वेत-श्याम दिशि-दिशि बलखाते ।।
लहराता पट-पीत कटि, फहरा कांदुक फेंट ।
कनक-दुकूल सुकंध का, खा-खाकर अलबेट ।।
कांति संचारता ।।

नीचे-नीचे नयन तनिक से ज्यों तिरछे कर ।
लखते, लगते हृदय उड़ा ले जाते स्वस्वर ।।
देखीं थी दो बार ही, पवनोच्छ्वास-बहार ।
मिथिला में शृंगार-मय, लंक भरी अंगार ।।
आज या ये हरे ।।

तब आंचल की ओट, कोट करतल के छिप कर ।
बच निकली, था दंभ हँसा विधि हुंकारी भर ।।
ऊपर नभ नीचे धरा, दिशि-दिशि प्रेत-विलास ।
मन का स्नेहावास ले, तन में स्नेह-सुवास ।।
भरी, भर दी विपिन ।।

लिये अनेकों याद, पंक सविषाद गजी सी ।
फँसी, फँसे गजराज राज-शृंखला हँसी सी ।।
हँस पड़ती, करती रुदन, बैठी विजन उदास ।
विधि क्या यह सिय ही मिली, करने को परिहास ।।
भुवन निर्जन हुए ।।

पुनः सोचती, उचित विधाता अनुचित कैसे ।
जिसने दुर्लभ पिता जनक-श्रीदशरथ जैसे ।।
दिये, दिये रघुनाथ से, त्रित्रय नाथ अलभ्य ।
रिसता सीता-भाग्यघट, जलद नव्य दधि भव्य ।।
भरे, कैसे भरे ।।

डाल नयन में नयन, विराजे थे प्रभु प्रमुदित ।
हुआ हाय ! दूर्दैव कहां से कैसे समुदित ।।
परम मनोहर धार कर, कंचन-मृग का स्वांग ।
हृदय-बुद्धि-मन-चित-अहं, कूप विभ्रमी-भांग ।।
अचानक आ गिरी ।।

विपद् कौन सी घोर सामने तुरत न आई ।
किस संकट ने भ्रकुटि न लंका विकट दिखाई ।।
देख सकुल रावण-मरण, पा रघुपति-पद-कंज ।
सदा-सदा हित हो चुकी, सीता-विपति करंज ।।
हुई, ऐसी हुई ।।

ज्यों पा मृत्यु-अकाल प्रेत बन पामर धाता ।
जीवित से भी अधिक अग्नि में धधक सताता ।।
पहिले दूरीं दूर थीं, अब सब दूरीं पास ।
त्यों वह वन आवास सा, आज बना वनवास ।।
विपद् जानी कि ये ।।

उस वन में तो नित्य प्रकृति के दृश्य सुहाने ।
शिखि-शिखिनी के नृत्य, सारिका-शुक के गानें ।।
कलित किलोल कुरंग की, मत्त मतंग विहार ।
सरि-सर्पों की अँखमिची, ऋतु-माला शृंगार ।।
विपिन वह स्वर्ग था ।।

चुन-चुन नवल प्रसून, विभूषण बना-बना कर ।
लखते भर-भर चाव, पिन्हा, अति पास बिठाकर ।।
परम रम्य वैकुंठ का, सकुचाता आल्हाद ।
सिंह-सिंहनी सँग बना, सुख-निनाद भय-नाद ।।
अभय भी अब भयद ।।

देख रुधिर, भर कोप ब्रह्म-शर-हेतु बढ़ा कर ।
रुका विनय लख, सींक धरा की धरी धनुष पर ।।
क्षण भर में कौतुक किया, सके न जान अनन्त ।
प्रथम बार संकुचित चित, निर्भय किया जयन्त ।।
न रुष-करुणा गये ।।

'सिय-सिय' कह, कर रुदन रुलाये जड़ चेतन से ।
दधि पर तैरा दिये शिला-दल कमल-छदन से ।।
धरा हाथ-धनु, धर धरा, माथ हीन दशमाथ ।
वही अचानक हो गये, निठुर नाथ रघुनाथ ।।
नहीं विश्वास रे ।।

अपनी लहू-लुहान देह का भान भुलाकर ।
फांदे कठिन कुराह, अंक बहु बार उठाकर ।।
रात-रात भर जाग कर, सुना कथा कमनीय ।
मध्य-मध्य संपुट सरिस, 'मत डर-मत डर सीय' ।।
आज क्या हो गया ।।

उतर न पाती रात चित्त से वह उजियारी ।
पूनम से बन गई अमावस जो अँधियारी ।।
करती विविध विनोद जब, सोई भुज-उपधान ।
मिला प्रात संदेश हा ! द्वार उपस्थित यान ।।
रानि ! वनदर्श-हित' ।।

रघुकुल-रानी 'रानि! ' बार अंतिम यह सुनती ।
विदा न होती, विदा प्रमुदिता को कर चलती ।।
असन-वसन जो लद रहे, रथ में अमित अपार ।
वह अंतिम-यात्रा समय, शव-शिविका-शृंगार ।।
तनिक जानी न हा ।।

देख मुकुर में चंद्रकला जो शीश सजाती ।
तुरत लखूंगी धरा-धूलि की बलि, बल खाती ।।
वे आभूषण दीप्ति-निधि, अधिक दीप्ति निर्व्याधि ।
क्यों, निज भावी जानते, पावन गंग-समाधि ।।
शिला अचला-सुता ।।

फड़की दांई आंख-बांह, तन कंपन आई ।
फिर-फिर बारम्बार राह से गई बिलाई ।।
बिलखी क्रौंची, स्तन लगे, किये विलग गौ बाल ।
देखा, सहमी, किंतु हा ! फिरा न रथ तत्काल ।।
फिरी साकेत, हा ।।

मुझे पता क्या, किसे पता था, किसे नहीं था ।
तुमसे छिपा परन्तु लखन ! क्या रंच कहीं था ।।
उस दिन का बदला लिया, जब बरबस प्रिय-पास ।
भेजा, अथवा सत्य ही, रहा न मम विश्वास ।।
किन्तु तव दोष क्या ।।

बना जिन्होंने स्वयं अग्नि साक्षी, ली वांये ।
वचन एक ही साथ उन्हीं ने सकल भुलाये ।।
बांई के बांये हुए, दांये - कर के फूल ।
देने विदा न आ सके, यही धधकता - शूल ।।
हृदय को हूलता ।।

इतने दिन तक रही साथ, पर जान न पाये ।
क्या समझे सुन 'त्याग' रुदन कर लिपट न जाये ।।
पूंछ न ले कैसे किया, प्रभु ! दासी का त्याग ।
अथवा फिर कर यान से, कहे 'भवन रे ! जाग ।।
जानकी जा रही' ।।

हँसी-हँसी में जो न कभी यह तक कह पाई ।
'जिससे बिँधा जयन्त' कहां वह शर रघुराई ।।
किसको ऋण-धन में दिये, किये किसे प्रभु दान ।
तुरत न लंका-हेतु जो, सजे दिव्य-धनु बाण ।।
प्रिया लख वंदिनी, ।।

मांगा बस मृग एक, एक दिन उसका यह फल ।
नभवल्ली सा रहा, वही गल-गल फल प्रतिपल ।।
यही बात एकान्त की, रही सभी को याद ।
निर्विवाद यद्यपि किये, दव ने सकल विवाद ।।
विभावसु भी अनृत ।।

पर इतना प्रभु! कहो, सिया उस पल क्या बोली ।
कूदी कितनी बिलख धधकती भीषण होली ।।
जो उस दिन कुछ बोलती, सुन 'सीते ! वनवास' ।
समझी, जीत नहीं सकी, प्रियतम! तव विश्वास ।।
अभागी जानकी ।।

क्या यह वन का वास, नाथ! रौरव भी देते ।
लखते, भर मुस्कान सिया को पद-रज लेते ।।
अपनें ही मन से गये, तुम राजेश्वर! हार ।
झेल न पाये पितु-सरिस, निज वचनों की मार ।।
तिमिर तिमिरारि-ज्यों ।।

कहते-कंहते सिया, भरी बदली सी बरसी ।
'क्या की क्या कह गई अभागिन रसना मुझ सी।।
वैतरणी की कल्पना—करती शिव-शट-कुंड ।
स्यार लपकता किस दिवस, वधता सिंह वितुंड ।।
चेत कर बावली' ।।

मां के जाये वीर! सलौने प्यारे जलधर ।
मेरा घोर प्रलाप, चित्त में मत धर मत धर ।।
अबला-निगुरी-विजनवन, हृदय प्रीति, मुख रोष ।
जो कह जाये न्यून ही, किंतु दोष तो दोष ।।
हरण-कारण यही ।।

हारे ज्वारी-सरिस दांव अपना ही लखती ।
प्रियतम की क्या दशा, न पगली हृदय समझती ।।
निश्चित् ही घनश्याम मम, सुन रे! नभ-घनश्याम ।
बैठे होंगे ओट कर, भुजा भरत की थाम ।।
कहीं आंसू भरे ।।

सजते होंगे नहीं विभूषण अब पहले से ।
बिना मुकुर ले पोर तनिक चन्दन धीरे से ।।
धरते होंगें भाल पर, भर ठंडी सी आह ।
चलते होंगे नमित मुख, बिना धूम्र की दाह ।।
कलेजे में लिये ।।

पीठ-चँवर-पदपीठ-छत्र-उपधान मनोहर ।
पंचालन प्रज्ज्वलित सरिस बन परम भयंकर ।।
करते होंगे दग्ध चित, उनका आठों-याम ।
कैसे होंगे जूझते, प्राण प्राण - संग्राम ।।
अकेले रह गये ।।

चिंता केवल यही दिवस-निशि मुझको खाती ।
करते होंगे नाथ निशा क्या दिया-बाती ।।
कनक-भवन की सेज पर, कर किससे दो बात ।
कैसे होंगे काटते, सिय - पति काली - रात ।।
घोर उरगी-सरिस ।।

सोते होंगे नहीं मेघ ! अब वे शैया पर ।
गिरते होंगे वंद सुपट कर खुली धरा पर ।।
कहते-कहते रात भर, 'हा सीते! हा सीय' ।
करते होंगे रात का, प्रात प्रेय-रमणीय ।।
अभागिन-परिणयी ।।

रखती होगी कौन पादुका अब पैताने ।
लाती होगी चीर दँतुनिया दे, नहलाने ।।
करती होगी मुकुट को - सीधा, हँस कर कौन ।
धरते होंगे मुकुट-पट-धनुष स्वयं ही मौन ।।
स्वयं पट खोल निशि ।।

बता जलद रे! बता, परम - संकोची प्रिय मम ।
पीते होंगे नीर, श्रमित किससे ले थम-थम ।।
वैदेही-मिष हाय प्रिय! लिया स्वयं वनवास ।
वन भी दुर्गम-गिरि घिरा, रंच न वात-विलास ।।
अंधतामिस्त्र सा ।।

"रहना ही था विजन, साथ दासी के आते ।
पल में नन्दन-विपिन घोर-कांतार बनाते ।।
फिर बहकी, क्या कह गई, कैसे आते भूप ।
यदि आ पाते, बाँधते, क्यों सिय को बलि-यूप ।।
राज-महिषी समझ ।।

धन्य-धन्य रे धर्म ! धर्म-वारिधि के मंदर ।
बांट जगत को अमृत, रखा निज हित विष घट भर ।।
अब समझी, निज ज्येष्ठ को, समझे शिव-भगवान ।
इसी हेतु निज ध्यान में, करते सुमन प्रदान ।।
जनकजा ! मूढ़ तू ।।

जग मर्यादा-पुरुष नहीं पुरुषोत्तम कहता ।
क्यों, यह मेरा हृदय आज हो विलग समझता ।।
किन्तु हुए हम विलग क्या, नित्य हृदय संयोग ।
भला किया, जो हर लिया, सिय का संसृति-रोग ।।
झेल फिर सेल सा ।।

मैं वैरागिन कहाँ, नटी स्मृति-रंगायन की ।
सजी अमित श्रृंगार, नायिका रामायण की ।।
लख सुवेष नटराज तव, धारूँगी प्रतिवेष ।
चरण-चरण पर ताल दे, काया-क्लेष अशेष ।।
करेगी शाम्भवी, ।।

कनकभवन के जलद ! चतुर्दिक हर्ष बरसना ।
बजता मृदुल मृदंग बंधु ! इस भांति गरजना ।।
कनबतियों सी फरहरी, फहरा सरस फुहार ।
धीमी-धीमी चंचला, चमका बारम्बार ।।
प्रियांगन नाचना ।।

शीतल-मंद समीर, धीर धीरज का हरती ।
प्रणवीरों के दंभ मसल पद-रेणु, विचरती ।।
वही, चली जो उस समय, जब प्रकटा रसराज ।
शिव से वैरागी हुए, मोहित देख सुसाज ।।
मोहिनी श्रीश-छवि ।।

उघड़ें जब प्रिय-पलक, भरत-दिशि से सकुचाकर ।
करना प्रियतम-नमन शाख-छवि शीश झुकाकर ।।
धूलि-धूलिका अधखिली, बिचली कलिका देख ।
आह भरें, अधमुंद नयन, 'कह विधना, का लेख' ।।
करें सीता-स्मरण ।।

उतरा छवि-कष बूंद-पक्ष मय प्रखर-धार शर ।
तभी समीरण - चाप सजाना जलधर! नागर ।।
रचता नृत्य मयूर सा, गाता राग मल्हार ।
श्रीरघुवंशकुमार - उर, सरस-भाव संचार ।।
सतत् करता चले ।।

पूंछें, पूंछ दुकूल-कूल से जब निज लोचन ।
'किस दिशि का यह भरत! अनोखा जीवन-धन घन ।।'
तब कहना-कहना जलद !' कहती-कहती सीयं ।
बिलख उठीं कहती हुई, 'राजेश्वर! रमणीय ।।
चरण की धूलि दो' ।।

सुन सिय करुण-विलाप तपस्विनियां बहु धाईं ।
"सहसा क्या वनरानि ! गगन में दिया दिखाई" ।।
'भूल न रानी राम की, तू वनरानी आज' ।
बोलीं पूंछ नयन तुरत, 'निज प्रिय-वन पर गाज ।।
देख, मन भर गया' ।।

पदावलि

निर्झर! झरते-झरते जाना।
मन-उपवन व्रण - फुलवारी में, यौवन भरते जाना ।।
वैरी की बगिया से बिरवा, बड़े यत्न से लाई,
कहीं न कुम्हला जाये, इसका पथ-श्रम हरते जाना ।।
कर्म थाल, करनी बीजावलि, पीड़ाओं के अंकुर,
प्राण तने की स्वांस शाख, भ्रम-पत्रित करते जाना ।।
परित्याग के पुष्प, विरह की बौरें नई नवेली,
इसके कलित कलंक-फलों में रस बन ढरते जाना ।।
फैले गंध घृणित विस्मृति की, जगत बचाये आंचल,
वैदेही की व्यथा कथा का यह तरु वरते जाना ।।

तुझे मन ! कैसे समझाऊं।
मैं ही उनकी, उनका कैसे, हृदय खोल दिखलाऊं ।।
समाचार साकेत-देश से, कैसे - कैसे आते ।
समाधान अपनी शंका के, तुझे न क्यों मिल पाते ।।
सजा सेज मम वस्त्राभूषण, अपलक लखते रहते ।
कनक - भवन की प्राचीरों में, वे पंचानल तपते ।।
उनके विकसित चन्द्रवदन की, विलसित राका-रेखा ।
छिपी कहां, छांया सा छाया, विरह राहु का लेखा ।।
हुए निरीह निरीह रहे. कर रण रजगुण से क्षण-क्षण ।
तू तो प्रतिहत एक बाण का, उनका आहत कण-कण ।।
अपने एक घाव पर पगले, तू इतरा कर रोता ।
उनके अंतर-सागर में लख, बड़वानल का स्रोता ।।
खुली दुधारी पर वे निश्चल, भूडोलों में चलते ।
स्मृति-निकुंज की विरहवनी में, तुझे फूल भी खलते ।।

मैंने जीती बाजी हारी ।

सारे जीवन सागर खोदा, पी न सकी जल खारी ।।
भूषण-भूषण गला-गला कर, चिन दी कीर्ति-अटारी ।
बसा न पाई एक स्वजन भी, उड़ती शून्य ध्वजा री ।।
भोग न जाने भोग, योग का – योग न सकी बना री ।
खोई दोनों लोक गँवाकर, जग में मूढ़ गँवारी ।।

रे रे वाह रे संसार ।

क्या दिये तूने अनोखे, ये मुझे उपहार ।।
कंटकों की सेज तन को, हृदय को अंगार,
आह स्वांसों को, दृगों को—आंसुओं की धार ।।
विगत-कल को वन, विजन-वन कलागत को आज,
बहूपन को वसन वल्कल, मातृपन को क्षार ।।
भाग्य-लिपि दी लोप मसि से, छत्र पादाधार,
भरी दोपहरी डरा दी, बिंब दैत्याकार ।।
खील-खील किये खिलौने, खिलखिला बिन खेल,
मानिनी के मरे मन से, दी करा मनुहार ।।

च द री चल आली ! दिन निकला ।

कैसा रूप आज प्राची का, कल परसों से उजला ।।
अभी नयन बांया फड़केगा, तरु बोलेगा कागा ।
'आये नाथ' कहेगा कोई, आकर भागा-भागा ।।
मैं न्हाऊँ तू उबटन करदे, लादे पचरँग-चुनरी ।
वेणी गूंथ मांग की रेखा—कर सिंदूरी गहरी ।।
उनके रथ की उड़ती रज से, दिशि-दिशि अभी भरेगी ।
तू अलसायी खड़ी बावली, क्या-क्या बोल ! करेगी ।।
तेरा क्या, मैं मूढ़ गँवारिन, उसे वेला दीखूंगी ।
जब बोलेंगे, क्या बोलूंगी, 'नाथ अभी सीखूंगी' ।।

कैसी अमर-बेल यह भ्रम की ।।
किसने किस दिन कहां सींच दी, फैलीं शाख-प्रशाखा,
बिना मूल की फलित पल्लवित, घिरी घटा सी तम की ।।
छिपा सत्य का सूर्य दुपहरी, बनी यामिनी युवती,
उल्का-दृष्टि उलूक-कुलों की, कनकभवन पर चमकी ।।
जीवित अभी प्रेत रावण का, प्रजाजनों में बैठा,
मारी मूठ, तपे कुंदन की—चमक पलक में कम की ।।
सोया भाग्य-विधाता ओझा, सूझे नहीं उतारा,
परिजन परजन, बना दिये प्रिय-प्राणनाथ छवि यम की ।।

सखि ! मैं वह भारत की बेटी ।
कुशल मनाती जो शिखरों की, रज में लेटी-लेटी ।।
पावक-पुरतः वचन स्वयं ही, देकर प्राण निभाती,
नाद-विमोहित अचल मृगी सी, हने हरे आखेटी ।।
स्वामि-रूप में जन्म-जन्म में, युग-युग स्वामि मिलें वे,
जिनसे एक बार पितरों ने, काचे-सूत लपेटी ।।
कनक-लता के ललिताश्रय से, बने रहें तरु मेरे,
रहें वसन्ती वे भुज शाखा, दीप्ति जिन्होंने भेंटी ।।
आंचल क्षीर-सिंधु, नयनों की निर्झरिणी से भरती,
जिसने विपदापदा सदा ही बनकर ढाल समेटी ।।

खा री चातकी ! अंगार ।
चित चिता चिंता, कुसमिधा आश-शव सुकुमार ।।
रामचंद्र सुचंद्रिका को, बार-बार निहार ।
किरण-किरण निरावरण लख, तृषित व्योम विहार ।।
याचना मत कर सरित-सर-सागरों के द्वार ।
वंश तेरे ग्राह्य केवल, स्वाति की लघु-धार ।।
प्राण का क्या, फिर मिलेंगे, कर्म-वश सौ-बार ।
सोच ! इस निस्सार-जग में, साधना ही सार ।।

कृपाधाम ! बोलो, दयाधाम ! बोलो,
हृदय के अधीश्वर ! अधर मौन खोलो,
कभी क्या सिया याद आती नहीं वो ।।

प्रथम बार देखा, जिसे देखने को,
छिपे अनदिखे हो, लता-कुंज में तुम ।
कढ़े चंद्रमा की कला क्षीण से फिर,
बढ़े विश्व-व्यापी विभा-पुंज से तुम ।।
लजाती गई, फिर तुम्हें देखने को,
मृगों का बहाना दिखाती रही जो ।।

त्रिलोकी-जयी उन सुमनचाप-रिपु का,
त्रिपुर-ध्वंसकारी महाचाप भारी ।
रखा था, रखा ही असंभव न रहता,
पधारे सिधारे सभी धाक-धारी ।।
लगी दृष्टि जिस पर, उठे,तोड़ तृण सा,
'नजर' सी निवारी,लजाती रही जो ।।

नगों कँगनियों के, झुकी कनखियों से,
निरखती रँगीली छटा सांवली सी ।
उठी भाँवरों को, भँवर लाज-सरि के-
छिपी मूर्ति वह, हो गई बावली सी ।।
परख, तुम चले चाल वह, पायलों में—
झलक फिर उठी, पर बचाती रही जो ।।

पिन्हाने चली मालिका वह शयन-वय,
जिसे प्रात गूँथा कली अधखिली ले ।।
कहा भर भुजा 'राम के कंठ इसकी-
न शोभा भली, शीश पर मैथिली के' ।
पिन्हाते रहे तुम, हटाती रही जो,
हटाते रहे तुम, पिन्हाती रही जो ।।

यदि तुम और ब्याह कर लेते ।
मेरे हृदय गड़े कांटे को, कांटा तो दे देते ।।
सहती चुभन एक बारी की, भर कर दो-सिसकारी ।
किंतु बीतती घोर-शांति से, पापिन-वय तो सारी ।।
पर तुम गाधितनय-वशिष्ठ के, शिष्य सुयोग्य चहेते ।
मुझे त्रिशंकु बना कर मेरे, प्राण न लेते देते ।।
इतने बने नाथ ! क्यों निष्ठुर, तड़फ-तड़फ तड़फाते ।
बाहर से न बुलाते राजन् ! अंतर से न भुलाते ।।

बादल आये री ! ये आये ।
क्षितिजों से क्षितिजों तक कैसे, अलि! दल के दल छाये ।।
ये फुहार प्रिय-राग-रँगीली ।
अधमुँद श्रमित नयन सी गीली ।।
बिन स्नेही के स्नेह-धार बन, विरहानल धधकाये ।।
चम-चम-चम-चम चपला चमके ।
गर्जन से लरजे मन-मनके ।।
आये मन के मीत न, यह मन मन की ! किसे सुनाये ।।
वैर साधती पुरवा डोले ।
सुधियों के वातायन खोले ।।
हरियाली ने क्या दुलराया, हृदय-घाव हरियाये ।।
समझी सावन सरल सुहावन ।
निकला रावण कुटिल भयावन ।।
सिय सी सिय चित-वृत्ति अकेली, डरा-डरा ललचाये ।।
कितनी बरखा अब तक आईं ।
ऐसी कभी न की निठुराई ।।
साश-कीश प्रिय-निश्वासों ने, स्वांसों-हित न पठाये ।।

आली ! न श्याम आये ॥
बादल बदल-बदल कर, आये अनेक सावन ।
प्रति डाल-डाल बौरी, डाला गुलाल फागन ॥
रंगोलियां रँगीली, रसमय रसा रचाये ।
किससे कहूँ हृदय की, आली! न श्याम आये ॥

काले हुए, खिलाकर कितने कमल उजाले ।
रोते सु-कौमुदी के, कितने कुमोद-प्याले ॥
अंकुर गगन लहर कर, फिर भूमि-अंक पाये ।
ज्यों पूंछते उठा दृग, आली! न श्याम आये ॥

पलने पले पलक के, पल एक-एक पल-पल ।
कब पक्ष-मास-संवत्, युग में बदल गये छल ॥
नृप काल ने निराशा-दासी-निकर पठाये ।
अब तक गये स्वयं कह, आली! न श्याम आये ॥

जिस दिन चला-चली की, होगी घड़ी सजीली ।
प्रियतम खड़े मिलेंगे, ले चूनरी रँगीली ॥
नत - नेत्र देखकर वे, नतनेत्र डबडंबाये ।
सुनना, यही कहेंगे, 'हा ! भाग्य ने लजाये' ॥

मेरे भाग्य छला ही जाना ।
क्यों दूं दोष किसी को आली ! कोई बना बहाना ॥
किस दिन किसने लखा कनक-मृग, इतना तथ्य न जाना ।
कैसी पगली शब्द पराया, स्वर प्रियवर का माना ॥
शत्रु-मित्र पशु-पक्षी जानकर, तजते ठौर-ठिकाना ।
रेख लांघ मैं बाहर आई, रिपु न तनिक पहिचाना ॥
दहन स्वभाव सहज पावक का, ईंधन त्रिभुवन नाना ।
तिल-तिल जलती पल-पल युग से, भूले निठुर जलाना ॥
उन प्रियतम से बिछुड़, दे खरी! माटी ढ़ोना ठाना ।
जिनके विरह पिता नें माना, प्राण पंक का बाना ॥

सब पर समगति सदा जिन्होंने, छत्र कृपा का ताना ।
इस अबला को उन्हें चरण-तल, दुष्कर लगा निभाना ।।
क्यों न छली जाऊँ, शिव-धनु के—खंडन का फल पाना ।
उनके रिपु के इन वारों का, किस के शीश उल्हाना ।।

मैं थकी टूटी खड़ी हूँ, गिर पड़ूँ किस क्षण न जाने ।।
क्या खड़ी किसका सहारा, धार में आधार बहते,
कर रहे उत्तर निरुत्तर, हो गये अपने विराने ।।
शून्य से इस विजन-वन में, अंक-हीना शून्य जैसी,
देखती जिसको उठा दृग, सामने लगता समाने ।।
काल नभ दुर्भाग्य शशि की, घिर गया सोलह-कला से,
आ रहा तम सिंधु मुझको, ये बहाने से बहाने ।।
रूप जो होकर रुपहली- रश्मि सा छाया गगन पर,
साँवली छाया बनाकर, रख दिया तल पर धरा ने ।।
जो विभूषित कर रहे थे, स्वयं आभूषण बने कल,
वेष दूषण का बनायें, वे खड़े कालिख लगाने ।।
दोष किसका क्या, किसी को—व्यर्थ ही क्यों दोष देना,
जो रही थामे सदा से, तज दिया जब उस भुजा ने ।।
जो प्रियार्चन-थालिका में, सूत्र में बँध सज गई हो,
'ठौर दो इस ठौर मुझको' कब कहा उस मल्लिका ने ।।

अनोखी दुखियारी मैं आली ।
रुदन कर रहा दुख-दाता तो, हँसती पानेवाली ।।
जग-कहता मैं बिछुड़ी उनसे, वे उपवन मैं वन में ।
वे कंचन-पिंजरों के खंजन, मैं कलरवी गगन में ।।
जीवन-सागर-मंथन का विष, मैंने तो छलकाया ।
किंतु उन्होंने मौन पचा कर, नीली करली काया ।।
तन वैरागी मन अनुरागी, ऐसी मैं वनवासी ।
कनक-भवन की पंचानल में, वे तपते संयासी ।।

जग कहता 'लुट गई जानकी, हाय ! भाग्य ने लूटी' ।
बचा शेष रस कितना, उनकी हृदय-गगरिया फूटी ।।
आज नहीं तो कल जग निश्चित्, मुझे क्षमा कर देगा ।
पर उनकी मरु-भू किस रस से, कौन सुहृद सींचेगा ।।

एक क्या सीता ही बच पाई ।
ध्रुव से ध्रुव तक और न कोई, अबला पड़ी दिखाई ।।
पुरवा-शिविका बरखा उतरी, मैंने जानी रानी,
दश-दिशि किंतु कुटिल कुलटा ने, गहन दहन धधकाई ।।
देखी शरद् खिलाती शतदल, निर्मल मन की मानी,
मन की तपन बुझाने आई, निशि निँदिया ले धाई ।।
बोली पिका सहेली सी अलि ! वासंती रसवंती,
लगी मृदुल गलसुई विपल भर,निकली शलल सलाई ।।
क्या किस-किसको कहूं, न किसने अपनी कह अपनाया,
नित्य हँसाने वाली मुद्रा, करने लगीं हँसाई ।।

गा री ! गा री ! स्वांस सितार ।
तार-तार पर राम ! राम ! प्रभु ! राघव ! बारम्बार ।।
रोम-रोम मम राम-नाम का, प्रिय-अभिरामाराम,
उनकी चंचल पद-चापों में, कर अविराम विहार ।।
जिनके मान-सरोवर का अलि ! ललित कमल कुम्हलाया,
उनमें हँस हंसिनी लास कर, अरुणिम-उषा प्रसार ।।
प्रिय की पुतली मृगी पिपासित, मृग-मरीचिका भटकी,
विरहिन प्रिया नयन निर्झरिणी, दिखा बहाती धार ।।
दे निराश निशियों को निँदिया, दिन को हरे बगीचे,
प्रियतम-जीवन विशद राजपथ, स्वांस समीर सँवार ।।

दासी मैं रघुनाथ तुम्हारी ।
हे सुन्दर सिंदूर ! मांग के, तन-मन के अधिकारी ।।

लगा हृदय से रखो भवन में, वन दो विजन हृदय से,
करुणासागर ! मीन तुम्हारी, मधुर बनो या खारी ।।
मुँदी दृगी निज-अंक बिठाओ, बैठो मुँदे दृगों में,
स्वाति-जलद ! चातकी तुम्हारी, बरसो हिम-चिंगारी ।।
शिव-धनु से ली वरमाला-मिष, निज धनु से जय-माला,
वह माला मैं देव ! तुम्हारी, पहिनी पहिन उतारी ।।
बैठी नमित-वदन सिंहासन, पाद-पीठ प्रमुदित हो,
प्रभु ! मैं वह पादुका तुम्हारी, द्रवित दान दे, धारी ।।
यह संसार बिछी चौसर सा, लुटा लूटता लुटता,
प्रियतम ! दाँव-वराट तुम्हारी, जीती लो या हारी ।।
सब शृंगार तुम्हारे ही तो, जैसे चाहो कर दो,
रघुनायक ! नायिका तुम्हारी, दी भूमिका विचारी ।।
एक प्रार्थना, ज्यों पावक से कर पसार ली, देना,
गौरी-श्यामा प्रिय ! शशि तुमसे, सिय तो निशि-कजरारी ।।

अभी मत ठहरो, री ! ठहरो,
पुतलियो !
पगलियो !
आलियो !
युगों तक प्रति पल-पल हहरो ।
प्रभु-पीताम्बर सी पीली, मम—पलकाम्बर फहरो ।।
हुए कल्पना में पिय दर्शन, करलूं मन ही मन पद-अर्चन,
तब तक इस विषमय-जीवन में, संजीवनि छहरो ।।
मिले, न मिल पाऊँगी उनसे, उठते कनखी-वातायन से,
कुछ देखूँगी कुछ दीखूँगी, तुम पायल पहरो ।।
वे यदि बोले, क्या बोलूँगी, अधरों के पवि-पट खोलूँगी,
मेरे मीनकेतु-वंदन-हित, क्षीण-मीन लहरो ।।

अभी तक जी अब भी जीऊँगी ।
इन प्राणों के लिये सुधा कह, घोर गरल पीऊँगी ।।
लाई लिखा भाग्य ये कांटे, क्या फूलों से कहना,
इनकी नोंक, सूत्र स्वांसों के, फटा हृदय सीऊँगी ।।
जिस दिन प्रिय दर्शन देंगे, उस—पल तक विपल-विपल गिन,
अक्षत तन, क्षत-विक्षत मन से, कण-कण कर छीऊँगी ।।

बोल दो प्रिय ! केवल दो बोल,
जगत के सहे न जाते बोल ।
'मेरी सिय' इन दो शब्दों पर, दूंगी जीवन तोल ।।
राजकुँवरि-वधुरानी-रानी, महिषी या वैरागिन,
रूप अकिंचन-नारी के ही, अधर सके कब खोल ।।
'पराधीन' मन मान न पाया, स्वाधीना 'स्वाधीन,'
'स्व' ने दूध की माखी कर दी, पड़ा सोचना मोल ।
मैं तो समझी भाव तुम्हारे, मेरे भी कुछ भाव,
कैसे समझूँ,समझे असमझ, असमंजस ये गोल ।।
धनु ले अभय-वरद मुद्रा में, जो कर उठें सदैव,
कर्म पंक उन कंजावलि से, जगपावन ! दो रोल ।।

सजा क्या वासन्ती शृंगार ।
देखो राजन् ! रानी अपनी, पल भर तनिक पधार ।।
अद्वितीय अति परम अनोखा, अद्भुत दृश्य अनूठा,
अलचासन बैठे ऋतुपति को, लाई आज उतार ।।
संबल-हीन अकेले नट सा, मन था मौन युगों से,
लाया घुंघरू खोज, चन्द्र ने—सींची मन्मथ-क्षार ।।
गदराया अंतर-पलाशतरु, भाव-सुमन अरुणाये,
थिरकीं फूली श्यामल-पुतली, पहिने सरसों-हार ।

तन उपवन के अंग-अंग की, क्यारी-क्यारी पीली,
कण-कण का रस लेकर करता, काल भ्रमर गुंजार।।
महा-भाव अब तव अभाव ही, मन को खलता केवल,
इस निवेदिता का आवेदन, लो प्रियतम ! स्वीकार।
यह ऋतु, यह वय, यह आमंत्रण, पुनः स्यात् मिल पाये,
सो जाऊँगी रह जाओगो, करते ही मनुहार।।

अपना रोना रोते रीती।
कैसी निठुर, न सोचा पल भर, प्रिय ! तुम पर क्या बीती।।
मैं तो हरे-भरे इस वन में, मिथिला से मुनि-आश्रम,
लोक और परलोक बनाती, सुरसुरिता-तट जीती।।
अभय पतन से, हृदय एक रस, आप जागती सोती,
बंधन-हीन मृगी सी चरती, भूत-भविष्य नचीती।।
राज-काज से थके एक तुम, जब निशि आते होगे,
रति-गृह की वे चिती भित्ति भी, देती होंगी भीती।।
देख तुम्हें एकांत, वैरिणी कौन न बनती होगी,
निशा-समीर-ज्योत्स्ना-शैया, धीरज होंगी पीती।।
कंटक-कटक किरीट, सकंटक-बाट लिया निज बाँटे,
निश्छल मन से निर्मल वन दे—मुझे, निभाली प्रीती।।
सत्पुरुषों की सदनुभूति से, की सदैव-हित सत्कृत,
व्यथा असीमित लो, दे लघु व्रण, फिरती धरती सीती।।

कुशल रह महाराज की राजधानी।
मनाती यही नित्य मन से हृदय से,
तुम्हारी विजन-वासिनी राजरानी।।
दुखे आँख भी ना प्रजा में किसी की,
न मैला कभी एक नख स्वप्न में हो।
अतुल धान्य-धन से भरें सद्म सबके,
बने वंश-वेलें गगन-शिख समानी।।

न सोये लिये भूख भूखा भिखारी,
न मन में अभावों भरी भावना हो।
रहे कोष में कोष का शब्द 'अबला',
बने तोतली - बोलियाँ वेद-वाणी ।।

न ठिठुराए अगहन, तपाए न वैशाख,
धानी-चुनर बीर सावन उढ़ाये।
भरे फागुनी-कुंज कोकिल मुखरता,
करें वृद्ध-कृषि से मुकुल छेड़रवानी ।।

भरे नित उषा मांग सुन माँगलिक-ध्वनि,
अमावस पराजित करे दीपमाला।
रखे राखियां रह न जाँयें भगिनियां,
न रज में मिले एक सिंदूर-दानी ।।

न हो छांव भी सांवली सांवले की,
प्रलय-सिंधु नाविक बने प्राण-मनु वे।
उगें शृंग-अक्षय कनक-सौध-आंगन,
कहे सूर्य-ध्वज हिम-शिखर की कहानी ।।

रहें खिलखिलाते वदन पर सदा ही,
अलौकिक विभामय मुकुट झिलमिलाते।
गगन छत्र-मणि अप्सरायें झुलाँये,
खिले पद्म-पदपीठ परकीय-पानी ।।

प्रजाजन सपरिजन रमें उपवनों में,
वनों के लिये जो बनी वह वनों में।
सखी स्वामिनी प्राण-प्रिय की प्रियतमा,
रहे यौवना नित अयोध्या-भवानी ।।

गगन में जला विलोचन दीप।
बैठी विजन-विपिन-पथ अबला, चौंक स्वांस से लीप ।।

पूर रही मोती आंसू के, रिता हृदय की सीप ।
मंगल-भवन अमंगल-हारी, हुए प्रतीक प्रतीप ।।
देख न पाती अपनी छांया, यद्यपि परम समीप ।
दो मेरापन या मेरा मन, मन के महा-महीप ।।

मन रे! यदि होता तू चीर ।
चीर दिखाती रमे सतनु तनु, रोम-रोम रघुवीर ।।
अंतरतम की सुंदरतम-छवि, नव-नवनीत समान,
पल-पल पलक-मथानी मथती, हुआ न पगले! क्षीर ।।
क्षीर-समुद्र सुमंदिर होता, मंदर सी लहराती,
लाती करतल पर उतार कर, प्रिय रसकलश शरीर ।।
शरद्-सरोवर का शतदल ही, क्यों न हुआ तू हाय!
पीते राग-पराग अधर अलि, जाती पतझर पीर !।
किसका दोष, दोष मेरा ही, रँगी न प्रिय के रंग,
जन-जन का मुखरित मन-दर्पण, रँगती प्रेम-अबीर ।।
यदि होता परलोक अलौकिक, तू तारा-मंडल का,
लाती खींच, घटज बन पीती, भवसागर का नीर ।।

तनिक तुम एक बार तो कहते ।
फिर क्या कहती दासी, सुनते, अपने नयन निरखते ।।
किस पल नाथ! तुम्हारी बोली, बोलो, तनिक न बोली ।
मन की मन में ही घोली प्रिय, क्यों न अधर से खोली ।।
क्या बन जाती चरण-शृंखला, पाद-पीठ की माला ।
चलती मांग सजा प्रिय-पद-रज, करती पथ उजियाला ।।
ताना देती अपराधिन हो, कैसी मैं बौराई ।
जान गई विश्वास तुम्हारा, अब तक जीत न पाई ।।
फिर भी एक बार तो कहते—
मेरे हृदयाराध्य देवता! बनो देवता जग के ।
बैठी जगबंधन की काया, छांया-सरिस सिमट के ।।

तुम्हारी मदिर-मधुर चितवन ।
मथती है निशि-दिवस निरन्तर, मंथर-गति से मन ।।
जागृति में दो सबल-प्रहरिणी, दिखतीं खुले नयन ।
भ्रमित न भव-भीड़ें कर पातीं, देतीं पथ-दर्शन ।।
ज्योति-पुंज सी उतरा करतीं, सपनों के आंगन ।
आंख-मिचौली करती फिरतीं, चपला-सम क्षण-क्षण ।।
देतीं धीर खोल नित-नित नव, क्षितिज-पार वातायन ।
पर मैं मन मारे रह जाती, कसी देह-बंधन ।।

कितने दिन बीते सजनी री ! कितनी बीत गईं री रातें ।
कितने युग से पल-पल बीते, कितनी रहीं अनकही बातें ।।
छाती कहती देखो ! छलनी—हुई परत की परत परातें ।
आंखें कहतीं, किसे गिनायें, कितनी बीत गईं बरसातें ।।
ऋतु आईं, ऋतु गईं अनेकों, जाते-जाते चिन्ह बताते ।
भरे-भरे सूने रह जाते, मन-लोचन दोनों पछताते ।।
एकाकार बहिर-अंतर री ! घुन से रोम-रोम पिस जाते ।
इन्हें रोकती, ये जल उठती, इसे दबाती, ये रिस जाते ।।
एक बार निज शर की घायल, मृगी देखने को यदि आते ।
क्या होता, बलि होने वाले, प्रियतम-छवि पर बलि-बलि जाते ।।

दासी दी रघुनाथ ! बिसार ।
श्यामा जिसको भरी सभा में, त्यागी विपिन मँझार ।।
ऐसा क्या अपराध बना प्रभु ! जिसका दंड अपार ।
यदि है तो भी नाथ ! नहीं क्या, क्षमा एक भी बार ।।
अवध-सिंह की सिंहिन सूंघे, मृगपति! कौन सियार ।
कौन दिखाये, रवि-दृग स्वांजन—आँज स्व-मंद लिलार ।।

श्राप भी मुझको तो वरदान ।
यदि दें आप, आप अपनी को, केवल अपनी जान ।।

उटज अटारी कनकभवन की, निर्जन स्वर्ग समान ।
सुखद सेज सी सूखी सांथर, यदि तव भुज उपधान ।।
छत्र-चँवर तरु, शिला सु-ग्रासन, कलित कल्पना यान ।
नाथ ! आपके साथ गरल रस, तव बिन रस विष-खान ।।
दे दो ग्रवध अवध-वालों को, कहती चित ग्रम्लान ।
मुझसे एक बार ग्रा कह दो, 'सिय ! तू मेरी प्राण' ।।

देखते ! कहते तो क्या होता ।
जो यों गये दुकूल उढ़ाकर, मुझे त्याग प्रिय ! सोता ।।
निशि भर रहे मंत्रणा-गृह में, प्रातः लखन पठाये ।
रहे देखते वातायन से, अनुज न कुछ कह पाये ।।
मुनिजन-हित वस्त्राभूषण सब, रही सामने रखती ।
कहा न 'रानी नहीं रही तू, फिर क्यों रानी बनती' ।।
निज शव-शिविका-सरिस स्वरथ को, सम्मुख रही सजाती ।
पाती पल में मोक्ष, पलक की—चिंगारी यदि पाती ।।
मुनिजन के इस पुण्य-विपिन में, मुनिजन सी बस जाती ।
फिरती लोक न उभय गँवाकर, प्रेतिन सी डकराती ।।
मैं ग्रपराधिन, तुम तो राजा, मिला न लोचन पाये ।
कैसा अद्भुत न्याय दिया यह, न्यायी ही सकुचाये ।।
जान गई इन सहवासों से, तव विश्वास न पाई ।
कल की सिय-हित सिया ग्राज की, तपती तपने आई ।।

ग्रभागिन ! पूंछ विलोचन-कोर ।
किसके द्वार गुहार करेगी, जिसका राजा चोर ।।
कल तक चंदा कहते थकते, बनते रहे चकोर ।
ग्राज न समय शेष, लखने को—तनिक उसी की ओर ।।
सुनी मानसर में कब कर्दम, बाड़व बसी हिलोर ।
बनी सलिल-निधि मृग-मरीचिका, भँवर पुलिन के छोर ।।

शशि में से ही राहू निकला, निगला पंकज भोर ।
गिरा गई मंदार धरा पर, मलय-वात झकझोर ।।
गंगा ने हीं दिया मुदित हो, कुंभिपाक घनघोर ।
जले जटा सुलझाते शिव की, दक्ष-सुता के पोर ।।
कैसे हो विश्वास जगत को, यह न भैरवी, रोर ।
कल की रानी आज विपिन, ज्यों-कठपुतली बिन डोर ।।

कैसे मन पर करूँ नियंत्रण ।
चिरपरिचित तव पलकें पल-पल, देतीं सतत् निमंत्रण ।।
चंचल-मृग सा परम-हठी मन, मैं तो बाँध बिठाती,
किंतु ग्रहेरी ! तव स्वर पैठा, अंतर में कर दृढ़ प्रण ।।
इधर ममस्थिति उधर तवस्थिति, अस्थिर सकल परिस्थिति,
दिग्विजयी की प्रिया पराजित—हुई प्रेय प्रिय के रण ।।
मर्यादा की परिधि लांघकर, पहले हरण कराया,
बनी वंदिनी तन बंदी-गृह, काट रही यों क्षण-क्षण ।।
प्राणों में प्राणों से छिपती, बैठी स्वत्व छिपाती,
रोम-रोम तव रमी दृगावलि, झंकृत करती कण-कण ।।

धर रे बावले मन ! धीर ।
आ किसी भी पल मिलेंगे, एक दिन रघुवीर ।।
पुतलियों ! ठहरो न, ठहरो—मीन सी दृग-सरवरों में,
करुणिमा उनकी करेगी द्रवित इनका नीर ।।
रोर-रोम सितार स्वाँसों ! विपल-पल चंचल बजाग्रो,
एक दिन वृष-लू बनेगी, कुसुम-समय-समीर ।।

किसका पतित-पावन नाम ।
बोल जग ! किस दिवस देखे, अन्य किसने राम ।।
किस चरण के स्पर्श पाई, अहिल्या प्रिय-धाम ।
जो विदेह विदेह-कारी, रूप किसका श्याम ।।

किया रुचिर वसंत किसने, गिद्धपति का धाम ।
बने शबरी-विरह-निशि के, कौन अंतिम-याम ।।
कहां वानर कहां शुभता, मूर्तिमंत कु-ताम ।
पा कृपा किसकी गुंजाते, निज विरुद सुर-ग्राम ।।
आज के लंकेश कपिपति, राजराज ललाम ।
छांह किसकी बांह की पा, वाम करते वाम ।।
और क्या दशशीश जैसे, विश्व-हित अहि-दाम ।
वैरि-विधि भी किया दाहिन, चाप किसने थाम ।।
तनिक देखो ! किंकरी की—ओर परम-सुकाम ।
बन गये कैसे निंबोली, कल्पतरु के आम ।।

तू किस ऋतुपति की परित्यक्ता ।
बोल बावली आली पतझर ! मैं स्रोता तू वक्ता ।।
कहां कपोलों की पाटलता, अधरों की किंशुकता ।
अंगरागिनी मलयानिल की, लोचन-नीलोत्पलता ।।
धानी चुनरी की हरियाली, मांग बंधुकी-लाली ।
केशमालिका की भ्रमरावलि, चितवन-रस की प्याली ।।
कहां गई चंपा सी तन-छवि, भुज-वल्लरी चमेली ।
भस्म रमाये पड़ी विजन में, जोगन सी अलबेली ।।
भली मिली आ मुझ-सी मुझसे, आ री ! हिय लग जाँये ।
मां-जाई सी मिल कर बैठें, विपद् असह्य बँटाये ।।

तुम्हारी स्मृतियों का संगीत ।
नाच रहा प्रतिपल अधरों पर, मधुर-मधुर बन गीत ।।
अस्ताचल के सुतलालय में, जब रवि संध्याचल में छिपते ।
अमा-केशिनी के केशों से, रसिक-शिरोमणि शशि न निकलते ।।
उन अंधियारे गलियारों का, मणिमय प्रियतम मीत ।। तुम्हारी...

घिरती मन में घोर उदासी, स्वांसें जब लगतीं रुकती सी।
चित्त-चेतना-अजिर उतरती, भ्रम तम घोर-घटा झुकती सी।।
उग्र-भित्ति उस निर्जनता की, हरता तुरत अभीत।। तुम्हारी—
भरती असहोद्वेग राग में, जब अतिशय वैराग्य निराशा।
बन जाती पूनम-सूत्रों की, पल में अमा-तमा परिभाषा।।
उस क्षय-क्षण मन-मनु की तरिका, खेता मत्स्य-सुरीत।। तुम्हारी—

छलकती जा री! नयन-गगरिया।
अक्षय-नीर भरा हिय-सरवर, भर री! पलक गुजरिया।।
अमित कथा बहुरँग कमलावलि, भरीं स्नेह-पोखरिया।
सम्हल-सम्हल कर भर, न एक भी—झड़ जाये पांखुरिया।
भूला-भटका पथिक न निकला, छूता तनिक कगरिया।।
सुधि पाती, पर आती कैसे, विधि की किली डगरिया।।
फिर भी पल-पल पग-पग पथ धो, फहरा स्वांस चुनरिया।
कब निज शाप आप लौटाने, आ निकलें सांवरिया।।

नवल-प्रिय! सोउँ न सोने देउँ।
स्वप्न-भवन में डाल पलक-पट, प्रात न होने देउँ।।
खोलूँ हृदय, डाल दृग में दृग, विपल न खोने देउँ।
बीज विरह का अमर-मिलन के, विपिन न बोने देउँ।।
कहूँ गिरा निज "प्रिया-प्रेय कौ, कोउ न जानै भेउँ।
श्यामल-छवि श्यामल-बांहनि भरि, पुनः गौर करि लेउँ"।।

अरी! ये खंजन कैसे आये।
आता शरद् अभी भी भू पर, या ये ही बौराये।।
बदला बरखा का जल गदला, निर्मल सर लहराये।
क्या उनमें अब भी सच आली! शतदल-दल मुस्काये।।
कुमुद-कुंज में हंस-हंसिनी, नाचे पर पसराये।
तज कदंब-मकरंद भृंग क्या, बंधूकों पर छाये।।
सानुराग शशि-किंकरियों से, अंगराग रँगवाये।
फिर विभावरी विरहिन ने क्या, तारक-साज सजाये।।

चले मालती-वन मारुत बन—मालिन के से जाये ।
देख मयूरी-मौन, कीर क्या—स्वामि-यान ले धाये ।।
बता ! बता ! क्या वे दिन बीते, पंकिल ताप तपाये ।
या ये नील-विलोचन प्रिय के, प्रिय-सुधि-पाती लाये ।।

देवता! अब प्रसन्न हो जाओ ।
निकल पुजारी की कारा से, क्षण भर छवि दिखलाओ ।।
ऊषर तन में सींच नयन - जल, स्वांस समीर चलाकर,
युगुल-मुकुल तव फूल बनाये, निज कृति कीर्ति सजाओ ।।
जग के झंझावात - व्यूह में, आंचल कवच उढ़ाकर,
बैठी जीवन-दीप जलाये, नीराजना कराओ ।।
जो बहुबार हँसी में मूंदे, वे मुंदने को बैठे,
वर ! तुमसे क्या वर मागूँगी, हँस पट-पीत उढ़ाओ ।।

आपको कौन आज तक जाना ।
पर 'मैं तनिक न जानी' यह कह, कैसे करूँ बहाना ।।
कौन-कौन सी देखीं तव छवि, कवि होती तो कहती ।
उक्ति-माल सी वह चित-चित से, पर किस समय उतरती ।।
भव्य भावमय छवि प्रत्येका, नव-नव रस की झारी ।
ज्यों-ज्यों पी त्यों बढ़ी पिपासा, रिती न तनिक किनारी ।।
यद्यपि आज प्रसंग अकल्पित, लगता परम अनोखा ।
धोखा खाकर भी मन कहता, 'इस धोखे में धोखा' ।।

मन की चपल दुर्बलता ।
आपसे प्रियतम ! अपरिचिंत—क्या, विषम-समता ।।
चल पड़ी जो त्याग पल में, सकल की ममता ।
छल गई उसको विजन - वन, अजिन-मंजुलता ।।
कह गई जाने न क्या-क्या, जड़-सुता जड़ता ।
क्षमा करना किंकरी को, देव ! निज क्षमता ।।

श्री लव-कुश जन्म

सोरठा

कहतीं तापस-बाल, अति विस्मित सी परस्पर ।
"आया संध्या-काल, कुछ रहस्य अलि! आज है ।।

मालिनी

वनदेवी कुछ अनमनी प्रात से बैठी ।
नित्यस्मिति में कुछ मृदु-पीड़ा ज्यों पैठी ।।
वे उठती-उठती मौन बैठ सी जाती ।
सहलाती हुई शरीर ऐंठ सी जाती ।।

वृद्धा-तापसियां घृत-मिश्रित-पय देतीं ।
वे फूंक मार कुछ बरबस सी, पी लेतीं ।।
यदि कोई बाला तनिक झांक सी लेती ।
करती निषेध नंदा, पट सरका देती ।।

कोई वनदेवी-दिशि से आता लखकर ।
"कुछ हुआ" पूंछते उत्कंठित से मुनिवर ।।
लिख भूर्ज-पत्र पर मंत्र, मूरि कुछ रखकर ।
कहते, बँधवा दो वनदेवी की कटि पर ।।

कुछ लगा पता, क्या बात आज है आली ।"
बोली श्यामा, "देवी मां बनने वाली ।।"
"री! सुना-सुना देवी मां बनने वाली ।"
फैली वन-वन में बात बनी रवि-लाली ।।

कुछ लगीं नाचने-गाने-मुदित थिरकने ।
कुछ लगीं डालने डाल-डाल पर पलने ।।
कुछ छोटी-छोटी झगुली लगीं बनाने ।
कुछ लगीं पिटारे रखे खिलौने लाने ।।

कुछ लगीं पूरने चौक, रँगोली रचतीं ।
कुछ 'हुआ-हुआ' स्वर करती हँसती फिरतीं ।।
कुछ कुटिया से सटकर बैठीं ले थाली ।
कुछ कहतीं 'होगा सुत, कह रही वनाली' ।।

कुछ जातीं कुटिया में कुछ बना बहाना ।
कोई उत्सुक सी लखतीं उसका आना ।।
बोले दीक्षित सहसा कुलपति से आकर ।
'आता नृप-सा कोई रथ पर चढ़ पथ पर' ।।

मुनि निकले, देखे सम्मुख शत्रुनिषूदन ।
लाये आश्रम में साशिष, पा अभिवंदन ।।
कर कुशल-क्षेम, एकांत देख रिपुसूदन ।
बोले "मां कैसी" नत-शिर तरल-विलोचन ।।

"देवी-प्रजनन-वय भले कुमार! पधारे ।
शुभ-समाचार तव पथ ही लखता द्वारे ।।"
वृष-लग्न चन्द्रमा-अर्ध खिला अंबर पर ।
आश्रम में किलके सहसा नव-जातक-स्वर ।।

बज उठीं थालियां वालाओं के कंकण ।
मुनि-शंख गुँजाने लगे विपिन-निशि-प्रांगण ।।
तापसी जगाने लगीं दीप तरुमाला ।
सुररण-स्वागत-हित करतीं सुपथ उजाला ।।

आये मुनिवर ले कुशा सुमार्जन करने ।
'दो-दो शिशु कहतीं' साध्वी लगीं हरषने ।।
कर-कुशा दिखाकर बोले "ज्यों यह अकलुष ।
त्यों यमज-तनुज ये वनदेवी के लव-कुश ।।"

'वनदेवी ने दो-सुत जाये,' वन गूंजा ।
'सुन्दर कोमल लव-कुश आये' वन गूंजा ।।
मुनि आये, देखे, मुदित मौन रिपुसूदन ।
ज्यों राजहंस लखता मोती वंदी बन ।।

कुछ कह न सके सहसा नत-शिर रिपुसूदन ।
पूंछते "अंब-शिशु सकुशल" भरे विलोचन ।।
पा मुनि-इंगित बालायें अर्भक लाईं ।
यों लगा कि मानों श्यामल-गौर लुनाईं ।।

रघु-निमि-वल्ली के दो प्रस्फुटित सुमन से ।
सिय-रघुनन्दन के सुत सिय-रघुनन्दन से ।।
ले लिये ललक कर गोद, समोद दुलारे ।
चूमे कपोल हिय लगा, पुनः पुचकारे ।।

पिंगल दुकूल-कूलों में शिशु लिपटाये ।
नवरत्न-वलय किंकणियों से पहिराये ।।
निज मस्तक-कुंकुम लेकर लघु उँगली पर ।
कर दिये तिलक शिशुओं की भाल-स्थली पर ।।

मणि रत्न-हार की कर शिर से न्यौछावर ।
की नमन दमन ने प्रभु की शिशु-छवि मनहर ।।
यों लगा कि उतरी नभ-मंडल से भू पर ।
संध्या-प्रभात लालिमा युगल तन धर कर ।।

ले गईं तापसी, देख, तृषित रिपुसूदन ।
मुनि बोले "प्रिय ! जा कर वनदेवी-दर्शन ।।
देखीं, तन्वंगी सिय दृग-मूंदे दुबली ।
ज्यों शिशिर-पूर्णिमा-निशा ढकी शुचि-बदली ।।

देखी जागृत-कुंडलिनी सी सिय सोती ।
निर्जल - मानस-हंसनी लिये दो मोती ।।
लख मुखर-काकली ज्यों शिखिनी सकुचाई ।
त्यों देखी जगपति - प्रिया जनक की जाई ।।

रह गये खड़े अपलक कुछ बोल न पाये ।
जो जगा सकें सिय को वे शब्द न आये ।।
वर-वीर सुमित्रातनय धैर्य की महिमा ।
बहुभाव भरे, रह गये खड़े बन प्रतिमा ।।

राजाधिराज के पुत्र सांथरी जनमें ।
जग-चक्षु सूर्य निज चक्षु गँवाये तम में ।।
क्षीरोदधि में गोते खाते नारायण ।
शिखरों से गिरती गर्तों में रामायण ।।

विक्षुब्ध-चित्त रख कलगी चरणासन पर ।
रिपुदमन साश्रु निकले सादर वंदन कर ।।
वाल्मीकि-वंदना कर, निशि ही ले स्यंदन ।
जा मिले मार्ग में सेना से रघुनन्दन ।।

सिय-नयन खुले, मुनि-वसन ढके शिशु देखे ।
विधि-लेखे पढ़ने लगीं भरी भ्रमरेखे ।।
लख राजकीय-कुंकुम के तिलक सलौनें ।
आश्चर्य भरीं, त्यों दिखे केशरी-कोने ।।

शिशु तुरत उघाड़े, रत्न-किंकणी चमकी ।
पहिचानी, 'यह वलयावलि रिपुसूदन की' ।।
भास्वरित सितारों जड़ा दुकूल मनोहर ।
फर-फर करते कलगो के पर चरणों पर ।।

पहिचानी 'श्वशुर-महीप जीतकर शंबर ।
स्वर्लोक गये जब, दी यह भेंट पुरन्दर ।।
नभ-गंगा-पंकज-कुंज-मंजु-हंसों के ।
ये पांख शिरोभूषण चारों कुँवरों के ।।

जिनको लख मिथिला-नयन-माल ललचाई ।
वह कलगी कैसे पाद-पीठ पर आई ।।
यदि शत्रुनिषूदन आये तो कब आये ।
यदि पवनपुत्र लाये तो, यह क्या लाये' ।।

लख जनक-सुता को बैठी, नंदा धाई ।
बोली "सुदेवि ! क्या गहरी निंदिया आई ।।"
"क्यों, क्या आये थे कोई अभी यहाँ पर ।"
"हां-हां, दो पल ही प्रथम गये वंदन कर ।।"

"कैसे थे, गोरे से प्रलम्ब से सुन्दर ।
आजानु-बाहु उन्नत - ललाट धनुशर-धर ।।"
"हां-हां विनम्र लक्ष्मण की सी उनिहारी ।
बहुभूषण-भूषित वर्म-चर्म-असि-धारी ।।"
"क्यों आप मौन रह गईं, न मुझे जगाया ।"
"मैं उठी, उन्होंने कर संकेत बिठाया ।।"
"अब कहाँ" "गये स्यंदन चढ़ मुनि-वंदन कर ।"
"कब आये" "प्रसव-सुपूर्व मात्र घटिका भर ।।"
'वे निश्चित ही शत्रुघ्न कुँवर आये थे ।
क्या जाने, क्या संदेश- नवल लाये थे' ।।
"कुछ विदित, गये किस ओर" "गये पश्चिम में ।"
"पश्चिम में क्यों, साकेत बसा उत्तर में ।।"
"हाँ सत्य, किंतु मधुपुरी गये रिपुसूदन ।"
"मधुपुर, करने लवणासुर-पाप-समापन ।।"
"हाँ" "पर रहते त्रिपुरारि-त्रिशूल भयंकर ।
क्या भेज दिये नृप ने सममुच लघु-देवर ।।
हे उषानाथ ! कुलदेव ! याचना वधू की ।
यदि कर्म-वचन-मन रही किंकरी प्रभु की ।।
तो जैसे प्रभु ने शंकर - चाप चढ़ाकर ।
कर ग्रहण किया मम, नृपति-समूह हराकर ।।
त्यों शुभ-शूल से हों निर्भय रिपुसूदन ।
रण-मंडप में फिर कीर्ति करे माल्यार्पण" ।।
स्वर 'एवमस्तु' का सम्मुख पड़ा सुनाई ।
मुनिराज द्वार पर सहसा दिये दिखाई ।।

दोहा

सिमटीं सकुची सकुच सी, लगीं सांथरी सीय ।
लख उषेश निज दल छिपी, ज्यों नलिनी कमनीय ।।

कुशल-क्षेम कर ऋषि गये, देते हुए अशीश ।
नवल-सूर्य-उपहार दे, खसे ख-से रजनीश ।।

सोरठा

शास्त्र-विहित सब कार्य, रवि-परम्परा से किये ।
प्राचेतस-आचार्य, बुद्धि-नीति-गुण-मर्म-विद् ।।
दान-मान-सम्मान, मुदित किये द्विज-शबर-मुनि ।
सिय कर वेद-विधान,शुचि शुचित्व-शुचिता भरी ।।
गायन करतीं बाल, विपिन-वीथियाँ थिरकतीं ।
चिरंजीव हों लाल, वनदेवी के लाडले ।।
बढ़ने लगे कुमार, चारु चंद्रमा-कला से ।
ऋषि ने सब संस्कार,किये यथा - विधि मुदित-चित ।।

मालिनी

शिशु लगे रेंगने आश्रम में बुंटक-बल ।
ज्यों होते अंडज-डिंभ नीड़ में चंचल ।।
विहगों के पीछे किलकारी भर धाते ।
खग उड़ जाते, शिशु हठ कर रोर मचाते ।।

मुनि-बालक लाते पोए करतल भर कर ।
छूते ही पंख फड़कते, हटते डर कर ।।
ऋषि-बाल कौतुकी डरा-डरा कर हँसते ।
वे 'मां-मां' कहते, चलते मुड़ते लखते ।।

सिय हँसतीं, वनवासिनी बरजतीं बालक ।
हिय लगे हिचकियां भरते, हँसते भक-भक ।।
जब डाल नयन में नयन फिराते वे मुख ।
उस क्षण का गिरा न वर्णन कर पाती सुख ।।

ले जातीं निज-निज कुटियों में ऋषि-नारीं ।
फल दिखा-दिखा कर, दे-देकर पुचकारीं ।।
कर गान, नचातीं थाम-थाम कर अँगुली ।
वे गिरते उठते उठा-उठाकर झँगुली ।।
दे ताल-ताल पर ताली नाचा करते ।
सिय-शिशु वनवासी-मुनियों के मन हरते ।।
लगता श्रुतियों की ऋचा रँगोली रचतीं ।
निर्गुण-गुण जलदावलि-जलजावलि भरतीं ।।
शिशुजन-आनन की निश्छल ललित लुनाई ।
ह्रिय-कमल-कर्णिका ब्रह्म-सुछवि सी छाई ।।
आगे के उज्ज्वल दो-दो दांत चमकते ।
ज्यों पके अनारों में से दाने दिखते ।।
वे हँसते, लगतीं कलित कुंद की कलियाँ ।
ज्यों चूम रहीं चैरी की पतली-फलियाँ ।।
वे लखते, लगते खंजन-मिथुन पुलक कर ।
अँकुराती मंजरियों पर लसे फुदक कर ।।
माथों पर लटीं लटूरीं भूरीं कालीं ।
ज्यों अमृत-कलश पर मत्त नृत्य-रत व्यालीं ।।
वे चलते, लगते पारिजात लहराते ।
वे रुकते, लगते शेष रसा-रसराते ।।
वे सोते, लगता ठहर गई वासंती ।
वे उठते, लगती ललक उठी रसवंती ।।
सिय मुस्काती-मुस्काती भर-भर आती ।
लखतीं अतीत के लेख लिखे लघु-पाती ।।
आश्रम में बालक लगे खेलने, जाकर ।
लख मुनि-जन पूजन-लीन परम-कौतुकभर ।।
देखा करते थे किस विधि क्या-क्या करते ।
वैसे ही आकर स्वांग कुटी में रचते ।।

भर पत्र-द्रोणि जल, सुमन तोड़ कर लाते ।
अटपटी गिरा कुछ कहते हुए चढ़ाते ।।
सिकता से बलि-वैश्वादि-कर्म से करते ।
गुरु-शिष्य परस्पर बने, पढ़ाते-पढ़ते ।।
मुनिवर-सम कुछ गुनगुना कभी कुछ गाते ।
पत्रों पर कुछ चिंतन सा कर लिख जाते ।।
मुनि देख, मुदित मन ही मन में सुख पाकर ।
पूजन करते लव-कुश को गोद बिठाकर ।।
कहते यूँ तो 'जब से वनदेवी आई ।
तब से वन से हो गई विराग-विदाई ।।
पर जब से दोनों ललित सलौने आये ।
तब से तो वन अनुराग-केतु फहराये' ।।
बचपन के पीछे-पीछे आता यौवन ।
पर यहाँ बना वार्द्धक्य नवेला-बचपन ।।
जिन मुनि-जन की वाणी में नाची वाणी ।
घुटनों के बल अब तुतलाती कल्याणी ।।
उन मूर्तिमंत मंत्रों पर किन मंत्रों से ।
क्या किया टोटका, ऋषि नाचे यंत्रों से ।।
कवि बोले "सिय ! तू सच जगदंब भवानी ।
गोलोक त्याग कर बनी अवध की रानी ।।
जगदीश-प्रिया जगहेतु अवध में आई ।
जय दिव्या-देवी धरा, धरा की जाई ।।
छलना संज्ञा वनदेवी की सत कर दी ।
पावन-वन में अभिनव-पावनता भर दी ।।
कर दिये मौन जग के प्रपंच, मौनी वन ।
पी गई विषोदधि होने दिया न मंथन ।।
क्यों दिखें असुर-सुर काले-गोरे बनकर ।
प्रगटी स्वकीर्ति सी स्वयं समा नव-वपु धर ।।

डाले न काल जग पर कराल निज छाया।
दी विपद-थाल में परस कनक सी काया॥
मन में वड़वानल पचा, नचाईं लहरें।
तव सत्य सत्य से सिय! भू-रवि-शशि ठहरे॥

यदि वसुधानंदिनि! तू धीरज खो देती।
तो रामायण कब की समाधि ले लेती॥
बन शिला, शिलाओं में की प्राण-प्रतिष्ठा।
क्या उपमा सीता ही सीता की निष्ठा॥

ली झेल वक्ष पर सेल सकल त्रिभुवन की।
रित गई, न रिसने दी सुधर्म की कनकी॥
जल तिल-तिल पावक-पुरतः-वचन निभाकर।
जग को दिखलाये राम सु-राम बनाकर॥

'क्षितिजों से क्षितिजों तक वह रेखा खींची।
रह गये निरखते भुवन दृष्टि कर नीची॥
सिय! तव चरित्र वह सुरसरिता की धारा।
स्वयमेव उतर कर जिसने स्वर्ग उतारा॥

ज्यों रेवा की कंकरियाँ शंकर सारी।
त्यों तव चरितावलि भणति-सरित कवि-झारी॥
सिय-कथा न जिसकी कर्ण-कंठ-हिय-भूषण।
वह मनुज नहीं दनुजाधम जगत-प्रदूषण॥"

'सिय नमित विलोचन रही वहाती वारी।
गूँजी समीप ही लवकुश की किलकारी॥
दृग तुरत पूँछ, देखे सम्मुख से आते।
धनु तनिक-तनिक तिनकों के तीर चलाते॥

कुंचित-अलकों में कमल-सनाल लपेटे।
मृगचर्म वर्म सा कसा केशरी-फेंटे॥
आकर गोदी में बैठे दे गलबाँही।
यों लगा कि ज्यों अम्मृत इनकी परछाँही॥

मुनि बोले "क्या कर आये ललित-सलौने ।"
"पकड़े दो मृग के दो मृगेन्द्र के छौने ।।"
बोली वैदेही तुरत "कहाँ" घबराकर ।
"उनकी मां को दे दिये गुफा में जाकर ।।"

मुनि बोले "यदि वह यहां पूंछने आती ।"
"आती तो क्या गुरुवर ! आकर ले जाती ।।"
"यदि कहती, क्यों नटखटो! पकड़ कर लाते ।"
"क्या होता यदि हाहू ही आ ले जाते ।।

फिर कहते उससे 'तुम क्यों सो जाती हो ।।
वनदेवी मां-सम क्यों न बैठ गाती हो ।।"
"यदि तुम्हें अकेले लख हाहू ले जाते ।"
बोले धनुहीं दिखला "क्या देख न पाते ।।

इनके रहते, कैसे आ सकता हाहू ।
गुरुवर ! वह उड़ता बन मारीच-सुबाहू ।।"
"वे राम-लखन थे दोनों राजदुलारे ।"
"हम भी वनदेवी के सुत धनु-शर धारे ।।

फिर कौशिक-मुनि से आप कौन से कम हैं ।
उन चापों से ये चाप कौन से कम हैं ।।"
"पर तिनकों के थे चाप न राम-लखन के ।"
"तो हमें दिला दो धनु जैसे थे उनके ।।"

"तुम लघु क्या लोगे, वैसे अभी शरासन ।"
"अब बड़े हो गये उचित न यों नटखट पन ।।
ये कहतीं, कहते आप अभी हो छोटे ।"
मुनि बोले "मौनी मां के मुखरित ढोटे ।।"

फिर हँसे, जानकी धीरे से मुस्काई ।
फिर बोलीं "गुरु से करते यों न ढिठाई ।।"
नन्हें-नन्हें कर जोड़, छुए पद कवि के ।
आशिष दे बोले "दीप्त-शिखर रवि-छवि के ।।

हे देवि ! थके दिन भर के बालक,कोमल ।
पय इन्हें पिलाओ, मधुर खिलाओ कुछ फल ।।"
सुत युगल लिये सीता कुटिया में आईं ।
कजरी-पय ऋतुफल मुनि-बालायें लाईं ।।

बोलीं "कह दें क्या, करतूतें दिनभर की ।"
तर्जनी अधर, याचना - चपल दृग चमकी ।।
सिय बोलीं "क्या" "कुछ नहीं, युहीं मां! हँसतीं ।
दिन भर वन-हिरणी सरिस फुदकतीं फिरतीं ।।"

"हम चंचल हिरणी, आप अचल शंकर से ।
ये बात बनानी सीखे दोनों किस से ।"
"क्या बात हुई" "कुछ नहीं" "नहीं" सिय बोली ।
"तुम नहीं जानतीं इन्हें जननि! अति भोली ।।

कुछ इन्हें मधुर फल दो, अनुकूल रहेंगी ।
अन्यथा अभी मां ! तव प्रतिकूल कहेंगी ।।
'एकांत भजन-भोजन' सिद्धांत सदा से ।
क्या खाँये भूखे, घिरे घोर-विपदा से ।।"

"लो फलाहार कर, अच्छा हम आती हैं ।
देवी से फिर सच-सच सब बतलाती हैं ।।"
"अच्छा-अच्छा तुम चलो, अभी हम आते ।
क्या बतलाती हो, हम आकर बतलाते ।।"

सिय बोलीं "मौन रहो, तुम बोलो क्या है ।"
"इस मुनि-कन्या का काले-खर से क्या है ।।"
"मुनि कन्याओं से ऐसी बातें करते ।
तुम किस संगति में बोलो! दिन-भर रहते ।।

बोलो! निर्भय" सुन, बोली एक सरक कर ।
'ये वन से शावक लाये देवि! पकड़कर ।।
बोले 'मृगेन्द्र ! मुख खोलो, गिने बतीसी' ।
लख व्याकल सुत, सिंहनी कुपित भुजगी सी ।।

दौड़ी, ये दौड़ चढ़े तट-वट पर सर-सर ।
फिर कूद पड़े लहराती सरि, कटि कस कर ॥
कुछ दूर तैर कर निकले, विकट दहाड़े ।
सिंहनी सिंह-स्वर समझ, चली मुख फाड़े ॥

ये छिपकर सत्वर पुनः गुफा में धाये ।
हरि-शावक शुनकों-सरिस खींचकर लाये ॥
की निज हठ पूरी गिन कर पूर्ण बतीसी ।
आ गई सिंहनी, कृत लख रही ठगी सी ॥"

सीता ने देखा, डब-डब करते लोचन ।
नव-पल्लव-सम काँपते कुंवर कोमल तन ॥
अवरुद्ध गिरा, नत-नयन फिरा कर लखते ।
सिमटे उकसे से बारम्बार सिहरते ॥

तापस-बाला सीता से कह पछताई ।
"बालक स्वभावतः चपल, क्षमा दो माई ॥"
पुतलियां हिला, शिरा हिला, हिलाया फिर तन ।
छू श्रवण, जोड़ कर, सरके नमित विलोचन ॥

लख विनय, ललित-वय, दुष्कर-कृत्य निरखकर ।
प्रिय-तनय लगाये सिय ने हृदय, ललक कर ॥
छलका छाती से दूध, नयन-जल झलका ।
"नख तो न चुभा देह में किसी बहुबल का ॥"

बोले दोनों ही साथ "नहीं, देखो तन ॥"
दिखलाये मुख-पद-ललित देह के कण-कण ॥
लख सरस-चपलता चपला-बाला बोलीं ।
"रह गई अभी तो कटि जो कुँवर ! न खोलीं ॥"

लव बोला "समझीं मां ! इनकी चतुराई ।
ताना देंगी लव-कुश ने पीठ दिखाई ॥
हम नहीं खेलनी सीखे कच्ची-गोली ।
तुम दिखतीं भोली, करतीं क्रूर ठिठोली ॥

सिय बोलीं "अच्छा, अब सब मिल फल़ खाओ ।
जो याद किये दिन में वे मंत्र सुनाओ ॥"
बोले फल़ खाते "कब तक मंत्र सुनायें ।
अब राम-लखन-सम माँ! दृढ़ धनुष दिलायें ॥"

सुन राम-लखन का नाम अंब-दृग भरते ।
लखते साश्चर्य कुमार, न पर कुछ कहते ॥
सोचा करते, इनके गुण गाते गुरुवर ।
फिर माता के क्यों झरते लोचन-निर्झर ॥

वनदेवी मां, वाल्मीकि तपीश्वर गुरुवर ।
पर सुना न पितु का नाम किसी से वय भर ॥
पा एक दिवस एकांत परम साहस कर ।
पूंछा "मां ! कौन हमारे कहां जनक वर ॥"

जिसकी शंका थी वही समस्या आई ।
"मुनि जाने" बहुत विचार, यही कह पाई ॥
फिर मुख ढक लेटीं सहसा 'शिरः शूल' कह ।
कुँवरों के हिय का शूल बना यह दुस्सह ॥

चुप तो यद्यपि रह गये बाल मन मारे ।
पर प्रश्न धधकते रहे बने अंगारे ॥
प्रण किया जिन्होंने अदनु-भूमि करने का ।
व्रत लिया जिन्होंने भुवन-भार हरने का ॥

उन प्रभु रघुपति के पुत्रों ने उन ही सम ।
संकल्प किया 'खोजेंगे निज पितुवर हम' ॥
कर गोपनीय-प्रण सुदृढ़, उमंग भरे मन ।
वे लगे सीखने शास्त्र-शस्त्र-योगासन ॥

कर विदा बाल-चापल्य सहज बचपन में ।
लव-कुश होने पौगंड लगे क्षण-क्षण में ॥
संकोची, निस्संकोच प्रकाशार्जन में ।
अति विनयी, तत्पर अनुशासन-पालन में ॥

वे निरभिमान से स्वाभिमान के पुतले ।
मृदु-मंजु-मंदभाषी मन के अति उजले ।।
वे कठिन सुसाधक से, न व्यर्थ पल खोते ।
लख वयाधिक्य-गांभीर्य, मुदित सब होते ।।

करते लघु से लघु कार्य सभी के चित दे ।
मुनि-जन देते सम्मान अमित आशिश दे ।।
आईं सिय साथ सुतों के एक दिवस वन ।
संतुष्ट हुईं लख सफल धनुष-शर-साधन ।।

उत्साह दिया, उत्साहित होकर कुश ने ।
ज्यों लिया बाण, त्यों दिया न साथ धनुष ने ।।
टूटा, लख पुत्र उदास लगाया हिय से ।
पा अवसर तब ही लव-कुश बोले सिय से ।।

"देवासुर-रण-विजयी-धनु गणपति-गुह-के ।
दो अंब ! दिला गुरुवर से विनती कर के ।।
"पार्वती-सुतों के दृढ़-धनु तुम लोगे क्या ।"
"हम भी वनदेवी के सुत कम होंगे क्या ।।"

सिय कौतुक-वश मुनि-कुटी सुतों-सह आई ।
कवि-पीठ युगल-दिशि धनुष दिये दिखलाई ।।
बोलीं "ऋषिवर ! ये धनुष चाहते लखना ।"
ऋषि चौंके मानों दिखा सुखद-चिर-सपना ।।

दोहा

दे आशिश, संभ्रम कहा "उठो-उठो सुकुमार ।
शिखवाहन-गजवदन के, दो प्रिय-तारक तार ।।
चढ़ा राम ने शंभु-धनु, जैसे पाई सीय ।
त्यों धनु ले शिव-सुतों के, वरो कीर्ति कमनीय ।।"

कर गुरु-मां वंदन चले, हर्ष छलकता कोर ।
ज्यों निकले निर्द्वन्द वन, नव केशरी-किशोर ।।
सजे सहज शिव-सुत-धनुष, त्यों लव-कुश के हाथ ।
ज्यों पा प्रिय शीतल-अनिल, उठा अनल का माथ ।।
शिव-धनु प्रिय-कर निरख सिय, हिय हरषा जो हर्ष ।
उससे अधिक मुदित हुईं, देख पुत्र-उत्कर्ष ।।

सोरठा

मुनि ने मुनिपन भूल, सहसा चूमे युगल-प्रिय ।
खिले शूल में फूल, झूमी धरती धूप में ।।
बिसरा ब्रह्मानंद, मुनि के मन से निमिष भर ।
लख कर यह आनंद, भरा विराग सुराग से ।।
वाणी भर संकोच, छिपी नाभि वाणीज की ।
हुई पराजित सोच, पोच लगीं उपमा सकल ।।

बरवै

लव-कुश लखते लखे ललकती दृष्टि ।
"लो तव हित ही इनकी की विधि सृष्टि" ।।
दौड़े लव-कुश लिये, साधते लक्ष्य ।
लगे दिखाने सुप्त-शक्ति प्रत्यक्ष ।।
सौंप धरोहर, होकर चिंताहीन ।
हुए काव्य में कविवर फिर तल्लीन ।।
सीता प्रमुदित होकर गईं कुटीर ।
लखतीं कौतुक, जपतीं श्रीरघुवीर ।।

नवम-भुवन

मंगलाचरण

श्रीमारुति बलस्मरण स्तोत्र

सद्यः सुतप्त कुंदन सा तन, वृष-प्रातारुण सा मुख-मंडल ।
शारद-कंचन-शतदल-सुकोष - केशर सा ऊर्ध्व तनूरुह -दल ।।
अध-मुंद नीलाम्बुज से लोचन, पुतली मधु-मूर्छित भ्रमरी सी ।
कौपीन कटीर, प्रशस्त वक्ष, वालधि सुशांत रजु उतरी सी ।।
यज्ञस्नाता सी गदा पार्श्व, वीरासन सुमन - साज - सज्जित ।
श्रीराम-नाम-स्मिति अधरों पर,अंतर हरिलीला-रस - मज्जित ।।
शोभित सुरतरु-तट अद्वितीय, चेतन सुर-तरुवर से द्वितीय ।
कपि तव वरदा-अभया-मुद्रा, मम प्रमुदित मन नित स्मरण करे ।।

धीरे से सुला पालने में, अंजनी गईं पूजन करने ।
खुल गई आंख, पर मां न दिखी, लग गये क्षुधित रोदन करने ।।
दिशि-दिशि देखीं, देखे उठते, उदयाचल पर रवि लाल-लाल ।
मानो छींके पर रखा हुआ, लघु-पिष्टक सुन्दर कनक-थाल ।।
किलकारि मार कपि-कौतुकवश, उछले पल में पहुँचे खगोल ।
रवि-राहु लखें अब तक दृग भर,तब तक लीले लघु वदन खोल ।।
हर देव-दर्प, सुन देव-विनय, पा देव-सुवर, ग्रह-देव तजे ।
देवाधिदेव ! अंजनीलाल! अपने उस बल का स्मरण करें ।।

"सुत ! हो सुतृप्त" पा सिय-आशिष, कूदे दशकंधर के उपवन ।
संवर्तकाल का भूमि - डोल, ज्यों भुवन-भुवन करता नर्तन ।।
सागर में जलधर-धारा सम, मुख समा गये तरु-तरु के फल ।
बैठे भू, बिछा बिछौनों से, भीषण असुरों के दल के दल ।।
अक्षय-क्षय लखकर, मेघनाद—दौड़ा लेकर कर ब्रह्मदंड ।
यों लगा प्रतीची-प्राची के, लय-नभ टकराते चंड-चंड ।।
ज्यों सजे हराभूषण खगेश, त्यों धर्म-हेतु ब्रह्मास्त्र बँधे ।
मर्यादापुरुषोत्तम-प्रभु-प्रिय, अपने उस बल को स्मरण करो ।।

गिर गये रणांगण में लक्ष्मण, शोकाकुल शोकातीत हुए ।
बोले सुषेण "निश्शेष शेष, यदि निशि-क्षण-शेष व्यतीत हुए ।।"
जब तक रघुपति की उठीं पलक, तव तक जा पहुँचे द्रोणाचल ।
जिस गति की प्रगति न हर पाये, निशिचर-छल भरत-शरासन-बल ।।
कुछ दिखे, देखते मूरि शैल, या दिखे उतरते लंकाचल ।
गिरि-दधि नभ-तल सुर-धनु सी छवि, झलसी झलकी पल भर केवल ।।
हारे मन में मन-पवन-गरुड़, लख लखन-दृगाम्वुज निशि विकसित ।
जग-प्राणवायु के प्राणवायु, अपने उस बल को स्मरण करो ।।

"लक्ष्मण ! समरांगण देख-देख, मारुति का प्रलयंकारि-खेल ।
भूधर सपक्ष सा डोल रहा, रिपु-वार वारिधर झेल-झेल ।।
दिशि-विदिशि-प्रकंपन अट्टहास, पद-चोट कोट कर रहा ध्वस्त ।
संवर्त-व्यस्त नट मुक्तहस्त, ज्यों करते जगत समस्त अस्त ।।
मल-मल तन से निशिचर-समूह, न्हाकर अजस्र शोणित-धारा ।
यम-पैंठ श्रेष्ठि सा क्या बैठा, गादी पर भरता हुंकारा ।।"
तव अश्रुत - विक्रम को विलोक, रण-प्रखर खराणि हँसे सहसा ।
बजरंगबली ! वीराग्रगण्य ! अपने उस बल को स्मरण करो ।।

हो नतग्रीव सुग्रीव एक, वन-वन फिरता था हुआ भीत ।
लंका में एक विभीषण था, युग-युग सा क्षण करता व्यतीत ।।
जगदीश - भामिनी जनक - सुता, बैठीं थीं रिपु-वदिनी बनी ।
चौदह-वर्षों का भरत-दिवस, बन चला निराशा-निशा घनी ।।
शनि-नृत्यु-कुबेर-वरुण-रवि-शशि, हो गये नीर भर-भर सनीर ।
'इंद्राय' स्थान 'रक्षाय' घोष, भू लगी चीखने हो अधीर ।।
था कौन न जो दुर्भाग्य घिरा, किसका न सु-भाग्य फिरा तुमसे ।
हे सिद्धि-सैन्य-सेनप-स्वामिन् ! अपने उस बल को स्मरण करो ।।

वय-नवल भीष्म, ःौन्दर्य द्रोण, कृप सुतनु-लता, कृत ललित-वर्ण ।
शत्भ्राता हाव-भाव - संकुल, शृंगार शल्य, परिधान कर्ण ।।
क्षिति-क्षितिजस्पर्शी - केश सुभट, दिव्यास्त्र-प्रसून गुँथी वेणी ।
गुरुपुत्र मतंग-मोहिनी - गति, शकुनी शिखिनीव-गिरा श्रेणी ।।
हारी फिर-फिर कुरु-श्री कुँवरी, पाई न योग्य-वर पर त्रिभुवन ।
निश्शस्त्र सारथी, क्लीब रथी, रथकेतु आप सौंपा, तन-मन ।।
कुरुकुल-विधि समझ आपने भी, स्वार्पिता भ्रात-हित अर्पित की ।
हे ब्रह्मचारि ! सद्धर्मधारि ! अपने उस बल को स्मरण करो ।।

"कुछ दिखा राम की करामात, या शहनशाह की जेल झेल ।"
हो मौन, पहिन बेड़ी बैठे—तुलसी प्रभु का देखने खेल ।।
निज शाबर-मंत्र-सुमहिमा से, कौतुकी करामाती सुधीर ।
प्रगटे क्षण-क्षण में कण-कण से, नभतल-भूतल-तल-सुतल चीर ।।
हम्माम - हरम-दीवानेखास, बुर्जोपनाह वानर-वानर ।
बन गई सीकरी लंका सी, उड़ गईं पाग, बिखरीं चादर ।।
दोज़ानु किये आलमपनाह, दी बदल फ़कीरी पीरी में ।
हे स्वजन-ढाल! कोमल! कृपालु ! अपने उस बल को स्मरण करो ।।

हो एक समय की एक कथा, तो देव! कराये जीव स्मरण ।
तव नाम-रूप-यश पारिजात, अगणित सुकीर्ति-गुल्मिनी-रमण ।।
पांडित्य-काव्य-गायन-वादन-नर्तन-अभिनय-श्रुति-स्मृति चर्चा ।
सौन्दर्य - शौर्य-ऐश्वर्य - धैर्य- कारुण्य - स्नेह - निस्पृह अर्चा ।।
सौभाग्यवानि तुमसे न कौन, किसका न कौन सा किया काज ।
क्या कहूँ आपसे किस मुख से, आती निर्लज्जा हाय! लाज ।।
प्रभु-विरद देख, मुख मुकुर देख, फिर वरद ! निहारो मेरी दिशि ।
सियराम-कथा-प्रिय! इस शिशु-प्रति, अपने स्वभाव को स्मरण करो ।।

लवण-वध

दोहा

रामचन्द्र-मुख-चंद्रिका, हो सिय-विरह न म्लान ।
कहते गुरुवर नित कथा, ज्ञानमयी मतिमान ।।
यद्यपि ज्ञान-स्वरूप प्रभु, श्रुति-सागर गंभीर ।
भरते किंतु हिमेश गुरु, भक्ति-सरित शुभ-नीर ।।
दशरथ से बनकर भरत, शिशु से बन रिपुसाल ।
सिय-सम कुछ बनकर लखन, करते प्रभु-प्रतिपाल ।।
एक आंख में नीर भर, एक आंख में धीर ।
करतीं मां उद्योग वह, मुदित रहें रघुवीर ।।
कौशिक-मुनि रहने लगे, आकर सरयू-तीर ।
मानों वृष-संक्राति में, छहरी मिथुन-समीर ।।

सोरठा

की मुनि-युगल विचार, अश्वमेध की योजना ।
की प्रभु ने स्वीकार, भाव-अभाव स्वभाव-वश ।।
करने लगे प्रकाश, नय-वय-वृद्ध अमात्य-गण ।
सुना-सुना इतिहास, पूर्व-नृपों के यज्ञ के ।।

दोहा

धर्मस्थापन खलदमन, राष्ट्र-प्रवर्द्धन-हेतु ।
जग-सरि इहि-परलोक तट, अश्वमेध शुभ-सेतु ।।

छंद

पधारे उसी समय ऋषि च्यवन,
साथ ले चतुर्वर्ण - समुदाय ।
नमन कर यथायोग्य दे मान,
"विराजें" बोले श्रीरघुराय ।।

"दास पर कैसे की प्रभु ! कृपा,
कृपा कर दें मुनिवर आदेश ।
जगत का यूं तो रघुकुल भृत्य,
किन्तु मम स्वामी साधु विशेष ।।

आपके मित्रों के प्रति शीश,
आपके रिपुओं के प्रति बाण ।
धर्म के मूर्तिमान ध्वजदंड,
समर्पण देव ! चरण तव, प्राण ।।

बतायें शीघ्र आगमन-हेतु,
कह रहे तव दृग कुछ भृगुराज ।
गर्व से नहीं, निवेदन नम्र—
राम जीता जन-जन के काज ।।"

मुदित हो बोले मुनिवर च्यवन,
"हमारा सिद्ध हो गया कार्य ।
सदाशा-युत तव शिखिनी गिरा,
हमारी चिंता उरगी आर्य ।।

महा-भू-भार-हरण मखराज,
आपके धनुष-बाण यजमान।
निशाचरगण-समिधा प्रण-मंत्र,
पुरोधा रामचंद्र भगवान॥

दशों - दिशि सुन्दरियों के सुशिर,
सजाये दशशिर-शिर शिर-फूल।
बालि के प्राणों की दे भस्म,
करी भव-दोष-त्रयी निर्मूल।

सिंधु पर बांध आपनें सेतु,
भरी धरती की रीती मांग।
विभीषण-तिलक, सजी मर्याद—
मानिनी शुभ चूड़ामणि-स्वांग॥

बिठाकर मकरध्वज पाताल,
धर्म को दिया अचल-आधार।
आपकी युगल भुजा-आजानु,
भुवन में करतीं सुख-संचार॥

मुकुट से ऊर्ध्व - सप्त-पुर अभय,
उपानह से सातों पाताल।
धनुष की निम्न-कोटि अघ दबा—
ऊर्ध्व से उठा पुण्य का भाल॥

विमल सरयू की लहरें ललित—
धरा पर फैलातीं लालित्य।
किंतु मधुपुरी तरणिजा-तीर,
घिरा तमघोर प्रतापादित्य॥

दशानन का मातृष्वस्रीय—
लवण विचरण करता निर्द्वन्द्व।
हुए एकत्रित जिसकी छांव,
विश्व के असुर सच्चिदानंद॥

आपने जिन यज्ञों के हेतु,
वधे ताड़का-सुभुज-मारीच ।
उन्हीं का करता है विध्वंस,
नित्य-प्रति क्रीड़ा करता नीच ।।

आपने जिस हिंसा का दमन—
किया, कर दमन कबंध-विराध ।
वधे जिस हित खर-दूषण-त्रिशिर,
वही करते खल पाप अगाध ।।

कर रहा सात्त्विक-संस्कृति लुप्त,
हर रहा चारित्रिक-पावित्र्य ।
भर रहा जन - मानस में भीति,
धरा का मूर्तिमान दुष्कृत्य ।।

उठाता जिसका ध्वज संवर्त,
स्वयं अगवानी करता काल ।
घोर चित्कारें करतीं स्तवन,
रक्त करता अभिषेक कराल ।।

रुंड सिंहासन देते तुंग,
मुंड-खंडित करते शृंगार ।
चँवर करता दुर्गन्धित पवन,
तानता छत्र क्रूर- संहार ।।

दंडकारण्य उठी जो भुजा,
किया प्रण, लख ऋषि-अस्थि-समूह ।
हमारे वृन्दावन में आज,
पड़े कंकाल बनाकर व्यूह ।।

राम ! यह वही निशाचर अधम,
किया जिसने मान्धाता-घात ।
शंभु का परम्परागत शूल,
प्राप्त कर फिरता ज्यों पविपात ।।

देखने वीर-वेष तव पुनः,
देखकर बुझता यज्ञ-कृशानु ।
यहाँ हम आये तापस सभय,
स्मरण कर प्रभु! तव भुज-आजानु ।:

हमारा रक्षक तव धनु-वृत्त,
हमारे नाथ नाथ! तव बाण ।
गाधिसुत-मख-प्रतिहारी! उठो,
डालिये निष्प्राणों में प्राण ।।

करो नारायण! अपना स्मरण,
आपका धर्म-हेतु अवतार ।
आपका करता है आव्हान,
देव! ऋषि-कुल का हाहाकार ।"

सोरठा

उठे एक ही साथ, चारों के कर चार धनु ।
"दें आज्ञा रघुनाथ", बोले रिपुसूदन प्रथम ।।
"हो कालिंदी लाल, लवण-रक्त तर्पण करूँ ।
मान्धाता-भूपाल, इन्द्रासन-आसीन हों ।।
उनको शत धिक्कार, जिनके जीते जी जगत ।
फिरें प्रेत-तन धार, पूर्व-पुरुष-जन दीन से ।।
तोड़ा हर-कोदंड, ज्यों पल भर में आपने ।
करूँ शूल शत खंड, देखें, केलि किशोर की ।।
बनकर असुर-सहाय, यदि शिव भी उतरे समर ।
कर दूंगा निरुपाय, नाथ! आपकी पद-शपथ ।।
कहो, काल को खींच, पकड़ा दूं कर लवण का ।
कहो, खींच कर नीच, ले जाऊँ यम-पाक-गृह ।।
कालिन्दी के नीर, दूं सारा मधुपुर बसा ।
कालिन्दी के तीर, दूं वैश्वानर-पुर बसा ।।

राहू-केतु समान, गगन सजा दूं लवण-तन ।
रज में रज-परिमाण, कहो, मिला दूं निमिष में ।।
कहो, करूँ प्रण पूर्ण, पदाघात कर शस्त्र बिन ।
कहो, करूँ मद चूर्ण, उड़ूं गरुड़ सा भुजग ले ।।
कहो, पितामह-भांति, लाली फैलाता चलूं ।
कहो, पांति की पांति, शलभ-शत्रु शर-ज्योति लूं ।।
दशरथ-सुत प्रभु-दास, भरतानुज सौमित्रि मैं ।
करूँ ह्रास अरि-हास, सत्य नाम अरिदमन तो ।।
किये बिना संहार, यदि मैं लौटूं लवण का ।
तो कह दे संसार, 'था शत्रुघ्न न रघु-पुरुष' ।।
बहुत कह गया नाथ, अहं न, वंश-स्वभाव-वश ।
धरें हाथ शिशु-माथ, कालिन्दी चित्कारती ।।
पल-पल कल्प समान. क्षमा करें प्रभु ! लग रहा ।
करें विदा भगवान, त्रिभुवन-त्राण त्रिकाल मम ।।"

सुखमालिनी

गुरुवर - निदेश रघुनाथ उठे,
रिपुदमन-भाल पर तिलक किया ।
शोणित-मलयज - मंडित सायक,
सस्नेह तूण से खींच, दिया ।।

'छोड़ा न दशानन पर मैंने,
प्रिय अनुज शत्रुसूदन ! यह शर ।
घननाद-पाश में बँधकर भी,
मैं बैठा रहा इसे लेकर ।।

अहिरावण बलि देने बैठा,
तो भी न उठाया बंधु ! जिसे ।
उड़ गया विराध गगन में ले,
तो भी न चढ़ाया बंधु ! जिसे ।।

प्रलयोदधि में संसृति-प्रभात,
दिशि-दिशि था केवल जल ही जल ।।
विधि शब्द-ब्रह्म - अर्चन करते,
अति शांत चित्त से नाभि-कमल ।।

तब क्षुधा-क्षुधा कहते धाये,
मधु-कटैभ दो - दनु प्रलंयकर ।
उठ गई योगनिद्रा तुरंत,
हरि-पलक-तल्प अपलक तजकर ।।

घनघोर समर उन असुरों से,
बहु दिव्य-वर्ष करते-करते ।
हरि थके, लिया लक्षार-चक्र,
द्वादशादित्य मानों तपते ।।

यह एक बार ही माधव ने,
छोड़ा केवल उन असुरों पर ।
ऋषिवर अगस्त्य से मुझे मिला,
मैंने भी रख छोड़ा प्रियवर ।।"

लक्षार-चक्र-शर धार लगे,
रिपुसूदन प्रभु मधुसूदन से ।
चल पड़े ससैन्य नाद करते,
पंचानन से पुर-गव्हर से ।।

यों सजे च्यवन मुनि सहित यान,
ज्यों अग्नि बृहस्पति प्रेरित हो ।
या समाधिस्थ-शिव - शीश-नेत्र,
संवर्तानिल उद्वेलित हो ।।

जा पहुँची तीर्थराज सेना,
रवि के ढलते-ढलते प्रतीचि ।
कर भरद्वाज-दर्शन बोले,
"आता उगते-उगते मरीचि ।।"

दक्षिण - दिशि चले अकेले ही,
सारथी बिना ही रथ लेकर ।
लौटे तारों की छाया में,
रिपुदमन भरद्वाजाश्रम पर ॥

मुदिता से लोचन रचे-रचे,
करुणा से पलकें मिचीं-मिचीं ।
ममता से गोलक सिंचे-सिंचे,
परवशता-वश कुछ भौंह खिचीं ॥

कर्तव्य - डोर बँध ज्यों पतंग,
स्नेहाम्बर लहराती रुकती ।
उस समय सुमित्रानंदन की,
आंखें त्यों उठ-उठ कर झुकतीं ॥

कर नित्य-क्रिया मुनि-आशिष ले,
सेना कर यमुना पार चली ।
जा पहुँचे मधुपुर के समीप,
तीसरे पहर शत्रुघ्न बली ॥

चारों - दिशि की चतुरंग खड़ी,
पुर दूर-दूर से घेर लिया ।
मुनियों का यज्ञारंभ करा,
पुर - पौर स्वयं प्रस्थान किय: ॥

सुन्दर - सुगौर - सुकुमार - सुतनु,
नवयौवन सु-तन सुमित्रासुत ।
मलयज-मंडित उन्नत - ललाट,
कंचन-किरीट-कुंडल संयुत ॥

मणिकवच सुशोभित छाती पर,
गजमणि-गुंफित रविमणि-माला ।
ज्यों धवल पूर्णिमा - प्रभा भरी,
दिग्गज - सेवित नभग्रह-शाला ॥

पदत्राणों में पटपीत कसा,
उड़ता नीला स्वर्णिम दुकूल ।
मानों यमुना पितु-गृह आई,
सौभाग्यवती सज कनकफूल ।।

आजानुबाहु धनुशर विशाल,
नयनों में डोरे लाल-लाल ।
उस काल वीर शत्रुघ्न लगे,
रसराज [वीर की रौद्र ढाल ।।

"जय राघव" कहकर, महाशंख—
अधरामृत दे चैतन्य किया ।
ज्यों रिपूत्साह का अतंक को,
भोजन-हित अग्रिम-अर्घ्य दिया ।।

कालिंदी-तट के मुनि - समूह,
कर उठे साम-गायन निर्भय ।
नभ में फहराते धूम्र-ध्वजा—
धाये वैश्वानर अमर-निलय ।।

मख-धूम्र दिखे श्यामल दिग्गज,
शाकल्य सुगंध भरा अंबर ।
सुन शंखस्वर - संपुटित मंत्र,
लवणासुर चला कुपित होकर ।।

देखा सुदूर रिपुसूदन ने,
आता आखेट लदा निशिचर ।
काला कुत्सित थल-थल शरीर,
कर भाला-खड्ग-शरासन-शर ।।

मिंच-मिचीं बिडाली सी आंखें,
पुतलियां नाचतीं पुतली सी ।
चपटी नासा, सिकुड़ा माथा,
होठों में ठोड़ी धसकी सी ।।

मृत - मृग समूह से टप-टप-टप,
लोहू शरीर पर टपक रहा ।
ज्यों रौरव - आंगन में पातक—
रंगीन रँगोली विरच रहा ।।
बोटियां चाटता खींच-खींच,
अस्थियां चबाता कटर-कटर ।
ले-ले कर अनुचर असुरों से,
पीता जाता मद गटर-गटर ।।

रिपुसूदन के सम्मुख आकर,
बोला "तू कौन ? कहां का है ।
किस हेतु खड़ा पुर-द्वार अड़ा,
बतला रे! आज यहां क्या है ।।
ये यज्ञारंभ कराने की,
क्या दुरभिसंधि तूने ठानी ।
इस यौवन में निज प्राणों का,
क्यों बना अमित्र अज्ञ-प्राणी ।।"

"दशशीश-जयी प्रभु रामचंद्र—
राजेश्वर का मैं लघु - भ्राता ।
तव शोणित-तर्पण मिले बिना,
जो खड़े शून्य में मांधाता ।।
वे मेरे पूज्यपाद पूर्वज,
पाये रणगति जिस धरती पर ।
मैं उसे मुक्त करने आया,
असुराधम! धारण कर धनु-शर ।।

जिनके जीते जी हत-प्रतिज्ञ—
ही पूज्य-पितरजन रह जायें ।
वे जननी-यौवन-तरु-कुठार,
साकार भार से भुवि आये ।।

तज देह - कुमोह पितामह ने,
जिन आदर्शों की रक्षा की ।
उनके प्रति आत्मसमर्पण की,
रघुकुल ने ब्रह्म-प्रतिज्ञा की ।।

दशशीश - विराध - कबंध-बालि,
प्रभु ने पथ - विघ्न स्वयं छांटे ।।
भेजा चुनने मुझ छोटे को,
तुझ से छोटे-छोटे कांटे ।।

यदि जीवन प्रिय ले राम-शरण—
जा, बस जा चरण विभीषण के ।
अन्यथा अधम ! अभिनंदन कर,
ये बाण निमंत्रण हैं रण के ।।"

हँस पड़ा ठठाकर लवणासुर,
"रक्षद्रोही ! हो सावधान ।
तू भी आहुति दे, प्राणों की,
निज पूर्वज मांधाता - समान ।।

सीखा न राक्षसों ने झुकना,
अपवाद विभीषण नीच एक ।
कर गया कलंकित जो कुल को,
कायर जीते जी शीश टेक ।।

निज मातृष्वसेय-शत्रु का मैं—
कर हनन, आज इन हाथों से ।
दूंगा उतार रक्षाधिप - ऋण,
इस मधुपुर के सब माथों से ।।

यमुनाजल करने लाल-लाल,
स्वयमेव मूर्ख ये ऋषि आये ।
नरमांस - भोज का आयोजन,
विधि अनायास निश्चित् दायें ।।

"विश्राम तनिक कर-अतिथि युवक!
मैं अभी नगर से आता हूँ।
तेरे स्वागत की सामग्री,
क्षण-भर में लेकर आता हूँ॥"

ज्यों कहता बढ़ा लवण पुर-दिशि,
त्यों शत्रुदमन ने बढ़ रोका।
"शिव-दत्त शूल लेने पुर में,
अब जा न सकेगा, दे धोखा॥

तव शौर्य-पराक्रम ही मेरे—
स्वागत की सामग्री समुचित।
तव प्राणों की सुन्दरी-सुछवि,
कर रही चित्त मम आकर्षित॥

अब तू क्या, तेरा समाचार,
क्या पुर, अग-जग में जायेगा।
लघु मधुपुर का दे मोह-त्याग,
तू विस्तृत यमपुर पायेगा॥"

पुर-पौर कठिन कुलिशार्गल सा,
संकल्पनिष्ठ लख शत्रु खड़ा।
आखेट फेंक, यमुना-तट का—
तरुवर उखाड़ क्रव्याद बढ़ा॥

ले अग्नि-बाण रिपुसूदन ने—
छोड़ा, बिखराता ज्वाल चला।
तरु देख धधकता हाथों में,
भयभीत सरित में डाल चला॥

कर पार तरणिजा धनुष धार,
वारों पर वार लगा करने।
पर रामानुज के लाघव से,
पल-पल में वि.ल लगे बनने॥

करते-करते संग्राम - घोर,
दोनों उतरे यमुना-जल में ।
तरिका से तरिका में लड़ते,
गिरते उठते सरिता-तल में ॥

ज्यों कल्पोदधि शंखासुर से,
करते प्रभु - मत्स्य वारि-विग्रह ।
त्यों लवणासुर से शत्रुदमन,
कल्पांतकारि कर उठें कलह ॥

हो उठा तवी सा लाल-लाल,
यमुना का जल नीला-नीला ।
निकले जलचारि सजल जल से,
जल जलता बना अनल-टीला ॥

लहरों पर लहरें लहरातीं,
रवि-मंडल-दिशि करतीं प्रसार ।
ज्यों घिर दो प्रबलों में अबला,
निज गुरुजन से करती गुहार ।

अथवा उदयाचल-अस्ताचल,
मंथन करते कालिंदी का ।
आ गिरे गगन से चंद्र-राहु,
छवि-खंड लिये नव-बदली का ॥

त्यों, विरद-द्विरदिनी के कारण,
दो द्विरदों से दोनों लड़ते ।
हो विकल,निकल कर लवण चला,
तट से टकरा गिरते-गिरते ॥

मधुवन से निधिवन,निधिवन से—
गव्हर-वन में निशिचर धाता ।
धाते राघव पीछे-पीछे,
ज्यों मृगहा मृग पीछे जाता ॥

जा चढ़ा लवण गोवर्धन पर,
लुढ़काने लगा शिला-माला ।
तब वीर सुमित्रानंदन ने,
गिरिवर पर धधकादी ज्वाला ।।

फिर यमुनातट के साथ-साथ,
पुर-ग्राम लांघते वन-उपवन ।
आ इंद्रप्रस्थ के पास गये,
संगर करते बारह-योजन ।।

कब गई निशा, कब चढ़ी उषा,
मध्यान्ह ढला कुछ पता नहीं ।
जब लगी उभरने नभ संध्या,
चारों - दिशि मंद-बयार बही ।।

हो गया खड़ा भाला लेकर,
फेंका बढ़ शत्रुनिषूदन पर ।
चिर गया भाल, बह चला रुधिर,
गिर गये वीरवर धरती पर ।।

कर अट्टहास मदमत्त उठा,
चैतन्य हुए चैतन्यानुज ।
लक्षारि-चक्र-शर खींच लिया,
धनु चढ़ा लिया आजानु सुभुज ।।

अतिशय क्रोधित होकर बोले,
"हो सावधान तव अंत निकट ।
हो चुका बहुत रण - केलि-कपट,
अब मृत्यु वरण कर लंपट नट ।।"

हो उठे विभासित दिशापुंज,
सहमें उल्का-दल धूम्रकेतु ।
मार्तण्ड हुए ज्यों अमित उदय,
निज वंश - पराक्रम - दर्श-हेतु ।।

'जय राघव' का गंभीर-घोष—
कर रिपुसूदन ने छोड़ा शर।
'यह फटी हिमालय की छाती,
या सप्त-सिंधु ही गये बिखर'॥

जब तक सोचें ब्रह्मादि-देव,
तब तक लवणासुर भस्म हुआ।
कण-कण में क्षण में क्षार भरी,
कण-कण शिव-रूप प्रसन्न हुआ॥

सोरठा

ग्रहण-मुक्त ज्यों सोम, शत्रुदमन शोभित हुए।
बजा वाद्य बहु व्योम, अभिनंदन सुर कर उठे॥
लगे बरसने फूल, वीर सुमित्रा-पुत्र पर।
यह त्रैलोक्य-त्रिशूल, इसी योग्य था, जो हुआ॥
आये यमुना-तीर, वंदन-पूजन-स्नान कर।
गये नगर में वीर, दनुजजयी रघुपति-अनुज॥
हठ-पूर्वक अभिषेक, किया च्यवन ने मुदित मन।
वीर एक से एक, तनय सुमित्रा के युगल॥
ज्यों द्वितीय साकेत, लगी बसी नव-मधुपुरी।
आल्हादिनी समेत, अलख हुए मोहित निरख॥
कर पुर चारु प्रबंध, गये एक दिन लवण-गृह।
हुए तुरत नत-स्कंध, देख त्रिशूल वृषांक का॥
कर षोडषोपचार-पूजन प्रभु शशिमौलि का।
बैठे वीणा धार, भर कर परमानंद में॥

दोहा

जय महेश भूतेश भव, भव्य-भाव्य भगवान।
नंदीश्वर श्रीकंठ शिव, शंकर कृपानिधान॥

स्तुति

हिम गौर अंग, गिरिजा उछंग,
शिर गंग - तरंगें लहरायें ।
वेताल संग, मर्दन अनंग,
तन में भुजंग-दल फहरायें ।।
हरि-रंग - धूत अवधूत पूत,
उपवीत मालती-माल ललित ।
शशि व्याल त्रिपुंड विशाल-भाल,
दृग लाल-लाल भौंहे उद्धूत ।।
कटि-तट मृग-पट अटपटा पटा,
शिर जटा - लटायें लटकाये ।
कर में त्रिशूल डमरू कपाल,
कवि कौन कहाँ उपमा पाये ।।
वर-मुंडमाल-आजानु वदन - छवि भानु-कृशानु मान-हारी ।
उन चन्द्रमौलि पंचानन में, मेरा मन नित्य विनोद करे ।।१।।

रस-लोलुप देवों असुरों ने,
रत्नाकर - मंथन ठहराया ।
ली बना मथानी मंदर की,
नेती सा अहि-पति लिपटाया ।।
सुर-असुर थके मथते-मथते,
मस्तक पर स्वेद उभर आया ।
प्रज्ज्वलित ज्वाल-माला-मंडित,
तब कालकूट ऊपर आया ।।
जल उठीं दिशा, बल उठे सिंधु,
हो विकल अचल अचला डोली ।
त्रैलोक्य कर उठा त्राहि-त्राहि,
बोली-बोली 'हा-हा' बोली ।।

श्रीचरण शरण्य बने जिनके, दे अभय कंठ में थाम लिया।
उन नीलकंठ त्रिपुरारी में, मेरा मन नित्य विनोद करे ॥२॥

घन-घन-घन घंटा घहर उठा,
यम-दंड गगन में फहर उठा।
तड़िता - घर्षण सा अट्टहास—
स्वर मृत्यु-देव का लहर उठा ॥
यमपाश - छरहरा छहर उठा,
अंडों से नयन लगे फटने।
डैनों से होंठ लगे उठने,
डिभों से प्राण चले उड़ने ॥
मुनि-वत्स कह उठा 'रक्ष-रक्ष',
भुज भुजग-माल की माल बनी।
"मेरे शरणागत पर प्रहार,"
धधकी मस्तक-दृग - ज्वाल-अग्नी ॥

गिर पड़ा महिष से काल भूमि, पा पदाघात प्रलयंकर का।
उन महाकाल मृत्युंजय में, मेरा मन नित्य विनोद करे ॥३॥

भू-धूलि कुधूलि बनी फिरती,
पितरों की भस्मी दीन हुई।
यौवन गल गये पीढ़ियों के,
ज्योतियें ज्योति में लीन हुईं ॥
'ठहरो' बोलीं गंगा लखकर,
वरदानोत्सुक लोकेश - अधर।
'झेलेगा कौन असह्य - वेग,
लौटूंगी फिर न अतल जाकर ॥"
"हूँ" कहकर, कसकर बाघम्बर,
दीं ज़टा खोल झटका देकर ॥
गाड़ा त्रिशूल टांगा डमरू,
कटि पर कर धर तांका ऊपर ॥

हर-हर-हर करती उतर पड़ीं, सर-सर-सर जिनमें समा गयीं ।
उन जटाटंक गंगाधर में, मेरा मन नित्य विनोद करे ॥४॥

हिम-गिरिवर के उत्तुंग - शृंग,
जब सागर में लय हो जाते ।
जनवास सिसकते हरे-भरे,
जब चिरनिद्रा में सो जाते ॥
अग्नियाँ अनेकों उठती हैं,
लहरें चकमक बन जाती हैं ।
ये चन्द्र-सूर्य ये तारावलि,
खंडित होकर गिर जाती हैं ॥
योजनों धरा धसतीं, गिरतीं—
बालुका-भित्ति सी चट्टानें ।
कुहरा कोटिशः कुहू - कुल का,
लगता अनंत - लोरी गाने ॥

जिनके फणि-मणियों की द्युति से, तब दिशा प्रकाशित होती हैं ।
उन महादेव प्रलयंकर में, मेरा मन नित्य विनोद करे ॥५॥

संवर्त - काल में विधि - प्रपंच,
निःशब्द सर्वथा हो जाता ।
खो जाता ताल त्रिकालों का,
संसृति-संस्कृति - स्वर सो जाता ॥
वट-पत्र - सुपुट अंगुष्ठ लिये,
सृष्टा वाणी खोजा करता ।
नृत्यावसान नवपंच - बार,
फिर डम-डम डमरू बज उठता ॥
पा संस्कारों की परिभाषा,
भाषा के उठते थिरक चरण ।
अनमिल अस्पष्ट शब्द धाते,
शाबर मृगारि बन अघ-मृग-वन ॥

जिन सिद्ध-शिरोमणि की सुसिद्धि, दिखती दिशि-दिशि में स्वयं-सिद्ध।
उन आदि-सिद्ध प्रमथाधिप में, मेरा मन नित्य विनोद करे ॥६॥

चौदह - वर्षों का विपिन - वास,
नीचे धरती, ऊपर अंबर।
इतने पर भी अज्ञात - दिशा,
ले गया निशाचर नारी हर ॥
कर उठे सच्चिदानंद रुदन,
त्रिभुवन का बिलख उठा कण-कण।
संदेश दिया कपि बन, "प्रभु बिन,
सिय बिता रहीं युग सा क्षण-क्षण, ॥
हरि चले, सिंधु सम्मुख देखा,
देखी त्रिकूट-गिरि पर लंका।
दुर्जय-दनु दुर्दमनीयायुध,
दुर्भेद्य - दुर्ग दुर्गम बंका ॥

रेणुका-लिंग के पूजन से, बन गये रेणु से विघ्न-शैल।
उन दशशिर-गुरु रामेश्वर में, मेरा मन नित्य विनोद करे ॥७॥

कितने भोले भस्मासुर को,
दे डाला दिव्य स्वकंगन ही।
कितने योद्धा शर एक साध,
कर दिया त्रिपुर का ईंधन ही ॥
अभिनय विनाश का करके भी,
शिव रहते, अभिनेता कैसे।
मोहित हो गये मोहिनी पर,
दर्शक भी रसवेत्ता ऐसे ॥
हो कुपित भस्म कर दिया काम,
हो मुदित अमर-रति दी रति को।
केतकी त्याग, ली भस्म धार,
क्रम दिया सु-उन्नति अवनति को ॥

तजकर पुनीत सुंदरी सती, उपमान भक्ति को अजर दिया ।
उन निरुपमान जगदीश्वर में, मेरा मन नित्य विनोद करे ।।८।।

श्रीकृत्तिवास ! मृड, ! खंडपरशु !
अंधकरिपु ! प्रमथाधिप ! ईश्वर ।
अपराजित ! भर्ग ! क्रतुध्वंसी,
कापालिक ! पशुपति ! शशिशेखर ।।
ईशान ! त्रिलोचन ! पंचानन,
भीमाभर्तार ! त्रिपथगाधर ।
धूर्जटि ! जटाटवी ! अट्टहास !
शिपिविष्टि ! ऊर्ध्वरता ! खेचर ।।
श्रुतिसार ! दिगंबर ! निर्विकार !
आकाररहित ! आकारेश्वर ।
शिव ! कृपागार ! भव ! कृपाधार !
ओंकार ! स्थाणु ! करुणासागर ।।

कंदर्प-दर्प-हर! हर ! शंकर ! सिय-सियप्रिय-भक्ति-भामिनी-वर ।
तव अंतकांत ! नामान्यनंत, मेरा मन नित्य विनोद करे ।।

दोहा

उमानाथ ! भव-भोग-प्रद ! भवभयहरण ! अनन्य ।
दे सिय-रघुपति-चरणरति, करो स्व-शिशु प्रभु! धन्य ।।"
"एवमस्तु प्रिय"! प्रिय - गिरा, गूंजी गर्भागार ।
नित्य-शक्ति - संयुक्त शिव, देखे एकाकार ।।
बेल-पत्र - मंडित जटा, चंद्र-छटा सुकुमार ।
पन्नग - पाग सुगंग-पर, भृंग-चित्त-हर हार ।।
कनक गौर कर्पूर छवि, चंदन कुंकुम भाल ।
वरद-अभय-मुद्रा ललित, मंद-हास मृगछाल ।।
निरख सुछवि वेदी, हुआ—नत भरतानुज-माथ ।
अभय-हाथ रख माथ पर, बोले गौरीनाथ ।।

"गुप्त - भक्त रघुनाथ के, तुम शत्रुघ्न कुमार ।
भोग योग में लीन कर, पाला पुर-परिवार ।।
सियाराम-पदपद्म-रति, तुम्हें स्वतः प्रिय ! प्राप्त ।
होता कैसे अन्यथा, भरत-चरण चित व्याप्त ।।
लवणासुर से असुर का, संभव था न सुधार ।
ऐसे कुटिलों के लिये, निश्चित ही संहार ।।
असुरों से तो कर दिया, मधुरा का उद्धार ।
अब भावी - अवतार-हित, करो तीर्थ-श्रृंगार ।।
शिवा-सहित मैं भी स्वयं, बनकर पुर-प्रतिहार ।
सदा रहूँगा दास सा, घेरे चारों द्वार ।।"
हुए निदेशाशीश दे, शंकर अंतर्धान ।
तदनुसार शत्रुघ्न ने, किया नगर-निर्माण ।।
वृद्ध-बहुश्रुत-बहुपठित, ऋषि-मुनि-संत-सुजान ।
गणक-चिकित्सक-श्रेष्टि-भट—शिल्पि प्रधान-प्रधान ।।
एकत्रित कर, योजना—, की सम्मुख सुस्पष्ट ।
जुटे सभी निर्माण में, किये बिना क्षण नष्ट ।।
संशोधन कर नगर को, किया चौसराकार ।
हाट-बाट-गृह-देवगृह, वन-उपवन विस्तार ।।
घोष-मल्लशाला अमित, गुरुकुल-रंग.गार ।
नभग-भेदिनी शतघ्नी, सजीं सुदृढ़ प्राकार ।।

मालिनी

श्रीभूतेश्वर गोकर्णेश्वर,
रंगेश्वर पिपलेश्वर बनकर ।
बैठे मधुरा के चारों दिशि,
भगवान भूतभावन शंकर ।।

मानसी - चर्चिका - चामुंडा,
कंकाली - कात्यायिनी - सती ।
गार्गी - सार्गी-श्री-अरुन्धती,
रेणुका- भवानी - सरस्वती ।।

गंगा स्थापित की स्थान शोध,
सरराज विकुंठाधार रचा ।
दुर्वासा - सौभरि - वेदशिरा,
कपिलादिक बैठे हृदय नचा ।।

ध्रुव-अंबरीष - नारद - वराह,
गौतम-बलि-रावण- विहगेश्वर ।
ऋषिसप्त-सोम - गंधर्व - दक्ष,
भार्गव-कपीश आश्रम-परिकर ।।

साकेत-पात्र का राम - राज्य—
मधु मधुपुर यों छलका छल-छल ।
सौमित्रि-सुमानस मानस से—
बह चली राम-रति-सरित विमल ।।

कृत्कृत्य हो उठे मज्जन कर—
व्रज-रज में खग-पशु जड़ चेतन ।
रह गई कामना शेष एक—
सबकी, दें दर्शन रघुनंदन ।।

जन-मन का लख औत्सुक्य प्रवल,
अविरल निश्छल निर्मल निश्चल ।
आमंत्रण भेजा अवधपुरी,
निज इष्ट-देव के चरण-कमल ।।

दोहा

लेकर तीनों - जननियां, श्रुति सुत-युगल समेत ।
रघुपति ने आकर किया, मधरा मधुर - निकेत ।।

ज्यों भावी-प्रियसदन लख, कन्या-मुख मुस्कान ।
त्यों मथुरा की भूमि पर, सकुच खिले भगवान ।।
अनुज-व्यवस्था देखकर, मुदित हुए रघुनाथ ।
लौटे अवध प्रवास कर, शत्रुदमन के साथ ।।
लख सकुशल शत्रुघ्न को, छाया मोद अपार ।
विजयोत्सव घर-घर मने, मंजु मंगलाचार ।।

सोरठा

'जिनके बंधु ललाम, भरत-लखन-रिपुदमन से ।
युग-युग वे श्रीराम, भारत के राजा रहें ।।

दशम-भुवन

मंगलाचरण

श्रीतुलसी-महिमा

राम-राम जपि स्वयं राम-मय ह्वै गए तुलसीदास ।
विरच्यौ मानस हरषी सारद हंस बिखेरे हास ।।

कियो, अभोग्यौ-मूल अभाग्यौ, पारिजात की बगिया ।
राम-नाम-सौरभ बिखरायौ दिखरा जुगल-दँतुरिया ।।
जग-जननी जेहि अशुभ बतायौ, जगजननी शुभ कीन्हौ ।
काट्यौ कर्म-कुबंध चारि-फल चारि-चनक कहि लीन्हौ ।।

सूकर-क्षेत्र कृपा करि नरहरि जानि पुरबल्यौ खास ।
राम-राम जपि स्वयं राम-मय ह्वै गए तुलसीदास ।।

मायाबल प्रत्यक्ष दिखायौ लांघि सरित शव-नैया ।
जाइ जगाई गोरी, गहि अहि-रजु कहि 'आयो सैंया' ।।
"धिक-धिक ऐसी प्रीति निलज्जनि दौरे आयहुं साथा ।
अस्थि-चर्म मँह सुरति नाथ ! भव-भय-भंजन रघुनाथा ।।"

'मां' कहि पाँ गहि चल्यौ, न देख्यौ मुरिकै, भयो प्रकास ।
राम-राम जपि स्वयं राम-मय ह्वै गए तुलसीदास ।।

सतहत्तर संवत्सर वय लौं गिरि-सरि-सर-वन छाने ।
कज-दल सम जग रहि करतल-गत आमल-सम प्रभु जाने ।।
चित्रकूट की संत-भीर रघुवीर तिलक आ लीन्हौं ।
मिले प्रेत ते मारुति, मारुति हरि के कर कर दीन्हौं ।।

विधा-विधा मँह विविध-विविध विधि विकस्यौ राम-उजास ।
राम-राम जपि स्वयं राम-मय ह्वै गए तुलसीदास ।।

ग्रंथ-ग्रंथ कौ दिव्य-दृष्टि ते रत्न-समूह बटोरा ।
जुकति वेधि स्वजनन-हित पोयौ राम-चरित के डोरा ।।
सुजन सुनाहिं, सुनहिं, समुझावहिं, सुनि-सुनि नाहिं अघावैं ।
पग-पग पल-पल छिन-छिन अति-अति अधिक-अधिक सुख पावैं ।।

तुलसी-बिरवा काव्य-मंजरी रघुवर-भँवर विलास ।
राम-राम जपि स्वयं राम-मय ह्वै गए तुलसीदास ।।

गिरा-अरथ जल-वीचि देह-छाया से पृथक, मिले से ।
खिले बीज से, लिये बीज के कोष प्रसून खिले से ।।
कविता करके लसे कि तुलसी भनति लसी पा तुलसी ।
सोचि-सोचि यहि सुरभि-सुरभि कै उरभि-उरभि मति हुलसी ।।

ग्राम्य-गिरा साहित्य मनोहर, लौह सुपारस पास ।
राम-राम जपि स्वयं राम-मय ह्वै गए तुलसीदास ।।

बालकांड मँह जौन अवधपुर घर-घर बजीं बधाई ।
तिलक-समै बनवास अयोध्या सोइ अँसुवनि-भरि न्हाई ।।
जंगल-मंगल मंगल-दंगल हरी निशाचर सीता ।
कियौ भुजनि-भरि मीत भीत-कपि एकाकीपन बीता ।।

धधक उठीं करि धूं-धूं लंका चलीं मरुत-उनचास ।
राम-राम जपि स्वयं राम-मय ह्वै गए तुलसीदास ।।

बँध्यौ सिंधु पै सेतु नाम-बल सिला सलिल पै तैरी ।
सीस उगात्यौ गिर्‌यौ असिर भू, दससिर वार्‌यौ वैरी ।।
हिय सौं हिय-सो भरत लगायौ, भूप-रूप सुचि छापा ।
दैहिक-दैविक-भौतिक तापा राम-राज नहिं व्यापा ।।
फुलवारी मँह सियाराम जू रचै रसिक-मन रास ।
राम-राम जपि स्वयं राममय ह्वै गए तुलसीदास ।।

हर कौ रोम-रोम हँसि गावै, उमा भरैं हुंकारी ।
माघ न्हाइ सोइ भरद्वाज पै जागबलिक उच्चारी ।।
कैसौ अचरजु राजा स्रोता, कागा कथा सुनावै ।
संत-सभा मन-मगन गुसाईं सोइ पुनि-पुनि दुहरावै ।।
नाचै थेइ्‌-थेइ्‌ नेवरि ठुमका मारुति भर्‌यौ हुलास ।
राम-राम जपि स्वयं राम मय ह्वै गए तुलसीदास ।।

छान किसान लहरिकै गावै, पंडित बांचै आसन ।
कसे लँगोटा छैल अखारे, उछरै गाइ रमायन ।।
मनै रामलीला नवरातनि, कलि फिसला चित गीला ।
भरि-भरि नयन विलोकैं जन-जन सगुण-ब्रह्म की लीला ।।
लै अँगड़ाई देस-धरम उठि बैठ्यो पर्‌यौ निरास ।
राम-राम जपि स्वयं राम-मय ह्वै गए तुलसीदास ।।

जगदंबा जानकी-पार्वती-मंगल रुचिर बनायो ।
अवधराज के द्वार सकारे नहछू गाइ सुनायो ।।
लीला ललित कलित गीतावलि भाव भरी रस-भूरी ।
सजीं मांग सिंदूर रागिनी रामचंद्र-पद-धूरी ।।
रचि रामाज्ञा, मृतवत् द्विज-मुख कीन्हौं प्रान-प्रकास ।
राम-राम जपि स्वयं राम-मय ह्वै गए तुलसीदास ।।

"कहां कहौं छवि आजु बेनुधर भले बने हो स्वामी ।
पै तुलसी तब माथ नवावै, धनु लो अन्तर्यामी ।।
ब्रजभू-ब्रजभाषा-ब्रजपति की मृदु-माधुरी बखानी ।
दै गलबांही यवन खानखाना के मन की मानी ।।
प्रेम-प्रीति को बिरवौ पायौ चनन-चउँकियन वास ।
राम-राम जपि स्वयं राम-मय ह्वै गये तुलसीदास ।।

जगवंदन गनपति गा सब सों सबही भांति कही है ।
समरथ सुवन समीर हठीले हनुमत बाँह गही है ।।
दीनानाथ दयालु द्रवित हो, हिय की दाह दही है ।
अंब कही पा औसर, उभरी रघुपति-हाथ सही है ।।
पाती थाती भई प्रियतमा तुलसी हरि-सिर-घास ।
राम-राम जपि स्वयं राम-मय ह्वै गए तुलसीदास ।।

जब लगि ब्रह्मपुत्र-कृष्णा मंह छल-छल करि छलकै जल ।
जब लगि ठाड्यौ भाल उठाए भू पै सुभ्र हिमंचल ।।
जब लगि 'जय बदरी विसाल' रणछोड़ उड़ाएँ पताका ।
गंगाजल ते पुजें रमेसुर, नीलाचल नभ हांका ।।
तब लगि तुलसी वृष-तरनी से तपिहैं जगताकास ।
राम-राम जपि स्वयं राम-मय ह्वै गए तुलसीदास ।।

जिन कथानि ते बचि-बचि निकसे बाबा बड़े सयाने ।
तिन्हीं प्रसंगन पै मन-मति-चित-हिय हमरे ललचाने ।।
हो उत्तर-साकेत तवाशिष मानस-पुलिन ठिकान्यौ ।
अनन्हाये दें पदरज, न्हाये तिलक लगाएँ सुहान्यौ ।।
सजे स्वजन तव सूत्र, राम दल, सिसु-गूँथनि सोल्लास ।
राम-राम जपि स्वयं राम-मय ह्वै गए तुलसीदास ।।

श्री रामाश्वमेध

दोहा

एक दिवस रघुवंश-गुरु, आये राजागार ।
राष्ट्र-धर्म-संस्कृति सु-हित, बोले वचन विचार ।।

मालिनी

"अब राजसूय का मंगलमय आयोजन ।
नृप-श्रेष्ठ ! करो, कर सादर गणपति-वंदन ।।"
कर सके न सहसा राम विरोध-समर्थन ।
घायल-अंतर की रिसन चली रिस लोचन ।।

प्रभु बोले "गुरुवर ! कैसी कठिन परिक्षा ।
हो भिक्षु राम, रामत्व बने या भिक्षा ।।
तज राजसूय-संकल्प अयश लूं जग में ।
कर भ्रमण दिया संदेश स्वयं घर-घर में ।।

दंभी-लबार-बलहीन-दीन कहलाऊँ ।
या प्रथमाहुति निज जीवन-लक्ष्य बनाऊँ ।।
कर अपत्नीक-मख मलिन करूँ परिपाटी ।
या मलूं वदन पर चंदन कह पग-माटी ।।

सिय के पुनीत-पद पर किसको बैठाऊँ ।
लघु-धर्म-हेतु क्या बृहत्-अधर्म कमाऊँ ।।
मख बिना किये मैं बनूं धर्म-हत्यारा ।
या यज्ञ रचाकर बनूं आत्म-धिक्कारा ।।

यह बहुत समय से प्रश्न उपस्थित गुरुवर ।
जब देना ही, क्यों दूँ न आज ही उत्तर ।।
कर लिया देव ! मन में मैंने निर्वाचन ।
दे सकता राम शरीर, किंतु रामत्व न ।।

अपराधी जग, अपराधी कहे, नमित शिर ।
पर निरपराधिनी के प्रति अपराधी फिर ।।
अब बन न सकेगा दास, क्षमा हो अविनय ।
जिस सत्य-हेतु पितु ने समझा तन तृण-मय ।।
मैं उनका सुत, तज तो सकता सिंहासन ।
पर कर न सकूँगा धर्म-नाट्य-संचालन ।।
ऋषि-वृन्द-अवज्ञा पाप, नरक दे, स्वीकृत, ।
जो उस पुण्यद्रोही-प्रति निश्चित, समुचित ।।"
घिर गयी कंठ में वाणी, बरसे लोचन ।
मुख पर दुकूल रख सिसक उठे रघुनदन ।।
हो उठे व्यथित त्रय-बंधु, भरत रुक बोले ।
"यह वंद करें अध्याय बिना ही खोले ।।
रविकुल-रवि का सिय-निर्वासन अस्ताचल ।
हम निजल जी रहे प्रेत-ताल के शतदल ।।
हम दिखते खाते-पीते-हँसते-सोते ।
पर किसे दिखायें जीवन ढोते, रोते ।।
मन बुझा-बुझा रहता है सतत सिलगता ।
तन बरबस शव-सा नव-शृंगार विरचता ।।
इन सब नयनों में नयन डालकर झाँको ।
रघुकुल-गुरुवर ! फिर निज रघुकुल को आँको ।।
यह कनक-भवन क्या, मढ़ा शिला पर कंचन ।
ज्यों नट करता थोथे-बांसों पर नर्तन ।।
ज्यों शतदल दलदल में पल, आतप सहता ।
अविकल अलि-संकुल-विकल विहँसता रहता ।।
त्यों विमल हंस-कुल का अंतःपुर सारा ।
पी अश्रु, स्वांस गिन, पांचभौतिकी-कारा ।।
किस भांति काटता है, किस भांति बतायें ।
यह चिरा चीर-सा हृदय किसे दिखलायें ।।

भर आहें वस्त्राभूषण नित्य पहिनते ।
जल पूँछ दृगों का, घर से विवश निकलते ।।
निशि ज्यों उतारते, लगता भार उतारा ।
जग सोता, हम नापा करते नभ सारा ।।
किस दिशा, कौन सा उगता किस वय तारा ।
दे गया ज्ञान-दुर्लभ दुर्दैव हमारा ।।
प्रहरों तक बने अपरिचित प्रियजन लखते ।
कुछ का कुछ कह जाते कुछ कहते-कहते ।।
अब गणक देखते हाथ, प्रश्न हम करते ।
कितने स्वांसों के क्लेश शेष हैं रहते ।।
मन-बुद्धि-चित्त-आमोद-प्रमोद अवध का ।
हो गया विदा, बन प्रिय सिय-निर्वासन का ।।
गुरुदेव ! करें अब अनुष्ठान वह केवल ।
तन छुटें या कि फिर फिरें अवध मां निर्मल ।।"
भर आह, मौन हो भरत झुका शिर, सरके ।
बोले वशिष्ठ से ब्रह्मज्ञानी भरके ।।
"प्रिय ! क्या मुझसे अप्रकट, प्रकट जो करते ।
हम वीतराग क्या कहें कि कैसे रहते ।।
मन की निकाल लेते हो तुम कह कर तो ।
काषाय-बेड़ियों में पर जकड़े हम तो ।।
जो वाणी करती थी निगमागम-चर्चा ।
अब सिय-चरित्र की करती केवल अर्चा ।।
ऋषि-दम्पतियों की यही नित्य-दिनचर्या ।
सुखदा-शुभदा यद्यपि संयास-विपर्या ।।
प्रिय ! एक बात पर सत्य, सत्य ही निश्चित् ।
ज्यों दीप्ति न हो सकती कदापि अंतर्हित ।।
त्यों वह भी सीता है, अवश्य प्रकटेगी ।
हो प्रथमाधिक्या ज्योतिमयी चमकेगी ।।

जिसको न घेर पाईं लंका-प्राचीरें ।
जिसको न लीप पाई अंगार-पटीरें ।।
ये गंगपार के दो-अंगुल भरके वन ।
क्या छिपा सकेंगे उस सिय को, कहता मन ।।
सिय यदि न अंत में पाई गौरव अपना ।
तो मैं समझूंगा राम-राज्य यह सपना ।।
पर रामराज्य यह स्वप्न न, सत्य प्रकट है ।
यह भरत-भूमि पर अक्षत अक्षयवट है ।।
यह लखन मूल, रिपुदमन तने वाला है ।
यह दशरथ ने जीवन-रस से पाला है ।।
यह कौशल्या के आंचल हुआ सुपोषित ।
इस पर सर्वस्व सुमित्रा मां का अर्पित ।।
छू सके न वन-पशु इसकी लघु परछाँई ।
वह लघु-माता ने कंटक बाढ़-लगाई ।।
सुग्रीव फूल सुन्दर, फल सरस विभीषण ।
यह घिरा गिरा-वन गंग-अवध यमुना-रण ।।
आसेतु-हिमंचल-यह तीर्थेश सुपावन ।
यह पाप-प्रलय का पुण्य-प्रभात सुहावन ।।
इसके शाखा-दल श्रुतिसिद्धांत-सनातन ।
जो करता दिशिदिशि-प्रांगण निर्भय-नर्तन ।।
यह धर्मद्रोणि सु-शिशु रामत्व सजाये ।
सीता-सतीत्व-प्रखरस्मिति वदन खिलाये ।।
मैं ब्रह्म-दृष्टि-सम्पन्न मृकंडुतनय-सम ।
कर चुका दर्श जिसके, सौगंध मुझे मम ।।
यदि इसमें रंच असत्य, '..सत निगमागम ।
वे रचे न ऋषियों ने कर ब्रह्म-समागम ।।
वे मद्यप धूर्तों की है कुटिल कल्पना' ।
कह दूंगा निस्संकोच 'कुबुद्धि 'जल्पना' ।।

जल्पना न वत्स ! परन्तु सत्य ईश्वर सा ।
यह सियरघुबर-संबंध सीयरघुवर-सा ।।
मैं पक्षपात करता न किसी का, निस्पृह ।
मुझको प्रिय तुमसे अधिक तुम्हारा यह गृह ।।
यह उपरोहित-पद-लोलुप अधम न कहता ।
यह द्विज-कुलीन का यम-दम-संयम कहता ।।
यदि इसमें अंतर रंच रहा तो, यह तन ।
तव सम्मुख कर दूंगा यज्ञानल-अर्पण ।।
जिनके वैराग्य अंनत, राग कच्छप से ।
वे धर्माधाराधार भरत-रघुवर से ।।
क्या एक साथ ही बोले आज अचानक ।
तुम आ सकते हो मर्यादोदधि-तट तक ।।
क्या धर्म और रामत्व वस्तुतः दो हैं ।
क्या राम-जानकी-तत्व वस्तुतः दो हैं ।।
क्या रघुपति-भरत महत्व वस्तुतः दो हैं ।
ये देह-सुजीवन-सत्व वस्तुतः दो हैं ।।
ये पूरक क्या पर्याय वस्तुतः प्रियवर ।
यह धर्माधारित-मख रामत्व-प्रभाकर ।।
यह राम-राज्य का विजयस्तम्भ अमर है ।
तुम समझ रहे नृपदंभ-प्रदर्शन भर है ।।
यह राष्ट्र-धर्म-संस्कृति-सिद्धान्त-समन्वय ।
इससे पायेंगे भुवन राम का परिचय ।।
जब पाप बना हमसे सिय-निर्वासन का ।
तो भार न क्या हम पर ही प्रक्षालन का ।।
सीता ने ही अवतार धार धरती पर ।
कर दिये स्वबल से सिद्ध राम परमेश्वर ।।
इस क्रूर-अवध में आज न उसकी काया ।
पर हृदय-हृदय पर छाई उसकी छांया ।।

वह सिय की छांया ही हो कनक-प्रविष्टित ।
होगी सिय सी, तव दक्षिणांक संस्थापित ।।
मैथिली-स्थान लेने वाली त्रिभुवन में,
कल्पना न कर पायेगा सृष्टा मन में ।।
ले देख लोक, जिसका समझे निर्वासन ।
वह रामवल्लभा सिया, राम-हृदयासन ।।"
बोले लक्ष्मण-शत्रुघ्न "सत्य क्या गुरुवर ।
इस भाँति हो सकेगा क्या अपना अध्वर ।।"
"क्यों नहीं हो सकेगा, यह होगा, होना ।
हमको सम्मुख-सौभाग्य कदापि न खोना ।.
सीता-नवमी का श्रेष्ठ-मुहूर्त निकट की ।
भू-पूजन कर, दो सजा सुमंगल-घट ही ।।
जल-मृतिका द्विज-दल तीर्थ-तीर्थ से लायें ।
आमंत्रित ऋषि-मुनि-भूपों को कर आयें ।।
तुम तीनों ही संग्राम-सभा पंडित हो ।
लो बांट, सहज ही में सब संपादित हो ।।
स्वयमेव व्रती रघुनाथ, शेष व्रत क्या है ।
केवल इतना है, धनुष नहीं छूना है ।।
क्यों छूना, बनकर छांह धनुष तुम धारे ।
यह खड़ा सिद्धि-हित समय प्रियो ! तव द्वारे ।।
तुम उठो ! उठो ! लेकर संकल्प अशंकित ।
सिय-प्राप्ति सुफल इस राजसूय का निश्चित ।।"
रह गये राम नत, भरत न कुछ कह पाये ।
कुछ खिले लखन, रिपुसूदन कुछ मुस्काये ।।
इतनें में तीनों राज-जननियाँ आईं ।
सब यज्ञ-व्यवस्थायें मुनि ने समझाईं ।।
मां बोलीं "उठ जा राम! चित्त प्रमुदित कर ।
लें देख चक्रवर्ती के तुझे सुपद पर ।।

फिर चलें अंब अविलंब, विलंब हुआ ।
कच-रदन-नयन-वय-मिष तन काल छुआ है ।।
यह और मान कर अंतिम-दृश्य दिखा दे ।
संभव है ईश्वर उससे तनिक मिला दे ।।"
लख प्रभु-निदेश शत्रुघ्न तुरत उठ धाये ।
पल में सेनप-सामन्त-सचिवदल आये ।।
द्विज चले पत्रिका ले दिशि-दिशि ले अनुचर ।
नृप-मख-चर्चा पुरवा सी पुरी पुरी भर ।।

रोला

वधुयें रुकने लगीं, लगीं कन्यायें आने ।
लगे तलों पर तले नगर-आगार उठाने ।।
संचय करने लगे दूरदर्शी-व्यापारी ।
चलीं बनाकर अवध-सुलक्ष्य दिशावर सारी ।।
पुर-सज्जा रत हुए दिवस-निशि शिल्पी-चित्रक ।
हुए कठिन अभ्यास-निरत नट-नर्तक-वादक ।।
करने लगे समाप्त पाठ दीक्षित-अध्यापक ।
लगे सँवरने शुभ-चारित्र्य-प्रवर्तक नाटक ।।
होनें लगे प्रशस्त राज-पथ सुविधाकारी ।
पथ-पथ पादप-सफल लगे, लहराईं क्यारी ।।
रंग-बिरंगे भरे चतुष्थ ऊर्ध्व-हिलोरे
खंभ-खंभ पर लगे विभामणि कनक-सकोरे ।।

स्वर्ण-सीता

हरिगीतिका

अतिशय विशारद स्वर्णकारों को बुला गुरुदेव ने ।
सजवा दिये बहुमूल्य अगणित रत्न दुर्लभ सामने ।।
बोले कि "धारे गर्भ तव कुशला कला की चेतना ।
मांदारिका-गति जन्मना, अश्रुत प्रमद-संवेदना ।।

जगमोहिनी-सिय की भुवन-सम्मोहिनी प्रतिमा रुचिर।
ऐसी बने जो देखकर देखे स्वयं फिर, सीय फिर॥"
जो कह सकी वाणी न वह, ऋषिवर-दृगों ने कह दिया।
हार्दिक-हृदाशय सुहृद-सम, हो एक हृदयों ने लिया॥

ऋषिराज-पदरज कनककारों ने स्वमस्तक धार कर।
कण-कण बसी जो प्राण सी सिय, वह उतारी चित्त पर॥
वह हृदय-देवी चित्त से, मन बुद्धि पर होती हुई।
नव-क्रांति की कमनीयता निज कांति से बोती हुई॥

अति सूक्ष्म-यंत्र-निकुंज से बरवस प्रकट होने लगी।
जन-सकुच-कालिख क्षमित-सी सानिध्य से धोने लगी॥
कंचन-फलक साकार-छवि यों सीय की उतरी हुई।
निमि-क्षेत्र सीता-मृत्स ज्यों सीता स्वयं उभरी हुई॥

ज्यों-ज्यों चितेरों की चतुर तूली चलीं चातुर्य से।
त्यों-त्यों जनकबाला-सुछवि भरने लगी माधुर्य से॥
उबटन शलाका मंजु मीनाकार की जब कर चुकी।
प्रत्यंग-अंग सुरंग सुंदर, चाव से जब भर चुकी॥

गौरी-सुपूजन के समय की वह किशोरी सी लगी।
निकली खटाई से, स्वयं वर-माल ले ज्यों जगमगी॥
उभरी हृदय की राम-रति सी, ओपनी जब फिर गई।
छवि-सदन सुषमा-दिव्य-दीपकमालिका से घिर गई॥

जब चीर कुंदन-कोर मणि-माणिक्य जड़ियों ने जड़े।
मानों सुमंडप भाँवरों के हेतु पद-पंकज पड़े॥
देखी नयन भर, नयन-भर कौशेय से फिर ढक दिया।
शिविका सजी अवगुंठनी ने प्रिय द्विजाश्रम-पथ लिया॥

ऋषिराज की आँखें नगर की नारियों सी बन गईं ।
अंतः-सुपुर ज्यों भीड़ भावों की भरी, लख वधु नईं ।।
"क्या दूं तुम्हें साकेत के हे स्वर्णकारो ! बोल दो ।
कहता भरत से कोष की सब अर्गलायें खोल दो ।।

निर्जीव सी जो हो गई निर्वासिता सीता हहा ।
वह दी सजोवा सी मिला, कैसी कला ने तव अहा ।।"
बोले झुका शिर स्वर्णकार न आज क्या हमको मिला ।
जो पुण्य पाया, क्या कहें यों राजरानी को खिला ।।

यदि चाहते देना हमें तो आर्य ! यह आशीश दें ।
निमिराज-तनया सहित दर्शन यज्ञ में जगदीश दें ।।
वर्षा रहे होती समय पर, खेतियां खिलती रहें ।
उद्योग सब फूलें-फलें, निज छवि पयस्विनियां बहें ।।

रिपु-आंधियां सागर-त्रयी गिरिराज से हटकर बहें ।
संपन्न हों नर, नारियों की मांग सिन्दूरी रहें ।
मध्यम न हो प्रभु ! माध्यमों के व्यूह में कोई कला ।
भरताचला-अंचल बसे अचला हुई नित चंचला ।।"

दोहा

बोले ऋषि "पूरी करे, तव इच्छा भगवान ।
राष्ट्रैश्वर्य सु-नाडिका, नाडिन्धम गतिमान ।।"

मालिनी

श्रीसीता-नवमी का अति शुभ दिन आया ।
कर गणप-नमन शिव-रवि को अर्घ्यं चढ़ाया ।।
गोमती-तीर नैमिष-भू नृपति पधारे ।
द्विज-मंडल ने बढ़ वेद-मंत्र उच्चारे ।।

मणि-मंडित कंचन-हल हाथों में लेकर ।
मख-भूमि जोतने चले कृषक बन रघुवर ।।
लंकेश्वर-कीशेश्वर वृषभस्कंधों पर ।
हल चले धार ज्यों श्याम-अरुण नंदीश्वर ।।

प्रभु उठा कषा-सा पीत-दुकूल सुकोमल ।
रज चले झाड़ते सुहृद-युगल की पल-पल ।।
ले छत्र भरत, लक्ष्मण-रिपुसूदन चामर ।
यों लगे पिता के साथ लगे बालक वर ।।

हनुमान चले लेकर रत्नों की झोली ।
सीता-सीता के कण-कण सजी रँगोली ।।
सीतायें सीता लगीं लगाये रोली ।
प्रण-बीज-व्याज ज्यों प्रथम पुण्य-कृषि बोली ।।

कर सीता दक्षिण सीता-सम कर वंदन ।
प्रभु ने देखा, चल रहे अंजनीनंदन ।।
भर गया अलौकिक-भाव हृदय रघुपति का ।
'स्वयमेव धर्मं लघु-प्रत्युत्तर इस यति का' ।।

प्रभु रुके अष्ट-शत धनुष धन्य कर धरती ।
तब कृषक-मंडली हल ले चली हुलसती ।।
हो गई गोमती से सरयू तक भू सम ।
लहराई नैमिष अवध वीण मख-सरगम ।।

मुनि-आश्रम पूर्वं, अपूर्व बने बहु पावन ।
पश्चिम स्वर्गोपम नृपति-निवास सुहावन ।।
रनवास लास कर उठे सुरक्षित उत्तर ।
हय-गय-रथ परिकर फैले दक्षिण-पथ पर ।।

अगणित गोष्ठी-गृह मध्य मंजु मखशाला ।
रवि-शोचि छानता शुभ्रोल्लोच निराला ।।

दोहा

बहु पताकमाला घिरा, ध्वान्तांतक-ध्वज मध्य ।
प्रात प्रकृति ज्यों मेरु-शिख, देती रवि को अर्घ्य ।।

मालिनी

कुश-कांस - बांस - नारियल-पटैला-कदली ।
अति सुन्दर रचना रची मेखला सुतली ।।
षोडश-धनु वर्गाकार, लगा मखमंडप ।
ज्यों समाधिस्थ धर्मस्थल मूर्त-महातप ।।
चारों दिशि वृहदाकार द्वार बानीरी ।
प्रति-द्वार युगल-ऋषि धर्म-कर्म शारीरी ।।
ऋषिराज असित-देवल बैठे :शुभ प्राची ।
सुर-असुर जनक कश्यप ऋषि, अत्रि अवाची ।।
ध्रुव-युगल-सरिस द्वित-एकत सजे उदीची ।
ऋषि जातुकर्ण्य-जाजलि से लसी प्रतीची ।।
बहु कर्मकांड - मर्मज्ञ बटुक श्रुतिपाठक ।
यों खड़े पास, ज्यों धर्म-सचिव-परिचारक ।।
चतुर्विंश हाथ की मंडप-मध्य समाकृति ।
द्वादशांगुलीया - ऊर्ध्व-त्रि - प्राकारावृति ।।
त्रिसमय त्रिभुवन त्रय-तपन-त्रसन निश्रेणी ।
ज्यों खुली मज्जनातुरा तुरीया-वेणी ।।
शुचि तीर्थ-सलिल मृतिकागोमय-मय पावन ।
आहव-सुवेदिका लगी सुभग धर्मासन ।।
विधिवत् मखयोनि प्रतीची - मध्य बनाई ।
कर दो-दो अंगुल, अंगुल-षष्ठ उठाई ।।
ज्यों सानुपात दल सकल नवल पीपल का ।
षट्-त्रय-चत्वाराकार पंच-दश नलका ।।

कर कुंडश्री स्थापना वज्र-रेखासन ।
दश-दिशि मणि-कंचन-कलश दिशीश-निकेतन ।।
भद्राष्ट - सर्वतोभद्र - नवग्रहमंडल ।
सैन्धव-बंधन-मणि-यूप क्षेत्रपालस्थल ।।
मृग-व्याघ्रचर्म-कुश-कंबल कोमल-आसन ।
आज्यस्थाली शाकल्य-हेतु नव-भाजन ।।
अर्घे-तिष्ठे-स्रु क-श्रुवे - व्यजन-ग्रंथासन ।।
कल चमस-उपरने-सूक्ष्म निरीक्षक दर्पण ।।
रिपुदमन-कार्य लख मुदित प्रशंसा करते ।
गुरु मुनि-विभाग में पहुँचें हृदय हुलसते ।।
मुनि जान वसिष्ठागमन चले उठ सादर ।
सब मिले परस्पर कंठ धर्म-नयनागर ।।

दोहा

लाये स्वाश्रम मुनि-निकर, सादर गुरुवर साथ ।
लिये कठिन असिपत्र-व्रत, लखे सहज रघुनाथ ।।
की प्रभु ने भू-वंदना, उठा साधुजन हाथ ।
हृदय सुपुण्य सराहते, बोले 'जय-रघुनाथ' ।।

यज्ञ-यात्रा

मालिनी

कर नित्य-कृत्य संपन्न प्रभात निरख कर ।
स्वाश्रम से ऋषिजन-सह मखभू-दिशि गुरुवर ।।
यों चले, चले ज्यों दीप्त-दृप्ट मीनातन ।
गुरु मुदित साथ शशि त्यों राजा रघुनंदन ।।
दीक्षित शुचि छवि मृगचर्म पीत-पट मनहर ।
चंदन-तुलसी-रुद्राक्ष विभूषण तन पर ।।

मृग-श्रृंग हाथ शुचि कुशपैंतीं अंगुलिका ।
यज्ञाग्नि अग्र, पीछे सीता-छवि शिविका ।।
गुरुवर वशिष्ठ के साथ वरिष्ठ तपोधन ।
सामंत-सचिव-सेनपत बहु चले प्रजाजन ।।
बज उठे वाद्य, सुर सुमन लगे बरसाने ।
ले-ले स्वभेंट बहु भूपति लगे समाने ।।
ज्यों पर्व-सिंधु की ऊर्मिमाल लहराती ।
त्यों लगी सुदीक्षा-शोभायात्रा आती ।।
ज्यों शंखस्वर मंडप-द्वारे गुंजारे ।
युवराज भरत त्यों स्वागत-साज सँवारे ।।
बढ़ चले लखन-शत्रुघ्न साथ में लेकर ।
अभिनंदन कर मुनि-निकर राम का सादर ।।
ले चले पाँवड़ें डाल, यज्ञ-वेदी पर ।
कन्या बरसाने लगीं सुलाजा सुस्वर ।।
ले शांता मंगल-थाल मुदित उठ धाई ।
प्रभु से भगिनी ने राज-मुद्रिका पाई ।।
शिर लगा किंतु प्रमुदित तुरंत लौटा दी ।
युवराज भरत ने मणि-गिरि बहिन छिपा दी ।।
मणि एक उठा मणि-राशि लुटा दी सारी ।
मांडवी-ऊर्मिला-कीर्ति लिये जल-झारी ।।
लज्जानत लोचन, प्रभु के सम्मुख आईं ।
पश्चिम-प्राची-दक्षिण ठकुराई पाईं ।।
कर वदन छिपातीं दिखीं जननियां आंचल ।
प्रभु बोले "मां तुम मंगल-दल की मंगल ।।
तुम कमठ-कोल-अहि शक्ति अवध स्थिर तव बल ।
नृप लोट गये बढ़ तुरत चरण-तल विह्वल ।।
रह गईं उठातीं तीनों उठा न पाईं ।
लख राम-विनय बरबस आँखें भर आईं ।।

पाकर अरुन्धती-बोध उठे राजेश्वर ।
बैठे सुवेदिका कुल-गुरु आज्ञा पाकर ।।

युगलमालिनी

ब्रह्मा होता अध्वर्यु तथा उद्गाता,
कर वरण समादर सहित बिठाये आसन ।।
ऋषि-कंठों से साकार हुईं मंत्रावलि,
विधि-विज्ञ कराने लगे पंचसुर-पूजन ।।

रोला

सभागार मख-कुंड, शुद्ध समिधा सिंहासन ।
ऋषिकर मेषप्रवर, अरणिका-मंथन स्यन्दन ।।
उतर शुभ्र कर्पूर वेदिका सजे मुदित मन ।
स्वाहादेवी-सहित देव-प्रतिपाल हुताशन ।।
सप्त-जिह्व यश दीप्ति दिव्य दमके दिशि-प्रांगण ।
जयकारों से भरा यज्ञ-मंडप का कण-कण ।।
महक उठा आकाश, कर उठीं नर्तन ज्वाला ।
मोहित होने लगीं सोम-रसिका सुर-माला ।।
आहुति-आहुति देव प्रकट हो-हो कर लेते ।
बढ़ते जाते सूर्य किरण-कर आशिष देते ।।
देख पतंग-तुरंग मेरु-उत्तुंग शृंग पर ।
कंज-कोष-पर्यंक पिये मकरंद भृंगवर ।।
मँडराते आकाश क्षेमकरियों के मंडल ।
मध्याह्नाहुति-हेतु उठे हर्षित हो मुनि-दल ।।
हुआ सत्र-अवसान स्ववासों पर सब आये ।
फलाहार कर कुछ करने विश्राम सिधाये ।।
निराहार कुछ लगे नित्य-देवार्चन करने ।
कुछ परिचर्चा हेतु लगे परिचय-तम हरने ।।

अमित विश्व-विख्यात विभूति पधारीं मख में ।
चले देखने, लिये कौतुहल सा कुछ मन में ।।
कुछ सामीप्य-विमोह भरे सानिध्य-मोह कुछ ।
कुछ शंकाकुल-शमन - हेतु, ले उहापोह कुछ ।।
कुछ-मख मंडप कुछ पुर का करने अवलोकन ।
कुछ विशेष-जन बैठे कुछ करने निर्धारण ।।
चार घड़ी पश्चात् पुनः सुनकर शंखस्वर ।
निज-निज परिकर यथायोग्य सब बैठे आकर ।।
ले विचार मुनि-जन का पा गुरु का अनुशासन ।
किया भूप ने सूक्ष्म-दृष्टि से विषय-विभाजन ।।
अधिकारी विद्वान गये निज-निज परिसर में ।
उतरे रत्नान्वेषक विज्ञ विषय सागर में ।।
ग्रंथ-यंत्र-उपकरण किये उपलब्ध राज्य ने ।
पूर्वाग्रह को त्याग ऋषीश्वर लगे आंकने ।।
अनुभव-सिद्ध महर्षि साथ कुछ राजेश्वर के ।
निर्णय देने लगे निखिल-निष्कर्श निरख के ।।
तर्क भिषक-गण करते कहीं रोग-लक्षण पर ।
नव्य निदान-विधान पा रहे कहीं समादर ।।
गिरि-सरि-विपिनौषधि पर कुछ करते अन्वेषण ।
कहते अनुभव स्वयंसिद्ध ग्रामीण-भिल्ल गण ।।
गलित - विहीन - विनष्ट - वक्र-असमर्थ-अधूरे ।
कहीं अंग-प्रत्यंग रूप-गुण पाते पूरे ।।
लेह-चूर्ण-वटि-भस्म - तरल-मिश्रण-आच्छादन ।
सूची - कायाकल्प - शल्य - पट्टिका-विलेपन ।।
कहीं हृदय मस्तिष्क-रक्त-रज-प्रत्यारोपण ।
कहीं विकट संकट के हल अतिशय साधारण ।।
जल-मृतिका-फल-फूल-वाष्प-रविशशिजा-आसन ।
खींच रहे यम-बंधु यमानन से जग-जीवन ।।

कहीं योगिजन सिखा रहे अत्यद्भुत-ग्रासन ।
कुंडलिनी कर रही ग्रलक्ष्यावरण-विभेदन ।।
सामुद्रिक-विज्ञान, रत्न गुण-अवगुण शोधन ।
कहीं परा-ग्रपरा के सफल सटीकायोजन ।।
गणक शुद्ध पंचाग कर रहे विपल-कला-पल ।
देशान्तर-अक्षांश दे रहे भाग-गुणन ५ल ।।
ग्रहगति-भाव-प्रभाव कहीं नव व्याख्या पाते ।
चांद्र-सौर-क्षय ग्रधिक मास कुछ पलटे जाते ।।
नभ-तारक नव-जातक-जन की जन्म पत्रिका ।
कहीं धातृका-सरिस बांचती नयन-तारिका ।।
ग्रनावृष्टि-ग्रतिवृष्टि कहीं भूकंप बवण्डर ।
उष्मक - शीत - वसंत-हिमोत्पल-वर्षा-पतझर ।।
पवन-परीक्षा कहीं, कहीं आकाशी-लक्षण ।
परिभाषा पा रहे विलक्षण कहीं विचक्षण ।।
कुछ करते खनिजादि तलश्री का विश्लेषण ।
करते कतिपय विज्ञ वनस्पति-शास्त्र-विवेचन ।।
चर्चा होती कहीं सिंचाई के साधन पर ।
कहीं पत्र पर पाती मरु-भू हरित-कलेवर ।।
गोधन बने बलिष्ठ दिनों-दिन ही अधिकाधिक ।
खाद मिले, स्वादिष्ट पुष्ट हो शस्य-भूमि नित ।।
वृषभों के खुर-खुंदी भूमि यों फसल उगाये ।
शिशु-सुकेलि ज्यों ग्रंबस्तन ममता सरसाये ।।
'जिसकी लगे कुदृष्टि हमारे प्रिय गोधन पर ।
गिरे हमारा कोप कुलिश उस अधमाधम पर ।।
जिस दुर्दिन होगी गोधन की महिमा कलुषित ।
वह दिन होगा काल-रात्रि भारत का निश्चित् ।।'
भरे राम के नेत्र भावना लख ऋषियों की ।
की सुबुद्धि कामना स्व-भावी संततियों की ।।

चर्चा होती कहीं वन्य-पशु संरक्षण की ।
बढ़ते जाते नगर, सिकुड़ते जाते वन की ॥
कहीं विविध पशु-कीट-पतंग मषक-खग-जलधर ।
सरी-सर्प जात्योपजाति विष-दंश विषय पर ॥
खोज पूर्ण निष्कर्श विदुष-जन प्रस्तुत करते ।
कहीं शबर नख-अस्थि-चर्म-मधु-पंख परखते ॥
कहीं विविध उद्योग बहूद्देश्यीय योजना ।
वैदेशिक-देशीय खपत-मांगों की तुलना ॥
मान-चित्र पर झुके खींचते कुछ रेखायें ।
शोध रहे परिवहन-समस्या विविध-विधायें ॥
कुछ मुद्रा-परिमाण-माप की एक-रूपता ।
अंक बिठाते बीजगणित की प्रखर योग्यता ॥
कही राज्य-अष्टांग विभूषण चढ़ा निकष पर ।
जांच रहे दृग-यंत्र सामयिक सूक्ष्म लगाकर ॥
किस सीमा पर लगे राज्य की सेना कितनी ।
कहां लगें प्रक्षेपणास्त्र किस ओर शतघ्नी ॥
एक कह उठे "क्या इसकी अब आवश्यकता ।
व्ययाधिक्य से पिसे व्यर्थ ही कर से जनता ॥"
बोले आंख तरेर एक ही साथ कई पर ।
शक्ति शिला पर भवन मित्रता का स्थिर प्रियवर ॥
मित्र मित्र को रखती केवल शक्ति शक्ति की ।
राष्ट्र-घातिनी क्रूर-भावना अनासक्ति की ॥
ठीक आपका कथन आज नृप रघुनंदन हैं ।
पंचभूत पर सुदृढ़ किंतु किनके बंधन हैं ॥
कल-बैठेंगे कौन, गर्भ में क्या भविष्य के ।
देख पा रहे कौन, दृश्य क्या-क्या अदृश्य के ॥
युगों-युगों में कभी राम से राजा आते ।
राजसूय क्या नित्य-नित्य यूं ही रच जाते ॥

गंगा हिमगिरि-सिंधु मध्य ही करती कल-कल ।
दिखता अन्यस्थान सजा केवल गंगाजल ।।
आज सिंधु पर सेतु बना, कल नहीं बनेगा ।
जिसनेफूंकी लंक न वह कपि सहज मिलेगा ।।
केवल मलयाचल पर चंदन होता भीलों ।
जाती मात्र सुगंध न्यून होती कुछ मीलों ।।
फिर तो कडुवे नीम-ढाक-वट - पीपल मिलते ।
देते वही प्रकाश दीप जो दिन में मँजते ।।
चाहे हो व्यक्तित्व विशिष्ट-इष्ट कितना ही ।
किंतु समष्टि-महत्व और रखती अपना ही ।।
सब उपवन के फूल एक ही बार तोड़ कर ।
नहीं कहीं पर चढे कभी भी किसी पर्व पर ।।
जब दो दिखते खिले, एक तब तोड़ा जाता ।
घर पुत्रों से नहीं पौत्र से छोड़ा जाता ।।
गये सेतु से जो लौटे वे ही विमान से ।
पार करेंगे सिंधु वही कल सलिल-यान से ।।
लंक भस्म होकर भी दीप-शलाक जलाती ।
अपवादों पर नियमावलि न लुटाई जाती ।।
गिरि से सागर तक मरु-मालव-वन न देश है ।
यह संस्कृति आत्मा का केवल बाह्य-वेष है ।।
यह केवल राजस्व क्षीर का मृदुल त्वचास्तन ।
जो समझे वह मातृभूमि का केशकीट-कण ।।
नृप भी तब तक नृपति, रखे मर्यादा जब तक ।
बने अग्नि तो बुझा दिया जाता दीपक तक ।।
धर्मच्युत पितु-उदर हमीं बैठै चिरवा कर ।
शील-शंक अघ्न्या-जननी-शिर रखा परशु पर ।।
और अधिक क्या श्रुतिप्रदाता का भी यदि स्वर ।
ठहरे वेद-विरुद्ध, न भारत देगा आदर ।।

यदि त्रिशंकु-असमंजस सम आसन-संरक्षण ।
लक्ष्य किसी का बना, भूमि कर लेगी भक्षण ।।
राम नाम है, पुण्य प्रजाओं के पालन का ।
बना दिठौना पाप, सती सिय-निर्वासन का ।।
कर दुधार की धार पार मिलता सिंहासन ।
चँवर-छत्र पथ-रज न, साधु के सिद्धाभूषण ।।
जो शिर शिरधारी के करतल पर चलता है ।
यह किरीट चंचलागार उस पर टिकता है ।।
गिरा अन्यथा धूलि, शीश कितनों का लेकर ।
क्या प्रमाण, प्रत्यक्ष बालि-रावण-शतकंधर ।।
राजा यद्यपि मुख होता है राज्य-तंत्र का ।
किंतु वस्तुतः लघु-कल ही वह प्रजा-यंत्र का ।।
प्रजातंत्र का आकर्षण यद्यपि निर्वाचन ।
किन्तु जुटा लेता जब प्रमुख असीमित-साधन ।।
बचता कौन कुकर्म शेष, जो कर न डालता ।
क्या फैला पाखंड न, डिंभ-कुटुम्ब पालता ।।
जो कारण कह राज्यतंत्र की निंदा करता ।
वही पाप कर घड़ा पाप का पामर भरता ।।
उभय-तंत्र में उभय-पक्ष पर एक समुज्ज्वल ।
धर्माधारित राजनीति भारत की केवल ।।
देगा संजीवनी या कि कोई विष देगा ।
यह निश्चित है नाम राम का पहिले लेगा ।।
अतः एक निष्कर्श, न निर्भय जिससे जन-जन ।
हो नेता कुछ अवधि-हेतु या नृप आजीवन ।।
जो तज शाश्वत्-नीति अनीति अधम ठानेगा ।
अपने कर से स्वयं स्वकंठ पाश डालेगा ।।
किसी दिवस यम-डाढ़ पिसेगा निश्चित् ऐसे ।
भोजन के पश्चात् सुपारी घुलती जैसे ।।

कहीं विषय चल रहा आर्य-संस्कृति-संरक्षण ।
देख रहे कुछ विघ्न, दिखा कुछ रहे निवारण ।।
एक कह रहे भाषा-भूषा-भोजन संस्कृति ।
एक कह रहे अमुक देवता-पूजन संस्कृति ।।
एक कह रहे पुरातत्व - सामग्री संस्कृति ।
एक कह रहे नियम बने जो रूढ़ी, संस्कृति ।।
श्रुति - एकेश्वारवाद एक मुनि कहते संस्कृति ।
निर्विवाद - सुरवाद एक पुनि कहते संस्कृति ।।
सदाचार-सुविचार एक के मत से संस्कृति ।
निश्छल सत्-व्यवहार एक के मत से संस्कृति ।।
शिखा-सूत्र-बलि-अनुष्ठान-संस्कार सप्त-नव ।
पुनर्जन्म-परलोक-तिलक-तुलसी-गौ गौरव ।।
यज्ञ-जाप-व्रत -तीर्थ-दान - संध्या - उपासना ।
पिंडोदक-बलिवैश्व-नियम-यम - योगसाधना ।।
प्रेम - उमंग - प्रशांति-भक्ति-रति-ज्ञान-चेतना ।
सत्य-अहिंसा - त्रासवंचना - अहंवर्जना ।।
एक कह रहे देह-बिम्ब तारल्य-सलिल सम ।
सरि-जल संस्कृति-धर्म अपृथक सनातन संगम ।।
एक बोलते 'नहीं हमारी संकर संस्कृति' ।
एक टोकते 'नहीं हमारी शंकर संस्कृति' ।।
चिता-भस्म तन गौर, सुपावन गंगा शिर पर ।
शीश शशांक, प्रियांक, भुजग अंगांग भयंकर ।।
शांत समाधि, दृगांत-प्रांत मत्यांत समाये ।
ईश अर्धनारीश व्योम-वारीश झुलाये ।।
दिखता प्रकट त्रिशूल शूल के शूल निगलता ।
अनुपम दाता किंतु मौन खप्पर ले फिरता ।।
विषाहार कर रोम-रोम रसधार रिसाता ।
घोर-दिगम्बर दिग्दिगीश-दल शीश झुकाता ।।

शंकर संस्कृति को संकर, संकर ही कहते ।
अज्ञ कहें पथजाल, सुविज्ञ नगर ही कहते ।।
सरित-सरोवर-कूप-पयोधर किससे भरते ।
सम सु-भाव से धन्य सभी को दधिपति करते ।।

दोहा

दाता-दंभ न लांघता, सीमा पारावार ।
शुष्क न उष्मक-सनक से, मत्त न वर्षाधार ।।

रोला

त्यों ले परम कृतज्ञभाव मन सरि-सर - जलधर ।
लौटाते ऋण-राशि क्षार को मधुर-मधुर कर ।।
देते यद्यपि मूलाधिक सरिपति को सादर ।
पर कर देते सिंधु, भूमि पर वह न्यौछावर ।।
शिव-दधि-रूपा त्रिभुवन-संस्कृति न्यायाधारित ।
सखी-स्वामिनी-प्रिया-प्रसवनी जन-जन मन हित ।।
संस्कृति-मंदिर ज्योतिमयी जो ज्योतित करती ।
उसी ज्योति का नाम धर्म धरती है धरती ।।
ईश्वर का भय भरा, न पथ से विचलित होता ।
ईश्वर का भय हरा, न पथ से विचलित होता ।।
नहीं किसी से भीत, न भीति किसी को देता ।
रक्षक रक्षानिरत भक्ष भक्षक को लेता ।।
बहु-पंथों ने भरा पसारा सा चौसर का ।
पिटतीं कुटतीं गोट लक्ष्य अंतर अंतर का ।।
यही धर्म समभाव सभी को धारण करता ।
ऊँच-नीच से भरा कुपथ चंचल-मन चुनता ।।
जो सागर में सागर सा अद्वैत कहाता ।
गागर से सागर पूजन कर द्वैत दिखाता ।।

पा रवि सा गुरु. सलिल गगन-गुरुकुल जो जाता ।
घन बन पुनः विशिष्ट, सिंधु में नमित समाता ।।
इन रवि-शिष्यों का सुतेज तन में धारण कर ।
जातीं प्रिय-गृह पुष्टि-मार्ग से शुद्ध सरित वर ।।
अंजुलि में जल, जल में अंजुलि आंख-मिचौली ।
भरते द्वैताद्वैत प्रिया-प्रिय हिय-गृह कौली ।।
आती पनिहारिनी नित्य ले नव नव गागर ।
त्रैत-अहं-अहमन्य वही परमेश्वर सागर ।।
मिलते-मिलते ज्यों कि विचलता संगम पर जल ।
त्यों ही नास्तिक मूढ़ स्वयं को रहे स्वयं छल ।।
भरे अँधेरे कलश, बताते फिरते मेरे ।
बनते साहूकार निशा में चोर-लुटेरे ।।
जल जायेगा कहां, धूल में कीच बनेगा ।
सागर में यदि गिरा, पवन ले गगन उड़ेगा ।।
धर्म और ईश्वर का भेदाभेद अनोखा ।
नर विनम्र ही रहे अन्यथा सम्मुख धोखा ।।
भक्ति धर्म का सार, इसे जो जाना ज्ञानी ।
इसे न जाना पंच-भार का खर तो प्राणी ।।
सम्प्रदाय के भेद धर्म के भेद समझते ।
फँसा चोंच में चोंच गिद्ध-मुख खग से पड़ते ।।
पंचदेव गणनाथ-भवानी-हरि-हर-दिनकर ।
एक-एक में एक-एक के पूरक प्रियवर ।।
नाम एक ही के अनेक, जो भेद बढ़ाते ।
अंतर-कालिख स्वयं वदन पर मूर्ख लगाते ।।

विस्तृत धर्मपयोधि, संकुचित उचित न कहना ।
ज्यों बह जाना उचित न, त्यों समुचित न न बहना ।।

सोरठा

यह प्रहेलिका गूढ़, इसके सम्मुख मूढ़ मति ।
सक्षम रक्षारूढ़, एक ईश-विश्वास हल ।।

रोला

करते वेदव्यास कहीं पर वेद-विभाजन ।
करते सद् - ब्रह्मिष्ठ ब्राह्म-माला पारायण ।।
कहीं शास्त्र फल रहे, कहीं इतिहास रहे बन ।
पाते कहीं पुराण निकल तल से नवजीवन ।।
कहीं अमृत तन धार रहीं स्मृतियां कल्याणी ।
कहीं तीर्थं पा रहे प्रनिष्ठा-निष्ठा-वाणी ।।
कहीं अमित वेदांग पृथक हो रहे प्रकट कर ।
कहीं व्याकरण शुद्ध कर रहे गिरा-कलेवर ।।
कोषकार-गण कहीं सुपट निष्कपट सजाते ।
आवृत्तक-जन कहीं रंजिनी ललित रचाते ।।
कहीं आर्य कर रहे अलंकारों की रचना ।
वृत्तकार घड़ रहे कहीं पिंगल रथ - पलना ।।
लगा नाट्य के छत्र, गद्य के चँवर ढुलाते ।
बहु कविवर रस-सिद्ध गिरासन गिरा बिठाते ।।
ग्रंथावलि नवजात मांगलिक-उत्सव करतीं ।
मख-मन-मंदिर-मध्य लास्य वासन्ती रचतीं ।।
ऋतु-ऋतु के सुख स्वरस-रंग रसराज लुटाते ।
सकल श्रेष्ठता-माप, माप लघु रह-रह जाते ।।
भरतीं स्वर्ण-सुगंध रागमय राग-रागिनी ।
हुई सनाथा अवधनाथ-मख ब्रह्म-कामिनी ।।
परम मानिनी लगी दामिनी सी मँडरानें ।
अंशुमान की अंश अंशु-चांदिनी बिछानें ।।

सम्मुख जो साहित्य न युग-युग से आ पाया ।
चीर तिमिर-पाताल सरस सर-सा लहराया ॥
लगा सींचने शुष्क-मनों की क्यारी-क्यारी ।
लगीं झूमने कवि सु-पौध कविता फुलवारी ॥
रक्षक धनुधर राम, कौन पशु आँख लगाये ।
कौन उजाड़े उसे जिसे सिय-राम बसाये ॥
विद्या-पारावार रत्न-भंडार ज्ञान का ।
बना मंदराचल ऋतुवर राजाधिराज का ॥
पीने को वह अमृत बने सुर साधारण जन ।
साधारण - जन वही प्राप्त कर, गये देव बन ॥
क्योंकि मथा था उसे देव-दनुजों ने मिलकर ।
प्रथम भरा अति क्षार, मथा फिर ईर्ष्या में भर ॥
किंतु इसे अतिशय विनम्र अभिराम राम ने ।
मथा विश्वकल्याण-लक्ष्य रख स्पष्ट सामने ॥
क्यों न मधुरतम वह रसेश होता अनन्यतम ।
जिसका सरि-सा स्नेह शुद्ध-सात्विक अंतरतम ॥

सोरठा

दिवस-सभा-निष्कर्ष, जो ऋषि लाते खोजकर ।
नैश्य-सभा उत्कर्ष, पाते मणि-सम मुद्रिका ॥
आशाधिक्य स्व-वित्त, पाया जन-जन ने मुदित ।
हुए प्रफुल्लित चित्त, राजसूय श्रीराम के ॥

श्रीलक्ष्मण-दिग्विजय-यात्रा

मालिनी

इक्कीस-दिवस हो गये यज्ञ को होते ।
आया न एक भी विघ्न जागते-सोते ॥

तब बोले प्रातःकाल वशिष्ठ "नृपेश्वर ।
नवरात्र प्रथम वासंती आज मनोहर ॥
अव्यतीपात-ग्रहयोग योगिनी-सिद्धा ।
गुरु-चन्द्र सुयुति सकलानुकूलताविद्धा ॥
यज्ञाश्व सजाकर करो शीघ्र समुपस्थित ।
हों सेनापति सौमित्रि सुसैन्य-सुसज्जित ॥"

बज उठे वाद्य, हय खोल यूप से लक्ष्मण ।
ले चले सजाकर अंग-अंग आभूषण ॥
सेनपाभिषेकन-द्रव्य लिये रिपुसूदन ।
ज्यों बढ़े, कर उठे द्विजदल मंत्रोच्चारण ॥

प्रभु ने लक्ष्मण को स्व कर मुकुट पहिनाया ।
गुरु ने ललाट पर मंगल-तिलक लगाया ॥
मख-तुरग-पृष्ठ पर रवि-छवि जांबूनदासन ।
शुभ छत्र-चँवर-असि-चर्म-निषंग - शरासन ॥

रघुकुल-प्रशस्ति हठ-पट ललाट हाटक का ।
कुंडल-किरीट शिर, कंठ पाटपट-पटका ॥
सुन्दरी मांग सिंदूरीं अंक सुछौनें ।
भर-भर म्हेंदी से करतल गौर सलौने ॥

अति मुदित लगातीं थापे शुभ्र तुरग-तन ।
उभरे रवि-रविसुत-शशि-शशिसुत रेखांकन ॥
गुरु-वलय भौम-भू दनुगुरु-शिखर कलेवर ।
ज्यों गणित फलित-युति प्रकट कुंडली भू पर ॥

बोला हयपति कण-कण ज्यों 'रे! जग-भट जन ।
मम स्पर्श-पूर्व कर लो निज दर्शन दर्पण' ॥
अति मृदुल थाप ज्यों-ज्यों थापों की पड़तीं ।
झन-झन झाँझन, हर-हर हमेल हँस उठतीं ॥

खिल उठे सुहागिन-कंठ सुरीले गायन ।
"जय हो जय हो जग विजय करो रे ! लछिमन ॥

श्रीदशरथराज-कुँअार सुमित्रा-प्यारे ।
तुम उर्मिलरानी की अँखियन के तारे ॥
तुम धरनि-धरैया तुम कौ जीतनि-वारो ।
तिहुँ-लोक काल-तिहुँ नहिँ तिहुँ देव सँवारो ॥
तुम राजाजू के साथ सिधारे वन में ।
तजि सेजन नवला-नार हिरास न मन में ॥
धनुधारि चले सिय-राघौजू के पाछे ।
प्रिय लगे उनहिँ चतुरंग-सेन से आछे ॥
तुम आंखि लालि भरि जमपुरि जिन्हहिँ पठायो ।
जो टोकि सकै, सो लाल कौन सी जायो ॥
हम सुनी, कनकपुरि की बजधारि दिवरियाँ ।
वर-वारन वारीं बारीं बनी दररियाँ ।
पिय-अंक परीं रिपु-नार मार गईं बीछी ।
सुकुमार ! धनुष-टंकार तिहारी तीछी ॥
सुनि वचन तिहारे परे परसुधर फीके ।
खुलि पलि में बजर-कपाट गये मुनि-ही के ॥
जिन तीरन ने मुनि कौसिक-मख रखि लीन्हौ ।
जिन तीरन ने सुर-असुरन सीरौ कीन्हौ ॥
जिन तीर-रेख दसकंधर लांघि न पायो ।
सिर दिये, न नाये, याहि घाव लै धायो ॥
जिन तीरन ते रन मेघनाद सँहार्‍यौ ।
सुकुमारि सुलोचनि कौ सिंदूर प्रजार्‍यौ ॥
तुम धारि चले हो उनहिं भूलि जनि जइहौं ।
हय-स्यामकरन सकुसल रे देवर ! लइहौं ॥
भैया ! रघुवीर न फिरे, किये विनु जय रन ।
अब जनि सकती खा जइहौं संग न हनुमन ॥
जनि बार लगइहौं बिरन ! पलक मँहि अइहौं ।
जौ मिलहिं भेंट धरि भुज-भरि हृदय लगइहौं ॥

हम आँखि पसारी बाटि तिहारी रख दो ।
लहहौं कीरति सुकुँवारि कुँवरि रचि हरदी ।।
द्विज-धर्म-देश-द्वेषिन पै बजर पजरिहौं ।
सिर मगरूरनि के राम-चरन नत करिहौं ।।

लै चले केसरी-ध्वज जो सूरजवारौ ।
चित रखिहौं इसको रुके न नैंकु पसारौ ।।
यह अवगुंठन ते निकसे उषा-वदन सो ।
प्रज्ज्वलित होम के परम पुनीतानल सो ।।

यहि लहिरायो हरि मधु-कैटभ की छाती ।
बिकसी धरती यहि कोल-दाढ़ फहराती ।।
नरहरि-अयाल सी सघन पिलापी याकी ।
क्षय-काल पाल सो फहरो मनु-नौका की ।।

बलिराज - राज लै, यहि फहिरायौ बामन ।
यहि धारि सहस-भुज धरीं धरा भृगुनंदन ।।
रसकलस धारि रत्नाकर ते धन्वन्तरि ।
जब निकसे विकसी लहरि-लहरि यहि फरहरि ।।

बहु देवासुर-संग्राम हरावल फहरो ।
शंबर-रणजयि सों कल्पवृक्ष यहि लहरो ।।
यहि पूजि रमेसुर-चरन उड्यो सागर पै ।
यहि उगा सीस-गिरि नाच्यो दसकंधर पै ।।

यहि सतकंधर सिर, लवण-वक्ष फहरायो ।
कपिराज-रक्षपति ने इहिं भाल चढ़ायो ।।
यहि भुवन-भुवन फिरि जुग-जुग रह्यौ नवीनौ ।
यहि भरत-भूमि को बिमल नगीनौ भीनौ ।।

नभ अभै मखानल-ध्वज, उड़ान लखि याकी ।
सुर-पितर छपनिया-थालि रहीं, रखि याकी ।।
मनुजात-मान मनुजाद-प्रान कौ स्वामी ।
परलोक-लोक मर्जाद याहि ते जामी ।।

जो उठे आँखि इस पै सो अँखिवारो-सिर ।
पग-धूरि डारिहौं कुचलि,न उठि पावै फिर ।।
तुम महाराज श्रीरामचंद्र जस-ध्वज के ।
गिरिराज-शिखर से दंड सुद्ध सुबरन के ।।
हय लै जइहौं ध्रुव-ध्रुव की घाटी-घाटी ।
बलि-छत्र गढ़इहौं घिसि गई पायल-पाटी ।।
तुम नागलोक की मनि मुंदरी जड़वइहौं ।
तुम नंदन-बन सौं फूल बेणि के लइहौं ।।
लइहौ-लइहौ लछिमन बलबीरा ! लइहौं ।
तुम चांदनियां की चुनरी बहिनि उढ़इहौं ।।
तुम रविजू के घर कनकभवन-सम जइहौं ।
सुभ मेरु-सिखर की कनक-वल्लरी लइहौं ।।
बहुअन कहँ सांझ-उषनि के फूल पिन्हइहौं ।
बिटवन कौ बड़दादा के राग रँगइहौं ।।
जा पितर-लोक बड़-नृप ते दुपटी लीजौं ।
प्रिय! काहु दिना जननिन कहँ मुख ढकि दीजौं ।।
भैया रघुवर रे! विनै करें कर जोरो ।
अइहौ, द्रुत ब्याहि न जावें गैयाँ-गोरी ।।
तुम कन-कन लइहौं छानु, सुछान-छबैया ।
कहुं बिपिन स्वामिनी मिलै, लाहुं परि पैंया ।।
तव पग-पग की रज-कनि पै तन-मन अरपन ।
जय हो-जय हो जग बिजै करो रे लछिमन ।।"

दोहा

सरल मनों की सुन गिरा, भरे हृदय रस-व्यूह ।
वीर वीररस के लगे, वासन्ती-भूरुह ।।

मालिनी

अति सहज सुभट यद्यपि चारों रघुनंदन ।
इनमें न, शेष वह गुण न एक भी त्रिभुवन ।।
श्रीराम राम, उनकी तो चर्चा अद्‌भुत ।
पर ज्यों विशेषतः भरत शांतरस-संयुत ।।
ज्यों रिपुसूदन का मौन-मुखर-मित भाषण ।
त्यों मूर्तिमान प्रत्यक्ष वीररस लक्ष्मण ।।
जन्मना गौर, फिर सेनापति-पद-गौरव ।
तिस पर भी कंचन-कवच-मुकुट का वैभव ।।
कवि-क्या उपमा दे, कुछ-कुछ दोष न किस में ।
क्या कंचन पंकज, पंकज निशि-भय जिसमें ।।
कुंदन छूते ही बल खा जाता निर्बल ।
पुखराज शाण की चमक, स्वयं वज्रोपल ।।
दामिनी दमक कर क्षण-क्षण में छिप जाती ।
त्यों धूप-चांदिनी भी न अचल रह पाती ।।
हां, कभी इंद्र यदि प्रमुदित ध्वज फहराकर ।
रवि से स्यंदन में मिले स्वयं ही में जाकर ।।
त्यों कुछ-कुछ उस दुष्कर-युति की द्युति-निर्मल ।
संभवतः समता करे लखन की दो-पल ।।
ले अंबाशिष-शस्त्रास्त्र सुमित्रानंदन ।
प्रभु-वामभाग ज्यों करने सीता-वंदन ।।
कुछ बढ़े, खड़े रह गये आँख भर आईं ।
आ गईं याद रज - गिरी जनक को जाईं ।।
झुक गया शीश, 'हा ईश' हृदय चित्कारा ।
पल-भर प्रतीत मख हुआ प्रपंच-पसारा ।।
पर प्रभु को सम्मुख देख,स्वस्थ्य सा चितकर ।
छवि स्वयं मानकर, नमन किया बढ़ सादर ।।

ज्यों मणिमय-मंगलसूत्र मूर्ति-कर देखा ।
त्यों खिँची स्वत: हिय-धरा प्रतिज्ञा-रेखा ।।
"यदि धरतीनंदिनि! मिलो न तुम धरती पर ।
तो लखन न, उसका समाचार हय लेकर ।।
इस राजसूय में लौटेगा, यह निश्चित् ।
उस महापाप का यही देवि ! प्रायश्चित् ।।"
सुर 'साधु-साधु' कह उठे, न कोई जाने ।
मां-दिशि निहार कंकण बाँधा शांता ने ।।
नवरत्न-सूत्र यों लगा लखन-भुज सुंदर ।
ज्यों इंद्र - धनुष उतरा सुमेरु-वर्त्मनि पर ।।
कर नमन उर्मिलारमण सजे यों स्यन्दन ।
नभ चढ़ा त्रिविक्रम-चरण देव-संरक्षण ।।
जय गीत मंत्र यों वाद्यों का कोलाहल ।
जय करने शब्दागार उठा ज्यों भूतल ।।
भर कर उमंग चतुरंग चली बलखाती ।
ज्यों सावन की सरिता उमड़ी मदमाती ।।
युवराज चले बहु करने निज पुर वंदन ।
कुछ चले स्वयं भूपाल बढ़ाकर स्यंदन ।।
कुछ लगे साथ, कुछ रोक लिये रघुपति ने ।
ज्यों-ज्यों बढ़ते, त्यों-त्यों गति पाई गति ने ।।
देते शुभ-गति विधि-विधि से प्रगति सुगति को ।
रामानुज पाते चले कीर्ति-श्री-रति को ।।
उत्तर-पश्चिम-दक्षिण-सुपूर्व की धरती ।
रघु-सैन्य धर्म - पूर्णांक छापती चलती ।।
द्विज आशिश-ज्ञान-सुपुण्य मुदित-चित देते ।
नृप कोप खोल लौटाया सादर लेते ।।
गद्दियां छोड़ कर साहुकार उठ जाते ।
बढ़ते-बढ़ते लक्ष्मण पर पण्य लुटाते ।।

बहुमूल्य प्राण से प्यारी कृतियां लाकर ।
दे जाते वृन्द शिल्पी यशाश्रय पाकर ।।
वन-गिरि-जन मधु-फल-फ़ल बूटियाँ लाते ।
रख स्थान-स्थान कौतुकी सकुच छिप जाते ।।
लख लखन, रंच ले, मंच वित्त से भरते ।
बहु वस्त्राभूषण पंथ लुटाते चलते ।।
नटते-नटते ढ़ेरियां भेंट की लगतीं ।
ज्यों दिशि-दिशि प्रभु-पहुनाई दिशि-दिशि करतीं ।।
जितनी-जितनी साकेत भेजते लक्ष्मण ।
उतनी-उतनी भेंटें बढ़ जातीं क्षण-क्षण ।।
धरती की जय के साथ-साथ जन-जन मन ।
जय करते-करते चले सुमित्रानंदन ।।
गुरुकुल - गौशाला-भेषजगृह - प्रसवालय ।
पौसरे-अन्नक्षेत्रादि सर्वजन-हितमय ।।
निर्माण कराते, उचित व्यवस्था करते ।
दे सतत अयाचक-वृत्ति स्थायिनी चलते ।।
प्रति पौर - जानपद-ग्राम सभा-पंचायत ।
हर भाँति देखते चलते सत्वर विधिवत ।।
गढ़-गढ़ी-चौकियां करते खड़ी परिधि पर ।
पुल-बाँध-नहर-घाटों से भरते सरिवर ।।
सर-कूप-वावड़ी मरु-वनपथ खुदवाते ।
अभियोग उलझनों भरे सहज सुलझाते ।।
दिन यहां, योजनों जाकर रात बिताते ।
बरखा-समीर से लखन वीरवर जाते ।
जय-जय के स्वर सब ओर निरन्तर उठते ।
घर-हाट-बाट-चौपाल प्रजाजन कहते ।।
"उसको भी देते थे, देते इनको भी ।
लेने आये ये भी, आता था वो भी ।।

दोनों को देते भरे नयन, सच यह भी ।
डर दोनों से ही लगता, झूठ न यह भी ।।
पर राम और रावण में मौलिक-अंतर ।
संसार-सरित के पुण्य-पाप तट दुस्तर ।।
ये हँसते-हँसते आए हँसाते जाते ।
वे रोते आये वित्त, रुलाते जाते ।।
इनको देते, दृग शीतल पानी भरते ।
उनको देते, शोणित का पानी करते ।।
फिर और न मांगें, था उनका भय यह ही ।
ये और न दे दें, इनका भी भय वह ही ।।
वे दनुज बनाता था, ये देव बनाते ।
हम मनुज, मनुज की भाषा बोल न पाते ।।
कहता पथ-पथ का मौन-मौन जन-जन मन ।
तव भाग्य लिखा भारत किस-किसका दर्शन ।।
जिसने न किया मन खग-मृग तक का मैला ।
उस राम-राज्य के लाल लड़ैते छैला ।।
क्या कभी किसी का अब अन्यायी-शासन ।
हम झेल सकेंगे राजा राम-प्रजाजन ।।
हम पर करके अन्याय, अछूता रहकर ।
रह नहीं सकेगा कोई भारत-भू पर ।।
यदि कभी किसी दुर्बल राजा के हाथों ।
लद गया विदेशी-शासन भी इन माथों ।।
तो ज्यों पतझर में पात बदल कर तरुवर ।
आते वसंत में बन किंशुक के सहचर ।।
त्यों चढ़ा-चढ़ा यौवन चढ़ती कलिका का ।
हम देंगे बंधन काट धरित्री-मां का ।।
जब जिसका जी चाहे वह आन परख ले ।
निज काल, नयन भर, नयन हमारे लख ले ।।

हम खुली खड्ग सी लिये हाथ रामायण ।
हम शिरस्त्राण सी धार माथ रामायण ।।

हम कौस्तुभ-मणि सी हृदय सजा रामायण ।
हम पांचजन्य सी अभय वजा रामायण ।।

हम प्रखर चक्र सी लिये चित्त रामायण ।
यह महापंथ सी बुद्धि - वित्त रामायण ।।

मन-भारवाहिका गदाधार रामायण
तन-भारवाहिका खगाकार रामायण ।।

है अहंकार की अहि-शैया रामायण ।
नवनिधि सब सिधि की श्रीमैया रामायण ।।

सद्धर्म - यान की गरुड़ध्वज रामायण ।
रामायण पाकर हम नर से नारायण ।।

पी रामामृत की धार अमर हम निर्जर ।
श्रीरामचरित मंदार छाँव के पथ पर ।।

श्रीराम-नाम ही वह दृढ़ सूत्र मनोहर ।
जिसमें संस्कृति की मंजुल मणियाँ गुँथकर ।।

आसेतुहिमंचल बनी माल वह अक्षत ।
जिस भारतीय-संस्कृति से भारत भारत ।।

इस वनमाला से ही हो परम विभूषित ।
होंगे सदैव गौरव-वैभव से आदृत ।।

पांडित्य-निकष से पंडित मंडलियों के ।
स्वर लोकगीत के ललित ग्राम्य-ललियों के ।।

ढफ-ढ़ोल-चंग-अलगोझे चौपालों के ।
संगीत सभा के राग राग-तालों के ।।

नय त्राण सुदृढ़ संसार-समर भटजन के ।
सुन्दर विमान भव-भोग-मुक्त जीवन के ।।

ऋषिवर असंख्य लोकाधिप-पद मंत्रों के ।
तनु-तंतु चेतना विजड़ वाद्य-तंत्रों के ।।

अभिनव वसंत वैराग्यवान निर्जन के ।
वृषि-रवि प्रचंड पातक जंबाल सघन के ।।

माधुर्य सुविग्रह, नयन काग कुलपति के ।
हिय के प्रिय सखा अनन्य दिगम्बर यति के ।।

श्रुति श्यामा-नूपुर नाद-द्रुहिण श्रवणों के ।
हरि-सौरभ - पूरित घ्रेय सनक-सहजों के ।।

अति मधुर पुराणास्वाद व्यास - रसना के ।
ऋतु-रस-विलास ऋषिराजि रोम-रचना के ।।

शारदा-विमोहक - भाव अधर कविता के ।
सुकुमार मुकुल मन - भाव लता ललिता के ।।

सर्वस्व प्राण-प्रिय भक्ति जानकी-रति के ।
शुभ सिद्धि-शक्ति-श्री-कीर्तितत्व कवि-मति के ।।

प्रभु रामचन्द्र के नाम "राम" के अक्षर ।
त्रिभुवन-त्रिताप-परिताप मृत्यु-यम मनहर ।।

दोहा

सुनकर निश्छल हृदय की, गिरा विगत अहमेव ।
चले जगत-जय हेतु जो, हुए विजय स्वयमेव ।।
हिले न, हुए अचेत भी, किसी वीर से वीर ।
नाच उठे सौमित्रि वे, दल से राम-समीर ।।

सोरठा

राम विमल-यश केतु, दिशि-दिशि फहराते हुए ।
जगत सुमंगल सेतु, पहुँचे गंगा तीर पर ।।

बरवै

उठी हुक सी हुमक लखन के हीय ।
घिरी नयन में, गिरी सहा-रज सीय ।।
लगीं व्यंग्य सी करतीं गंग - हिलोर ।
"अरे वीर ! आ गया बड़े ही भोर ।।"

लव-कुश-अयोध्या-आगमन

दोहा

राम-यज्ञ की पत्रिका, पढ़कर मुनि के पास ।
बोले आकर सीय से, लवकुश भरे हुलास ।।

युगल-मालिनी

"राजाधिराज रघुराज यज्ञ करते हैं,
आमंत्रण आया आश्रम आज अवध से ।
मां ! चलो राजरानी सीता देखेंगे,
हम दोनों की अभिलाषा बहुत दिवस से ।।

क्या तुमने कोई नगरी कभी निहारी,
सुनते सौन्दर्य-परिधि साकेत भुवन की ।
ब्रह्मा वसिष्ठ हैं, कौशिक मुनि हैं होता,
अध्वर्यु शृंगि, उद्गाता च्यवन तपस्वी ।।

देखेंगे कैसे भरत, राज्य जो तजकर,
श्रीराम - पादुका रहे पूजते सादर ।
देखेंगे कैसे सुरपति-जित-जित लक्ष्मण,
जो मिले न वन जाते पत्नी से पलभर ।।

देखेंगे कैसे वे शत्रुघ्न अनोखे,
जो रहे अवध चंपक-उपवन में अलि से ।
कैसी कौशल्या और सुमित्रा माता,
पति-वर-यज्ञानल चढ़ा दिये सुत बलि से ।।

देखेंगे वह कैसी पापिन कैकेई,
जिसने रघुवंश-विपिन में आग लगादी ।
देखेंगे कैसे वीर अंजनीनंदन,
बंदी बनकर भी स्वर्णिम-लंक जलादी ।।

देखेंगे कैसे सीताराम मनोहर,
जिनका यश गाते ऋषि होकर भी गुरुवर ।
देखेंगे ऋषि-मुनि द्वीप-द्वीप के राजा,
लंका के निशिचर किष्किधा के वानर ।।

तुम वनदेवी इसकी या सभी वनों की,
क्या कभी किसी वन में सिय-राम निहारे ।
मां ! राजसूय होता है कभी युगों में,
अविलंब अयोध्यापुरी तुरंत पधारे ।।"

सुन राजसूय का नाम हृदय सीता का,
रह गया धक्क से धक-धक कण-कण धधका ।
यह बिना धर्मपत्नी के यज्ञ न होता,
क्या सचमुच ही दुर्भाग्य सामने सिय का ।।

बोलीं अति अकुलाकर मुनिवर से जाकर,
"क्या सुना आपने राजसूय-आयोजन ।
मख-व्रत-हित पत्नी-व्रत से नाथ डिगे क्या,
बैठी होगी वामांग कौन बड़भागन ।।"

कहते-कहते बह चले विलोचन सिय के,
"यह शेष बचा था यह भी सुना विधाता ।
हा ! राजसूय-पावन-पावक धधकाया,
प्रिय ! पावक-परिणीता का पावन-नाता ।।"

"सिय ! शांत धरा-तनुजे ! धीरज धारणकर,
ले देवि ! पूंछ ये आंसू इन नयनों के ।
रवि उदित कदाचित पश्चिम से हो सकते,
शशि सृष्टा हो सकते अंगार-कणों के ॥

ये पंचतत्व निज प्रकृति तजें, है संभव,
दुर्बल होकर भू कमठ-शेष तज सकते ।
वाल्मीकि-काव्य के नायक राम रमापति,
रामत्व-धर्म से कभी न पर हट सकते ॥

जो कवि की वाणी ललित छंद रच सकती,
जो अमर बना सकती नर को कल्याणी ।
"वह ऋषि भी हैं' यह भूल गई वनदेवी,
आती उसको दुर्वासा की भी वाणी ॥

इन हाथों ने तज खड्ग लेखनी ली है,
इसका न अर्थ वे भूले खड्ग उठाना ।
वह खीझ दुर्गुणों पर तज भी सकता है,
जिन राम-गुणों पर रीझ, लिया यह बाना ॥

वाल्मीकि चाटुकारी करता न नृपति की,
तुम समझ रहीं सिय! वह साधारण-गायक ।
वह शब्द-ब्रह्म जननी का ज्येष्ठ वरदसुत,
वह ब्रह्म-सहोदर, ब्रह्म बनाकर नायक ॥

ब्रह्मा बन कर यह काव्य रच चुका पहले,
लीलाधर ने की पीछे लीला-रचना ।
मैं अबला समझ न आश्रम तुमको लाया,
प्रभु-लीला मख में भाग डालता अपना ॥

समयानुसार लीलानुसार यद्यपि मैं,
वनदेवि! सुते! मैथिलि ! सिय! मुखसे कहता ।
तुम आदि-पुरुष की प्रिया अद्वितीया हो,
यह जान हृदय में क्षमा मांगता रहता ॥

बन गई रजक-वाणी निमित्त मां ! केवल,
इस वय न राम तव साथ किंतु रह सकते ।
हो गये काल-कवलित अकाल-वय दशरथ,
वे पितर-योनि में देवि ! भटकते फिरते ।।

जगपावन में पावन करने की क्षमता,
पर जगदीश्वर को जग-मर्यादा प्यारी ।
जिन मनुवर नृप ने प्रभु-सुत हित तनु त्यागा
प्रभु तजी श्राद्धहित उनके जनक-दुलारी ।।

यह अवध-पीठ का भार, चाहते प्रभु तो—
भावी-भूपों पर रखकर जा सकते थे ।
पर तब जग-पावन मर्यादा-पुरुषोत्तम—
श्रीराम, विचारो क्या कहला सकते थे ।।

मम मापदंड के मेरुदंड सुन्दरतम,
श्रीरामचंद्र कौशल्यानंद-सुवर्धन ।
यद्यपि ऋषिवर नारद द्वारा निर्धारित,
स्वीकार न मैंने किये मूंद पर लोचन ।।

जिस दिन देखूँगा मेरे मन की प्रतिमा,
जाने अंजाने की रघुपति ने खंडित ।
उस दिन जीवन की जीवन यह रामायण,
कर दूंगा यज्ञ-समाहित गंग-प्रवाहित ।।

निश्चिंत रहो सिय ! निर्विकार रघुनंदन,
उनमें विकार-कल्पना, विकार स्वयं का ।
श्रीराम अर्थ अवधेश न दशरथ सुत का,
'श्रीराम नाम' है सत्य-धर्म-संयम का ।।

सज्जित सुवनों को करो शीघ्र ही जाकर,
मैं स्वयं अयोध्या अभी-अभी जाता हूँ ।
सिय-भक्ति राम-अनुरक्ति शक्ति कविता की,
लवकुश-माध्यम से जग को दिखलाता हूँ ।।"

सिय उठी, कुँवर सँवरे, आशिष ले प्रमुदित,
मुनि साथ, सुपावन सरयू - तट पर आये ।
कर मज्जन पथ-श्रम विरहित होकर मुनि ने,
नव-गंधर्वों से स्वकर कुमार सजाये ।।

मुनि-वसन स्वर्ण-श्यामल मृगछाला तन पर,
शिर सुमनमाल गुंफित अलकें घुंघराली ।
रुद्राक्ष-विभूषण ऊर्ध्व-त्रिपुंड प्रभाकर,
वनमाला पीत-दुकूल लिये कुछ लाली ।।

"मखमंडप मुनिआवास नृपाल - सभा में,
अंतः पुर पुर की विथि-वीथि पथ-पथ पर ।
मूर्च्छना-सहित आरोहित-अवरोहित स्वर,
श्रीरामकीर्ति का गान करो प्रिय! सादर ।।"

कहकर मुनि ने दीं सुन्दर-सुन्दर वीणा,
आपाद मुदित सुकुमार कुमार निहारे ।
अति निकट बिठा शिर पर कर धर मुनि बोले,
"प्रभु करे मनोरथ सुसफल सकल तुम्हारे ।।

पर ध्यान रहे प्रमुदित हो कोई कुछ दे,
तुम आशिष के अतिरिक्त न कुछ भी लेना ।
'हम वनवासी धन से क्या हमें प्रयोजन'
यह मधुर - भाव से कहकर, लौटा देना ।।"

गुरुवंदन कर सिय-नंदन चले मुदित हो,
अति चकित हुए पुर-रचना देख मनोहर ।
पथ-वीथि हाट-हाटकनिकेत-सर-उपवन,
ज्यों बिछी राजराजेश्वर को भू-चौसर ।।

भूषण - भूषित नर-नारी मणि - सारी से,
मृदु नम्र गमन-आगमन मुदित मन करते ।
'श्रीराम जयति सिय-राम' परस्पर कहते,
पथ अभय-हृदय मुद्रा उछालते चलते ।।

कल्पनातीत-सौन्दर्य आर्यता-गौरव,
निष्कलुष सुजीवन, पुण्य-धर्म संजीवन ।
यों लगा कि नर-नारी न देवता-देवी,
श्रीरामपुरी में बसे धार सुन्दर तन ॥

पुर-रचना लखते मखमंडप में आये,
यों लगा अमरपुर उतर बसा धरती पर ।
ज्वालाओं के भास्वरित विमानों पर चढ,
अंबर पर धूम्र ध्वजा फहराते फर-फर ।।

श्रुति-मंत्रों के स्वर राम-कीर्ति-धावन बन,
जाते विरंचि के सत्यलोक ले पाती ।
श्रीराम-राज्य सिंदूर भाल पर भर कर,
शुभ-गंध बाहु, भू दिशि-संतति दुलराती ।।

नृपसभा-तपोवन भोग-योग सरि-संगम,
पर पावनता की लहर समान लहरती ।
चित में सुशांति आती प्रवेश करते ही,
लगता, न यज्ञ यह शम-निर्झरिणी झरती ।।

बन रहे कहीं चरु, मुनि परिमाण बताते,
भर-भर अनुचर कांवड़े कहीं ले जाते ।
घृत-उद्पानों से आरघट्ट सर-सर कर,
अविरत नवनीतक-सरिता-लता बहाते ।।

मुनि-मंडलिया क्रम-क्रम से आहुति देतीं,
कुछ जाप, पाठ कुछ, अनुष्ठान कुछ करतीं ।
कीर्तन-प्रवचन-हरिलीला ललित प्रदर्शन,
आगम-विनोद विदुषावलियां शुभ करतीं ।।

धन - रत्न-अन्न - पकवान-वस्त्र- आभूषण,
गो-वाजि-कलभ-गज-शिविका-आसन-स्यंदन ।
जो जो अभिलाषा लेकर आता, पाता,
नववासंती-मंदार बने रघुनन्दन ।।

मुनि-परिचर्या-रत निरभिमान अनुचर से,
सर्वज्ञ बने से फिरते शत्रुनिषूदन ।
मानो करने को भरत नाम निज सार्थक,
दे दान भुवन-जनजन का करते पोषण ।।

अपरान्ह देख, अवकाश-समय लवकुश नें,
की वीणा झंकृत कर गुरु-मां-पद वंदन ।।
नारद-वाल्मीकि-मिलन-संवाद सुनाया,
नवरस-मय गाई ललित मूल-रामायण ।।

ज्यों, ज्यों बढ़ता जाता था आगे गायन,
त्यों-त्यों मंडप में भीड़ सिमटती आती ।
जन-मानस सरस हुआ, लवकुश-मानस से—
ज्यों निकली जंगम-सरयू-सरि लहराती ।।

क्या शब्द छंद अद्भुत प्रबंध यह कैसा,
किसकी रचना, ये किसके बालक गायक ।
जितना स्वर सुन्दर, उतने ही ये सुन्दर,
मुनिसुत ये या किन्नर, विद्याधर-नायक ।।

नर-नारी चर्चा करने लगे परस्पर,
मन भरता लखकर इन्हें न, क्या छवि प्यारी ।
कुछ बोले 'इनमें हमें झलकती लगती,
वैदेही-रघुनन्दन की सी उनिहारी' ।।

लख यज्ञ - समय मनुहारी भरे स्वरों में,
मुनि बोले जाते-जाते 'कल फिर आना' ।
यह छंद-मयी अति ललित कथा रघुपति की,
इन श्रवणों को प्रिय-मुख से पुनः सुनाना ।।

लवकुश मखभू से निकले गाते-गाते,
पथ-पथ पर रुकते गाते बढ़ते जाते ।
दल के दल अतिशय मोहित होकर धाते,
मानो मुनिबालक टोना करते जाते ।।

कुछ पुरजन साग्रह वीथि-वीथि ले जाते,
कुछ हाट- मंच पर उठा अंक बैठाते ।
कहतीं दुलारतीं नारी कुछ खा-पी लो,
कुछ धन देते, वे शीश हिला बढ़ जाते ।।

यह समाचार अंतःपुर में भी पहुँचा,
दो मुनिसुत करते रामचरित का गायन ।
कैकेई बोली कौशल्या से "जीजी !
लो बुला तनिक हम भी तो करलें दर्शन ।।"

संकेत राजमां का पा दासी धाईं,
लवकुश को सादर ले आये प्रतिहारी ।
कर-बद्ध किया कुंवरों ने नतशिर वंदन,
वय-विनय-वेष लख स्नेह भरीं सब नारी ।।

कौशल्या का भर गया हृदय ममता से,
अति मधुर वचन कह लवकुश पास बिठाये ।-
"कुछ लाना अल्पाहार उर्मिला ! जाकर"
बोले कुमार "हम फलाहार कर आये ।।"

"तुम मधुर स्वरों में राम-चरित गाते हो,
कुछ रुचिकर चारु प्रसंग सुनाओ प्रियवर ।"
प्रासाद-भव्यता दिव्य-देवियां लखकर,
रह गये युगल कुछ हर्षाकर सकुचाकर ।।

बोलीं अरुन्धती "करो सुतो ! प्रिय-गायन,
तव माता ही सी तो ये सब महिलायें ।"
पर लगे परस्पर लवकुश नमित निरखने,
बोलीं कैकेई "परिचय देवि! करायें ।।"

गुरु-प्रिया हँसी "नामों से तो परिचित हो,
संभवतः, पहली बार लखी पहचानो ।
तुम जिनके बैठे पास महादेवी वे,
राजाधिराज - जननी कौशल्या जानो ।।

वे शत्रुनिषूदन-लखनलाल की माता,
जिनकी सुकोख ने उजियारे उजियारे ।
ये गंगा-यमुनी अलकावलि से शोभित—
कैकेई, जिनके भरत दृगों के तारे ॥"

शिर झुका, किया वंदन लवकुश ने उठकर,
हिय लगा स्नेह से युगल-कुमार दुलारे ।
"श्रीराम प्रिया-सीता की ये प्रिय अनुजा,
उर्मिला लखन-वधु बैठी पास तुम्हारे ।

मांडवी कुशध्वज-सुता भरत - रमणी ये,
ये शत्रुनिषूदन-वधु श्रुतिकीर्ति नवेली ।
ये महावीर बजरंगबली की जननी—
अंजनी, प्रभंजन के मन की अलबेली ॥

ये शांता रामाग्रजा प्रिया उन ऋषि की,
पुत्रेष्ठि-यज्ञ की जिन्हें अग्नि ने हवि दी ।
ये सती - शिरोमणि अत्रितिया अनसूया,
कर्ताओं को इनही ने शुभ शिशु-छवि दी ॥

जिनकी अंजुलि में पारावार समाये,
ये उन अगस्त्य को लोपामुद्रा पत्नी ।
ये मैत्रेयी श्रुति - शंकाओं की नगरी—
कर चुकी भस्म जिनकी विज्ञान-शतघ्नी ॥

ये भुजगराजभूषण के हिय - आभूषण,
लंकेश्वर दशकंधर की मयजा रानी ।
विधि-क्षेत्र-वासिनी ये शूर्पणखा पुनीता,
ये प्रिया विभीषण की सरमा कल्याणी ॥

युवराज वीर अंगद - जननी वे तारा,
सौभाग्यवती वे रुमा कीश - पटरानी ।
श्रीमेघनाद की ये सुकुमार कुमारी,
बलवान बालि की सुत-वधु शुभा रसानी ॥

ये चित्रकूट दंडक-वन की तापसियां,
ये ऋक्षराज-मानिनी यामिनी जैसी ।
ये लंक सरोवर की निशिचरी कुमुदिनी,
ये किष्किंधा-कामिनी दामिनी जैसी ।।

पा जिन्हें सास कौशल्या, अंब सुनयना,
सिय भूल गईं लंका-प्रवास में जाकर ।
ये वही सत्त्व-रसमयी भगवती त्रिजटा,
कर दिया सकल साकेत सुपावन,आकर ।।

वह सकुचाई सी ललित लाजवंती-सी,
अलसी सी अलसी की सी क्यारी प्यारी ।
बदली में विजली बिंदिया तक अवगुंठन,
गुह-राजा की जीवन - नौका - पतवारी ।।

यह कामद-कोलाधिप की सुभग प्रणयिनी,
ये रजकी, मैं, "कहते गुरुणी सकुचाईं ।
कौशल्या बोलीं" श्रीवसिष्ठ गुरुवर की—
ये अर्धांगिनी, इन्हीं की ये पुण्याईं ।।"

पर लवकुश-लोचन-पुतली ललक-ललक कर,
चंचल सी पल-पल अचल-अचल हो चलतीं ।
मन में उत्सुकता दबी न, बोले धीरे,
"श्रीजनकनंदिनी सीता कहाँ, न दिखतीं ।।"

दो सरल बालकों का लघु-प्रश्न सरल सा,
महनीया महिलायें पर हुईं निरुत्तर ।
हो मौन परस्पर लगीं देखने अबला,
क्या कहें, गईं सकपका अचानक सुनकर ।।

'रे सत्य! आज तक सुना कि तू शिव-सुन्दर,
पर लखा आज तू कितना निठुर भयंकर' ।
"आयेगी कभी अवश्य जानकी रानी,"
बोली अरुन्धती मौन त्याग लोचन-भर ।।

"तुम गाओ, ठहरो किंतु स्वपरिचय तो दो,"
'वाल्मीकि-ऋषीश्वर का सुकाव्य यह प्यारा ।
हम शिष्य उन्हीं के, वनदेवी के बालक,"
बालक बोले, "है लव-कुश नाम हमारा ।।"

"तव पिता कौन" बोली तुरंत कौशल्या,
"पितु कौन राजमाते ! न कभी अवलोके ।"
शंकित रघुपति-अंतःपुर लगा निरखनें,
नयनों में कुछ कहने, स्वांसों को रोके ।।

बोली कैकेई "तव वय कितनी-कितनी"
"हम यमज तवाशिष शरद-त्रयोदश देखे ।"
"तव मां वनदेवी किंतु सुपुत्री किनकी,
"वह वनदेवी वन-देवी सब के लेखे ।।"

"वह तन्वंगी मृगनयनी चंपक-वर्णी,
वह मंजु-भाषिणी मंद-हासिनी श्री-सी ।"
धाराप्रवाह कहती ही गई सुमित्रा,
"वह कलित कमलिनी की अनखिली कली सी,।।

बांए-कपोल करता किलोल तिल-काला"
"हां-हां वनदेवी जननी वही हमारी ।
वे कब से कैसे तव परिचित मां ! बोलो,
क्या हुई किसी दिन उनसे भेंट तुम्हारी ।।"

गुरुतिय रख हाथ सुमित्रा के कंधे पर,
बोली "ये राज-प्रसवनी परिचित सबसे ।
तुम आये किसके साथ बालको ! कैसे,"
"हम आये गुरुवर-साथ चले दशदिन से ।।"

"गुरुदेव कहां, क्या हुई भेंट राजा से,"
"वे निर्जन सरयू-पुलिन लीन पूजन में ।
जब गये यज्ञ से सांझ समय तो देखा,
वे सघन-कुंज तल्लीन गिराराधन में ।।"

"मुनिवर-शुभागमन है तो विदित नृपति को,"
"यूं तो आये थे सचिव-अनुग कुछ धावन ।
भूपति को दी सूचना या न. क्या जानें,
गुरुवर से चर्चा हुई किंतु इस विषय न।"

"अपराह्न-पूर्व ऋषि-मुनि-कपि निशिचर-नृपगण,
नित राजसभा में आते हैं, तुम आना ।
निज मधुर-गान राजाधिराज के सम्मुख,
वनदेवी के लाडलो ! अवश्य सुनाना ।।

हम सब भी होंगी हर्षित तुम्हें निरखकर,
निशि अधिक चढ़ी, तुम बालक श्रमित प्रथम ही ।
गुरु पंथ देखते होंगे, शयन करो जा,
मैं यान मँगाती हूँ जाना चढ़कर ही ।।"

लख भारी वातावरण चतुर कौशल्या—
बोली, "कह दासी! रथ लाये प्रतिहारा ।"
वंदन कर लव-कुश उठे, उठा अंतः पुर,
ज्यों चले यान चढ़, उभर उठीं सिसकारी ।।

श्रुति बोली, "वनदेवी सिय, ये सुत उनके,
वय वही,स्थान भी वही,शील भी सिय सा ।"
त्रिजटा बोली "सिय-राघव की उनिहारी",
तारा बोली 'स्वर भी प्रभु स्वर-सा-प्रिय सा ।।"

"कर त्याग महारानी का सुधि रघुपति ने—
क्या कभी न ली नृप-प्रसवनि!" सरमा बोली ।
"जिनके वियोग में रोकर शैल रुलाये,
सागर बांधे लंका मँगलाई होली ।।

वे जान - शिरोमणि जान प्रिया-पावनता,
अंजानों सा आचरण हाय ! कर बैठे ।
आ गये तीर से लेकर रीती सीपी,
वे अंतर्यामी अंतरतम में पैठे ।।"

तब बोली मंदोदरी पूंछ कर लोचन,
"रघुपति समर्थ जग-समाधान कर लेंगे ।
पर हम निरीह-जन किस उत्तर मारुति से,
प्रति-प्रश्नावलि सुरसा-मुख स्वल्प करेंगे ॥

कल की सिय को शुभ-अशुभ सोच क्या लाये,
लंकेश गये वे वही शुभाशुभ पाकर ।
कल जो निशिचर रण-भूमि वीरगति पाये,
उनको संतति तो पूज रही आ-आ कर ॥

कल की वंदिनी वंदनीया वैदेही,
वे आज प्रतिष्ठित कुल-देवी लंका की ।
उनकी अशोक-वाटिका आज श्री-उपवन,
वे समाधान हैं सप्रमाण शंका की ॥

कल उत्सुक होकर जब लंका पूछेगी,
'कुलदेवी सकुशल' मां ! क्या उत्तर देंगे ।
'अस्थायी वनवासिन वनदेवी स्थायी'
हम किस सागर में तब समाधि जा लगे ॥

हा रघुपति ! मार मारों को किया सजीवन,
जीतों का जीते जी ही वध कर डाला ।
क्या कहें पतित-पावन की महिमा पावन,
भू-भार-हरण ! यह कब का वैर निकला ॥

स्वयमेव भस्म होकर अरि-कंचनपुर ने,
जो सिया सिद्ध कर दी विशुद्ध कंचन की ।
अपनी कह निर्जन वन को हाय ! अवध ने,
वध हित दे डाली राज-मृगी उपवन की ॥

क्या किसे दोष दें, विधि ही दोषी ठहरा,
मैं भिक्षुक की भिक्षुणी पसारे झोली ।
कर रही याचना प्रथम बार मुंह खोले,
दे दो लंका को कुलदेवी की डोली ॥

तुमने हिय पर रख शिला, शिला जो समझी,
वह लंक शिवालय की शैलजा सुशीला ।
जो पंक - अंक, में पंकज सनका आईं,
हा! उसी उषा का हृदय दिवस ने छीला ।।
ली सेवा रवि-शशि-सुरपति क्या यम से भी,
आये जगदीश्वर चलकर चरण पुजाने ।
प्रभु के रहते जा बसे स्वामि प्रभु-पुर में,
निज रहते निज पुर दिया न प्रभु को आने ।।
पर श्वेत-द्वीप में क्या सुख मिलता होगा,
क्या कहती होगी हाय ! अलौकिक गरिमा ।
मां कहकर हरण-समय ही छू कर केवल,
हा मैली कर दी नाथ ! मैथिली-महिमा ।।"
कहते-कहते रो उठी बिलख कर मयजा,
"मैं रावण अर्धांगिनी दंड मुझ को दो ।
श्रीसीता गंगा निर्मल, धूप समुज्ज्वल,
कर दया राम की अवध क्षमा उसको दो ।।"
"वह स्वर्ण-दुर्ग दृढ़ ध्वस्त किया मैंने ही,
मुझ दुर्भागिन ने शांति अवध की फूंकी ।
यह अमंगला मंगलामुखी दो मँगला,"
कहती-कहती कुररीव सुपनखा कूकी ।।
"अब बीती बातों को कहकर क्या लेना,
क्यों बिगड़ी कैसे बिगड़ी किससे बिगड़ी ।
बस यही विचारो कैसे रोपी जाये,
नंदनवन की यह लता सुकोमल उखड़ी ।।"
अनसूया बोली सुन तारा की वाणी,
"सब पापों का प्रायश्चित पंथ भरत का ।
राजा का होता राजसूय होने दो,
हम लें ले सुपथ पुनीत प्रात ।सय-वन का ।।

शिर भी यदि रखना पड़े रखें चरणों पर,
जैसे भी हो सीता को लौटा लाये ।
जगमंगल-कर का राजसूय मंगलमय—
तब होगा, जब सीता सुमंगला आये ।।"

गिर गई पदों में गद्‌गद् गिरा निषादी,
"जय सती-शिरोमणि सत्य सती-तव जय-जय ।
यहि बात तिहारे जोग,जोग श्री जू के,
हौं लजमारी रहि गई मोसिके हिरदय ।।

सिय जू पतितन की पतित-पावनी सरिजू,
ऐसी देवी जग हुई न है नहि होनी ।
दो डग भरिके जिस डगर निकसती निकसी,
सो जुग की तीरथ भई सधारण छोनी ।।

सिँगरौर हमारौ देखो किनकी बस्ती,
जिनको कहिते ही नाम लाज सी आवें ।
सोइ आजु बन्यो बैकुंठधाम धरती कौ,
सिर ज़िन्हें नमावें जगत, सीस आ ना ।।

पद महाराज के धोए उन्हन कठउता,
सिय जू भिजु तलुवा धोए हौले-हौले ।
हम बाप-कसम यहि आंखि फारिकै देख्यो,
दम-दमा उठे गंगा-जल मँह कन धौले ।।

मां ! कर्‌यौ चलै को ठाट वाट बतरावति,
हौं पलक नवावति बेरि तीर पहुँचइहौं ।
जौं नहि मानें श्री जू तौ दै गलबाँही,
दै सपथ साँथरी की दृग न्हवा मनइहौं ।।"

भावाभिभूत सब हुईं बात सुन भोली,
लख सर्व - समर्थन नयन पूंछ मां बोली ।
"कल राम मिलेगा चर्चा सकल करूँगी,"
गुह-तिय बोली "फिरि भूलि गईं तुम भोली ।।

यहि बात भूप सों नाहि भरत सों कहियो,
तौ काज सरैगो, न तौ अधूरो जानौ ।
हर बेरि रहीं चुप ताहि पाप कौ इहि फल,
इस बेर राजमाता ! तुम्हहूँ हठि ठानौ ।।"

"बोली अरुन्धती" सब शुभ ही शुभ होगा,
कल राजसभा में कर लें बालक गायन ।।
सियराम राग-वैराग अलौकिक जिसमें,
वह जंगल में मंगलकारिणि रामायण ।।

निशि अर्ध ढ़ली, अब करो शयन सब जाकर,
विश्वास भरीं कर अभिनंदन अभिवंदन ।
निज आवासों को चलीं, ले चलीं दासी,
हलका सा हुआ प्रतीत तनिक, भारी मन ।।

कल का प्रभात होगा प्रभात जीवन का,
बोली कानों में धीरे से आ आशा ।
सिय सादर रघुपति के वामांग विराजें,
सब सोईं लेकर यही हृदय अभिलाषा ।।

प्रभु जननी-वंदन करने प्रात पधारे,
आशिष दे मां ने की निशि की सब चर्चा ।
फिर पूंछा "क्या वाल्मीकि मिले प्रिय! तुमसे,"
"वे करते मां ! सरयू-तट अद्भुत अर्चा ।।

कल हुई घोषणा, हुआ आगमन मुनिका,
हम करते रहे प्रतीक्षा किंतु न आये ।
फिर भी गुरुवर ने रिपुसूदन को भेजा,
वे तब भी करते मौन अर्चना पाये ।"

"क्या सुना, साथ दो सुंदर बालक आये,"
"हां, सुना बहुत सुंदर वे करते गायन ।
निशि किया मुझे सूचित ऋषिराज च्यवन ने,
अपरान्ह अनोखा कल उनका आयोजन ।।

यह सुना कि सुनने आयेगी बहु जनता,
यह जान भरत ने की है बृहद् व्यवस्था।"
"तुम राम! देखना वे आश्चर्य जगत के,
चकित करती उनकी साधना-अवस्था।।"

"मख-समय हुआ मां! चलूं, पधारे गुरुवर,
अंतःपुर सह अपरान्ह आप भी आना।"
कर नमन पवन से चले थकित रघुनंदन,
मां खड़ी रह गई मौन, देखती जाना।।

'तू राम, सत्य ही राम, राम ही सा तू,
कोई सीखे तो तुझसे गरल पचाना।
लगता तुझसे ही सीख गया यों सागर,
दावाकुल अन्तर मुक्तामाल उगाना।।

संसार-सरित के कूल राम-सिय दो हैं,
पर प्रेमाधार एक ही, विश्व न जाना।
कैसे मर्यादा-रक्षण शिक्षण देते,
इनसे सीखो भूपाल! प्रजा दुलराना।।

राजा समर्थ पर किया न रोष प्रजा पर,
रानी समर्थ पर दिया न दोष प्रजा को।
प्रिय-प्रिया पुरातन राज-दम्पती पावन,
पर हँसकर सहते असह विरह विपदा को।।

यदि खुलीं आज भी आंखें अवध न तेरी,
दृग-हीन जान तो तव प्रति रोष तजूंगी।
रे सत्य! प्रमाणित आज सत्य तू हो जा,
मैं नाम अन्य तव छल अन्यथा धरूंगी।।

फिर कौशल्या भी शिला न कोई पथ की,
राजेश्वर की जननी विद्रोह करेगी।
इस राजसूय की जलती ज्वालाओं में,
वह निज बलि देकर त्रिभुवन की बलि लेगी।।

यों दृढ़ निश्चय कर बैठी राम-प्रसविनी,
नारियां जुटीं धीरे-धीरे आ-आकर ।
सब ही के मन में एक हिलोर हुलसती,
"क्या सत्य बतायेंगे बालक, क्या गाकर ।।

कर पार सुमेरु बढ़ा रवि-यान प्रतीची,
कर विविध मनौती सभा समस्त पधारीं ।
देखा निज-निज आसन ऋषि-मुनि-कपि-निशिचर,—
बैठे, पर्वोदधि से उमड़े नर-नारी ।।

सूर्यासन मंच विशाल मध्य राघव का,
कुछ पीछे दांये एक मंच अति सुन्दर ।
ले प्रजा-नमन, आशीष राजमाता दे—
बैठी, अंतःपुर सादर सकल बिठाकर ।।

जय-घोषों में सम्मुख पथ से प्रभु आये,
कर यथायोग्य वंदन-अभिवादन लेकर ।
नव-आगंतुक ऋषि-भूपों का परिचय-ले,
राजाधिराज आ बैठे सिंहासन पर ।।

ताना कपीश ने शिर पर छत्र मनोहर,
अंगद-मकरध्वज खड़े हुए ले चामर ।
ऋक्षेश और रक्षेश अंगरक्षक बन,
पार्श्व में विराजे अस्त्र-शस्त्र धारण कर ।।

ले कोष भरत प्रभु के दक्षिण-दिशि बैठे,
रिपुसूदन बांए आज्ञा पालन तत्पर ।
चरणों में मारुति बैठे शीश झुकाये,
गुहराज मंच के पास प्रमुख बन अनुचर ।।

गुरुवर वसिष्ठ के पास पुनीतासन पर,
मुनि याज्ञवल्क्य-जाबालि-शृंगि-पाराशर ।
भृगु-भरद्वाज-कौशिक-लोमश - घटसंभव,
जैमिनि-कणाद-पातंजलि-अत्रि-च्यवन वर ।।

दुर्वासा-कपिल-वृहस्पति हुए सुशोभित,
बैठे समीप ही कागभुशुण्डि-खगेश्वर ।
तुंबरू-चित्ररथ-हाहा-हूहू आदिक,
बैठे गंधर्व-श्रेष्ठ विद्याधर-किन्नर ।।

पर बार-बार सब द्वार देखते उत्सुक,
देखा तब ही प्रतिहारी करते हलचल ।
सम्मुख से आते देखे दोनों बालक,
चल रहा घेर कर जिन्हें ब्रह्मचारी-दल ।।

कुँवरों ने देखा सघन इन्द्रधनुषों में,
गगनासन राजा राम कर्क-दिनकर से ।
भावों के बादल-धूप वदन पर फिरते,
कुछ तरल-तरल से रोम-रोम में सरसे ।।

नवरस प्रसून वनमाला सी पलकावलि,
कुछ मलिन, राहु ज्यों करता शशि उर-क्रीड़ा ।
लव-कुश को लगा छिपी आहें माता की,
रघुपति के अंतर की पूरक सी पीड़ा ।।

द्वारे पर बालक देख लगा राघव को,
'ये शील-स्नेह मानो सदेह सीता के ।
मम अन्तर-तम की ममता की मृदु-प्रतिमा,
ये चिर-सपनों के सगुण-गेह सीता के' ।।

'धनु त्याग आज ये वीणा लेकर आये',
कौशिक ने देखे मेरे मख रखवाले ।
रिपुदमन-भरत ने देखे ज्यों रघुकुल के,
स्वर्णिम-भविष्य के मंगलमय उजियाले ।।

केकई, सुमित्रा-कौशल्या ने देखे,
'ये खिले मनोरथ-वल्ली सुमन हमारे' ।
उर्मिला-मांडवी-श्रुतिकीर्ति ने विलोके,
मानों स्वगर्भ के अर्भक परम दुलारे ।।

'संगीत सरस अवतरित रसा पर रसमय,
गंधर्व-यक्ष-किन्नर-विद्याधर जाने ।।
ये राम विजय-धनु के उत्तराधिकारी,
सुर त्रिकालज्ञ-मुनि सत्य-रूप पहिचाने ।।

यों लगीं देखने भूपों की सुकमारी,
ये गौरी-अर्चन के साकार-रुचिर-वर ।
जो जटिल परिस्थिति फँसे कुटिल-जन बैठे,
वे समझे ये यमराज-काल प्रलयंकर ।।

सिय-विषयक भ्रम जो कभी तनिक मन लाये,
प्रायश्चित-जल उन के दृग लगे बहाने ।
मल मलिन बुद्धि का गिरा मल्ल सा मन-भू,
चित मल-मल कर हिय निर्मल लगा बनाने ।

लख सहज अभय-गति वीरों - सी वीरों ने,
ये महावीर, तज अहंकार स्वीकारे ।
हरि-हर भक्तों के मुखर हुए अंतर-स्वर,
विश्वास गगन श्रद्धा छवि ये ध्रुव तारे ।।

नभ-सरिस पारदर्शी मुकुरों से अभिनव,
सिय-राम सरिस सियराम-तनय ये सुन्दर ।
दृढ़-संकल्पों की की कलई कविवर नें,
प्रतिबिब सभी को अपने लगे मनोहर ।।

ले नमन किया प्रतिनमन राम मुनि-वपु को,
ऋषिजन का किया बालकों ने पदवंदन ।
मुनि-कुशल-क्षेम संस्कार - युक्त वाणी सुन,
बैठा कर सादर हुए मुदित रघुनन्दन ।।

शिक्षा-दीक्षा-नामादि पूंछ राजोचित,
प्रभु मौन हुए, बोले रघुवंश-पुरोहित ।
"श्री-राम-चरित के शुभ-प्रसंग का गायन,
अब करो दुलारो ! मन-भावन समयोचित ।।

निज शीश झुका मुस्काकर लव-कुश बोले,
"जो प्रिय प्रसंग तव कहें, करें वह गायन।
जो मंगल - भवन अमंगल - हारी राघव,
श्रीरामचरित यह उनका त्रिभुवन-पावन ।।

विधि वेद - विरागी हुए राग में जिसके,
कैलास-शिखर पर सती सहित शिव गाते।
सुर - सभा विषय जो एकमात्र चर्चा का,
बलि जिसके हित किन्नर पाताल बुलाते ।।

अब कहें कौन सा शुभ-प्रसंग हम बालक,
जो अशुभ - प्रसंग कृपाकर आप बतायें।"
मुनि हुए निरुत्तर सभा-सहित प्रमुदित हो,
अति विनयी लव-कुश सहज भाव मुस्काये ।।

फिर बोले "दें आज्ञा आशीष कृपाकर,
गुरुदेव-रचित हम पुण्य - प्रसंग सुनायें।
सब सुनें महामंगलकर की मंगलमय—
अतिललित महामंगलहर - लीला गायें ।।

लवकुश-गायन

(सीता-अग्नि-परीक्षा)

दोहा

गुरु-जननी को शिर झुका, ली वर वीणा हाथ।
अपनों से अपनी सुनें, अग्नि-परीक्षा नाथ ।।
गिरते ही दशशीश के, भरा भुवन जयकार।
दनुज - जयी रघुवर खड़े, जयधनु - डोर उतार ।।

रोला

उन्नत आनन राम, विनय वश नमित विलोचन ।
श्याम शरीर ललाम, भाल फैला गोरोचन ।।
श्रम-कण अरुणिम रुधिर रुचिर यों देह सुहाया ।
ज्यों तमाल-तलिनीरुह म्हेंदी-मेह नहाया ।।
खुली मालती माल, जटा चिपकीं घुँघराली ।
नील-शिखर रति-विरत श्रमित ज्यों सोईं व्याली ।।
लिये लखन ने तूण-शरासन आगे बढ़कर ।।
गूंज [उठे कपि-निकर-जयस्वर से भू-अंबर ।।
अभय तपस्वी हुए, मंत्र नाचे त्रिभुवन में ।
जाग उठीं यज्ञाग्नि युगों की बुझीं पलक में ।।
नंदन-वन के सुमन सुमन सुरजन बरसाते ।
लगे नाचने गगन-विमानों में मदमाते ।।
क्रिया औध्र्व-दैहिक विधिवत् दशकंधर की कर ।
आये राम-समीप विभीषण विविध-भाव भर ।।
प्रभु ने निज मस्तक-कुंकुम ले तिलक लगाया ।
शंख भेंट दे प्रथम मित्र-नृप-मान बढ़ाया ।।
बोले "प्रिय लंकेश ! प्रिया सिय है क्या जीवित ।"
"सिय मां निर्भय, किये आपको हृदय समर्पित ।।
दें अनुशासन नाथ ! जानकी जननी आयें ।
हरें विरह तम सूर्य देव, कपि-कमल खिलायें ।।"
देख मौन-संकेत विभीषण बैठे स्यंदन ।
चले साथ युवराज - पवनसुत असुरनिकंदन ।।
पहुँचे लंकाद्वार, शेष निशिचर पहचाने ।
गुह-गणराज समान मान, मन से सन्माने ।।
हर्षित-चित अभिनंदित होते युगल कपीश्वर ।
लख अशोक-वाटिका यान से चले कूदकर ।।

विमल सरोवर-तीर सुस्फटिक-वेदी सुन्दर ।
तरु अशोक के तले चतुर्दिक रेख खींचकर ।।
परछांई सी परछांई से बातें करतीं ।
ज्यों तलजा-भूमिजा परस्पर धीरज धरतीं ।।
रघुपति-रानी निशिचरियों से घिरीं, निहारी ।
ज्यों द्वितिया-निशि-अंक शुक्ल शशिकला दुलारी ।।
"जय प्रभु-प्रीति-सुप्रतिमे! परमेश्वरि! जग-प्रसविनि ।
तपोमूर्ति! भवपूर्ति! विरति-रति दंभ-विभंजिनि ।।"
गिरे युगल-पद गद्-गद् स्वर से युगल कपीश्वर ।
कहते 'जय जगदंब' विभीषण लोटे भू पर ।।
"हुई तपस्या राम-मनस्विनि ! सफल तुम्हारी ।
आया मिलन - प्रभात विरह की रात प्रजारी ।।
करो चकोरकि ! रामचंद्र प्रभु के प्रिय दर्शन ।"
उठीं, उठी ज्यों कमल-कली लख उषा-विमोचन ।।
सरमा मज्जन-हेतु मनाकर मंदिर लाई ।
जटा-ग्रंटियां खोल केश - माला सुलझाई ।।
कर हृदयेश्वर - हृदय-स्मरण वैदेही न्हाई ।
वस्त्राभूषण दिव्य विभीषण-रानी लाई ।।
भरी सिया संकोच, पूंछ लोचन मुस्काई ।
"मैं वनवासी नाथ साथ वनवासिन आई ।।
तापस-वधु का वेष आज मेरे हित समुचित ।
प्रिय सखियो! यह मान न लेना अविनय अनुचित ।।"
नव-वल्कल वनमाल लाल सिंदूर भाल पर ।
सजीं मैथिली लगीं, छटा ज्यों घटा-भाल पर ।।
सविनय लंक-नरेश सिया को चढ़ा पालकी ।
चले बजाते वाद्य, बोल जय सियाराम की ।।
घिरे देव-ऋषि-ऋक्ष-कीश-निशिचर नर-नारी ।
लेकर मणिमय वेंत बनाते पथ प्रतिहारी ।।

पग-पग बढ़ती चली ठहर पग-पग सिय-शिविका ।
शनैः-शनैः ज्यों चांद्रि खिलाती नवल-नलिनिका ।।
ज्यों त्रिकूट की शिला-शिला पर शिविका चढ़ती ।
छत्र छहरता शिखर, शुभ्र चँवरावलि ढुलती ।।
लगता मंदर अचल अतल में उत्तर, मथन कर ।
सादर श्री ला रहा ऊर्मिका-सिंहासन पर ।।
वानर वारम्बार दर्श-लालसा उछलते ।
पर-पुर-जयी सुवीर धरा पर गिर-गिर पड़ते ।।
प्रभु बोले "प्रिय! सिय को पदचर ही चलने दो ।
यह दिन जिनसे दिखा, उन्हें दिन सी दिखने दो ।।
ज्यों-ज्यों करने लगे नयन नीरद आलिंगन ।
त्यों-त्यों होने लगे रसा के रसमय कण-कण ।।
तब ही सहसा उठा प्रभंजन वेग भयंकर ।
प्रलंयकर घन बने राम के नेत्र नीरधर ।।
नव - बदली से नयन जानकी के सकुचाये ।
अभी अंबु-शृंगार, अभी अंगार उगाये ।।
"वही ठहर जा नारि ! न पग भर पैर बढ़ाना ।
रही निशाचर - नगर अपावन हमें बना ना ।।
किया समर संसार - हेतु यह धार शरासन ।
कर न राम-वामांग मलीन अरिस्पर्शित-तन ।।"
कपिला सी बन गई कालिका, सुनकर लांछन ।
मानों वन में देख वत्स पर सिंह-आक्रमण ।।
उठा गर्व से ग्रीव ताकनें लगीं नभांगन ।
ज्यों अघटित घटना घटने को अभी इसी क्षण ।।
"नहीं-नहीं प्रभु ! सिय मां पावन-पावन-पावन ।"
लगे निशाचर नर-नारी - गण करने गर्जन ।।
दृग बरसाने लगे, मौन सुग्रीव-विभीषण ।
झुका धरा पर शीश दुखित-चित बोले लक्ष्मण ।।

"क्या लीला रघुनाथ! हाथ से माथ काटते ।
नभ फहरता कीर्ति - केतु तल-धूलि डालते ।।
पावनता की मूर्ति नाथ! देवी वैदेही ।
कहते उसे सदोष राम से परमस्नेही ।।
हाय! कनकपुर फूंक सिंधु पर सेतु बांधकर ।
वधा इसी दिन-हेतु दशानन धनुष धार कर ।।
जिनका सुनकर रुदन रो उठे थे जड़-चेतन ।
जो विह्वल हो उठे, देख जिनके आभूषण ।।
वही आप क्या राम, सिया यह नहीं वही क्या ।
या प्रसुप्त दुःस्वप्न देख हम रहे नहीं क्या ।।
किंतु नहीं यह जागृति, स्वप्न सुषुप्ति तुरीय न ।
और निठुरता भरे वचन ये प्रभु! भवदीय न ।।
कहूं आप से हा! क्या, इतना ही कह सकता ।
कहता यह यदि अन्य, अभी संयमनी बसता ।।
उठ बैठा रण ब्रह्मशक्ति का मान भंग कर ।
उसी पाप का प्रतिफल सम्मुख कुमुख रूप धर ।।
दंड, कठिन दो दंड लखन विधि! तव अपराधी ।
वज्र-हृदय - हित सत्य सही मर्यादा बांधी ।।"
शिशु सम कहते हुए, कर उठे रोदन लक्ष्मण ।
भरा साथ ही साथ सिसकियों से भू-प्रांगण ।।
उष्ण-स्वांस भर राम किंतु नभ रहे देखते ।
ज्यों अंतर-व्रण मौन आवरण डाल सेकते ।।
प्रियतम-हृदय-विलासकारिणी सीता बोली ।
"धर्मपुत्र प्रिय लखन पुनः! धधका दो होली ।।
प्राणनाथ को अग्नि - परीक्षा सीता देगी ।
'होलिका कि प्रहलाद' धरा सिय को समझेगी ।।
पातिव्रत्य की शक्ति विलोके जगत अघोरी ।
चल री, खा अंगार रामचंद्र की चकोरी ।।"

राम - मौन लख, उठे सुमौन सुमित्रानंदन ।
कर करते एकत्र काष्ठ भू धोते लोचन ।।
धरानंदिनो शीश झुका, कर प्रिय का वंदन ।
बोली "कुलगुरु सूर्य सुनें दिशि-दिशि के सुरजन ।।
ऋषि-मुनि-मानव-ऋक्ष- यक्ष-किन्नर-कपि-निशिचर।
त्रिभुवन कण-कण व्याप्त पवन-पावनवैश्वानर ।।

दोहा

मनसा-वाचा-कर्मणा, एक पुरुष रघुवीर ।
यदि सिय ने जाने सदा, लपटें बने पटीर ।।
दावानल बन अन्यथा, पतझर-वन-वत् देह ।
करें भस्म, रूँधें दिशा, मिले न रौरव गेह ।।"
प्रमुदित चित बैठीं चिता, सिय कर्पूर समान ।
"धर्मपुत्र लक्ष्मण ! करो, मां को अग्नि प्रदान ।।
धनु पर पावक-शर चढ़ा, बढ़े नमित सौमित्र ।
लगे सभीत समूह यों, भूमि भित्तिका चित्र ।।
"सप्तजिह्व ! लख प्रज्ज्वलित, यह द्विजिह्व का बाण ।
कर सकता सप्राण ज्यों, त्यों हर सकता प्राण ।।
मम जननी सिय आ रही, आज तुम्हारे गेह ।
विरह - ज्वाल झुलसी हुई, छुई न जाये देह ।।
तव सम्मुख रघुनाथ ज्यों, लिया हाथ में हाथ ।
त्यों देना रघुनाथ को - हाथ, हाथ में नाथ ।।"
'सियाराम जय' कह लखन, छोड़ा बाण कराल ।
भूतल से अपलक ललक, लपकी नभ तक ज्वाल ।।
एक बार धिक्कार औ, हाहाकार अपार ।
घहरा, पर क्षण दूसरे, गूंज उठी जयकार ।।
कलित कमल-कलिका मुदित, कमला सी निश्शंक ।
देखीं बैठी मैथिली, अग्निदेव के अंक ।।

पातिव्रत्य के तेज से, मिटा दाह का दाह ।
हुआ विलीन मलीन-भ्रम, पीन सुगन्ध-प्रवाह ।।
बरसाते नन्दन-सुमन, उतरे देव - विमान ।
"क्षितिजा शुचिता-क्षिति-क्षितिज" निर्जर-वचन प्रमाण ।।
"सिय सु-पुण्य दशशीश के, बने शाप वरदान ।
सजे सती-सत बाण तव, प्राण कर गये पान ।।"
शिव-ब्रह्मा-दिग्पालगण, रवि-शशि-हयीकुमार ।
बोले सब "जय-हेतु प्रभु! सिय स्वभाव अविकार ।।
सहसा ही उतरा धरा, एक दिव्यतम यान ।
दिव्य देह दशरथ नृपति, बैठे इन्द्र समान ।।
पितुवर का वंदन किया, प्रभु ने बंधु समेत ।
कहा "न रहा-पाया तनिक, इस पल स्वर्ग - निकेत ।।
यद्यपि तव सानिध्य से, हुआ अधम मैं पार ।
पर सिय-विरहित राम के, सुरपुर को धिक्कार ।।
पतितपावनी मैथिली, पावनता-शृंगार ।
वीतिहोत्र विभु से करो, सादर सिय स्वीकार ।।"
पितुवर के पीछे चले, सजल - विलोचन राम ।
"करो प्रतिष्ठित वाम निज, वामा करुणाधाम ।।"
दशरथ ने ले अग्नि से, नाना - भाँति दुलार ।
दे आशिष बोले "सिये, दिये उभय कुल तार ।।
बिना सिया रघुनाथ की, त्यों यश - कथा अपूर्ण ।
प्राण-हीन ज्यों नवल-तन, दग्ध-काष्ठ का चूर्ण ।।"
रघुपति को सौंपी सिया, ली प्रभु ने सत्कार ।
'जय-जय सीताराम' स्वर, उठा गगन गुंजार ।।
लक्ष्मण-वैदेही सहित, प्रभु ने किया प्रणाम ।
"क्या आशिष दूं, दुख सदा—दिया आप को राम ।।

सोरठा

जय-जय यश-जलवाह, भरा रहे त्रिभुवन-गगन ।
राम-चरित्र-सनाह, जन-गण-मन भूषण बने ।।
स्नेहमयी तव भक्ति, मम अनुरक्ति विषय रहे ।
हो संसार विरक्ति, शक्ति सहित वर दो वरद ।।
यह छवि श्याम ललाम. मम मनमंदिर में रमे ।
लक्ष्मण-सीता-राम, जिये जीव गाता हुआ ।।"
नत शिर कर स्वीकार, प्रभु बोले कर जोड़कर ।
"शिशु-हठ परमोदार, एक आज पूरी करो ।।
पा जिनसे वनवास, अमर हो गया राम नर ।
भर हिय-अधर सुहास, क्षमा करो मां केकई ।।"
"हार बनाली हार, दुर्लभ गुण यह राम ! तव ।
हिय-हिय का हर भार, की धरती गोलोक सी ।।"
कर छवि-रस मधुपान, मौन अधर मींचे नयन ।
दशरथ चढ़े विमान.विह्वल-चित सुरपुर गये ।।
वैदही के साथ, बैठे रघुपति मुदित चित ।
'जय-जय सीता नाथ' बोल उठा जन-जन अभय ।।

बरवै

जन-जन कंठाभरण राम-यश - गान ।
रोम-रोम बन रसना, कर रस-पान ।।
सिय-रघुनंदन वंदन बारम्बार ।
अब विराम मृदु वीणे ! कर स्वीकार ।।

मालिनी

सब सभा चकित रह गई मधुर सुन गायन ।
पुतलियां ललकती रहीं नयन-वातायन ।।
श्रवणों को खुली समाधि बाह्य - सुधि आई ।
तब 'धन्य-धन्य जय-जय' ध्वनि पड़ी सुनाई ।।

ऋषिजन नयनों में लगे प्रशंसा करने ।
पर प्रजा-जनों के लोचन लगे बरसनें ।।
"प्रिय ! मुनि-शिष्यों को सुतनु भार-भर कंचन ।"
दो बंधु भरत" बोले राजा रघुनंदन ।।

लव-कुश बोले अति प्रमुदित चित कर वंदन ।
"मुनिजन को कंचन से क्या देव ! प्रयोजन ।।
यदि" कहते-कहते मौन हुए सकुचा कर ।
"यदि बोलो" बोले प्रभु, उठ हृदय लगाकर ।।

पा नृपस्पर्श सुधि भूल गये तन-मन की ।
यों लगा कि विकसी कली-कली कण-कण की ।।
अंगद-हनुमद् यह अद्भुत-दृश्य निरख कर ।
निज स्नेह स्मरण कर, रहे विलोचन भर कर ।।

सस्नेह शब्द फिर "यदि" नृप ने दुहराया ।
"पा तवाशीश सर्वस्व देव ! हम पाया ।।
यह एक लालसा रही हमारे शिशु-मन ।
दें विदा राजरानी सिय देकर दर्शन ।।"

रघुनाथ मौन रह गये वचन मृदु सुनकर ।
ज्यों विगत-शिशिर फिर उतरा शरद-सरोवर ।।
यों हुए पृथक चकवी-चकवा से मति-मन ।
ज्यों मिलन-कुंज शशि-मृग ने किया प्रवर्तन ।।

भर भुजा भरत ने तुरत बिठाये आसन ।
"प्रभु ! करें आचमन" बोले सजल निषूदन ।।
"कुछ दोष हुआ क्या" बालक बोले स्तम्भित ।
"हम बाल चाव-वश बोल गये कुछ अनुचित ।।"

बोले वसिष्ठ "तुम परम विनम्र सुहावन ।
निर्दोष सर्वथा वाक - विभूषण पावन ।।
जो तुम्हें दोष दे, वह पापी अज्ञानी ।
है किंतु यहाँ वत्सो ! कुछ अकथ कहानी ।।

तुम देखो मख - वेदी - समीप कल्याणी ।
यह स्वर्णासन-आसीन अवध की रानी ।।"
"वे आर्य ! राजरानी कि अवध की महिमा ।
वह लंक-वंदिनी की कि कांचनी - अणिमा ।।
यह किसी महायौगिक समाधि की गरिमा ।
या अवध-अधिष्ठात्री देवी की प्रतिमा ।।
हम जनकनन्दिनी वैदेही सीता के ।
दर्शेच्छुक राजेश्वर की परिणीता के ।।"
रह मौन निमिष भर बोले, स्वर से मुनिवर ।
"हां ! यही राजरानी सिय, लो दर्शन कर ।।"
कुछ सहम किशोरक साहस करके बोले ।
"यह क्या रहस्य, कथनीय आर्य ! तो खोले ।।"
"कुछ हो रहस्य तो कहूँ, विदित सब ही को ।
अवधेश्वर ने तज दिया राजरानी को ।।"
"क्या तजा राजरानी सिय को, क्यों राजन ।"
"यह उत्तर देंगे, बैठे मौन प्रजाजन ।।"
बोले कुमार "बोलो ! अवधेश-प्रजाओ ।
क्यों तजो भूप ने रानी दोष बताओ ।।"
रह गई सन्न सब सभा, न बोला कोई ।
फिर रजक-मंडली उच्चस्वर से रोई ।।
"हम वे पापी हैं, पाप जिन्होंने पाला ।
जिस कारण रानी पाई देश - निकाला ।।
मर गया स्वयं तो ग्लानि-विवश विष खाकर ।
दे गया रजक-कुल को कलंक पर पामर ।।
हम कई बार स्वीकार दोष कर आये ।
क्या कहें, न क्यों पर राजा मान न पाये ।।"
सुकुमार बने अंगार, त्याग कर आसन ।
हो गये खड़े ज्यों धधका जलधि हुताशन ।।

लख घन-गर्जन वन शैल-शिखर पंचानन ।
कंदरा त्याग ज्यों उठे कुपित, कर गर्जन ।।
ज्यों प्रलंयकर भू-डोल भूमि बहु डोले ।
त्यों वीणा के स्वर तार-तार में बोले ।।

सक्रोध-गायन

हे रामचंद्र राजाधिराज ! मर्यादापुरुषोत्तम रघुपति ।
हे राम-राज्य के संस्थापक, हे धर्ममूर्ति ! रति-विरति-सुगति ।।
मुनि कौशिक-मख के रखवाले, दशशिर-शिर वन के दावानल ।
प्रणवीर परम रणरंगधीर, दैवी-जग के जंगम-संबल ।।
रवि की किरणों सी अमल धवल ।
गंगाधारा सी सकल-विमल ।।
जो शरद्-चांदिनी सी निर्मल ।
वासंती - सुषमा सी शीतल ।।
धरती की बेटी अग्निशुद्ध, वह नव-नवनीत-सरिस देवी ।
त्रिभुवन-श्री सीता क्यों त्यागी, श्यामल-मन का रहस्य खोलो ।।
बोलो ! बोलो ! बोलो ! बोलो

वन मिला आपको, उसे नहीं, पर पल भर पुर में रुकी नहीं ।
वन-वन गिरि-गिरि सरि-सरि पथ-पथ,तव गोरी-छांया बनी रहीं ।।
हिम-तपन-सघन घन वर्षण में, जिसका न स्वांस भी सिसकारा ।
मुस्कान न मुख से छिपी कभी, अंगों से रिसी रुधिर-धारा ।।
जो मिला, खा लिया शीश लगा ।
कुछ नहीं मिला, जल प्रेम-पगा ।।
निशि हुई, सो गई तन समेट ।
आ गई उषा, भुज भरी भेंट ।।

कर भारी हृदय न भार बनी, चित प्रतिपल करती मुदित चली ।
वह सती-शिरोमणि वैदेही, रस की गागर, विष मत घोलो ॥
बोलो ! बोलो ! बोलो ! बोलो!

जिसकी पदाति-रज कौर बना, नंदनवन का अक्षत-वसंत
जिसके मातंगों से टकरा, दिग्गज-दल के फिर गये दंत ॥
जिसके तुरगों से त्रसित हुआ, यम-वाहन भागा श्वानों सा ।
जिसके अभियानों में लगता, पुष्पक रथ के रथवानों सा ॥
छत्र सा भुलाया शिर, सुन्दर ।
शिवशंकर का कैलाश-शिखर ॥
जिसके परिघों की प्रबल चोट ।
हिय लिये खड़ा साकेत-कोट ॥
लख जिसे, बीस-भुज उस खल की, भुजगों सी भागीं भय खायी ।
वह सीय वैनतेयो शुभ पथ, उसमें मन की कालिख धोलो ॥
बोलो ! बोलो ! बोलो ! बोलो !

पूंछो सरयू से तमसा से, पथ-पथ मृतिका के ढुह-ढुह से ।
पूंछो गंगा से यमुना से, इस शृंगबेरपुर के गुह से ॥
कामद की मंदाकिनी सुनो, क्या कहती रेवा विंध्याचल ।
बोला क्या गोदावरी सलिल, वह सह्यशैलमाला का दल ॥
ये ऋष्यमूक के कीशेश्वर ।
ये लका के बैठे निशिचर ॥
ये दंडकवन के ऋषि बैठे ।
मुनि दिशि-दिशि के दिशि-दिशि बैठे ॥
री अवध! मलय की भिलनी बन, चंदन ईंधन सा फूंक दिया ।
सिय सा सौभाग्य गँवाकर भी, जीते दुर्भागों के टोलो ॥
बोलो ! बोलो ! बोलो ! बोलो !

जिस ठौर हुई दो घड़ी खड़ी, वह तीर्थ बना पुष्कर वंदित ।
जिस पोखर में धोली एड़ी, बन गया त्रिवेणी आनंदित ।।
कटि सीधी की चलते-चलते, जिसके नीचे ठिठकी पलभर ।
अक्षय-वट कहता कल्पवृक्ष, सुरतरु कहता द्रुमराजेश्वर ।।
छू गया चरण से जो कंकर ।
बन गया निमिष में शिव-शंकर ।।
कटु कहकर फल जो फेंक दिया ।
अणिमादिक ने उठ बांट लिया ।।
वह पावनता की परिसीमा, मैथिली अनुपमा अलौकिका ।
जिसके पासँग में भुवन तुले, भ्रम-परिमाणों से मत तोलो ।।
बोलो ! बोलो ! बोलो ! बोलो !

मुनि याज्ञवल्क्य! बोलो-बोलो, तुमने सिय का शैशव देखा ।
ऋषि कौशिक ! जनकदुलारी का, तुमने पितु-गृह-वैभव देखा ।।
गुरुवर वसिष्ठ ! बोलो, तुमने—वैदेही का विवाह देखा ।
बोलो मांओ ! तुमने श्री के, अन्तःपुर का उछाह देखा ।।
उस कनकभवन की रानी की ।
अनसूया पात्र कहानी की ।।
पातक धोलो दशशीश - प्रिया ।
कह दो कैसी वंदिनी सिया ।।
छल जिसको छल कर छले गये, वह प्रिय-शैया पर छली गई ।
मत वन-हथिनी बन अवध-प्रजा, इस रामराज्य-उपवन डोलो ।।
बोलो ! बोलो ! बोलो ! बोलो !

सिय मंजु मराली मानस की, सिय राजमृगी वृष-उपवन की ।
सिय सोन मछरिया गंगा की, सिय मंगल - बाती पूजन की ।।
सिय बीज साधुजों के तप की, सिय अकुंर निमि-नृप-पुण्यों की ।
सिय रघुयश-तरु की काम-लता, सिय बौर राम-सत्कर्मों की ।।

सिय फूल उसी का नाम धैर्य ।
सिय फल - स्वरूप ऐश्वर्य वर्य्य ।।
सिय तुष्टि-पुष्टि श्रुति की सुकीर्ति ।
सिय शाश्वत-संसृति की सुरीति ।।
सिय युगों-युगों में कभी-कभी—आती है, आई भारत में ।
भ्रम तजो अयोध्या के राजा, तुम सूर्य, उषा सिय के होलो ।।
बोलो ! बोलो ! बोलो ! बोलो

जिसमें सीता सम्मिलित नहीं, वह राजसूय होता कैसे ।
वैदेही आत्मा बिना मृतक, यह यज्ञ देह ढोता कैसे ।।
निमिराज-नंदिनी की नूपर-ध्वनि खोकर जो सुनसान बना ।
तुम उसमें रहते प्रेतों से, यह कनकभवन शमशान बना ।।
श्रीराम ! तुम्हारी परम - प्रिया ।
यह कंचन प्रतिमा, यही सिया ।।
यह यज्ञ किया, क्या यज्ञ किया ।
फल से पहले, तरु काट दिया ।।
धरती छानों, अम्बर चीरो, पाताल खोद सीता ढूंढ़ो ।
सिद्धो ! आवाहन करो-करो, आओ रानी के रमझोलो ।।
बोलो ! बोलो ! बोलो ! बोलो!

दोहा

गाते-गाते चल दिये, लव-कुश मंडप त्याग ।
सकल सभा झुलसा गई, दीप-राग की आग ।।
बदली बरसाने लगा, नयनों से रनवास ।
वीर शांत करने लगे, प्रण मल्हार प्रयास ।।
कर्ता सम रघुनाथ ने, देखी काल-कुदृष्टि ।
भंग समय से पूर्व कर, चले, सभा की सृष्टि ।।

आये लवकुश तुरत ही, गुरु समीप सरि-तीर ।
मुनि ने देखे ग्लानिवश, क्लेषित युगल शरीर ।।
वक्र भृकुटि, अरुणिम नयन, पलक छलकता कोप ।
हुए चपलता-सरलता, बालोचित - गुण लोप ।।
लगता देंगे जग डुबा, या कर देंगे दग्ध ।
वनदेवी के सुत लगे, त्रिभुवन के प्रारब्ध ।।
उठा दृष्टि मुनिश्रेष्ठ ने, किया मौन ही प्रश्न ।
"अवध त्याग आश्रम चलें, व्यर्थ देखना लग्न ।।"
बटुकों ने सब कुछ कहा, फिर पा कवि-संकेत ।
चले सकल - जन अवध से, हर्ष-विषाद समेत ।।
होते-होते रात के, कर ली तमसा पार ।
अंब - शपथ लख, लघु लिया, लव-कुश ने आहार ।।

(पुनः आश्रम में)

दोहा

आये वास तृतीय दिन, बिना किये विश्राम ।
सिय सहमी मुद्रा निरख, कैसे लाल ललाम ।।
फिर बोलीं "क्यों क्या हुआ," करते हुए प्रणाम ।
बोले लव-कुश "लख लिये, गुरुवर के वे राम ।।"

सोरठा

सकल कथानक जान, खिली भरी भर कर खिली ।
ज्यों पछवा पहचान, बिन बरसे बदली ढली ।।
"रंगभूमि रणभूमि, पल भर में देते बना ।
यज्ञानल-दधि - ऊर्मि, घट-संभव बन, लीलते ।।
रोक लिये धनु-बाण—गुरुवर ने, हम अन्यथा ।
ले ही लेते प्राण, मिल जाता यदि वह लखन ।।

जो अनुशासन पाल, अन्यायी-भूपाल का ।
आया सिया निकाल, निपट अकेली वन विजन ।।"
"करो स्नान जलपान, मौन रहो, पथ के थके ।"
हुई मैथिली म्लान, की ऋषिवर की वंदना ।।
"कल्याणी ! कल्याण, मुदित करो रामस्मरण ।
तव प्रति प्रेम-प्रमाण, जन-जन के मन से मिला ।।
विधि का विविध-विधान, मौन शांत लखती चलो ।
मंगलमय भगवान, भला करेंगे प्रभु-रमणि ।।"
हुए काव्य-तल्लीन, कविवर लेकर लेखनी ।
आशा लिये नवीन, सिय आईं निज उटज में ।।

सुखमालिनी

दिन-दिन भर भरे उदासी से,
वनदेवी के सुकुमार कँवर ।
वन-वन में घूमा करते थे,
पैने करते शिल-शिल पर शर ।।

हो कुपित हाथ मल कर कहते,
"छल लिया हमें गुरुवर ने ही ।
परिणाम सिया-निर्वासन का,
नृप को दिखलाते पल में ही ।।

ले लिये धनुष-सायक हमसे,
विध्वंस यज्ञ हम कर देते ।
रघुवंशी क्रूरों के शव से,
मख-मंडप सारा भर देते ।।

लंका-जय कर जो दंभ बढ़ा,
वह चूर-चूर करते क्षण में ।
यदि एक बार भी दिख जाता,
कुछ शेष न रहता लक्ष्मण में ।।

यज्ञाश्व लिये दिग्विजय - हेतु,
लक्ष्मण ही गया सैन्य लेकर ।"
लव बोला "सुना अवध में ही,
दक्षिण-जय कर, फिरता उत्तर ।।

दो-चार दिनों में आ निकले,
सम्भवत: अपने भी वन से ।
वन में वन-पातक का फल ले,
सुरपतिजित-जेता वन-जन से ।।"

रण-रचना पर गंभीर मनन,
आयुध आरोहण-अवरोहण ।।
वन-जल दुर्गों की संरचना,
दृढ़ चतुरंगिणियों का भेदन ।।

वे लगे सीखने पढ़-पढ़ कर,
कुछ पूंछ-पूंछ कर मुनि-जन से ।
कुछ शबरों कोल-किरातों से,
कुछ स्वतः मानसिक-चिंतन से ।।

वन के पथ-पथ पर फिर-फिर कर,
वे निशि-दिन पहरा देते थे ।
कण-कण का सारा समाचार,
संकेतों में दे-लेते थे ।।

"क्या-कहां कुमारो ! करते हो",
गुरु-जननी यदि पूंछा करते ।
चुप रह कर टाल दिया करते,
"वन में यूं ही फिरते रहते ।।"

(अश्वागमन)

जिस गंग-कुंज में वनदेवी —
मुनिवर को पहली बार मिली ।
उस सघन - कुंज में एक प्रात,
लव को स्वर्णाभा दिखी खिली ।।

वनदेवी-वट के नीचे ही,
रामाश्वमेध का अश्व खड़ा ।
रह गया देखता लव किशोर,
यह स्वप्न कि सम्मुख सत्य खड़ा ।।

कर्पूर - क्षीर - हीरक - हिमकर,
हिम-छवि छवि सा तन अति उज्ज्वल ।
श्यामल-सुकर्ण कुंडल-मंडित,
फर-फर करती बालधि-पिंगल ।।

मणिमय-कंठे कंचन-हमेल,
झांझन झन-झन झनझना रहीं ।
बहुरंगी राशि दूकूलों की,
जरतारी से जगमगा रहीं ।।

रघुसुन्दरियों के करतल के,
म्हेंदी के थापे देह लगे ।
लौ सी पतली उँगली उभरीं,
ज्यों मंगल-दीपक दिव्य जगे ।।

स्वर्णिम तीली, धौलीं कलियां,
झालर सुन्दर नवरत्नों की ।
कुंदन में द्वादश छवि उभरीं,
कुल-गुरु रवि की कुरुविन्दों की ।।

मानों नव-ग्रह-मंडल लेकर,
रविदल शोभित सैन्धव-कटि पर ।
दो तिरिछी चँवरों की छाया,
दृढ़ता से बँधे शरासन शर ।।

करती ललाट पर अट्टहास,
अवधेश-कीर्ति पट्टिका ललित ।
रघुपति का जग-जय प्रखर-घोष,
कंचन पर लोहित-मणि अंकित ।।

सरसी

"वीर प्रसवनी कौशल्या का, राम एक सुत वीर ।
एक बार ही एक बाण ही, धनुष धारता धीर ।।
उनके मख-सर का यह शतदल, खिला लखन बल-नीर ।
रौंदे मत्त-मतंग मूढ़ वह, अप्रिय जिसे शरीर ।।"

मालिनी

खिलखिला उठा पढ़ लव कुमार,
हय बांधा वनदेवी - वट से ।
"यह रण कौशल्या - वैभव का,
होगा वनदेवी के तप से ।।"

चढ़कर तरु पर देखा सुदूर,
क्षितिजों के परे धूल उड़ती ।
ध्वनि शंखों ढोलों पणवों की,
क्रम-क्रमशः अनतिदूर बढ़ती ।।

वृक-व्याघ्र-वराह - हरिण-चीते,
भयभीत हुए सहसा भागे ।
हो उठा तपोवन भवन क्षुब्ध,
मानों मदादि तस्कर जागे ।।

फहराती अमित केशरी - ध्वज,
चतुरंग-अनीक लखी धाती ।
हय-लहर भँवर-गज रथ-सरिगति,
जल पदचर - बाढ़ बढ़ी आती ।।

मंडलाकार - धनु बांध बना,
शर-भीति उठा कर लव अभीत ।
गौरीशंकर का शिखर - राज,
कल्पांत - काल का सा पुनीत ।।

मनु - नौका सा यज्ञाश्व बांध,
मीनावतार साकार लगा ।
रविकुल का वह वैहानिक - रवि,
नवलोषा - प्राणाधार लगा ।।

आ गया हरावल का लघु - दल,
हय-चरण-चिन्ह लखता-लखता ।
देखा निर्जन निकुंज वट से,
यज्ञाश्व बँधा मृदु - तृण चरता ।।

"छिप गया कहां बंधन-दाता,
वह भाग्यवान सम्मुख आये ।
जिसके पुनीत कर - कमलों के,
तृण-हरित हयाधिप को भाये ।।"

लव बोला "हम तरु पर बैठे,"
योद्धाओं ने देखा बालक ।
शर संधाने सुन्दर मुनि-सुत,
ज्यों मन्मथ-शिशु धारे सायक ।।

उपहास वीर करते बोले,
"प्रभु! बाण उतारो, लगता भय ।
आ रहे लिये सौमित्रि सैन्य,
छोड़ो रामाश्वमेध का हय ।।"

"लौटो यदि जीवन प्रिय हो तो,
अन्यथा शरानल आहुति दो।
यज्ञाश्व नारियल साथ-साथ,
रण-मंत्रों को संपुट युति दो॥

मत वरो मृत्यु, सौमित्रि कहां,
उस पापी को सम्मुख लाओ।"
हो उठे कुपित साकेत-सुभट,
"मुनि-सुत! न मूर्खता दर्शाओ॥"

ज्यों स्पर्श वल्गु की सेनप ने,
सर-सर कर सत्वर शर आया।
कर-पृष्ट चीर कर करतल से—
निकला, भू-गिरा रुधिर न्हाया॥

हट गये हरावल-भट पीछे,
मुनिवेष देख, धनु लिये नहीं।
आ गये तुरन्त सुमित्रासुत,
मानों थे पीछे छिपे कहीं॥

कुण्डल - किरीट कंचन-सनाह,
दृग विकसित-सरसिज तनिक सरुष।
धनु कर, कटि पीत-वसन निषंग,
ज्यों स्वयं वीररस बना पुरुष॥

लव तरु से उतर तुरत बोला,
"यज्ञाश्व आप ले जायेंगे।
क्या त्याग-वृत्ति के परमवीर,
अनुराग आज दिखलायेंगे।"

हो मौन लगे लक्ष्मण लखने,
यह प्रभु-सिय सरिस सरस बालक।
इसके प्रति अति ममता आती,
कटु बोल रहा, पर मन-मोहक॥

फिर लक्ष्मण धीरे से बोले,
लख कोर-कोर में पोर-पोर ।
"मैं समझा नहीं व्यंजना तव,
क्या कहते हो तापस-किशोर ।"

"तुमने जिनके हित पुर त्यागा,
पितु-मात-प्रिया निद्रा-भोजन ॥
तज धर्म-कर्म-लज्जा छोड़ी,
मैथिली राजरानी निर्जन ॥

केवल न अधम यह देह तजी,
लौटे लंका से जीते जी ।
पाप से प्रथम प्रायश्चित कर,
मर कर भी जाते फिर से जी ॥

तुमने समझा है, राजा हैं,
हमसे कर सकता प्रश्न कौन ।
कल्मष-त्रिशंकु-असमंजस को,
क्या भूल गये, मत रहो मौन ॥

यह खुली चुनौती ऋषियों को,
यज्ञाश्व तपोवन में आया ।
यह धर्मप्रियता रघुकुल की,
जिसका नर ईश्वर-पद पाया ॥"

"हम क्षत्रिय हैं, तुम मुनिजन हो,
हम चरण, हमारे मस्तक तुम ।
हम ढ़लने वाले दिनमणि हैं,
उगने वाले दिवसाधिप तुम ॥"

"यदि यही सत्य, पाखंड नहीं,
हय-भाल-पट्टिका पढ़ी न क्यों ।
यदि पढ़ी, लगी अनुचित चित को,
इस वन से पहले हटी न क्यों ॥

यह पापी भूपति की प्रशस्ति,"
"मुनिपुत्र ! करो वाणी-संयम ।
मित्रों के मित्र, काल रिपु के,
मर्यादा-प्रिय रघुवंशी हम ।।

सिय मां का प्रश्न जहां तक है,
मैं अपराधी हूँ, लज्जित हूँ ।
पर रघुपति-निंदारत के प्रति,
मैं यम सा धनुशर सज्जित हूं ।।

मुनि - बालक लखकर मौन रहा.
पर करते तुम सीमोलंघन ।
यज्ञाश्व छोड़ कर हट जाओ,
अब धैर्य खो चुका है लक्ष्मण ।।"

"तुमने भी तो दो - चार बार,
राघव-जननी का दूध पिया ।
जिसको न राम जय कर पाये,
वह सुरपतिविजयी विजय किया ।।

आओ, आकर खोलो तुरंग,
या करो याचना आंचल कर ।
या दो उतार मस्तक-पाटी,
या न्यायाधीश बने संगर ।।

खोलूं पाटी" कह बढ़ा कुँवर,
लक्ष्मण गरजे क्षय-जलधर से ।
तड़िता की द्रुत - गति से झपटे,
उष्णीष सरिस लिपटे हय से ।।

बोले "न हमें शोभा देगा,
सुकुमार ! समर तुमसे करना ।
जिनके हित की भू रक्ष-हीन,
पातक उनसे भू पर लड़ना ।।

तुम कृपा करो, हय जाने दो,
मत दो अप्रिय रण-आमंत्रण।
रघुकुल का मारण-मरण मरण,
इस हेतु विनीत खड़ा लक्ष्मण ॥"

यों कह लक्ष्मण का हाथ बढ़ा,
ज्यों हय-दिशि, लव का बाण छुटा ।
गिर पड़ा झनझना कवच भूमि,
वन विजन-वीथि ज्यों वणिक लुटा ॥

युद्ध

सुखमालिनी

हय त्याग धनुष लेकर लक्ष्मण,
बोले "मुनिसुत ! हो सावधान ।
मैं हुआ विविश रण करने को,
विधि रचा समर का प्रावधान ॥

सैनिको ! मौन होकर देखो,
दुर्भाग्य भरा यह द्वन्द-युद्ध ।"
निज प्रथम बाण कटता विलोक,
हो गये अनन्त अनन्त -क्रुद्ध ॥

फिर तो बाणों की झड़ी लगीं,
कुछ कटते कुछ तन में धँसते ।
सिय-पुत्र सुमित्रा-पुत्र वीर,
वासन्ती किंशुक से लगते ॥

फुंकार प्रखर शर-परिकर यों,
दोनों के दोनों पर गिरते ।
चंदन-वन में मानों भुजंग,
तरु-तरु नर्तन करते फिरते ॥

निज घावों को अनदेखा कर,
लव को लोहू-लुहान लखकर ॥
भर गई लखन के हृदय दया,
धीरे से छोड़ा बंधन-शर ॥

संसार - जीव सा सुभग लगा,
कौशेयी-रजु में कस किशोर ।
राघवी-सैन्य चल पड़ी मुदित,
वन में गूँजी दुंदभी घोर ॥

लव को लक्ष्मण ले गये बाँध,
सुनकर सीता हो गईं विकल ।
दांईं फड़की बांईं फड़की,
ये अशुभ साथ शुभ दोनों फल ॥

मुनिवर समाधि, फँस किसी व्याधि,
कुश किस वन में भटका, जाने ।
हो मौन मनाने लगीं कुशल,
कुश को आते देखा मां ने ॥

यों लगा सती को मानो हरि,
आते गज-राज बचाने को ।
बोली "मेरा लव वंदि हुआ,
जा प्रिय! प्रिय भ्राता लाने को ॥

मैं चलूं" "नहीं मां! तुम बैठो,
कुश अभी तुम्हारा जीता है ।
आशिष दो, तव शिशु अभिमंत्रित—
शर सा अरि-शोणित पीता है ॥"

'किसके विरुद्ध किसको आशिश,
किसकी अकुशल की चाह करूँ ।
कैसी यह कठिन - परीक्षा प्रभु!
मैं गोद भरूँ या मांग भरूँ ॥

मैं राहु बनूं या केतु बनूं,
ममता रौंदूं या प्रीति दलूं ।
पथ-भ्रष्ट बनूं, पथ नष्ट करूं,
मैं भस्म मिलूं या भस्म मलूं ।।

शिर के बल चले कि पग के बल,
अब अबला खड्ग दुधारी पर ।
बलिदान कौन सा लोक करे,
क्या भार भयानक नारी पर ।।'

"दो विदा, विलम्ब हुआ जाता,
प्रसवनि ! रिपु अनुज लिये जाता ।
वह कुश का जीव लिये जाता,
वह लव का वपुष लिये जाता ।

वह वन-देवी की अमर-सिद्धि,
कवि की साधना लिये जाता ।
वह नृप-वैभव के दीपक का,
यह वमन कलंक दिये जाता ।।

आयेंगे तो ज्यों आये थे,
यम के भी यमज न बिछुड़ेंगे ।
हम वन-देवी के दृग - तारे,
ऋतुपति-रतिपति से खेलेंगे ।।"

कर रघुपति-स्मरण हृदय सिय ने,
शस्त्रास्त्र कवच दे, भाल छुआ ।
ले चरण-रेणु कुश कुंवर चला,
क्रोधित अंगारा लाल हुआ ।।

लक्ष्मण ने देखा एक ओर,
वन से सुकुमार चला आता ।
शस्त्रास्त्र कवच सज्जित मुनिसुत,
खगपति-गति लज्जित कर छाता ।।

कौतुक - वश रुक कर खड़े हुए,
कुश क्षण-भर में सम्मुख आया ।
मानों मन्मथ तजकर समाधि,
रणरंग - राग में रँग धाया ।।

बोला "वंदी कर बालक को,
ले जाते लाज नहीं आती ।
तुमसे वीरों के राजा की—
मां वीर-प्रसवनी कहलाती ।।"

"तव बंधु - दुराग्रह के कारण,
यह विग्रह हुआ" लखन बोले ।
"यज्ञाश्व चपलता - वश पकड़ा,
प्रभु-निंदामय कुवचन बोले ।।"

'फिर कवच काट डाला बोलो,"
लव बोला बंदी बना-बना ।
"दिग्विजय तपोवन में करने—
तुम आये, दंभ बढ़ा इतना ।।

वंदन न किया जा मुनिवर का,
वनदेवी की आशीष न ली ।
यह राम-राज्य की परिपाटी,
रघुकुल ने जग - रक्षा कर ली ।।

तुम सुर-मुनि-प्रतिपालक बनते,
यज्ञाश्व लिये त्रिभुवन फिरते,
क्या सांध्य - सूर्य से सूर्य-पुत्र,
जीवन - संध्या में ही गिरते ।।"

बोले कुश के सुन वचन लखन,
"यह व्यर्थ विवाद बढ़ाना है ।
बोलो पल में बंधन खोलें,
यदि मौन शांति से जाना है ।।"

कुश बोला "तुम्हें सिखाने को-
मैं आया भाषा बाणों की ॥
मत समझो मैं भिक्षा लेने—
आया हूँ भ्राता-प्राणों की ॥

जब परशु परशुधर ने धारा,
मुनि बैठ गये आयुध तजकर ।
फिर किये राम ने मौन साधु,
संरक्षण की माया रचकर ॥

यज्ञाश्व - रूप में देवदूत,
हो सदय तपोवन में उतरा ।
दीं खोल दृष्टियां मुनियों की,
छल-जाल राम-विषयक छितरा ॥

मुनि शास्त्र-विंचितन लीन हुए,
तज शस्त्र क्षत्रियों के बल पर ।
ऋषि-परिकर का संतोष देख,
तुम स्वयं सजे छत्रप-पद पर ॥

जिसकी वाणी में शाप-शक्ति,
उसकी बांहें अशक्त कैसे ।
हम वैष्णव शाक्त बना करते,
यदि बलि-पशु मिलते तुम जैसे ॥

अब बहुत हुआ धनु-शर धारो,
तुम पहला वार करो लक्ष्मण ।
वन-देवी या कि सुमित्रा को,
मां करे एक सुत की, यह रण ॥"

लक्ष्मण रथ से उतरे बोले,
"रण खेल-खेल ही खेले हो ।
हम युगल तुमुल करलें पल भर,
तुम बालक यहां अकेले हो ॥"

"तुम द्वंद करो कि ससैन्य-समर,
पर तम रवि एक दलन करता ।
केशरी-किशोर विचरता वन,
पतझर वसंत सारा हरता ।।"

वीरोचित वचन सयुक्ति - युक्त,
मन वीर सुमित्रानंदन का ।
प्रमुदित पल - पल करते, बोले,
"पा लें परिचय क्या शिशु भटका ।।"

"यूं तो परिचय दे चुका एक,
परिचय हित ही मैं समुपस्थित ।
धनु-अधर खोल, शर-रसना से,
रण-गिरा कहें यह ही समुचित ।।

फिर भी यदि इच्छा तो सुन लो,
वाल्मीकि हमारे गुरुवर हैं ।
हम वनदेवी के यमज - तनुज,
मैं कुश हूँ, वह भैया लव है ।।

तुम नृप दशरथ के सुत तृतीय,
हो ज्येष्ठ सुपुत्र सुमित्रा के ।
मंत्रोपहार दिनकर-वंशी,
अवधीय जयी-वर लंका के ।।

तन वज्र-वर्ण मन महा-वज्र,
अतिवज्र" लखन "बोले बस बस ।
प्रभु रामचंद्र का लघु - सेवक,
मम परिचय शुभ सौभाग्य-सुयश ।।

कुश ! किंतु तुम्हारे पूज्य पिता-
हैं भाग्यवान नर-श्रेष्ठ कौन ।"
जिसकी शंका थी वही प्रश्न,
सुन, एक बार कुछ रहा मौन ।।

फिर कहा "निरर्थक पितृवंश,
अग्नि का धुंआ धुंए का जल ।
दिशि एक लखन चतुरंग सहित,
दिशि एक अकेला कुश केवल ॥"

लक्ष्मण बोले "तो तव निर्णय,
सेना से समर रचाने का" ।
"तो तव निर्णय क्यों तूप फूंक,
समिधा-शाकल्य बचाने का ॥"

कुश-वचन श्रवणकर, कर विचार,
बोले "होगा यह पाप प्रबल ।
हम मर्यादा पुरुषोत्तम के—
अनुचर रघुवंशी धर्मस्थल ॥

यह धर्म - विरुद्ध युद्ध अनुचित,
आगया द्वार पर क्या बोलें ।
फिर भी रघुवंशी - शूर स्वयं,
वंदी - लव के बंधन खोलें ॥

हो लव विमुक्त कुश से लिपटा;
लक्ष्मण के नयन लगे झरने ।
यों लगा कि मूर्च्छा से उठकर,
वे लगे स्वयं प्रभु से मिलने ॥

पल भर में कवच धार कर लव,
कुश के समीप हो गया खड़ा ।
मानों पावक के पास पवन,
कंचन - सुकोर माणिक्य जड़ा ॥

बोले जा सेनप के समीप,
धीरे से अनुज राम के प्रिय ।
"वध-योग्य न, बालक दर्शनीय,
लगते किशोर-छवि में प्रभु-सिय ॥

लो घेर, ले चलो वंदि बना",
शिर हिला, शंख घन घोर बजा।
हट गये यान में चढ़ लक्ष्मण,
धनु-तूणीरों ने मौन तजा॥

चल पड़े बाण क्षण में कराल,
विकराल समर का रूप हुआ।
लवकुश बन गये मंदराचल,
रघु-सैन्य-सिंधु विद्रूप हुआ॥

हय उच्चैःश्रवा, सुदामा गज,
सुर पाने लगे स्वलोकों में।
शिर-परिकर शिशु-शशिमाला सा,
शिव लगे सजाने जूटों में॥

लगता कृतान्त दो नाच रहे,
विक्रांत रहे दो क्रीड़ा कर।
जगजीव बिछौना बिछा रहे,
अपने सुधर्म की रक्षाकर॥

गज - यूहों तुरग-समूहों में,
रथ-व्यूहों पदचर-थूहों, में।
सिय-सुत यों छाये एक साथ,
ज्यों रवि तम-दुर्ग-दुरूहों में॥

कट-कट कर वीर लगे गिरनें,
रण दारुण देख, अरुण होकर।
आगये यान को बढ़ा लखन,
धनु धारण कर धीरज खोकर॥

पितृव्य-भ्रातृजों का संयुग,
रोमांचित अमर लगे लखने।
धरणिजा-शेष रण में सम्मुख,
प्रभुतेज-लखन आये लड़ने॥

चेतना-मनीषा प्रतिपक्षी,
यह विग्रह विग्रह-प्राणों का ।
रवि-किरणों से रवि-किरणों का,
प्रभु-बाणों से प्रभु-बाणों का ।।

ये रामचंद्र की दो बांहें,
आपस में कैसी टकरातीं ।
ये गह्वर गहन अपरिचय के,
छल-छल छल-हीन छलीं जातीं ।।

हिम जमा रहा सुरसरि जल को,
सुरसरि जल हिम को गला रहा ।
मैथिली गोमुखी-शिला बनी,
'हा! हृदय हृदय को जला रहा ।।'

अनपेक्षित देखा, पल-पल में,
रामानुज विवश हुए जाते ।
आयुध धारण करते-करते,
मंत्रों को याद न कर पाते ।।

ध्वज उड़ा, हुए रथ - सूत भग्न,
घायल तन धरती पर आया ।
यों लगा - गिरा ज्यों मेरु-शिखर,
प्रत्यूष उषा - निर्झर न्हाया ।।

भट रण-उपचार लगे करने,
पर लखन न हुए तनिक चेतन ।
कुछ बोले, चलो अयोध्या ले,
कुछ बोले, पुर भेजो धावन ।।

दो सुभट तीव्रगामी तुरंग—
पर चढ़ मखमंडप में आये ।
रुक गये हाथ आहुति देते,
मंत्रस्वर सहसा सकुचाये ।।

राघव बोले "क्या समाचार"
सुन पल-भर चिंतालीन हुए ।
"मुनि-पुत्रों से लक्ष्मण हारे,
ये पुण्य, राम के क्षीण हुए ॥

ला धनुष भरत! रिपुदमन ! बाण,
अंगद ! निषंग कपि! चर्म उठा ।
दो सजा विभीषण ! सैन्य-यान,
सुग्रीव ! चक्र-असि-वर्म उठा ॥

यह राजसूय संपन्न करें,
युवराज भरत राजा बन कर ।
दो विदा, प्राण-मेरा लक्ष्मण,
दे दे न प्राण-बलि रण-अध्वर ॥'

ऋषि बोले "हो नृप असिव्रती,
भेजो कोई, बहु शूरवीर ।
कहती चतुर्घटिका अमृत अमृत,
धारें - धारें सम्राट ! धीर ॥"

"कर क्षमा राम को खड्गव्रत !,
सुव्रत बंधुव्रत - विघ्न बना ।
जिसने स्वव्रत मम व्रत-व्रत पर—
वारे, वह शोणित आज सना ॥

यह राम बिना जिस के नराम,
वह लक्ष्मण रण में हाय ! गिरा ।
दूं झोंक किसे इस ज्वाला में,
काला कर लूं मुख आज, फिरा ॥

ये राजसूय की ज्वालायें,
यदि मांग रहीं बलि लक्ष्मण की ।
लें, पर पहले लेनी होगी,
उनको बलि इस नृप के तन की ।"

ज्यों प्रभु का धनु-दिशि हाथ बढ़ा,
त्यों तुरत सुमित्रा उठ धाई ।
प्रभु फफक उठे छाती से लग,
"मां! गया-गया लक्ष्मण भाई ॥

मत रोको धनु ले लेने दो,
मैं भीख मांगता थाम चरण ।
इस दिवस राम को त्यों भेजो,
उस दिवस लखन ज्यों भेजा वन ॥"

मां बोली "राघव ! धीरज धर,
निश्चित तव अनुज समर सकुशल, ।
मख-जल पुनीत, निज ये करतल,
मत कर मैले नयनों के जल ॥

अंजनी महादेवी का सुत,
तारादेवी का पुण्य-प्रबल ।
रण जायेंगे सेना लेकर,
है ममाशीष होगा मंगल ॥"

अंगद-हनुमान उठे प्रमुदित,
रघुपति-चरणों में नमन किया ।
प्रभु की पलकें अधखुली हिलीं,
आशिष दे मां ने तिलक दिया ॥

दोहा

बोली धीरे से पुनः, गद्गद् - स्वर छू भाल ।
"मत करना प्रिय ! रण कठिन, मुनि-बालक निज बाल ॥

सुखमालिनी

कर युक्ति प्रथम मतिमानो ! तुम,
वनदेवी का दर्शन करना ।
समयानुसार फिर वह करना,
जिसकी की हो विधि ने रचना ॥

लोहा ले सके लखन से जो,
किस कुल की वर-वधु का वह पय ।
रघुकुल यह घिरा अपरिचय में,
यदि नहीं, विकट वय यह निश्चिय ।

कपि - ऋक्ष-निशाचर-सेना ले,
'सिय राम जयति' कहते कपिवर ।
रख सैन्य तपोवन-सीमा पर,
आ, देखे लक्ष्मण शैया पर ।।

कंचन सा वर्ण हुआ पिंगल,
पंकज से लोचन कुम्हलाये ।
मानों कुसमय-वश नृपति नहुष,
सुरपुर से अंध-कूप आये ।।

लक्ष्मण बोले "क्यों कपि-रत्नो!
आ गये, मुझे मर जाने दो ।
माँ-निर्वासन का महापाप,
कुछ प्रायश्चित कर जाने दो ।।"

"इतने समर्थ इतने अधीर,
रघुनाथ-अनुज प्रभु ! परमवीर ।
क्या होगी इस जगती की गति,
यदि यों सरिता-पति तजे तीर ।।

पिछले पखवारे ये बालक,
अपने मख से कर गान गये ।
अद्भुत गाया, मां निर्वासन—
सुन, पर मन में दुख मान गये ।।

हम समझे थे गायक ही हैं,
पर परमवीर भी ये निकले ।
ये वनदेवी के बालक हैं,
आज्ञा दें, उनसे भी मिल लें ।"

बोले लक्ष्मण सुन कीश-वचन,
"मारुति! मेरा तो मन कहता ।
यह कनक-भवन की देवी का,
तन वन वनदेवी बन रहता ॥

ये बालक निश्चित मां-प्रभु ही,
सम्मिलित विभाजित हो आये ।
तुम कहते अद्‌भुत - गायक हैं,
पर मैं ने विकट-सुभट पाये ॥

ऋषि-वेष विलोके नयनों नें,
पर मन ने तनिक नहीं माने ।
वाणी सुन्दर, पर व्यंग्य प्रखर,
तन मंजु, भयंकर धनु ताने ॥

यह घोर विरोधाभास कहो,
क्या संभव साधारण-जन में ।
यह दांई - बांह फड़कती है,
कहती है, सच ही है मन में ॥

ले चलो मुझे, पर रहने दो,
वह वेष, न मैं लख पाऊंगा ॥
जब वे पूंछेंगी 'सब सकुशल',
मैं जीते जी गड़ जाऊँगा ॥

शुभ समाचार ऐसा लाओ,
तव ऋणी, और तव ऋणी बनूं ॥
ज्यों लाया, ले जाऊँ मां को,
या गंगारज की कणी बनूं ॥"

अंगद-हनुमान वंदना कर—
लक्ष्मण की, समरांगण आये ।
रण - रत्नवती रक्तांबर लख,
पल में अनुमान सत्य पाये ॥

नल-नील-निशठ-शठ-द्विद - मयंद,
दधिमुख-दधिबल ये वही विकट ।
लंका-पटु - कपट - कपाटों को,
जो तोड़ चुके अंगों से भट ॥

ये काल-जयी इन पर अकाल,
विकराल काल की परछाईं ।
सिय-कोपानल के काजल की,
कालिख सी इन पर मँडराई ॥

जिसने ससागरा वसुन्धरा,
सौभाग्यवती की फहराकर ।
वह रघुकुल का ध्वजराज अजय,
देखा अनाथ सा धरती पर ॥

ज्यों अंगद झुके उठाने को,
त्यों सर-सर करता शर आया ।
जा गिरे धरापर पल - भर में,
जिनका पद अरि न हिला पाया ॥

हनुमान देखने लगे चकित,
फिर चले उठाने अंगद को ।
बाणों का ऐसा जाल खिँचा,
रख सके न उठे हुए पद को ॥

दुर्दशा परस्पर देख वीर
नयनों-नयनों में ही रीझे ।
पर दिखा न कोई भी प्राणी,
हुंकार उठे खीझे-खीझे ॥

"तुम भूत-प्रेत - मानव - दानव,
गंधर्व-यक्ष-निशिचर - किन्नर ॥
हो कौन कहाँ, सम्मुख आओ ;
हम आये रघुपति के अनुचर ॥"

ज्यों एक साथ नूपर सहस्त्र—
बज उठे, हँसी त्यों गूंज उठी ।
ताली प्याली सी छलक उठीं,
वीरान वनाली कूंज उठी ॥

देखा वे ही दोनों बालक,
लक्ष्मण के खंडित स्यन्दन से ।
अंडों से चिंहुक अर्भकों से,
कुछ झांक रहे चंचल-पन से ॥

मारुति बोले "कैसे गायक,
ये कर्म भयंकर कर डाला ।"
"जैसे तुम नाटककार कीश !
लंका में धधकादी ज्वाला ॥"

"वनदेवी वे जो तव जननी,
करतीं निवास वे किस वन में ।"
"वे रहतीं अभय इसी वन में,
ज्यों पितुवर नभ के कण-कण में ॥

"मुनिपुत्र तपोवन में रहकर,
यह युद्ध-कला सीखे किससे ॥"
"जब क्षुधा न जननी बुझ सकी,
रवि-भोजन सीख गये जिससे ॥"

हो गये निरुत्तर रुद्र-देव,
अंगद आनन्द लगे लेने ।
कपि-लवकुश के संवाद सरस,
रस लगे अलौकिक सा देने ॥

लव बोलो "आओ कपि! समीप,
शर-जाल झटक कर पद, तोड़ो ।
तुम इन्द्रजीत का ब्रह्म-पाश,
ज्यों तोड़ चुके, न प्रकृति छोड़ो ॥

कपिराज बालि की बल-रेखा,
यों कब भू पर खिँचती देखी,
वह अमर-वेलि कंगूरों से—
कंगूरों पर चढ़ती देखी ।।

युवराज वीर किष्किधा के,
सोते हैं मृदुल तुराई पर ।
तुम दिगम्बरा मेदिनी पड़े,
क्या कहें, तुम्हें, सचमुच वानर ।।

अंगद बोला "शर-जाल फँसा,
अब हँसकर बात बनाते हो ।
इस वय किशोर-सुन्दरता का,
तुम अनुचित लाभ उठाते हो ।।"

"यह तर्क महान कपित्व भरा,
इसका क्या दें, कपिवर ! उत्तर ।
तुम आज हुए, कल क्यों न हुए,
यदि हुए, हुए तो क्यों कर नर ।।

यदि नर होना था, कम से कम,
हनु तो कर लेनी थी बाँकी ।
कर्म से नहीं आकृति से तो,
वानर की हो जाती झाँकी ।।"

"चुप रहो, वीरवर पवन-पुत्र,
रवि-शिष्य न यों उपहास करो ।"
युवराज-वचन सुन, वक्र हँसी—
हँसता कुश बोला, "वीरवरो ।।

यह अज्ञानी है, बालक है,
इसकी बातों पर चित न धरो ।
नित-प्रति यह मुझे सताता है,
आकर अनुशासित इसे करो ।।"

लव पुनः हँसा, अंगद-मारुति,
रह गये पुनः उलझे पद से ।
लख वाक्युद्ध. चातुर्य किंतु,
हो गये हृदय में गद्-गद् से ।।

अद्भुत-मुद्रा में भ्रमित हुए,
कपि युगल, विलोके लव-कुश नें ।
ज्यों वंदी किया एक शर नें;
त्यों किया विमुक्त एक शर ने ।।

कर हाथ-पैर सीधे, नत-शिर,
ली अंग-अंग से अँगड़ाई ।
तब तक स्यंदन-बैठक से उठ,
सिय-कुंवरों की जोड़ी आई ।।

यों लगा, देख कर सुन्दरता,
शैशव-यौवन हठ करते हैं ।
ज्यों उषा-धूप के मंजु कलह,
रवि को सुमेरु पर धरते हैं ।।

लव-बोले "लक्ष्मण सकुशल तो,
मिल लिये, कर लिया आलिंगन ।
राजा की कुशल-क्षेम सुनकर,
हो गया मुदित लघु-नप का मन ।।"

मारुति बोले "अब बहुत हुआ,
प्रिय ! चलो अयोध्या हय लेकर।"
"हय बँधा हुआ हैं आश्रम में,
ले जाओ शिर-पाटी देकर ।।"

"वनदेवी-मुनि भी साथ चलें,
अब कुश ! मत करो अधिक बचपन ।"
"जो पुर गुरुवर ने लखा नहीं,
उस पुर में देवी करें गमन ।।

जिसके पग छूते ही धरती,
रूई सी फैल सिमट जाती ।
वह मंगल-मूर्ति अवध जाये,
क्यों कहते लाज नहीं आती ।।

जो अपनी रानी रख न सकी,
वनदेवी को आदर देगी ।
हनुमान ! मार्ग अपना देखो,
वह ज्वाला अवध लील लेगी ।।

अब पछताते हैं, मौन हुए—
क्यों मख-मंडप से उठ आये ।
तज वीण, न कोई धनुष उठा,
हम लंका-कांड न कर पाये ।

वह सीता का वंदीगृह था,
जिसको धूं-धूं फूंका तुमने ।
वह सिय-प्रतिमा का वंदीगृह,
जो छोड़ दिया, इस बचपन ने ।।

जब पाप किया तो प्रायश्चित,
हम ही को करना कीशेश्वर ।
तब तक, लक्ष्मण के आस-पास,
आ गिरे न एक-एक रघु-नर ।।

जब तक न जगावें को उनके,
राजा आये, गिर जाने को ।
हम मुनि-तनयों के बाणों से,
निज पापों का फल पाने को ।।"

मारुति बोले "कुश ! शांत रहो,
मत रघुपति का अपमान करो ।
मत मादक बचपन से घातक—
संघातकता-आह्वान करो ।।"

"कपि! यदि रघुपति इतने प्यारे,
क्यों अप्रिय-कर्म दिया करने ।
अब भी न तुम्हारी आँख खुलीं,
यों तुमको भेज दिया मरने ।।

यदि शूरवीर थे तो आते"
मारुति बोले" मैं समझ गया ।
युद्धोन्माद दे गई तुम्हें,
असमय अनन्त की अमित दया ।।

बंधन - विमुक्त कर पावक को,
रच हवन, हाथ निज जला लिये ।
कह-कह तुमको ऋषि-कुँवर, कुंवर,
यों व्यर्थ भाल पर चढ़ा लिये ।।"

"तुम कहो, तुम्हें जो कहना है",
"हाँ, कहता हूँ बालकों! सुन ले ।
वनदेवी-तुम्हें-ऋषीश्वर को,
ले जाऊँगा मन में गुन ले ।।

प्रण करता हूँ, यदि सच न हुआ,
हनुमान न होगा धरती पर" ।
'जय सियाराम-जय सियाराम',
कहकर हुंकार उठे कपिवर ।।

कुश पर मारुति लव पर अंगद,
पौधों पर खगपति से टूटे ।
लव-कुश के धनुषों से पल में,
अगणित नाराच प्रखर छूटे ।।

कपि वार बचा कर बार-बार,
रण प्रलयंकर यद्यपि करते ।
फिर भी लोहू-लुहान होकर,
गत-चेतन हो गिरते उठते ।।

कर पुनः सुमूर्च्छा का अभिनय,
गिर गये धरा पर शूर युगल ।
भव-बंधन-हर के प्रिय-अनुचर,
कर वंदि ले चले कुँवर उछल ।।

खोले दुकूल कपि-कटियों से,
आश्रम में तरु से बांध दिये ।
बँध गये युगल वर-वीर मौन,
शिर लटका आंखें बंद किये ।।

चल दिये सिया-सुत गुरु-समीप,
कपियों ने कुछ खोले लोचन ।
देखा निकुंज अति सघन एक,
यज्ञाश्व कर रहा झनन-झनन ।।

स्वमेव सिया गुनगुना रहीं,
अधरों में मधुर रागिनी सी ।
प्रभु का प्रशस्ति-पट दमकातीं,
आंचल से दिव्य दामिनी सी ।।

ऋषि-पावनियों की सी भूषा,
मृग-छाल सजी, स्वर्णिम तन पर ।
लहराती केशराशि कटि पर,
सिंदूर मांग विंदिया सुन्दर ।

हिरणी सी कजरारी आंखें,
आशा की उजियाली गहरी ।
मानों प्रभात के आंगन में,
रसभरी नवल बदरी उतरी ।।

यज्ञाश्व सुमन-मालाओं से,
नर्तन सा करतीं, सजा रहीं ।
म्हेंदी के थापे मंद न हों,
थापों पर थापे लगा रहीं ।।

कपियों ने नतशिर नमन किया,
सोचा दर्शन का समय यही ।
लव-कुश यदि आये, क्या जाने—
कुछ बात बनेगी या कि नहीं ।।

यह निश्चय कर, कपिवीरों ने,
तन हिला, डाल कुछ झटका दीं ।
फल एक साथ बहु भूमि गिरा
ध्वनि लख, ग्रीवायें लटका दीं ।।

ध्वनि सुन सीता की दृष्टि फिरी,
देखा कपिवीर बँधे तरु से ।
ज्यों स्नेहाभाव पुनीतानल,
बुझ रहा पुनीतस्थल चरु से ।।

कहती "हा-प्रियो" पवन-गति से,
तजकर निकुंज सीता धाईं ।
प्रत्यंग-अंग में पटी धँसीं,
लखकर सिय-आंखें भर आईं ।।

कुछ काटे, कुछ खोले, सयत्न,
कपिरत्न विमुक्त किये पल में ।
"मां ! क्षमा करो कहते-कहते"
कपि गिरे, सीय पद-पंकज में ।।

बोली वैदेही "उठो-उठो,
निर्दोषो ! दोष तुम्हारा क्या ।
जो किया, भोगना है अवश्य,
इन कर्मों से छुटकारा क्या ।।

सीता की पुतली के तारे,
प्रियतम के सर्वोत्तम प्रिय-गण ।
कैसे रंग डाले अज्ञों ने,
मारुति-अंगद रण-आभूषण ।।

अपने अनुजों को क्षमा करो,
मैं क्षमा-प्रार्थिनी पापिन हूँ।
डस गई द्विजिह्वी रघुकुल को,
कैसी दुर्भागिन साँपिन हूँ॥"

"मां! करो न यों लज्जित कहकर,
त्रिभुवन तव अपराधी सारा।
अनजाने - भाव अपावन कह,
दी पतित-पावनी को कारा॥

हो अपमानित जिनकी जननी,
वे मौन रहें तो शव-सम हैं।
वे जीवन भी लें तो कम है,
हम जीवन भी दें तो कम है॥

हम जीवित हैं, धिक्कार हमें,
मारा न, जान कर मरे तजे।
तव गर्भार्भक प्रभु के सुअंश,
रघुकुल-मर्यादा रहे सजे॥"

फिर पूंछा "कौन-कौन आये,
हैं कहां-कहां कैसे-कैसे।
मैंने चाहा रण में जाना,
दी शपथ, हठीले हैं ऐसे॥"

"घायल सौमित्रि शिविर में हैं,
चतुरंगिणियों से समर पटा।
अपना सेनापति चंद्रकेतु,
धरती पर लोटा शीश कटा॥"

"हा! दुर्भागो! क्या कर डाला",
सीता होकर व्याकुल रोई।
"उस धरती पर ले चलो मुझे,
प्रिय की प्रिय-सैन्य जहां सोई।"

ऋषि सहित तभी लवकुश आये,
रह गये चकित यह दृश्य निरख ।
कपियों ने ऋषि को नमन किया,
निमिराज-नंदिनी उठी बिलख ।।

"कर दिया कलंकित दूध हाय,
क्या, हाय ! हठीलों कर डाला ।
कर दिये लखन देवर घायल,
निज शोणित से रण रँग डाला ।।

उच्चाटन-सम्मोहन करते,
मारण प्रयोग ही कर डाला ।
देवी कह, दी दानवी बना,
ऋषिवर ! दी पिन्हा मुंड-माला ।।

जिस अबला से न कलंक धुला,
वह कैसे, शोणित धोयेगी ।
जो अब तक अश्रु रही पीती,
वन-वन डकरा कर रोयेगी ।।

ले लो वन-देवी की संज्ञा,
मुझको सीता बन जाने दो ।
ऋषिराज ! याचना करती हूँ,
अब मत रोको, रण जाने दो ।।

तव अनुष्ठान सम्पूर्ण हुआ,
बलिदान हुआ, रघुकुल का यश ।
कर दो स्वतंत्र पितुदेव ! सुता,
अब रही सिया ही यह न स्ववश ।।"

"ली किसने किसकी बलि, सीते,"
ऋषि बोले "तनिक विचारो तो ।
यज्ञाश्व बँधा किनके आंगन,
रघुनाथ-सुपुत्र निहारो तो ।।

श्री रामचंद्र के विमल अंश,
लवकुश ही, हय निज गृह लाये।
प्रभु - यश अखंड, खंडित कैसे,
परकीय कौन जन छू पाये॥

रवि का परिचय दीपक लेकर—
देती फिरती अँधियारे में।
ये रघुपति रवि के प्रभा-पुंज,
आ गये स्वयं उजियारे में॥

मध्याह्न-गगन उठने वाले,
रवि पहले अरुण हुआ करते।
क्या किया इन्होंने, रविकुल की—
मर्यादा सादर शिर धरते॥"

अधरों को दाबे, नभ लखते,
लवकुश रह गये खड़े विस्मित।
ऋषि बोले "चलो शिविर पुत्रो!
पितृव्य तुम्हारे हैं मूर्च्छित॥"

लवकुश बोले "वनदेवी माँ!
तुम वैदेही - मैथिली-सिया।
यज्ञाश्व राम पितुवर का यह,
क्या डिम-प्रहसन-व्यायोग किया॥

तुम कितनी निष्ठुर मां निकलीं,
संतानों से परिहास किया।
निश्छले! छलीं बहुबार गई,
उसके बदले, छल हमें लिया॥"

सिय ऋषिवर को लख मौन रही,
ऋषि बोले "लखन समीप चलें।"
"खोलो हय कपि" सुन सीय वचन—
कपि कह न सके कुछ भरे गले॥

"यों करो न अंब ! हमें लज्जित,
यज्ञाश्व खोल लें हम, अनुचित ।
यह अपराजित का अपराजित,
अपराजित ही खोलें, समुचित ।।"

मारुति की वाणी सुन, सिय के—
आनंद अलौकिक हिय छाया ।
ऋषि मौन, बंधु - संकेत देख,
यज्ञाश्व खोल कर लव लाया ।।

चल पड़े शिविर की ओर सभी,
सिय समर-भूमि लख अकुलाई ।
भू-लुंठित सूर्यपताका लख,
दृग-सरिता बांध तोड़ धाई ।।

ली उठा, लगाई माथे से,
शशिकेतु पड़ा सम्मुख देखा ।
ज्यों रघुकुल की दो पीढ़ी का,
स्वर्णिम साकार लिखा लेखा ।।

ध्वज उढ़ा, झुकाकर शीश चलीं,
लख, गूंज उठे शिविरों में स्वर ।
"आ रहीं राजरानी सीता,
मख का तुरंग सकुशल लेकर" ।।

"सिय आतीं "सुन लक्ष्मण निकले,
देखा, हय के पीछे-पीछे ।
मानों सुकीर्ति ही रघुकुल की,
आती, नय के पीछे-पीछे ।।

कुंदन सी राम-राज्य-लक्ष्मी,
पंचानल में तपकर आती ।
या पतित-पावनी गंगा फिर,
रवि-कुल के हेतु उतर आती ।।

लक्ष्मण ने बढ़कर नमन किया,
आशिष देते दो बूंद झरी ।
मूर्धाभिषेक के हित सेनप के,
ज्यों रानी की छलकी गगरी ।।

रह गये देखते दोनों ही,
दो पल न बोल कुछ भी पाये ।
सिय ही बोली "आती तो थी,
तुम व्यर्थ कष्ट कर उठ आये ।।"

उस तपोमूर्ति वैदेही के,
चरणों में दृष्टि गड़ाये ही ।
रह गये मौन के मौन खड़े,
सौमित्रि न कुछ कह पाये ही ।।

ऋषि बढ़े, चरण छूते-छूते,
भर लिया बांह में लक्ष्मण को ।
बोले "प्रिय ! अंगद-मारुति ने,
वरदान बना डाला रण को ।।

कुछ ग्लानि, अतीव सुमोद भरे,
सहमे-सहसे से सकुचाये ।
पा सीय-समर्थन, वंदन - हित,
लवकुश ज्यों कुछ आगे आये ।।

बढ़कर लक्ष्मण ने छाती से—
प्रिय लगा लिये, भर बांहों में ।
सुधि-बुधि भूले त्यों रहे, रत्न—
ज्यों मिले विजनवन-राहों में ।।

लख लवकुश-लखन मिलन जन-जन,
जय-जयकारे कर उठा मुदित ।
यों लगा प्रेम सर, स्नेह कमल,
ममता-मय रवि करता विकसित ।।

मुनिवर - मिथिलेशनंदिनी को—
आगे कर, लवकुश को लेकर ।
आ गये शिविर में रामानुज,
बैठे नत - मस्तक आसन पर ।

लक्ष्मण बोले "किस मुख से मैं,
'मां क्षमा करो' कह सकूं कहां ।
इस पामर के कारण तुमने,
दुख ही दुख पाया जहां-तहां ।।

जिस दिन से तुमने अवध तजा,
हो गई अवध की कुशल विदा ।
प्रभु का सुहास बन गया स्वप्न,
कांटो से जन-मन-मोद छिदा ।।

हे सूर्य-वंश की प्राण-शक्ति!
मृत-मूढ़ों को संजीवन दो ।
कंचन - प्रतिमा के पूजन की,
साकार - सिद्धि सी दर्शन दो ।।

जो किया पाप उसका प्रतिफल,
हमने पग-पग प्रतिपल पाया ।
अब चलो अयोध्या, कृपा करो—
जो छोड़ गया, लेने आया ।।"

सीता फीकी सी हँसी हँसीं,
बोलीं "तुम भी छलने आये ।
बोलो क्या वन से लाने की—
वन देने वाले कह पाये ।।"

रह गये झुकाये शीश लखन,
बोले "युवराज ! अवध जाओ ।
सब समाचार प्रभु से कहकर,
संदेश तुरत लेकर आओ ।।"

अंगद वंदन कर अवध चले,
मुनिवर सबको आश्रम लाये ।
मणि-मंत्र-महौषधि-शल्य क्रिया,
सुख - पूर्वं अपूर्व-स्वास्थ्य पाये ॥

अंगद-यज्ञागमन

दोहा

अंगद आये अवध पुर, शंका हृदय अपार ।
राम करेंगे या नहीं, मां - सिय को स्वीकार ॥
देव-देव का कर स्मरण, नवा-नवा कर माथ ।
गये सभा, पूंछा तुरत, "कुशल लखन", रघुनाथ ॥

सोरठा

"लक्ष्मण सकल प्रकार, कुशल" कहा कर नमन कपि ।
"रघुपति परमोदार ! समाचार अत्यन्त शुभ ॥

सुखमालिनी

मैं करूँ निवेदन सुने सभा,
यदि अनुशासन दें रघुनंदन ।"
पा प्रभु-संकेत कीश बोले,
"कर गये सभा में जो गायन ॥

वे मुनि-वेषी वनदेवी - सुत,
सुन्दर श्यामल - सुगौर मनहर ।
यज्ञाश्व उन्हीं के आश्रम में,
विश्राम लखन करते थककर ॥

राजाधिराज के यमज-पुत्र,
वनदेवी ही सीता रानी ।
ऋषिवर.वाल्मीकि - सुवाणी की,
वे ही सुसिद्धिदा कल्याणी ।।

मुनि-मां में ही था यह रहस्य,
बालक भी परिचय-पा न सके ।
रण हुआ अपरिचय-गह्वर में,
लक्ष्मण प्रभु से जय पा न सके ।।

सेना-पति चंद्रकेतु, अगणित—
रघुवीर-भालु- निशिचर-वानर ।
यों लिटा दिये, ज्यों उठे न थे,
उनके अमोघ, प्रभु के से शर ।।

जो रथ राजा दशरथ अक्षत,
शंबर-रण से लौटा लाये ।
जिसमें सजकर लवणासुर-वध,
रिपुदमन सहज ही कर आये ।।

सुर-बालाओं ने बंधु मान,
जिनके बांधे रक्षाबंधन ।
वे तुरग यान-सारथी सहित,
बन गये समर-रज के लघु-कण ।।

जिन रघुवीरों की शंखध्वनि,
पर्याय देवदल-धड़कन की ।
घृत बनी प्राण - सरिता उनकी,
शोणित - सागर-बड़वानल की ।।

जिनके कर छूकर सागर पर,
तरिका सी तैरीं गिरि-माला ।
ऋतुपति के हरित महीरुह सा,
लंका का दुर्ग हिला डाला ।।

वे वानर वीर नील-नल से,
शठ-निशठ मयंद केशरी से ।
जाते देखे न, पड़े रण में,
धरती की धूल धूसरी से ।।

'जिन निशिचर - शूरों के सायक,
ले आये देवयान भू पर ।
सुरलोक गये तजकर शरीर,
वे भूप विभीषण के अनुचर ।।

उनके बल का क्या परिचय दूं,
है कौन अपरिचित मारुति से ।
जिनके सम्मुख न असंभव कुछ,
शस्त्रों-शस्त्रों की सम्मति से ।।

'जिनके शर-जाल फँसे वे भी,
निज पद न विमुक्त करा पाये ।
मुझ से पद-दंभी उठ न सके,
वे पशु सम हमें बांध लाये ।।

कर कृपा मैथिली देवी नें,
बंधन खोले - हम मुक्त हुए ।
उस तपोमयी के सम्मुख हम—
रह गये खड़े अभियुक्त हुए ।।

'शिर उठ न सके, दृग मिल न सके,
यों लगा कि धरती फट जाये ।
हम जाँए समा, तन भार लगा,
फिर भी पूंछो तो क्यों आये ।।

हे रघुपति-पुर के प्रजाजनो!
तुम जन्म-जन्म के पुण्यवान ।
सुरपुर - गोलोकधाम - वासी—
जीवन-मुक्तों से तुम महान ।।

गाते हैं तव सौभाग्य - कथा,
निशिदिन त्रिभुवन के नर नारी।
जो मुक्ति-मुक्ति के शीशफूल,
तत्वाधिराज के अधिकारी॥

हो गई सुपावन सरयू-सरि,
जिनकी धोकर कंचनकाया।
जिसकी रचना-विधि के यश से—
बूढ़ा ब्रह्मा विधि - पद पाया॥

आता प्रयाग होने पवित्र,
काशी जिसका करती अर्चन।
पुष्कर जिसका कीर्तन करता,
वैकुंठ-धाम करता वंदन॥

उस दिव्य अयोध्या के वासी,
तुम वंदनीय निर्जर - गण के।
उतरे प्रभु राम, जानकी मां,
जिन के राजा-रानी बन के॥

वरदान ज्ञान के गुरु वसिष्ठ,
मां अरुन्धती निर्गुण-ममता।
केकई - सुमित्रा-कौशल्या,
साकारा क्षमा-कृपा-समता॥

अनुराग-विरागादर्श भरत,
वरशौर्य-सुधैर्य-क्षितिज लक्ष्मण।
कर्तव्य - सलिल अधिकारानल—
पूरित - रत्नाकर रिपुसूदन॥

जो एक-एक भी जग-दुर्लभ,
वे सब के सब तव आंगन में।
तुम वसुधा के वे शिव शंकर,
होती गंगा पावन जिन में॥

पर सोचो तो, तव सम्मुख ही,
तव कारण सिय-वनवास हुआ ।।
यह नंदनवन में नागफनी,
माली का विफल प्रयास हुआ ।।

ज़िन रामचंद्र की कीर्ति चांद्रि,
त्रिभुवन तन की हर रही तपन ।
परकीय - राहू जो निगल गई,
ढक गई स्वयम् वह निज घन-कण ।।

देखो ! इस मुख की श्री विलुप्त,
किस गगन उड़ी, किस अतल धँसी ।
जो हँसी देख, हँसने के गुर,
सीखीं हँसियां, वह कहां हँसी ।।

चांद्रायण घोर पराक-कृच्छ,
कौन से कहां व्रत शेष बचे ।
जो प्रायश्चित - ज्वाला-विदग्ध,
प्रभु ने न निरन्तर मौन रचे ।।

प्रभु की स्थिति तुम सबके सम्मुख,
हमने देखी मां सिय वन में ।
कर रहीं तपस्या वह जैसी,
कल्पना न मुनिजन के मन में ।।

स्वामिनी-स्वामि दिशि-दिशि दोनों,
कर रहे साधना वह अश्रुत ।
लगता प्रतियोगी पाल रहे,
हो पृथक-पृथक पीड़ा-संयुत ।।

पूरक बन एक दूसरे के,
जो चले सदा लौकिक-पथ पर ।
वे आज पारलौकिक -पथ पर—
आरूढ़, अलौकिक-व्रत लेकर ।।

सिय-राम उभय संज्ञा-शरीर,
यद्यपि लौकिक-परिभाषा-वश ।
पर एक प्राण-मन से जिस विधि—
चल रहे मौन देते ढाढस ।।

जिसमें न शाप, लघु उपालंभ,
मध्यस्थ न कोई, मध्य न कुछ ।।
प्रत्यक्ष मिलन न, परोक्ष विरह—
उपमा न कहीं, उपमान न कुछ ।।

सिय और राम संकट सह-सह,
सियराम एक होते जाते ।
पर जगत-जीव यह भाव अलख,
लख - लख आंखें खोते जाते ।।

उसका ही फल नृप जन-जन भी,
ढो रहा दुधारी पर जीवन ।
यह छत्र वज्र, चामर हिम-लू,
यह मुकुट भार, शिल सिंहासन ।।

ये जग - सुखदाता दुख-हर्ता,
दुख से सुख का अभिनय करते ।
तुम क्रौंच-मिथुन को घायल कर,
वधिकों-सम तड़पन लख हँसते ।।

बोलो क्या दोष मैथिली का,
वैदेही का पातक बोलो ।
क्या कल्मष जनक-नंदिनी का,
अघ मां सीता का, मुख खोलो ।।

यह पंक जान्हवी में डाली,
यह धूलि उछाली वृष-रवि पर ।
यह तुलसी में मट्ठा डाला,
यह पालो शुनी यज्ञ-हवि पर ।।

साकेत-वासियो ! निज कृति से,
यह कुंभीपाक कँपा डाला ।
यह सीय-कलंक सुमेरु डाल,
की नष्ट स्वचिंतामणि माला ।।

जिनके कोपानल से धूँ-धूँ,
धधका होली सा लंक-कोट ।
दशकंध- कबंध - विराध - बालि,
सह सके न जिन की बाण चोट ।।

तुम पर न उन्होंने क्रोध किया,
तुमने फल दिया दया का यह ।
पर वहां दिखाओगे मुख क्या,
सर्वव्यापी - ईश्वर है वह ।।

यदि मां - प्रभु करते तप इतना,
तो हिलते देवों के आसन ।
उनसे भी कठिन तवाराधन,
बैठे गिरि से, ले शिल सा मन ।।

तव काले - अंतर की काली,
बोलो ! बलि मांग रही किसकी ।
समुपस्थित हैं सब तव सम्मुख,
आवश्यकता है किस शिर की ।।

बोलो ! बोलो ! संकोच त्याग,
साकेत - धाम के प्रजा-निकर ।
यदि हुई तुम्हारी लुप्त गिरा—
तो सुनो, बोलता क्या अनुचर ।।

बोलो ! अब भी क्या कहना है,
कहने दो जो कहता अंतर ।
यह विनय, चुनौती या शिशुहठ,
समझे कोई कुछ नारी-नर ।।

अब अगली आहुति मां देंगी,
या आहुति होगा यह वानर ।
होगा मखपूर्ण राम-सिय से,
हो चुका अन्यथा यह अध्वर ।।"

कोलाहल से कांपा मंडप,
"युवराज वीर अंगद की जय ।
जय सती-शिरोमणि सीता की,
जय राजा राम सुयश-अक्षय ।।

"अगली आहुति सीता देंगीं,
देंगी-देंगी-देंगी रानी ।
लाये पुष्पक वन से रानी,"
गूंजी दशदिशा एक वाणी ।।

प्रभु ने देखा केवट-किरात—
ऋषि-मुनि-ब्राह्मण-कपि-रजनीचर ।
अभ्यागत ग्राम-नगर वासी—
नर-नारी, एक सभी का स्वर ।।

कुछ हाथ जोड़ उच्चस्वर से,
कुछ लोट-लोट कुछ उठ-उठकर ।
कुछ रो-रो कर पछतावे कर,
कुछ विस्फारित-आंखें भर-भर ।।

कर रहे भाव अभिव्यक्त एक,
लाओ "राजन् ! बिछुड़ी रानी ।"
बोले वसिष्ठ "कल्याण यही,
साकेत पधारें कल्याणी ।।"

सुनते ही गुरु की वर वाणी,
मख-मंडप बना रंगशाला ।
नट् से मुनि-योद्धा थिरक उठे,
वृद्धा चिहुंकीं ज्यों नव-बाला ।।

फिर गुरु बोले उठ आसन से,
"युवराज भरत लेने जायें।
साम्राज्ञी को सम्मान सहित,
ऋषि, पुत्रों सहित तुरत लायें॥"

दोहा

सकल सभा को शिर झुका, बैठे भरत विमान।
ज्यों प्रवेश करने चला, समाधिस्थ में प्राण॥

भरत वाल्मीकि आश्रम में

सोरठा

बीती घड़ी न, यान—उतर गया गंगा-निकट।
उछल चले हनुमान, कहते "आये श्री भरत॥"

दोहा

की लक्ष्मण ने वंदना, दी ऋषि ने आशीष।
लगा लिये लव-कुश हृदय, कह "जय वैदेहीश॥"

मालिनी

आश्रम-तापसियां अतिशय उत्सुक होकर।
देखने भरत की लगीं नम्र छवि सुन्दर॥
पर परम-धीर गंभीर भरत के लोचन।
हो चंचल, चीर दृगंचल आश्रम कण-कण॥
पल-पल नत-उन्नत होकर, बनकर निर्झर।
खोजने सीय को लगे, खोजते निज-स्वर॥
विह्वलता लखकर, विह्वल हुए कवीश्वर।
"प्रिय भरत! चलो" बोले कर में कर लेकर॥

मुनि-भरत संग कपि-लखन तपस्वी-परिकर ।
चल पड़ा सिया-दिशि अद्भुत भावों में भर ।।
लघु-कुटिया में तन, मन की नगरी पैठीं ।
दे पीठ द्वार-दिशि, देखीं सीता बैठीं ।।
सम्मुख वेदी पर स्वरचित-स्वामि सुहावन ।
मन सुमन चढ़ाकर, क्षण-क्षण लोचन कण-कण ।।
भावना - षोड़शी करती षोडश-पूजन ।
ज्यों कनक-भवन हो रहा प्रथम-प्रियदर्शन ।।
रह गये खड़े के खड़े केकयीनंदन ।
गूँजा क्रंदन में "शुभे ! अंबिके ! वंदन ।।"
स्वर जान भरत का उठीं, न पर उठ पाईं ।
गिर गईं छिन्न-वल्ली सी पाला खाईं ।।
पा लव-कुश का आधार उठीं ज्यों रानी ।
सिय-भरत भरत-सिय देख छिपी उर वाणी ।।
पद गिरते हुए भरत को थामा कर-तल ।
बोलीं "प्रियतम के मख में प्रिय ! सब मंगल ।।"
"हां मां ! फल-फूल विहीन वसंत पधारा ।
श्रुति-कोकिल ने कुंचित - करील गुंजारा ।।
अघ राहु-ग्रसित शुभ धर्म - शरद् राकेश्वर ।
हर रहा हमारी तपन, विहँस कर हम पर ।।
खिल रहे कमल मन - सावन नयन-सरोवर ।
जग विघ्न - रहित कर रहे यज्ञ राजेश्वर ।।"
सुन गिरा भरत की भावों भरी सरल सी ।
हो गईं विलोचन - माला सकल तरल सी ।।
फिर टिका भूमि पर जानु, बांध दोनों कर ।
बोले दुकूल का कूल पसार मही पर ।।
"यद्यपि हम तव अपराधी, पापी जननी ।
इस योग्य नहीं, कह सकें बात कुछ अपनी ।।

पर पतित - पावनी ममतामयी ! कृपा कर ।
निज-दिशि निहार, होकर प्रसन्न दीनों पर ।।
हे विश्व-सुविजयिनि ! स्वाश्वमेघ-हय लेकर ।
अब चलो अवध, मख पूर्ण करो श्री-पद-वर ।।
कविवर ! कृपालु होकर ले युगल दुलारे ।।
रघुवंश-वृद्धि - हित सेवक संग पधारें ।।"
मुनि ने देखा सिय-दिशि, सिय शीश हुआ नत ।
सिय ने देखा मुनि-दिशि, मुनि हुए समुन्नत ।।

वनदेवी की विदाई

राजीवमाला

सीता सुपुत्री रघुराज-रानी,
दिव्यातिदिव्या देवी दया की ।
राजाधिराजा - मिथिलेश -कन्या,
रानी सुनयना-नयनाभिरामा ।।
शतकंध-काली दशशिर-कराली,
श्री-दीपमाला-भासा निशाली ।
धर्मायनाभा श्रुति-शास्त्र - शोभा,
वैराग्य-रागोदधि की परिधि सी ।।
पावित्र्य-कारुण्य-सुसत्त्व रसकी,
जंगम-त्रिवेणी प्रतियत्न-वेणी ।
श्रीरामचंद्रीय - सुपर्वचांद्री,
चंद्राननी नीरजनाभि - नेत्री ।।
पूरी तपस्या पुण्ये ! तुम्हारी,
नैराष्य-निशि सा वनवास्य बीता ।
प्राणप्रतिष्ठायैः सुप्रकाशे,
अब देवि! अपने अवध में पधारें ।।

मालिनी

मुनि वचन श्रवण कर हर्ष-विषाद-विगत मन ।
सिय गईं कुटी में फिर तज आश्रम-आंगन ।।
वेदीय-सुमन-छवि सफल यज्ञ-सज्जा सम ।
बांधी बटोर वल्कल में सकल ससंयम ।।
कर परिक्रमा-त्रय धीरे-धीरे निकलीं ।
दो चढ़ा मौन, गंगा की धारा उजलीं ।।
कर पंचस्नान, आचमन ले वंदन कर ।
फिर फिरीं मंत्र-अवरोहण स्वर सी मंथर ।।
आकर आश्रम-प्रांगण में बोलीं "लक्ष्मण ।
लाओ विमुक्त कर प्रिय ! यज्ञाश्व सुलक्षण ।।"
सिय भाव-स्वभाव समझ लक्ष्मण-मन डोला ।
ले बरबस लव-कुश संग, यज्ञ-हय खोला ।।
लव-कुश ने हय यों सुमन-सुसाज सजाया ।
ज्यों कुसुमाकर-गृह शशि पहुनाई पाया ।।
यानाग्र-भाग में प्रथम तुरंग सजा ज्यों ।
सिय को निहार, आश्रम ने धैर्य तजा त्यों ।।
तापसी बिलखने लगीं, तपस्वी डोले ।
तरु-तरु खग 'वनदेवी-वनदेवी' बोले ।।
"किस दिशि लव-कुश ! जा रहे हमारे भैया ।
ये चले छीन कर कौन हमारी मैया ।।
युग की वनदेवी बनी अचानक सीता ।
लख सकी राजधानी न, दीन वन जीता ।।
ले चलो हमें भी साथ, चलेंगे उड़ते ।
जी लेंगे जीवन नृप-गृह जूंठन चुगते ।।
बोलो फिर आओगे किस दिन निज वन में ।
तुम चले कठिन क्या धार, निठुर बन मन में ।।

तुम चले छीन कर मोह हमारा तन से ।
जीते जी बिछुड़े प्राण हाय ! जीवन से ।।"
हो विकल रँभाने लगीं धेनु आश्रम कीं ।
मृग लगे धूलि धुनने शिर, मृगियां बिदकीं ।।
निस्तेज हुईं यज्ञाग्नि बना वन वन सा ।
बिन पवन सुमन-निर्झर तरु-तरु से बरसा ।।
बोलीं तपस्विनी "कैसा स्वप्न अनोखा ।
दुर्दैव-विवश देवी वनदेवी, धोखा ।।
पी लिया नाभि का सुधा-सरोवर शर से ।
ले लिया बालि का बल निर्जर-पंजर से ।।
जिस निर्मोही ने तजे सकल सुख पल में ।
हम छली जा रहीं, आज उसी के छल में ।।"
तापस बोले "हम कहें किसे क्या कैसे ।
इस वेष, विषय यह सम्मुख युग-ध्रुव जैसे ।।
देखी दिशि-विदिशा देता यही दिखाई ।
कण्वाश्रम से फिर चली मेनका-जाई ।।
जाओ सिय रानी ! मुदित करो जग, प्रमुदित ।
सौपेंगे निर्जन - मुनि फिर निर्गुण को चित ।।

दोहा

हों दशदिशि मंगलमयीं, जय-जय चारों ओर ।
रामचंद्र - चांद्री रमे, सुयश - चकोर - किशोर ।।"

मालिनी

मुनि-आज्ञा पा, कण-कण में दृग-जल भरतीं ।
पुष्पक - विमान में चढ़ीं, नमन सिय करतीं ।।
मुनिराज विराजे, देख भरत-आवेदन ।
फिर चले अंक में भर लव-कुश को लक्ष्मण ।।

रण-शेष सुभट-गण पुनः बिठाये कपि ने ।
लख भाव, लिये कुछ तपी-तपसिनी कवि ने ।।
आश्रम को कर साष्टांग-प्रणाम धरा पर ।
ले मारुति - अंगद चढ़े भरत वंदन कर ।।
सिय-रघुपति जय - घोषों से धरा गुँजाता ।
नभ उठा यान, संगीत-सुधा सरसाता ।।
सुर लगे सुमन बरसाने हर्षित होकर ।
अप्सरा नाचने लगीं, गा उठे किन्नर ।।
ज्यों रवि द्वितीय सा अद्वितीय आभामय ।
चढ़, चला यान नभ में करता अंतर क्षय ।।
त्यों ललित लालसा प्रत्यंतर में ललकी ।
अब कैसी होगी भेंट सीय-रघुवर की ।।
देखें, देखेंगे किस प्रकार से दोनों ।
पहले बोलेंगे किस प्रकार से दोनों ।।
दृग मिला राम - नृप कैसे देंगे आसन ।
किस भांति करेगी अवध प्रजा-अभिनंदन ।।
हिय रहे तानते मन का ताना-बाना ।
इतने में उभरा सम्मुख दृश्य सुहाना ।।

जानकी-यज्ञप्रवेश

सोरठा

पुण्य नैमिषारण्य, धेनुमती के तीर पर ।
करतीं नृत्य सुरम्य, गगन मंत्र-माला नटीं ।।
विश्व - शांति-संदेश, दिग्पालों को दे रहा ।
धर्म-धूम्र वर-वेष, धावन बन नृप राम का ।।

मालिनी

ध्वज, बहु-रंगी ध्वज-माल घिरा रवि-चिन्हित ।
बहु कला-कलित कल-रवि सा गगन सुशोभित ।।
लघु - शिखर - युक्त मणि-कंचन दंड चँदोवे ।
नभ-नीड़-द्वार ज्यों, चंचु उठाये पोवे ।।
स्वर्णिम - काशेयी झालर झिलमिल करतीं ।
ज्यों खंजन-हंस-बलाका शाखा उड़तीं ।।
ज्यों-ज्यों विमान मख-अंतिक आता जाता ।
त्यों-त्यों जन-जन उठता, मख से लहराता ।।
घिर गई व्यवस्था व्यवस्थापकों से ही ।
सब भूले तन-मन, लखने को वैदेही ।।
ऋषि ने मख - मंडप - तट सन्निकट निहारा ।
संकेत भरत को देकर यान उतारा ।।
"जय जगजननी जानकी," कीश उच्चारा ।
"आईं-आईं रानी" गूँजा मख सारा ।।
चल पड़ीं भीड़ की भीड़ मारती ठाँठें ।
खुल गईं बिना श्रम मन-विभ्रम की गाँठें ।।
रख भेद-भाव बिन एक एक पर निज कर ।
उतरे लव-कुश-तापस ले प्रथम ऋषीश्वर ।।
उचका पदाग्र-शिर सकल देखते अम्बर ।
फिर एक-एक कर घायल - योद्धा - परिकर ।।
कर रत्न - वल्गु ले अश्वमेध के हय की ।
प्रगटी सुन्दर छवि गौर सुमित्रासुत की ।।
फिर ले दुकूल, द्वितिया की चंद्रकला सी ।
सिय उठीं वेदिका से मिहिका-धवला सी ।।
सिंदूर मांग में, लगी भाल पर रोली ।
कांच की कँगनिका चढ़ी कूर्परी-गोली ।।

कुंतल अलकावलि ललित जटायें बनकर ।
कुछ झांक रहीं शीर्षांचल से आंचल पर ।।
काषाय-शाटिका, कसी कृष्ण - मृगछाला ।
उर झूल रही नाभिस्पर्शी श्रीमाला ।।
तापसियों ने जो आश्रम सुमन सजाये ।
कुछ अधिक खिले, कुछ कुछ खिलने को आये ।।
नत - शीश देखते भूतल सरल-विलोचन ।
अधखुले-अधर ज्यों जपते 'प्रिय' मन ही मन ।।
केकयी-पुत्र ले छत्र चले कुछ पीछे ।
उतरे, करते पथ सुगम, प्रथम कपि नीचे ।।
फिर तापसियों से घिरीं, मैथिली उतरीं ।
ज्यों सघन साधना-मध्य सिद्धि शुभ निखरीं ।।
यों प्रियतम-ढिग बढ़ चलीं सुमन-वर्षण में ।
ज्यों जाती शिखिनी शिखि-समीप श्रावण में ।।
देखा वसिष्ठ-कौशिक ने प्रभु - मुखमंडल ।
अद्भुत भावों से भरा चित्त-गज दलदल ।।

पूर्णाहुति

मालिनी

कुछ अनहोनी से कांप, भांप कर अवसर ।
हो गये खड़े, रख श्रुव पर श्रीफल गुरुवर ।।
बोले "दो पूर्णाहुति, उतरो राजेश्वर ।
है शुभ-मुहूर्त, घातक विलंब अब पलभर ।।"
फिर बोले "भरत, इधर सिय-रानी आयें ।
निज यज्ञ विघ्न-विरहित सम्पन्न करायें ।।"

मिल गये यंत्र-चालित से तुरत परस्पर ।
लेकर कर में कर - श्रुवा जानकी-रघुवर ॥
भर गया गगन सोत्साह मंजु - मंत्रस्वर ।
श्रीफल-शाकल्य-सुमन नर-नारी लेकर ॥
हो गये खड़े, हो प्रमुदित परम हृदय में ।
सिय-रघुवर छवि सम्मिलित देख निज वय में ॥
कवि-कोविद-वैयाकरणि-विज्ञ नैयायिक ।
मीमांसोभय विद्वान, सभय वैज्ञानिक ॥
दर्शनाचार्य-शिक्षा-निरुक्त-धनु पंडित ।
सांख्यिक-चार्वाक-भिषक-दैवज्ञ अपरिमित ॥
नर्तक - गायक - वादक - मागध - वंदीजन ।
निष्णात कला-कौशल आद्विज-सेवकगण ॥
कर राष्ट्रवाद में निज-निज वाद समाहित ।
सब चले तुरत, ले कर आहुति एकत्रित ॥

दोहा

पूर्ण - ब्रह्म का पूर्ण - कण, जगत सर्वथा पूर्ण ।
पूर्णव्यकलित पूर्ण ही, पूर्ण सर्वदापूर्ण ॥

मालिनी

सम्पूर्ण-शक्ति से बोला 'स्वाहा' जन-जन ।
फिर कीं आहुति अग्नि को समर्पित शुचिमन ॥
आधार राम-सिय के श्रीफल का पाकर ।
हवि-जुंगवृन्द गढ़ तुंग बना शिखराकर ॥
प्रज्ज्वलित हुआ प्रत्यंग, लपट लहराईं ।
सरका वितान, ज्यों तीव्र ऊर्ध्वमुख धाईं ॥
यों लगा, मुदित दशदिशि का अघ-तम हरते ।
ऋतु-कुंड प्रकाशित रंगभूमि-सम करते ॥

भगवान जातवेदस ज्यों रास रचाते ।
निज कला-कला पर 'धन्य-धन्य' स्वर पाते ।।
प्रभु रामचन्द्र ने श्रुवा धरा यों धरती ।
ज्यों रखा प्रथम धनु भार-मुक्त कर जगती ।।
पा गुरु-निदेश सब बैठे निज-निज आसन ।
रह गये खड़े मख-ढिग कुछ प्रमुख-प्रमुख जन ।।
सिय फिरीं तनिक, त्यों दिखी स्वकांचन-प्रतिमा ।
स्मिति-रेख खिँची, लख निज से गुरु निज महिमा ।।

श्रीसीता-धरती प्रवेश

मालिनी

स्वामि का देख गंभीर-मौन मुरझाईं ।
लख दृष्टि उठीं सबकी निज दिशि, सकुचाईं ।।
ज्यों बढ़कर करने लगीं स्वामि-पद-वंदन ।
"ठहरो" दो - पद हटकर बोले रघुनंदन ।।
"हे देवि ! तुम्हारा पति, यह नर, वह ईश्वर ।
मानता, नहीं, जानता विमल तव अंतर ।।
पर प्रजा राम-नृप की जो सम्मुख बैठी ।
इसके हिय जो कल काली - छांया पैठी ।।
वह निकली, कितनी निकली, जाने ईश्वर ।
कल किंतु न होगी, होगी सुगम कि दुष्कर ।।
जो छिपी गर्भ भावी के, उसे कहें क्या ।
पर निष्क्रिय दैवाश्रित ही हुए रहें क्या ।।

सोरठा

अंतिम बार प्रमाण, प्रस्तुत करो निजेच्छया ।
प्रामाणिक सप्राण, प्राणप्रिये ! स्वशक्ति का ।।"

उठा सिया का माथ, सुनकर प्रियतम के वचन ।
"समझी दासी नाथ ! दें कृपया निज बल-कृपा ॥"

दोहा

किया दूर ही से नमन, धर धरती पर शीश ।
उठीं स्वयं फिर तुरत ही, कहतीं 'जय जगदीश' ।
की प्रिय-सहित परिक्रमा, यज्ञकुंड की तीन ।
बोलीं चढ़कर मंच पर, शांत - चित्त प्रण-लीन ॥

हरिगीतिका

"भूदेवि ! हे वाराह प्रेयसि ! शेष-शीश निवासिनी ।
सर-सरित्-सागर-शैल-वन-पुर-ग्राम स्वांक सु-धारिणी ॥
यह धूलि-दुहिता मैथिली, तव गर्भ की विकला-कला ।
तेरी शरण में आ गई, अब अंबिके ! गत - संबला ॥
इन आर्यपुत्र कृपालु शौर्यनिधान हरि गुण-धाम के ।
घनश्याम-परम ललाम काम - निकाम प्रभु श्रीराम के ॥
अतिरिक्त, अन्य पुरुष न यदि माना कभी मन-मान दे ।
निज अंक तो निज कन्यका को मां ! अभी सुस्थान दे ॥"
सुनकर पतिव्रत-पथ-सुपथिका सिय-गिरा गरिमामयी ।
ममतामयी धरती स्वयं ही फट गयी महिमामयी ॥
सागर-क्षितिज से अरुण-सम मणि-स्वर्ण सिंहासन ललित ।
सम्मुख तुरत सारी सभा के, हो गया सहसा उदित ॥
अहि अष्टकुल के शीश पर, सादर जिसे धारण किये ।
उद्दीप्त रत्न-प्रदीपिका छवि-चषक दिशि-दिशि - तम पिये ॥
मुदितानना पद्मासना जग - छद्मछल विगतज्वरा ।
सौभाग्य-प्रतिमा सी सजी हरितांबरा कपिशा धरा ॥
करुणा विलोचन-द्वय भरी, मद-मोचिनी सी अहम् की ।
उपमा न जिनके मान की, उपमान ब्रह्म कि स्वयं की ॥

प्रभु को झुकाकर शीश सादर, सीय से बोली "सुते ।
वैदेहि ! आ, भर गोद रीती, शुभ पतिव्रत-संयुते ।।
जगती सम्हालो जगत! निज, ले जा रही हूँ जानकी ।
चंदन वना इंधन दिया, की मूर्ति खंडित प्राण की ।।
धारण न जो भू की गई, वाराह-कच्छप-शेष से ।
सिय ने सहज वह धार ली, तिय के तपोमय-वेष से ।।
शिवचाप की जो शिंजिनी, रघुराज-बाणों की अनी ।
सत्पथ दिया मनुजाद-कुल को, कीश-दल की बल बनी ।।
वलिदान दे निज, विश्व की वलि रोक दी होती हुई ।
दे तव हँसी बिछुड़ी हुई, वह जा रही रोती हुई ।।
सीता न आती नित्य, आई प्रथम-अंतिम वार ही ।
तुमने बनादी जड़, जड़ो ! मणि कांच कहकर डाल दी ।।
क्या शाप दूँ, तुम शाप के ही योग्य हो यद्यपि अरे ।
भगवान तव रक्षा करे, कहते नयन मेरे भरे ।।"

दोहा

बिठा गोद में जानकी, बरसाती दृग दीन ।
ज्यों प्रगटी त्यों ही हुई, धरा धरातल में लीन ।।

मालिका

हो गई स्वप्न सी सिया, विपल में जग की ।
बन गई बुद्धि बलि-पशु तामस-भ्रम-मख की ।।
व्यामोह - अर्चना का प्रतिफल, उच्चाटन ।
निगला प्रमाद ने, क्रूर - प्रमथ बन जीवन ।।
रह गई देखती मौन सभा बज़मारी ।
वामन-वामन से दिखे सिद्ध तपधारी ।
यों लगा, ले गई ज्यों वैदेही वाणी ।
कुछ कह न सका निश्चय कर कोई प्राणी ।।

ज्यों महाप्रलय हो गई, लगा यों पल में ।
हम मृतक हुए, विश्वास हुआ मन-मन में ।।
कुछ खोल-मींच पलकें, पुतलियां चलाकर ।
भर-भर कर चिकुटी, अवयव नचा-नचा कर ।।
कस्तूरी-मृग - सम प्राण-गंध हित भटके ।
दुर्भाग्य देख, फिर रोये शीश पटक के ।।
"हा ! चली गई, स्वामिनी हमारी रानी ।
अब कहां मिलेंगी वे सीता कल्याणी ।।
हम हुए हाय ! अंधे, पापों से अपने ।
तज सगुण, अगुण की चले भटैती करने ।।"
रह गये राम, ले काष्ठ-दंड का आश्रय ।
कौशिक-वसिष्ठ से ऋषि-गण घिरे अनिश्चय ।।
देखे गुरु के दृग दीन लगे धरती पर ।
लवकुश बोले [ले धनु-शर क्रोधित होकर ।।
"दो पूज्यपाद ! आशीष, धनुष-शर कर में ।
कर दें विदीर्ण यह वसुन्धरा पल - भर में ।।
जो दिखा गई, वह देखे दृश्य अनोखा ।
कैसे खाते धनुधर - रघुवंशी धोखा ।।
कह गई धरित्री सत्य, दुःख मां पाई ।
पर यह सुखदाता, यह सुख देने आई ।।
वाल्मीकि ऋषीश्वर के शिष्यों की जननी ।
यों विदा करा सकती न स्वप्न-सम अवनी ।।
ले गई प्रसवनी को ज्यों, त्यों लौटा दे ।
अन्यथा शरानल को तन भेंट चढ़ा दे ।।
संवर्तकाल जो प्रलयंकर के पद-तल ।
नर्तन करते, वे देख अभी इस ही पल ।।
जब तक प्रशांत शर, शांत तभी तक सागर ।
धनु उठे न जब तक, उठे तभी तक गिरिवर ।।

कर पुलिन भंग सरि चलें, सरोवर डोलें ।
लख बिद्ध तलातल त्राहि-त्राहि अहि बोलें ।।
यदि उतरे भू-रक्षक बनकर विधि-हरि-हर ।
तो देखेंगे लवकुश के प्रथम प्रखर-शर ।।
यद्यपि दिखते कुछ क्लांत ग्रहण के अवसर ।
पर इसका अर्थ न, होते शीतल दिनकर ।।
त्यों, जो कुछ भी यह हुआ आज, क्या कहना ।
पर श्रीरघुपति निस्तेज मानना, मरना ।।
दशशीश-विजेता-तेज आज हो द्विगुणित ।
प्रत्यक्ष परम तेजस्वी धनुष-समन्वित ।।"
बन गये रुद्र से, कहते लव-कुश सहसा ।
श्यामल-सुगौर तन कल्पान्तक-रस बरसा ।।
"कर रहे विनय जननी की जान प्रसवनी ।
ला लौटा वेग धरित्रि! हमारी जननी ।।
हम देख चुके प्रत्यक्ष, न जड़ तू, चेतन ।
हम समझ गये, तू समझ रही बालक-गण ।।
ले देख" बोल ज्यों तूणी-दिशि मचला कर ।
'ठहरो' कहते झपटे घटयोनि-ऋषीश्वर ।।
भर लिये बाँहुओं में लव-कुश अति कसकर ।।
निर्वाक हुए, दोनों धनु पर रखते शर ।।
बोले "पुत्रो ! क्या करते तनिक विचारो ।
तुम भू-रक्षक, भू-भक्षक वेष न धारो ।।
कंठस्थ तुम्हें रामायण सकल दुलारो ।
युग-कवि की सिद्धि न पल भर में धिक्कारो ।।
जो जीवन-भर ले स्वाद, रही विष पीती ।
इस उपवन के हित रही विजन में जीती ।।
तुमने उसकी छाती का क्षीर पिया है ।
जिसने जीवन, जगती के हेतु जिया है ।।

रख अजर-अमर मुस्कान, घोर दुख पाये ।
तब ये मर्यादा-पुरुषोत्तम कहलाये ॥
इन प्रभु - रघुपति के अंश आप सुकुमारो ।
सब विधि विचार त्रय-समय, धैर्य अब धारो ॥"
सस्नेह हाथ रख शिर पर, पूँछ विलोचन ।
शर रखे तूण में, खोले युगल-शरासन ॥
कुंभज-कृत का कवि ने बढ़ किया समर्थन ।
हिय लगा न्हिलाये युगल, युगल शुभ दृग-कण ॥

दोहा

बैठे थे रघुपति जहां, मूंद नयन नत-शीश ।
पहुँचे लव-कुश को लिये, धीरे मौन कवीश ॥
देखे प्रभु ने युगल-सुत, रखे पदों पर भाल ।
भुज-विशाल भरकर हृदय, लगा लिये तत्काल ॥

एकादश-भुवन

मंगलाचरण

मातृ-वंदना

अंबा कौशल्या

"हिय लग, तनिक कलेऊ कर सुत ! नृप पथ लखते होंगे ।
जा 'नव-युवराजा के जय-स्वर' पथ-पथ उठते होंगे ।।"
सजा आरती उठी, रह गई सुन वनवास-कहानी ।
"पितु वन देते, मां गृह रखती" बोली अधिकृत-वाणी ।।
जान सपत्नी-भाव प्रथम तो कुररी सी चित्कारी ।
स्नेह-धूम्र से धर्म-स्नेह - वश हरषी ज्यों अग्यारी ।।
"शत-शत अवध-समान पुत्र ! जो दिया मात-पितु कानन ।
बनें चतुर्दश-वर्ष कीर्ति के अभिनव - काव्य विलक्षण ।।"
कौशल्या ने कालकूट पी, दी रसभरी विदाई ।
जन सकती ऐसी मां केवल भारत-मां की जाई ।।

अंबिका सुमित्रा

"राम-विमुख जन संचित-अघ-वश केवल उदर चिराना ।
उभयलोक-इध जगत-चिता शमिता-शव स्वयं सजाना ।।
हो वन अथवा भवन, दिवस की सत्ता ज्यों दिनकर से ।
त्यों ही सुत ! अस्तित्व अवध का जनकसुता-रघुवर से ।।

तव प्रस्तुत सौभाग्योदय ही राम-विपिन का दाता ।
श्यामल-छवि की गौर-छांव बन, यश पा," बोली माता ।।
सुनी सुमित्रा-गिरा अकल्पित, हुई विकल-मति विह्वल ।
भूले लखन नवेली श्यामा, रामचरण-रति निश्छल ।।
प्रथम-महाभरत भारत में रामायण-छवि पाई ।
जन सकती ऐसी मां केवल भारत-मां की जाई ।।

अंबालिका कैकेई

भूमि जलाता, नभ धधकाता, जगत रुलाता हँसकर ।
फिरता देखा, सगुण-वेष में प्रबल-पाप दशकंधर ।।
छलक उठी करुणा कण-कण से, उठी कालिका बनकर ।
"जीती है केकई धरा पर, धरे ! न डर, धीरज धर ।।"
स्नेह कोख का, शिर का सेंदुर, सुयश गँवाकर जग का ।
वनवासी का वेष बनाकर रामचंद्र से सुत का ।।
समाधान कर सकी समस्या जो न शक्ति अमरों की ।
ऋषिजन की साधना, शरावलि प्रखर समर-सुभटों की ।।
हल की पल में, पलक मूंदकर निज बलि मौन चढ़ाई ।
जन सकती ऐसी मां केवल भारत-मां की जाई ।।

जननी सुनयना

उठा पंक से, पलक पालने पाली हृदय लगाकर ।
दिया भुवन-पुरुषोत्तम-कर कर, लगा दांव पर शिव-वर ।।
लख प्रिय-देवर - सहित तापसी-वेष उसी दुहिता का ।
"पुत्रि ! पवित्र किये कुल दोनों" स्वर निकला जिस मां का ।।
'रानी बनी, बनेगी मां' सुन, दो-दिन रहँस न पाई ।
सुना पुनः, अज्ञात-वनों में गई वनों से आई ।।
अधर मौन रह गये किंतु कण-कण 'हा-हा' चित्कारे ।
गई तारिका, मुंदे सुनयना के नयनों के तारे ।।

सत्य 'विदेह-प्रिया' की पदवी देकर देह दिखाई ।
जन सकती ऐसी मां केवल भारत-मां की जाई ।।

प्रसवनी देवकी

"हांक रहा रथ हुलस-हुलस कर, कह भगिनी कल्याणी ।
वह तव काल-प्रसवनी राजन् !" गूंज उठी नभ-वाणी ।।
चला मारने प्रथम, मनाया, मान वंदि-गृह डाला ।
एक-एक शिशु किया स्वहाथों खल ने काल-निवाला ।।
भोग योग में योग भोग में किया समाहित पल-पल ।
जन-जन देती गई, दृगावलि गईं छलकती छल-छल ।।
किये बिना उत्पन्न आठवां-पुत्र न जननी मानी ।
कारागृह की तरुण-तापसी विमल देवकी-रानी ।।
पातक-निशि की उषा-अरुणिमा कृष्ण - करुणिमा लाई ।
जन सकती ऐसी मां केवल भारत-मां की जाई ।।

मैया यशोदा

कभी काछनी, कभी कछौटा, झगुला कभी पिन्हाया ।
काढ़-काढ़ कर मांग, दिठौना-तिलक ललाट लगाया ।।
न्हिला-न्हिला शृंगार सलोना, फिर-फिर नवल सजाया ।
किंतु पंक में छप-छप करना, कान्हा के मन भाया ।।
हरषी प्रथम देख सुत-क्रीड़ा, फिर बोली मृदु - रुष भर ।
"जान गई मैं तुझे हठोले ! प्रथम-जन्म का शूकर ।।"
गोमय-थापन क्षीरज-मंथन जिसकी पटुता सारी ।
अंजाने, श्रुति का अंजाना, जानी परम गँवारी ।।
रँगी रही हरि-रंग यशोदा, बहिरज-रति न गँवाई ।
जन सकती ऐसी मां केवल भारत-मां की जाई ।।

माता कुंती

"केशव! ले संदेश संधि का, रिपु-गृह भले पधारे।
क्या सामग्री दिव्य चढ़ाकर, पूजूं चरण तुम्हारे।"
बोली कुंती "किंतु गँवाकर—जिस दिन के हित यौवन।
धरती भारत की क्षत्राणी, धरती पर सुत जन-जन।।
जान गई उस दिन की रेखा, मस्तक लिखा न लाई।
जायों से बन गई कूकरी, पंचानन के ग्राई।।
लोक बनाने जातक जाते, जीती मां बन दासी।
ऐसे मैं तो खड्ग धारते, दंड त्याग संयासी।।"
वेणु-गीत-गायक ने गीता यही शंख पर गाई।
जन सकती ऐसी मां केवल भारत-मां की जाई।।

भारत की मां

खगी-मृगी-मंडली बिंदु से यों तो डिंभ बनाती।
तनिक बीज से धरा-धूलि भी यों तो बाग लगाती।।
खंड न एक भूमि-मंडल पर जहां बांझ ही बसतीं।
यह भी सत्य, अमित आधुनिका मातृ-भाव तज रमतीं।।
फिर भी जो मानवी कहातीं, प्रसव नित्य बहु करतीं।
शिशु-गृह भेज, न देतीं स्तन-पय यौवन-क्षय से डरतीं।।
पर अब भी जो गीले में सो, देतीं बिस्तर सूखा।
भूखी रहकर भी न अंक-शिशु रहने देतीं भूखा।।
पिताभाव में पिता-भाव से रहतीं छत सी छाई।
जन सकती ऐसी मां केवल भारत-मां की जाई।।

वन्दना

छप्पय

नृप दशरथ-नभ परिधि,सुविधि विधि-संविधान की ।
अरुणिम - प्राची रामचन्द्र-रवि नव -विहान की ।।
सिय-हिय-कुमुद तडाग, राग-रंगिनी चांदिनी ।
पुण्य-सुसावन इष्ट-वीज की धरा प्रसविनी ।।
धर्मस्नेह-पुलिन-मिथुन, शांत-रसेश-तरंगिणी ।
जय कौशल्या अंबिका, शील-सुशिला स्वरूपिणी ।।

भुजंगप्रयात

'धरा में धरा-नंदिनी जा समाई,
ठगी सी रही देखती मौन अवनी ।'
सुना ज्यों समाचार यह दासियों से,
खड़ी की खड़ी गिर गई राम-जननी ।।

किसी मत्त-गजराज ने ज्यों मदक पी,
समाधिस्थ मुनि की कुटी हो ढ़हादी ।
पके धान की अनविनी-राजिका पर,
शिशिर ने प्रचुर हिम-शिलावलि गला दी ।।

सुनंदन-विपिन मंजु मंदार-तनया,
कुलिश के कलुष से झुलस सी गई ज्यों ।
गई सूख कलिकाल की जान्हवी सी,
अनुष्ठान की ज्योति बुझ सी गई ज्यों ।।

ढुलातीं व्यजन जल, पिलाने लगीं कुछ,
दिशा प्रति-दिशा कुछ चलीं भाग दासीं ।
"बहू के चली पास जीजी गईं क्या,"
सुमित्रा-गिरा गंज उट्ठी रुआँसी ।।"

"मुझे छोड़ जाना न सूने-भवन में,
अभागिन अनाथिन, न कोई सहारा।
पड़ी काल की छांव-काली अवध पर,
मरों पर मरों ने मरा वज्र मारा॥

हटीं दासियाँ कुछ, धरा पर सुमित्रा—
गई बैठ ले अंक में कौशिला - शिर।
सुना कान रख, स्वांस - नाड़ी परख कर,
हृदय-धड़कनों को परखने लगी फिर॥

कहा उर्मिला ने "बुलाँये किसे हम",
"किसी से न कुछ हो सकेगा! अरी अब।
हुई हाय! बूंटी न टूटी हुई की,
लखा क्या अचंचल धरांचल बता कब॥

चली छोड़नें नीड़ विहगी गगन की,
ढले सूर्य की छांव केवल शिखर पर।
बँटा ध्यान मत, ध्यान से देश पगली!
निमिष-भर खुले मौन, उद्योग वह कर॥"

लगी कीर्ति करों से पद - तल,
लगी उर्मिला जल चमस - भर पिलावे।
उठी कान में वेग से मांडवी कह,
"बड़ी-मां! बड़ी मां!" लगी कुछ हिलावें॥

"तनिक आंख खोलो न, बोलो तनिक तो,
गईं रूँठ क्या आप भी केकई से।
न ऐसी कभी मौन जीजी हुईं तुम,
तनिक स्वांस-सरि तो निकालो घई से॥"

लगी कांपती केकई को करावलि,
कपोलों-पलकनों-हृदय पर मचलने।
चले स्वांस, पलकें उठीं कुछ हिला तन,
गिरा से हृदय के लगे घाव रिसनें॥

"ठहर जा, न जा री! अकेली नवेली,
अँधेरी-गली काल की है कँटीली।
भयानक विपिन से अधिक है भयानक,
कुपथ है, गड़ी हैं यहां कोटि कीली॥

न निमिराज का मानसर यह मराली,
न रघुराज के ये कमल-कुंज कोमल।
न यह दंडकारण्य, रमणीय लंका,
न कवि का अरी बावली! आश्रमस्थल॥

महामृत्यु के दुर्ग का पंथ दुर्गम,
घिनौने घनों की घनी घोर दल-दल।
प्रबल मत्त गज - यूथ इसमें समाये,
टिकेंगे कहां चंपई मंजु पद-तल॥

प्रथम बार शिविकांक-अवगुंठनों से—
निकल ज्यों सुग्रंचल छिपी अंक मेरे।
उसी भाँति दुहिते! अरी बैठजा आ,
पड़ी हेतु तेरे, पसारे बसेरे॥

बसाजा इन्हें हंसनी सी हँसी से,
बिछुड़ तू गई तो, उजड़ जाएँगे ये।
शपथ राम की, सांवले भूप - पद से,
विदूषित किसी पल न हो पाएँगे ये॥

लड़ूंगी नृपति-पुत्र से प्राण - प्रिय से,
न वनवास तेरा पुनः हो सकेगा।
न यदि रोक पाई, चलेगी जिधर तू—
उधर यह अधम तन, प्रथम हो चलेगा॥

चली जो गई, वह कहां अब चलेगी,
चलूंगी कहां हा! शिला मैं अभागिन।
न जाना जिसे था, गई जानकी वह,
न रहना जिसे था, रही हाय! इंधन॥

सदा लोक में काम आगे सँवारे,
वही रीति परलोक पहुँची निभाने।
कहीं तो कमी छोड़ देती हठीली!
सुनाती कभी सास दो-चार तानें॥

गिरा कंठ की कंठ में घोट डाली,
अधर पर न कूंका कभी मूक अंतर।
हुआ आज विश्वास ऐसी सु-नारी—
न नारी-जनी तू धरा की धरोहर॥

निभा राम पाया न इस पापिनी का,
सुते! ज्यों निभा तू गई नाभि नभ की।
जली ज्योति-सी निर्मला राम रीझा,
न की चन्द्रमणि किंतु दुर्गति शलभ की॥

न है याद तूने कभी भी किसी का,
कहीं भी किसी रीति से मन दुखाया।
मृगी का प्रसव, चातकी का विरह भी,
न तव शांत-चित्त, स्वल्प भी देख पाया॥

वही मूंदकर आज कैसे विलोचन—
न भू पर पड़ी वृद्ध-अबला, निरखता।
समझ मैं गई हूँ, समझ सब गई हूँ,
मुझे राम की मात्र माता समझता॥

बुरा मानना मैथिली! मत तनिक भी,
सुता धर्म को तू, न सुत-पक्ष लेती।
धुली दूध की जान्हवी सी समुज्ज्वल,
कहां राम-गाथा सुनाई न देती॥

जना था जिसे, राम वह लाडला तो,
कहीं से रखा नाम कोई न लाया।
हृदयहीन ऐसा हुआ हाय! कैसे,
तिलक जिस दिवस से, अरी! दीन पाया॥

अवध - पीठ पर मूठ मारी किसी ने,
किया कीर्ति पर टोटका सा निगोड़ा ।।
प्रतापी यशस्वी तपस्वी मनस्वी,
हुए नृप अनेकों, किसी को न छोड़ा ।।

रिसा पापसरि भूमि पर, नृप त्रिशंकू—
पड़े शून्य में पा रहे यज्ञ का फल ।
बिके दान दे हाट में पुत्र-नारी,
हरिश्चन्द्र चांडाल के घर भरा जल ।।

जिन्होंने दिये प्राण, प्रण को निभाया,
पठा प्राण-प्यारे दिये घोर वन में ।
अनाथों-सरिस तैल की द्रोणि में रह,
बिलखते गये वे लिये शूल मन में ।।

उसी शापितासन चढ़ा राम जबसे,
चढ़ी लालिमा; पाद-तल कालिमा के ।
बना तू अरे! राम किस हेतु राजा,
किये शाप, वरदान क्यों कौशिला के ।।

प्रजा-भक्ति की यज्ञ-वेदी धधकती,
करी हाय! बलिदान मेरी वधूटी ।
रजक! क्यों न मुझको कलंकित बताया,
गई संग पति के न मैं भाग्य - फूटी ।।

मुझे देखनी थी घड़ी ये अभागी,
शिला सी न सरकी, कुलिश सी न तड़की ।
व्यथा सह गई, शेष थी यह कथा तो,
विरह-ज्वाल मन की तनिक तन न भड़की ।।

न दो साथ आते, न दो साथ जाते,
महाराज की बार यों मन मनाया ।
मनाऊँ अहो! आज कैसे हृदय को,
न तन मैथिली साथ तेरे पठाया ।।

मुझे साथ लें चल, न संकोच कर तू,
न यह सोच मन में अरी बावली! तू।
जना कोख ने सांवला, सांवली पर—
नहीं हूँ, न होगी अरी! सांवली तू॥

खड़े लोकपति प्रतिदिशा में अनेकों,
चरण-धूलि-हित तव सिये! द्वार खोले।
बताना 'जरठ-किंकरी साथ आई',
जहां रोक कोई मुझे टोक बोले॥

महावर रचाकर करूँगी चँवर में,
करेंगी न सेवा सुरी राजरानी।
न्हिलायी सदा सास कर से कमर मल,
सफल क्यों न परलोक होगा अयानी॥

धरा तव तपोबल लजाती त्रिदिव को,
पसा भर रसा ये रसस्वाद पाती।
जले का जला दीप आंचल उढ़ाकर,
जनक की लली ले गई लौ खिलाती॥

तुझे अग्नि का खेल भाया जनम-भर,
सिलगती रही तू, सिलगती गई तू।
रही मंजु मणि-सी उभय-कुल चमकती,
सदा ही रही राम-रमणी नई तू॥

विवेकेश-प्रेयसि! सुनयने! सियाम्बे!
गया दूध तव दूध से हार मेरा।
निमिष-भर तुम्हारी कुमारी जहां भी—
रुकी, धर्म पाया प्रलय तक बसेरा॥

न कब धर्म ने मार पासंग तोली,
न कब बाट भूले करा कर ठिठोली।
न है कौन, जिसने न बोली कुबोली,
कहाँ कौन, जिसने कहा 'सीय बोली'॥

पतिव्रत खुली - खड्ग की धार जैसा,
जनक-अंक सम जो रही खेलती ही ।
धरानंदिनी धैर्यदधि की परिधि सी,
रही घाम-हिम-वारि नत झेलती ही ।।

समाता कमल कीच में हस्ति-पद से,
समाती कभी राहु - मुख चांदिनी ये ।
पतितपावनी - गंग की क्षार परिणति,
शिवा का लगी शाप आल्हादिनी ये ।।

अमर - वल्लरी सी सुपावित्र्य की तू,
न तुझमें कहीं स्वल्प कालुष्य सीते ।
कलंकित बताने चले जो कलंकी,
उन्हीं के समय पंक के गर्त बीते ।।

हुआ त्याग तव त्याग आदर्श बेटी;
न त्यागा तुम्हें राम नें, कीर्ति त्यागी ।
तुझे ही बना लक्ष्य सौभाग्य भागा,
न सौभाग्य को तू बना लक्ष्य भागी ।।

न उपमा जगत में कहीं सीय! तेरी,
बनी वामनी वाम-उपमान - माला ।
ठगी तू गई एक ही ठौर, विधि से—
न जानी हवन-विधि,स्वकर भून डाला ।।

किये विश्व - उपचार तूने अनेकों,
न तव एक उपचार कर विश्व पाया ।
न हारा कहीं राम, ईश्वर कहाया,
यही एक तव द्वार पर हार खाया ।।

दिनोंदिन अधिक सांवला हो रहा हैं,
न धो पा रहा कर्म को, कर्म-सागर ।
धरा धर्म की मूर्ति सद्धर्म-पालक,
समा तव घटज-घट गया धर्म-सागर ।।

क्षमा कर क्षमारूपिणी दिव्य-देवी,
स्व-अभियुक्त को राम को, देख मुझको।
महाराज दशरथ-जनक-राम-मेरी,
सुलव-कुश प्रसवनी शपथ! कोटि तुझको॥

न वृद्धा भिखारिन बिना भीख पाये,
युगों तक हटेगी, न पग-भर डिगेगी।
कनक-सद्म की राज-रानी! न 'ना' कर,
थकी अब, न देही चलेगी, चलेगी॥

क्षमा मांगती जोड़कर कर चराचर!
बचा शेष प्रिय! आपका ऋण चुकाती।
गये आप तो पाप के पुत्र कारण,
मुझे धर्म-पुत्री लिये नाथ! लाती॥

बहुत दिन रमे स्वर्ग-अलबेलियों में,
रमी मैं रही मोह-वन बन नवेली।
न करना तनिक कोप प्राणेश! मुझ पर,
न भेजी तुम्हारी पतोहू अकेली॥

अभी आ रही हूँ, चली आ रही हूँ,
ठहरजा-ठहरजा जनक की कुमारी।
सिये! मैथिली! जानकी! राजरानी,
दृगों की पुतलिके सुते! प्राण-प्यारी॥

दुलारी अरी बालिके! ज्योतिरूपे!
फिरा मुख, तनिक देख, गिर-गिर रही मैं।
उठाले बढ़ा कर कमल सी हथेली,
महा-मोह की कीच में घिर रही मैं।

चलो पास अब प्राण! प्राणप्रिया के,
कहीं राम आकर न ले रोक पथ को।
बना रह, बना रह, अरे! राम राजा,
चला मैथिली की दिशा, देख रथ को॥

रा! व्योम! पवमान! पावक! सलिल! लो,
समर्पित तुम्हें आज तव तत्व करती ।
अरी भगिनियो! और कुछ पास आओ,
तुम्हारा तुम्हें राम देकर निकलती ।।

न जग में रहा शेष मेरे लिये कुछ,
न जग के लिये शेष, मुझ पर रहा कुछ ।
चलो प्राण! निज देश, परदेश का क्या,
कहेंगे सुनेंगे सिया से सभी कुछ ।।

मुझे छोड़ दो सब, रुकूंगी न मैं अब,
इसी वय मुझे दूर अति - दूर जाना ।
महाराज के पास सीता खड़ी है,
विलोको, अरी! लाडिली का लजाना ।।

रहे पूंछ कैसे, "पधारी बहू! तू,
कहां सास तेरी, न क्या आ रही है ।
कमल की कली काल ने बीन ली, वह—
पड़ी कीच में," कुछ न कह पा रही है ।।

सकल-दिशि सभीता-मृगी सी निरखती,
न पहचानती कुछ, न कुछ जानती है ।
न बोली कभी सामने आ श्वशुर के,
हृदय में मुझे हाय! धिक्कारती है ।।

न संकोच कर, धर्म के ये पिता तव,
न कर सोच बेटी! चली आ रही हूँ ।
हुई बार, है भाल पर भार भारी,
न तज पा रही हूँ, न ढो पा रही हूँ ।।

अरी थक गई, बैठ जा, गिर गई री,
कहाँ झारियां फूंक दासीं गईं मर ।
सलिल - नीर-जल-वारि-पय-तोय-पानी,
अरे दो, सरित-सिंधु-सर-मेघ-निर्झर ।।

सुते ! जाग उठ मैथिली ! बैठ सीते !
तनिक चेतकर, जानकी ! जानकी! री ।
दृगों में भरे जल खड़ी सास तेरी,
पलक खोल पुतली! प्रिया प्राण की री ।।

पकड़ कर उठा ले मुझे हाथ मेरा,
स्वयं मैं उठी, सीय ! छोटा न कर मन ।
सिया री सिया" बोलते कौशिला का,
उखड़ स्वर गया, हो गया तन अचेतन ।।

मुड़ीं कान की लौ, हुई घ्राण टेढ़ी,
हृदय कुछ लगा बैठने सा, धड़कता ।
सुमित्रा बड़े वेग से कह उठी "रे!
छिपा राम राजा कहां राज करता ।।

बुलाओ अरी ! बैठ क्या कर रही हो,
उड़ी जा रही है खगी छोड़ पिँजरा ।
मिलेगी अभी मात्र माटी पड़ी ही,
अरी उर्मिला! दे तनिक पांव पसरा ।।

उठा मांडवी ! शीघ्र गंगाजली दे;
अरी कीर्ति तुलसी अधर पर चढ़ा दे ।
बहिन कैकई! देर मत कर, बहिन को,
महाराज का पीत—पटका उढ़ा दे ।।"

खिंचे स्वांस, दौड़े हुए राम आये,
"अरे! अंक में शीश ले, जा रही मां !"
बढ़े राम अभियुक्त से शिर झुकाकर,
भरत नें कहा "है कहाँ, ये गई मां ।।"

गई मां-गई मां, बड़ी - मां-बड़ी-मां;
प्रसविनी गई राम की, राज-माता ।
पड़ा वज्र नीड़ों भरे वृक्ष पर ज्यों,
न क्रंदन अवध के भवन में समाता ।।

"बहू के गई पास तू सास तो हा!
रहीं सांस गिनतीं हुईं सास हम क्या ।
बुलाले, सुमित्रा करेगी यहां क्या,
न मम हेतु है रिक्त कुछ स्थान यम! क्या ।।

निकाली पुनीया-प्रिया जिस नृपति ने,
करे जननियों का न जाने हरे ! क्या ।
अरी लेट जा केकई ! पास इसके,
न रोग्रो, अरे जी गई ये, मरी क्या ।।

मरीं वे, रही जो जगत में अभी भी,
उन्हें रो सको तो, तनिक देर रोलो ।
न आँखें खुली हैं, न ग्राखें खुलेंगी,
खुली आंख का भूप है कौन, बोलो ।।

बनी छांह सी जो रही घोर वन में,
सहे जेठ-अगहन,महामेघ सावन ।
न जिसने कभी भात बासी चखा था,
वही कंद खाती रही खोद कानन ।।

न जिसने दिगम्बर धरा पर धरा पग,
धरा को दिगम्बर उसी ने उढ़ाये ।
न पहिना हुग्रा वस्त्र पहिना दुबारा,
विटप-छाल से ग्रंग उसने छिपाये ।।

टिका सामने कौन लंकाधिपति के,
न टिक वह सका, सामने जिस सिया के ।
स्वयं साक्षि दी ग्रग्नि ने जिस सती की,
लगे दोष प्रिय-प्राण से उस प्रिया के ।।

न पशु भी कभी गर्भिणी से बिदकता,
निकाली मनुज ने मनुजता बिसारी ।
पुरुष एक प्राणेश माना जगत में,
वही छोड़ दी 'धन्य प्राणेश! नारी' ।।

बताते इसे ईश, यह ईश कैसा,
न स्वार्धांगिनी का हृदय झाँक पाया ।।
यही भूप है, एक को रस पिलाकर,
हलाहल सभी के लिये घोल लाया ।।

अरे धन्य न्यायी ! न देखा गया दुख,
इसी हेतु अपनी स्वयं आँख फोड़ी ।
बुझी आग से क्या कहीं आग पगले!
सिया त्याग मर्याद जोड़ी कि तोड़ी ।।

परित्याग का भाव जिस काल आया,
हृदय पर अरे! वज्र का राज्य था क्या ।
समाधान जिस चित्त ने यह सुझाया,
बता चित्त वह, सत्य अविभाज्य था क्या ।।

'दिया वन सिया को, बता कौनसे मन,
अहंकार हो ही गया राज्य-मद का ।।
विचारा यही ना, 'सकल विश्व वामन,
न कोई बड़ा है महाराज-पद का' ।।

अरे राम ! हम कौन तेरी बता हैं,
मरी एक, हम दो किसी दिन मरेंगी ।
हटो सामने से! बहिन का बहिन मिल—
क्रिया-कर्म सारा स्वयं ही करेंगी ।।

न तरनी हमें पूत - तरनी वितरनी,
मिले नर्क जो नर्क पातीं निपूती ।
बिलखती बहू के लिये यह गई है,
इसी हेतु ना, क्योंकि थी ये सपूती ।।

किया प्राण से घोर-रण जो बड़ी ने,
न वह शक्ति-सामर्थ्य है हम किसी में ।
युगों साथ रह आज पहिचान पाईं,
भरा राग-वैराग्य विधि ने इसी में ।।

बनीं पट्टमहिषी महाराज की क्यों,
बनी किसलिये आज की राजमाता ।
न पदपीठ साकेत उस काल पाता,
न शिर-छत्र साकेत इस काल पाता ।।

रसातल समाता कि उड़ता गगन में,
भवानीश जाने, न होता धरा कर ।
उसी की सृजन-पालिनी शक्ति जीजी,
अनाथों सरिस जो गई, शीश धुनकर ।।

न राजेन्द्र ! आ आप पाये कृपा कर
कृपा कर पधारें, अभी फिर यहाँ से ।
हुआ आपका यज्ञ दो से न पूरा,
अभी और दो शेष शिर, लें यहां से ।।

कहो चाहिये क्या तुम्हें राम राजा!
रहो मौन मत, कुछ बताओ बताओ ।"
भरे-कंठ लक्ष्मण उठे बोल "अंबे !
धरो धैर्य प्रभु-नाम में चित लगाओ ।।"

"यही शेष था आप उपदेश देंगे,
न ज्यों मैं प्रसवनी, जनक आप मेरे ।
चला है जले पर लवण तू छिड़कने,
न टूटें अभी दूध के दांत तेरे ।।

समझा मुझे क्या परशुराम हूँ मैं,
चढ़ा वाण, शक्रारि जिससे विदारा ।
बड़े ने बड़ी की विदा मान देकर,
न छोटी छुटकना करेगा बिचारा ।

समझती सभी हूँ, न है दोष केवल—
अरे राम का, मौन सम्मति तुम्हारी ।
दुरभिसंधि प्रत्यक्ष भ्रातत्रयी की,
प्रथम कर सिया-वध पुनः अंब मारी ।।"

''नहीं मां ! नहीं मां ! कहो तुम न ऐसे,
नहीं भ्रात ऐसे किसी को मिलेंगे ।
सदा पथ-कुपथ भ्राक-मंदार उगते,
कमल ही शरद - सरवरों में खिलेंगे ।।

महाराज पितु, आप सी अंबिकायें,
पयोनिधि सुमुक्ता महाशुक्ति बनतीं ।
हुआ सिंधु में फेन मैं, भाग्य मेरा,
कृपा कर विमल-वीचि शिर फेन धरतीं ।।

उसी भाँति मैं तो तलोपरि दिखा हूँ,
रहे किंतु ये तो तली के सुमोती ।
न है दोष निर्दोष ये मां ! सकल ये—
न होते धरा पर, धरा ही न होती ।।

महामूल मैं ही अमंगल सकल का,
सकल नम्रता-वश महाशूल झेले ।
इन्हीं से अधेला बना राजमुद्रा,
हुए राम से हाय ! हीरे अधेले ।।

मुझे दंड दो, भाल सम्मुख झुका मां!
मुकट शीश का बन गया भार-भारी ।
हृदय का हृदय, इस शिला ने दबाया,
भ्रमित-बुद्धि फिरती अनाथिन दुधारी ।।

करूँ शोक मैं क्या, गई आपकी मां,
विराजी हुईं राम की अंब दोनों ।
गई मैथिली जो, बहू आपकी थी,
समस्या-प्रिया मम खड़ी चार कोनों ।।

लिये सोख आँसू दृगों के मुकुट ने,
अवधपीठ का अब चरण-पीठ है मन ।।
खड़ा दे रहा, आह पर छत्र पहरा,
सिंहासन बिछा है, हृदय के शिलासन ।।

ध्रुवों से घिरी ये, धरा कूट-कारा,
विकट अनुचरों के कुलिश-पट कड़े हैं ।
नियम सूर्यकुल के अगम भित्ति-दल हैं,
कनक-शृंखला मंत्र - मुद्रा जड़े हैं ।।

पड़ा स्वांस बेड़ी पहिन राम बंदी,
खुला राज्य का दंड शिर खेलता है ।
महाराज - राजा जिसे सब समझते,
न क्या यातना राम वह झेलता है ।।

प्रिया-सुत-प्रसवनी-पिता-मित्र- भ्राता—
सभी देखते हैं, सभी को निरखता ।
चढ़ा चर्म के दीन इन चक्षुओं पर—
परिधि-पट्टिका बैल सा भूप फिरता ।।

कलेजा किसे चीर अपना दिखाऊँ,
भरे हैं हरे घाव कितने गिनाऊँ ।
ध्वजा धर्म की सीय, कमनीय सी तिय,
तजी हेतु किसके, किसे हा! बताऊँ ।।

बिलखते पितर - युग्म पर-लोक भेजे,
शिला सा रहा मूक, जिह्वा न खोली ।
न जिसने कभी गोद से भी उतारा,
कुबोली न वह कौनसी आज बोली ।।

अरे राम के प्रेत! ले भोग धरती,
इसी के लिये तो लगी लंक-लीला ।
इसी हेतु तो कोटि - कांटे दुलारे,
युंही तो हुआ रक्त से गात गीला ।।

इसी हेतु- जननी बनी घोर-अहिनी—
इसी हेतु गृहिणी बनी क्रूर काली ।
वनों से वनों में गई फिर निकाली,
इसी हेतु रानी कनक-धाम वाली ।।

कनक-मय मुकुट मूल यह आपदा का,
कृपा कर उतारो, इसे राम - शिर से ।
इसे फेंक दो, फूंक दो, रेत-मोदक—
लुभाले किसी को, न यह क्रूर फिर से ॥"

बढ़े शीश की ओर ज्यों राम के कर,
लिपट त्यों गई केकई राम-कर के ।
"अरे बावले पुत्र ! यह कर रहा क्या,"
बिठाया झपट कर धरा, गोद भरके ॥

"मुझे छोड़ दे मां ! मुझे छोड़ दे मां !
प्रमथ राजपद का तनिक ये उतारूं ।
बड़ा जो हुआ, लोटकर तव चरण रज,
तुम्हारा वही राम, बनकर निहारूँ ॥

करे भस्म शृंगार, वह सप्त-जिह्वा,
कलंकित करे भाल को जो दिठौना ।
न आनंद दे अंब के जो हृदय को,
उचित उस कुसुत का, करे मृत्यु गौना ॥"

"हमें छोड़ आ, वस्त्र मुख पर उढ़ाकर,
पुनः बात ला और चंचल मनस्थल ।
बना रह, बना रहा धरा-सूर्य-शशि तक—
हमारे, अवध के, अखिल के सुसंबल ॥

न हैं क्रूर जीजी, न तू वत्स! दोषी,
नियति ही कहाती, नियति ही कराती ।
दुखी का दुखी-मन, कहे बात कोई—
बुरी, पर बुरी-बात समझी न जाती ॥

अरे! आज से भी अधिक और क्या दुख,
किसी से सुना है, किसी पर पड़ा है ।
सिया यों गई, ज्यों न आई कभी थी,
कलेजा न फिर भी फटा, क्या कड़ा है ॥

धराधीश महिषी, धराधीश जननी;
बड़े भी बताते, जिसे ये बड़ी है।
फँसी दैव के चक्र में हाय! कैसी,
अनाथों-सरीखी धरा पर पड़ी है।।

बिखेरी कलभ ने कमल की सुपांखें,
अरे देख कैसी खुलीं लाल आंखें।
धँसी पुतलियां, काल की गोलियाँ या,
गई पंखिनी व्योम, भू फेंक पांखें।।

प्रलम्बित धवल केश - माला ढकी ये;
प्रतीची-उदधि में पड़ी चंद्रमा सी।
करी भोग जिसने सुपूनम - छमासी;
छिपी काल की वह अमा तमा सी।।

अधर ये, लिये प्यास पसरे पसों से,
धरा-जल-सकल शून्य-दृग-तल समाया।
हुई भग्न आशा, मुड़ी त्यों सुनासा,
ध्वजा-दंड ही काल ने ज्यों झुकाया।।

श्रवण - रंध्र पर त्यों झुकीं ये फुलगनी;
सुधा-सर ढके, ज्यों लता-माल फैली।
रमी मंजु सिय-कंगनों की धवल-ध्वनि,
न बोली करे कर्कशा अन्य मैली।।

पड़ी शांत सा चित किये, चित्त कैसी,
हमें सौंप चिंता चितानल-सरीखी।
बड़ी! तू बड़े ही रहस्यों भरी थी,
कला काल की यह कहां बैठ सीखी।।

छिपी से छिपी भी न बातें छिपाईं,
न क्या-क्या बताईं, किसे क्या बताऊँ।
'अभागिन शिला प्राण किस भांति ढोती,'
बतायी न यह बात, यदि छोड़ जाऊँ।।

बताजा तनिक ये, अधर खोलकर तू,
भरे विश्व में कौन मेरा सहारा ।
अरी! आज की केकई की प्रसवनी,
करे केकई क्या, बता स्वांस-कारा ।।

नयन खोल कर तू तनिक बोल जोजी!
बँधा धीर कुछ तो कलेजे लगाकर ।
सपत्नी समझकर निठुर-मौन मत हो,
बहुत दिन हुए केकई वह गई मर ।।

अयोध्या मरीं की क्रिया की विपिन-पथ,
दिया पिंड गिरिराज-कामद कृपा कर ।
पुनर्जन्म बेटी कि छोटी बहिन को—
दिया, मार मत अब मरी को जिलाकर ।।

निभा प्रीति, मत छल अधम को अधम में,
न तज केकई, केकई सी निठुर बन ।
अपरिचित - सरीखी वदन को फिरा कर,
न हो मौन यों देख अबला-अभागन ।।

न चौराह पर छोड़कर राजमाते!
अकेली निकल जा, सुपथ तो बताजा ।
अरी ! बोल ले एक ही बार केवल,
जगत-व्यूह का द्वार दामिनि! दिखा जा ।।

न बोली, न बोली, न अनबोल बोली,
अगर बोलती तो न अनबोल होती ।
दया-आपगा अद्रवित यों न रहती,
कुटिल केकई हाय ! रीती न रोती ।।

गई हाय जीजी, गई, हाय जीजी,
अरी देख जीजी ! गई देख जीजी ।"
बिलखना निरख केकई का बिलख सब—
उठे, बह चलीं आंख भीजीं पसीजीं ।।

भवन घन, अवध वन, रुदन धार बरसी,
करुण सरि बहा ले चली धैर्य सारा ।
गिरे ज्ञान तरु, ब्रह्म की लू गई लट,
बही घोर वैराग्य की घूरि-धारा ।।

हृदय नभ चमकने लगी चंचलास्मृति,
समय की क्षितिज पर उठे भाव बादल ।
रुदन से रुदन, मेघ बरसे गरज कर,
मिली एक में एक सीमा अचल, चल ।।

प्रथम भाव-बदली गरज जा न पाती,
दबाते गरज दूसरी को रुदन-घन ।
भवन हो न, साकेत सारा लगा यों,
रसा पर रिसा हो शोक-सगुण-सावन ।।

तभी सूर्य से ब्रह्म - संभव पुरोहित,
छटा इंद्र-धनु सुप्रिया - संग प्रगटे ।
उतरने लगा जल, उभरने लगा तल,
चले रीति - पछवा - पछाड़े झपट के ।

दोहा

मौन मुकुट नृप शीश से, गुरु ने लिया उतार ।
दे ढ़ाढ़स मुनिजन - निकट, लाये राजद्वार ।।

रोला

नारद-सनत्कुमार - सनंदन - सनक-सनातन ।
वेदशिरा-ऋतु - पुलह-मृकुंडज अमर पुरातन ।।
विश्वामित्र-अगस्त्य - पुलस्त्य-मरीचि-अंगिरा ।
गौतम-कपिल-कणाद-और्व- जाबालि-हयशिरा ।।
याज्ञवल्क्य - विश्रवा-अत्रि - भगवान परशुधर ।
भरद्वाज-भृगु-च्यवन-पतंजलि-शृंगि - पराशर ।।

तपोवृद्ध वृद्धातिवृद्ध लोमश रागीश्वर ।
कविकुल चूड़ामणि महर्षि वाल्मीकि ऋषीश्वर ।।
दुर्वासादिक अमित ब्रह्मज्ञानो मुनि - मंडल ।
बैठे, बदली ढांप गगन ज्यों वृष-रवि-मंडल ।।
प्रभु भ्राताओं सहित सभो का मौन नमन कर ।
मुनि वसिष्ठ के पास नमित - शिर बैठे भू पर ।।
मुनिजन कहने लगे, भरी वैराग्य कहानी ।
'यह संसार असार कहें क्या तुम नृप! ज्ञानी ।।'
संकेतों से परामर्श सा कर वसिष्ठ मुनि ।
बोले"भरत! सुजान, सूचना दो पुर पुनि-पुनि ।।"
पा सुमंत्र - आदेश अनेकों धाये धावन ।
मां-यात्रा का सकल कार्यक्रम जाना जन-जन ।।
वंश - कुशामय कनकाच्छादित बृहत् पालकी ।
लगे त्रयोदश दंड, किनरियां सदल डाल की ।।
नंदनकानन - सुमन सजी ऊँची सी छतरी ।
मृदुल सांथरी चैत्ररथी-सूनावलि सँवरी ।।
बनी पताका मानसरोवर की मृणालिनी ।
भरने लगीं प्रकाश दिव्य मणि-माल कामिनी ।।
अवगुंठन-पट सरिस पटी पर पटीं मंजरी ।
विदा कराने अंब पधारी कंक-सुन्दरी ।।
तीर्थ सलिल-मृतिका से सविधि न्हिलाकर जननी ।
पिन्हा वस्त्र, दी उढ़ा शीश गत-नृपति-उपरनी ।।
धवल देह,कच धवल,धवल मलयज मस्तक पर ।
लगी, धवल - तल देह सुधवली लिपटी चादर ।।
तुहिनांचल सरराज समुज्ज्वल सलिल-राशि पर ।
श्रमित-हंसिनी शयन कर रही पर पसराकर ।।
आये चारों - बंधु गगन तक गूंजा क्रंदन ।
करता शोक - समुद्र करुण-सरिदल आलिंगन ।।

अरुन्धती नें कहा "बहू ! कर लो पग-पूजन ।
अभी करेंगी पूज्य राज्य-मातृका निर्गमन ।।
विकल मांडवी उठी, कुररिका ज्यों लहराईं ।
"यही कराने कार्य यहां हा! जीजी लाईं ।।"
लगा सकल रनवास पूजने चरण बिलखकर ।
चले नमन कर, उठा पालकी चारों रघुवर ।।
मानो उठा न पिंड-मात्र यह मृत-जननी का ।
धीरे से उठ गया धैर्य ज्यों पृथु-रमणी का ।।
पाकर वज्राघात खिली क्रंदन की गागर ।
चला परिधियें तोड़, करुण संवर्तक - सागर ।।
चले अथर्वण - ऋचा-गान - रत आगे मुनिजन ।
घिरा चतुर्दिक जन - सगूह करता हरि-कीर्तन ।।
प्रमुख-भूप प्रिय-स्वजन मध्य मां-शिविका चलती ।
ठहर-ठहर कर कंध भूप-मंडली बदलती ।।
करती पथ-पथ पार नगर के, सरयू-तट पर ।
पहुँची दशरथ-प्रिया प्रेय-प्रिय-शयनस्थल पर ।।
यम-उपवन के मध्य सुपावन एक समस्थल ।
सरयू-जल से किया सेवकों ने अति निर्मल ।।
तीर्थ-प्रशस्ता लिपी वेदिका, चंदन-आसन ।
अगर-तगर सोपान, लवंगी पौर सुपावन ।।
अंग-अंग पर गंधधूलि की रची रँगोली ।
सजे सुमंगल कलश सांध्य कर्पूरक रोली ।।
घृत जल सिंचित, गंध-विरवरने रंजन-आंगन ।
बिछा पलंकस-पलँग, सुमन-पत्रिका बिछावन ।।
लगा कि दशरथ-नृप ने ही ज्यों पहिले आकर ।
अमित-प्रिया-हित सौध कराया निर्मित सादर ।।
उतरी शिविका धरा, चिता पर अंब पधारी ।
गूंज उठा द्विज-घोष विष्णुपद - भेदनकारी ।।

मुनि-जन विविध-विधान कराने लगे कर्म के ॥
करने श्रद्धा - सहित लगे प्रभु मूल धर्म के ॥
कर परिक्रमा तीन मुखानल की फिर अर्पित ।
उठीं चतुर्दिक धधक निमिष में लपट प्रज्ज्वलित ॥
रौने ज्वाला-माल धूम्रदंडों के ऊपर ।
लगे लगाने कील अग्नि-कण चटक-चटक कर ॥
ब्रह्मलोक तक लगी धरा से ज्यों निश्रेणी ।
न्हाकर परम प्रसन्न प्रसवनी त्रिगुण-त्रिवेणी ॥
पंचतत्व को पंचतत्वमय पिंड-दान कर ।
गई पकड़ने प्राणानिल, चढ़ अनल-यान पर ॥
न्हाये सकल सचैल, साथ ही प्रेत-कर्म कर ।
खड़े हो गये धीर, तिलों से अंजुलि भर-भर ॥
"लवकुश को भी तनिक समीप बुलालो लक्ष्मण ।
करें स्वकुल-सम अंब-हेतु ये भी तिल-अर्पण ॥"
कहते-कहते भरी आंख प्रभु की बह निकलीं ।
बिन गर्जन रिस गईं हुमस-मय ज्यों लघु बदलीं ॥
बरसे दृगघन पुनः, उतरती सरिता उमड़ी ।
मानों बसती सृष्टि, प्रलय ही मुड़कर घुमड़ी ॥
सहसा सम्मुख देख तिरोहित - सीता दर्शित ।
हुई स्वयं कौशल्या मानो, मौन - समाहित ॥
एक वार फिर रुकीं सिसकियां कसकीं कसकर ।
लौटे पुर की ओर पुनः सब धीरज धर कर ॥
सबने सबसे कहा, रहे पर निराहार सब ।
कोई पाया जान न बीती अर्ध - रात कब ॥
प्रभु बोले "गुरुदेव ! मुनीश्वर-भूप-नारि-नर ।
श्रमित उनींदे बाल, सकल बैठे विस्मय भर ॥
दें समुचित आदेश कृपाकर ! आप कृपाकर ।"
बोले मुनिवर "उचित-उचित ही है यह नृपवर ॥

दासाश्रम निशिवास करें चल सकल तपी-जन ।
करे धरा पर शयन राज-परिवार शांत-मन ।।
कनक-भवन नृप! आप सहित सुत-वृंद सहोदर ।
जायें पहिले, पुनः चलें मुनि-नृप-नारी-नर ।।"
प्रभु बोले "प्रिय भरत! चलो तुम बालक लेकर ।
ले जाओ मां-आदि शत्रुसूदन! तुम अंदर ।
आश्रम जायें तपी, मँगाओ लक्ष्मण स्यन्दन ।"
एक-एक कर यान चढ़े मुनि ले-ले वंदन ।।
ले लव-कुश को साथ उठे वाल्मीकि मुनीश्वर ।
प्रभु-मुनि पलकें मिलीं परस्पर, विह्वलता भर ।।
दोनों ही रह गये खड़े नीची आंखें कर ।
कवि बोले, "राजेन्द्र! सम्हालो सीय-धरोहर ।।"
मुनि ने परमस्नेह हृदय सिय-बाल लगाये ।
पुनः-पुनः सर्वांग निहारे अघा न पाये ।।
बोले "पितु मर्याद, अंब का शील-धैर्य-व्रत ।
आश्रम-गौरव वंश-विरद सुत! बिसराना मत ।।
मां रानी जानकी, पिता राघव जगदीश्वर ।
पुतली सा पालना पलक में जगत सहोदर ।।
विधि से अणु-पर्यन्त, न कोई दुखी जीव हो ।
राम-राज्य के शिखर तुम्हीं हो, तुम्हीं नींव हो ।।
जड़-जंगम मंदिर न मैथिली के हों मैले ।
दे आशिष, यह भीख मांगते केश-रुपहले ।।
तव प्रिय को सिय सुते! समर्पित लवकुश तेरे ।
यही शोक, तव कार्य हुआ यह हाथों मेरे ।।
बारम्बार कुमार हृदय से लगा दुलारे ।
"मात-पिता सर्वस्व सुतो! श्रीराम तुम्हारे ।।
करना सेवा सदा समादर सहित सभी की ।
बनो यशस्वी चिरंजीव आशीष तपी की ।।"

सौंपे स्वकर कुमार, थामकर कर रघुवर-कर ।
ज्यों बिरवों से पौध सहज आ लगी धरा पर ।।
भरे राम ने बांह तनय त्यों हृदय लगाये ।
वन विहार कर विहग. कुलाय लौट ज्यों आये ।।
विश्वामित्र-वशिष्ठ चले लेकर कविवर को ।
लगा कि करके विदा सुता मां जाती घर को ।।
ज्यों निर्जन में मिले वणिक को प्रचुर-सम्पदा ।
कैसे त्यागे, रखे कहां, द्विविधा सी विपदा ।।
निराधार ये बिना जानकी धेनु, वत्स से !
लगे सोचने त्यों रघुपति ! खंडित-गृहस्थ से ।।
"अरे राम ! ये मुझे दे गई बालक सीता ।
पा इनका आधार देख ! अब जीवन बीता ।।"
दोनों बालक लिये केकई ने स्वगोद में ।
रहे राम, पाकर वियोग ही सा वियोग में ।।
लौटा ज्वारी हार, दांव पर चौसर-पासा ।
चले राम त्यों, ज्यों सागर से चातक प्यासा ।।

दोहा

हुआ अवधपति का भवन, पुनः मौन का मौन ।
किसे नींद, नींद न किसे, सोया जागा कौन ।।
युगल गये आये युगल, गणना तो भरपूर ।
किसकी निधि विधि दी किसे, कर निधिपति को दूर ।।

सोरठा

विधि का उचित विधान,
'अनुचित है' अनुचित कथन ।
हृदय देख, मन मान,
सर्वोचित सियराम - रति ।।

द्वादश-भुवन

मंगलाचरण

रमणी-मणि-प्रशस्ति

तपस्विनी अहिल्या

यद्यपि पंक स्वयं ही संसृति, हो वर्षा मन्मथ की ।
मिले रूप की दल-दल, फिर तो क्या उपमा उस पथ की ।।
ज्ञान-हस्तिपक-हीन, वयस-मद पिये मनुज-मन-मदगल ।
उसमें भी नारी एकाकिन, छिन्न बंधु-जन-सांकल ।।
जुटे सकल संयोग असंभव, घिरी अहिल्या आश्रम ।
रक्षक भक्षक-वेष पधारे, मख-भोक्ता खो संयम ।।
उतरी क्षण में बाढ़ स्वप्न की, दिखा क्षितिज तक ऊषर ।
प्रायश्चित-दव धधक, धूलि में गिरी शिला सी होकर ।।
भावग्राही ज'न भावना, आये बनकर तरणी ।
निधि-रमिणी-मणियों की भारत-अवनी रत्न-प्रसवनी ।।

देवी मंदोदरी

"कालरात्रि निशिचर-कुल की प्रिय ! वह सिय लंका लाये ।
जिसके प्रिय रच सेतु सिंधु पर, पुर पदचर-से आये ।।

दो प्रिय! सिय" बहु नित्य मनाया, माना नहीं हठीला ।
मौन धार मय-तनया बैठी, लखने विधि की लीला ।।
सजा-सजा भट-वेष सुतों को रण में रही पठाती ।
ज्यों जग देने का निज पातक, लेकर जगत मिटाती ।।
कर पति-शौचस्नान अवभृथस्नाता सी घर आई ।
कर सिय सादर विदा, शरद सुर-सरिता सी लहराई ।।
नवखंडी - मसि-अटा रही, पवि-छटा दशानन-घरनी ।
निधि रमणी-मणियों की भारत-अवनी रत्न-प्रसवनी ।।

साध्वी गांधारी

"वर विचार कर मेरे, पितु ने अक्षत जिन्हें चढ़ाये ।
वे धृतराष्ट्र जन्म के लोचन-हीन न जग लख पाये ।।"
ज्यों ही सुना, विचारा मन में, पुनः कठिन-व्रतधारा ।
"अदृक-पुरुष की तिय-हित विधि का सकल अजात पसारा ।।"
कमल-लोचनी सुकुमारी ने स्वर्ण-पट्टिका धारी ।
फुलवारी सम सहज, दुधारी पर नाची गांधारी ।।
यद्यपि धर्म-विरुद्ध, सती नें किंतु तेज दिखलाया ।
किये कृष्ण-नख धर्मराज के, हरि का वंश मिटाया ।।
पुत्र-पौत्र पा, खोकर, पाई स्वामि सहित गति अपनी ।
निधि रमणी-मणियों की, भारत-अवनी रत्न-प्रसवनी ।।

पुनीता द्रौपदी

छल से मस्तक-हीन हुए सुत पांचों पड़े निहारे ।
एक बार हो सजल विलोचन, पुनः बने अंगारे ।।
गुरुसुत, व्रत-अनुकूल बनाकर वंदी पांडव लाये ।
देख, भरी, बोली "क्यों मुझ सम गुरु-तिय सुत-दुख पाये ।।

मुक्त करो, द्विज पूज्य हमारे" चकित हुए सुन सारे ।
"केश खोलने वाली कृष्णा ने ये वचन उचारे" ॥
बोली "करती क्षमा कौरवों को यदि वनवासिन कल ।
कहलाता वह स्वांग धर्म का, हार छिपाने का छल ॥"
पंच-भामिनी सती-शिरोमणि, एक द्रौपदी अवनी ।
निधि रमणी-मणियों की, भारत-अवनी रत्न-प्रसवनी ॥

प्राणवल्लभा-ताज

"जो महबूब लगाये छाती, रखती अरी हठीली ।
देखूँ तो तस्वीरे - आशिक, कैसी रंग-रँगीली ॥"
'ना-ना' करते झपट झपट ली, लखी, रह गई लखती ।
ललित-त्रिभंगी अधर-वेणु छवि-श्यामल अलक मचलती ॥
हुई दिवानी पूर्व-जन्म की गोपी सी शहजादी ।
रुकी ताज से लाज न, हरि-छवि-रस-रति सुरति रमा दी ॥
आहट सुनती-हँसती-छिपती-झरती वन-वन क्रंदन ।
ज्यों गिरने को हुई, अंक में भरी प्रगट व्रजनंदन ॥
दिखा प्रेम-पथ शिव-विरंचि को, गई जन्म की यवनी ।
निधि रमणी-मणियों की भारत-अवनी रत्न-प्रसवनी ॥

भक्तिमती मीरा

चुड़ला पहिन, रचा कर म्हेंदी, ओढ़ी पँचरँग-चूनर ।
ले गिरिधारी का सिंहासन, ली मीरा ने भाँवर ॥
"चल्यो बींदड़ी ! गौरी-पूजन, अटल भाग हो थारा ।"
"सासड़ ! म्हें गिरिधारी—परणी अमर-चूड़लो म्हारा ॥"
तज कुल-कान बांधकर घुंघरू होकर प्रेम-दिवानो ।
संतजनों में मीरा नाची, मंत्र समाये वाणी ॥

इकतारे की प्राण वेणु, या वेणु—गात इकतारा।
मीरा-माधव ने निज-निज पन एक एक पर वारा॥
द्वारकेश के हृदय समाई, ठगी रह गई धरणी।
निधि रमणी-मणियों की भारत-अपनी रत्न-प्रसवनी॥

वीरांगना-नीलदेवी

प्रिय पिंजरे में, गढ़ घेरे में, प्रजा घिरी रौरव में।
काल-गाल में कीर्ति, फँसे मन-बुद्धि निराशा-दव में॥
उठी उषा सी छिटक नीलदेवी लख घोर-तमानी।
धार नवल-परिधान कटारी खोंसे, लगी भवानी॥
लिये सुभट-बाँके साजिन्दे, शत्रु-शिविर में धाई।
हुआ चकित सुल्तान 'हूर क्या, आसमान से आई॥'
नाची सयन चलाती, द्वौ-कर प्रखर—कटार नचाती।
भाव-भाव पर हाव-हाव वश, कटि बल खा-खा जाती॥
एक वार में चोर रिपूदर ठगी दनुजता-ठगनी।
निधि रमणी-मणियों की भारत-अवनी रत्न-प्रसवनी॥

महादेवियां

गिरिजा ने वर-वेष वनाया रतिपति-मद-हर हर का।
तुलसी ने पथ पाया रत्नावली-हेतु रघुवर का॥
काल-पाश से अक्षत लाई सावित्री अपना वर।
वेणु-नाद सुन निकलीं गोपी अर्धरात्रि तज वर-घर॥
पति-प्रण-हित बन शैव्या दासी, रही पराये घर में।
मातृभूमि-हित झांसीवाली कूद पड़ी संगर में॥
दे कर शाप शिला कर डाले वृंदा ने परमेश्वर।
रचा पद्मिनी ने, पति का केशर-बाना लख, जौहर॥

अधिक कहूँ क्या भारतीय-रमणी सी भारत-रमणी ।
निधि रमणी-मणियों की भारत-अवनी रत्न-प्रसवनी ॥

श्री सुमित्रा-निर्वाण

दोहा

जब से कौलल्या गई, तन तज कर पति-लोक ।
तब से तो सब से अधिक, घिरी सुमित्रा शोक ॥
रही सिसकती कुछ दिवस, पुनः हो गई मौन ।
कहती सहसा चौंक कर, कभी-कभी बस 'कौन' ॥
स्वजन पूँछते, 'कौन मां', रह जाती बन मूर्ति ।
लगता मानो कर रही, स्वांस-स्वांस की पूर्ति ॥
एक दिवस न्हा प्रात ही, आसन बिछा पवित्र ।
बैठी पद्मासन लगा, लगा कि चित्र-विचित्र ॥
रोम-रोम से फूटते, दिव्य दिवाकर-पुंज ।
मानों उतरा शिशिर-वन, निर्मल-ज्योति-निकुंज ॥
आये पल में ही स्वजन, दासी-जन-संदेश ।
प्रभु बोले "मां ने किया, अमर-लोक का वेष ॥
चल कर मूलाधार से, तज कर स्वाधिष्ठान ।
मणिपुर की ऊदी - धरा, करता पार विमान ॥
चला अनाहत - केन्द्र से, करता प्रगति विशुद्ध ।
करता आज्ञा-चक्र से, मुक्त द्वार अवरुद्ध ॥
प्राण-यान में आ लगे, अरे सहस्त्र सुचक्र ।
बनने चला विमान, यह—यान वीथि तज वक्र ॥
अरे ! देख लो-देख लो, मां का महाप्रयाण ।
महायोगिनी जा रही, लिये कृपण सम प्राण ॥"
धीरे से ध्वनि यों हुई, रुका कि बजाता शंख ।
तरु से उड़ा विहंग नभ, गिरा धरा तन-पंख ॥

सोरठा

बोले वृद्ध वसिष्ठ, "बहुतेरी देखीं सुनीं ।
किंतु धर्म-पथ निष्ठ, देवि सुमित्रे ! तुम रही ।।

हरिगीतिका

तव चित्त सी निश्चल, समुज्ज्वल कोरव भी निर्मल रही ।
अधिकार की अँधियारि दुर्गम वीथि में बहकी नहीं ।।
क्या केकई, सिय भी बची जिस अवध में न विवाद से ।
उभरी न कौशल्या-सरिस रमणी-सुमणि जिस गाद से ।।
उस पंक में अकलंक फैला पद्मिनी-सी चाँदिनी ।
तुझ सी सुमित्रा तू रही, कर्तव्य-पथ उन्मादिनी ।।
शंका - सरित पग-पग भयंकर भँवर लहराती फिरी ।
विश्वास - मय तेरी-तरी, पर परिजनों से ही घिरी ।।
आते न यदि छविमयि सुमित्रे ! अवध में तव शुभ-चरण ।
तो चीर पाता कौन वन-वातावरण-तम-आवरण ।।
मन एक, दो तन भरत-रघुपति जो सदैव-सदैव से ।
लगनें लगे दुर्भाग्य - सरि के कूल दो, दुर्दैव से ।।
तूने लखन को भेज कर निर्माण सेतु प्रथम किया ।
ज्यों चित्रकूट-सुपंथ पर भर स्नेह दीपक धर दिया ।।
उसकी प्रभा में स्वयं-प्रभ होकर प्रभासित भरत ने ।
हो पार पहले, पी पुनः सरि-अगम नवल-अगस्त्य ने ।।
ज्यों तू अकेली ही रही, छांया सकल रनवास की ।
दी सांवलों को स्वर्ण-छांया कोख से विश्वास की ।।
जैसी सरल तू देवि ! थी, मन से वचन से कर्म से ।
वैसी सहज स्वयमेव सज, पति-पुर पधारी धर्म से ।।

सोरठा

हो सकते सब स्वांग, पर ज्यों बौरे का कठिन ।
स्वयं काल को मांग, हुई सिद्ध तू योगिनी ।।"
किये सकल संस्कार, शास्त्र-विहित श्रद्धा-सहित ।
बोले जगदाधार, "सफल अंब जीवन-मरण ।।"

केकयी-निर्वाण

रोला

नित्य-निशा की भांति शयन करने श्रीरघुवर ।
चले, केकयी अंब-चरण वंदन कर सादर ।।
दे आशिष, कुछ अधर हिले लघु-माता के फिर ।
फिर सदैव सी मौन हुई वह, मूक नमित-शिर ।।
प्रभु बोले "मां! कहो" हिला शिर ही उत्तर में ।
वहीं धरा पर बैठ गये लेकर पद कर में ।।
"कहो-कहो मां !" लगे पूंछने साग्रह रघुवर ।
"नहीं-नहीं कुछ नहीं राम! हठ मत कर,मत कर ।।"
कहते-कहते हृदय केकई का भर आया ।
मानों बांध फलांग ताल पावस का धाया ।।
लगे पूंछने नयन, कह सके स्वर "मां!" केवल ।
हुई विमूर्च्छित, तुरत सम्हाली दे भुज-संबल ।।
काष्ठ-तल्प पर शनैः-शनैः भर अंक लिटाईं ।
पा प्रभु का संकेत दासियां भारी लाईं ।।
कुछ जल मुख में डाल, लगे कुछ वदन छिड़कने ।
दासी पिच्छक-व्यजन लगीं हट-हट कर झलने ।।

पीताम्बर से वदन पूंछ फिर, प्रभु "मां" बोले ।
धीरे-धीरे थकित-पथिक-गति से दृग खोले ।।
रखे गोद में शीश, कचों में हाथ फेरते ।
विमल लहर-दल नीलकमल-दल ज्यों बिखेरते ।।

खुले दृगों को तनिक खोल, फिर तनिक मूंदकर ।
कहा "उठा दे भद्र ! थकेगा तव तन सुकुँवर ।।"
कहते-कहते बँधी केकई की फिर सिसकी ।
"सहसा ही स्मृति आज,कहो मां! आई किसकी ।।

दिखे स्वप्न में तात पुनः तारक-प्रभात क्या ।
'रखना राम सम्हाल' कहा आ युगल-मात क्या ।।
या कि" बोलते हुए, भरे बहु भाव-ज्वार-ज्वर ।
उस वय सियवर लगे, करुणिमा-पूनम-सागर ।।

हुए पूर्ववत तुरत, प्रात के पुलिन शांत से ।
मुस्काये विष-पान किये फिर सती-कांत से ।।
हुए अंब के तरल हृदय से अधिक नयन, स्वर ।
"कहकर'या कि' न ठहर, स्वांस ठहरेंगे रघुवर ।।"

"नहीं-नहीं कुछ नहीं और कुछ और बोल मां ।"
"कह-कह ना मत जीभ-अधर, मत वदन खोल मां ।।
हां-हां रे राजाधिराज ! कहता-कहता जा ।
मौन घाव पर घाव प्रजावत्सल सहता जा ।।

दोष प्रजाओं का क्या वे निर्दोष सर्वदा ।
मैं ही इस साकेत-धाम की मूर्त आपदा ।।"
कहते-कहते बैठ गई कैकेई उठकर ।
देख राम की ओर, हट गई दासीं झुककर ।।

"यदि मम मति बँध मोह-पाश में भ्रष्ट न होती ।
यों रघुकुल की अवध अवय ही नष्ट न होती ।।
तृण-समान वे भूप, देह को क्यों तज जाते ।
क्यों फिरते तुम राम ! वनों में ठोकर खाते ।।

क्यों कोई खल कनक-हिरण बनकर ललचाता ।
सिंह-सुंदरी हाय ! स्यार कैसे तक पाता ।।
क्यों घड़ती फिर प्रजा-मुई अनहुई-कहानी ।
क्यों पाती वनवास कनक-भवनों की रानी ।।
जिसे देखकर हुआ अनल मलयज सा शीतल ।
उस सीता को गया निगल तिल-तिल विरहानल ।।
राम! सुनोगे, क्यों न सुनोगे, सुनो, सुनाती ।
होतीं स्मृतियां मुदित, किन्तु छाती भर आती ।।
राजसूय के समय दशानन की रानी ने ।
क्या वाणी से कहा, रखा क्या दृग पानी ने ।।
फिरता है हर समय दृश्य वह सम्मुख मेरे ।
रोम-रोम में शब्द पड़े वे डाले डेरे ।।
'यद्यपि लंका में न दिखाई देता वह घर ।
जिसका, जिसके-हेतु न जूझा एक-एक नर ।।
तो भी भय से नहीं, आंतरिक-श्रद्धा से भर ।
करता निशिदिन नमन निशाचर-परिकर सादर ।।
चढ़ता है सिंदूर घरों में सीता-छवि पर ।
चलते घर से 'सीय' और आते 'सिय' कहकर ।।
शिशु-शिशु की मां 'सिय-सिय' कह रखती उठावने ।
लंक चतुपष्थ-त्रिपथ नाम सिय के लुभावने ।।
अब अशोक-वाटिका न कोई नाम जानता ।
लंका का श्री-वास आज प्रत्येक मानता ।।
ज्यों अशोक के पत्र-प्रसून दूर से दिखते ।
त्यों ही सादर स्वतः शीश सब ही के झुकते ।।
भाग्यवान वे स्वल्प, राम-दर्शन जो पाये ।
शेष आज के युवक, कथा ही सुनते आये ।।
देख चुकीं जो सीय, तीय वे तो बहुतेरीं ।
प्रातः-सायं लंक-दहन गा देतीं फेरीं ।।

वंदनीय वे अंब ! मैथिली, वधू तुम्हारी ।
कुलदेवी-आराध्य आज तो हुईं हमारी ॥'
कलह-मूल अरि-तिय-प्रति,क्या ये विजितों के स्वर ।
भयवश झरता कहीं निरन्तर क्या यों अंतर ॥

वह निषाद-भामिनी चुनर के लघु तारक-कण ।
आंचल बांधे, शीश लगाती फिरती क्षण-क्षण ॥
कहती 'जबते धोए सियजू ने पग थोरे ।
तब ते अतिसय धवल गंग के भये हिलोरे ॥'

'जिस पर शत्रु-सुबाल क्षुद्र-कुल-जाति-गँवारीं ।
प्रेम लुटातीं, मोह-विवश नारी पर नारीं ॥
वह सिय थी आश्चर्य-कथाओं की सी पात्रा ।
कहां मिलेगी अमित लाख-चौरासी-यात्रा ॥

लाये जिसे उतार हाथ ये कल डोले से ।
वह जा बैठी आज, धरातल-तल डोले से ॥
पानों की नस-सरिस रसा में बसी हँसी से ।
तड़प रही मैं किंतु स्वांस की फाँस फँसी से ॥

'कितने अक्षय-पाप, न जाने हैं कब-कब के ।
एक साथ प्रत्यक्ष हुए सब के सब, अब के ॥
एक-एक वह दृश्य, चित्रपट सा फिरता है ।
करते-करते स्मरण, हृदय चर-चर चिरता है ॥

समझा लेती सभी स्थान पर कुछ-कुछ निज मन ।
भूल न पाती किंतु विपल-भर तव निष्कासन ॥
नृप के वे वर बने शाप क्या, सांप-भयंकर ।
कण-कण डसते, हाय ! न लेते निठुर प्राण हर ॥

तव निष्कासन पाप, कुष्ट-सा गला रहा मन ।
प्रायश्चित क्या करूँ, बता रे ! तनिक प्राणधन ॥
कितने मुनिजन राम ! तुम्हें कहते परमेश्वर ।
मानूं,मानूं क्यों न, अरे ! मेरे विश्वम्भर ॥

तुम मेरे सम्राट-पुत्र-प्रियवर-सर्वेश्वर ।
किंतु तुम्हारा मौन मुझे मथ रहा निरन्तर ।।
कह प्रायश्चित् राम ! बोल या 'पापिन! मर-मर' ।"
गिरी पदों पर तुरत, राम ने ली हाथों पर ।।

बोले "प्रसवनि ! हाय, आप यह क्या करती हो ।
पाद-पीठ पर माथ, मुकुट मम क्यों धरती हो ।।
गुरु-गृह-हित संतति-निष्कासन जननि! पाप यदि ।
कन्या-भाँवर-गति निष्कासन जननि! पाप यदि ।।

लख रिपु-सम्मुख पति-निष्कासन जननि ! पाप यदि ।
हरि-हित कर प्रिय-यति निष्कासन जननि! पाप यदि ।।
तो निश्चित ही तव द्वारा मम वह निष्कासन ।
निष्कासन ही सत्य, गया तुमसे पातक बन ।।

धर्मभीरु ! इसका प्रायश्चित उठ तुरंत कर ।
राम - राज्य पर फूंक मार अंगार एक धर ।।
प्रायश्चित् पाप का, पाप के फल का मोचन ।
श्रुति-सम्मत-सिद्धांत अधिक अब सोच न, सोच न ।।

बोल, न यदि वनवास राम को वह मिल पाता ।
तो, वह कल का राम, आज का राम कहाता ।।
कौशल्या का राम, अयोध्या गया छोड़कर ।
कैकेई का राम, पाप का दंभ तोड़कर ।।

फिर लौटा साकेत, वही तो सिंहासन पर ।
तव, कलमष का कुफल, उसे उठ! अभी भस्म कर ।।"
"मौन-मौन हो राम !" रखे प्रभु के मुख पर कर ।
"मंगल-भाषी अलम्, न शोभित तव मुख ये स्वर ।।

दो-बातें कह आज, कर रही थी मन हलका ।
इतना हलका किया, दिया सब ही कुछ छलका ।।
क्या कहने को रहा, न कुछ छोड़ा सुनने को ।
बहुतों से बहु सुना, विलोका अब अपने को ।।

इसीलिये जग में अजातरिपु तात राम ! तू ।
इसीलिये धर्मस्वरूप विख्यात राम ! तू ।।
इसीलिये मर्यादा-पुरुषोत्तम अकाम ! तू ।
और अधिक क्या कहूँ राम सा अरे राम ! तू ।।

गंगा में ही पंक अनेक उलीचा करते ।
पंकज-हेतु अनेक पंक भी सींचा करते ।।
अब जानी, जड़ हुई अहिल्या कैसे चेतन ।
कैसे शबरी बनी अचानक पुण्य-निकेतन ।।

अब जानी, क्यों लिये कठौता फिरता केवट ।
अब जानी,क्यों वृद्ध-गिद्ध हो गया महाभट ।।
कल के क्षुद्र कुधातु,स्वर्ण शुभ सभी आज के ।
किन्तु स्पर्शमणि मौन, कौन क्या कहे गाज के ।।

सच कहते मुनि! राम,न तुमको कोई जाना ।
दी तुमने पहचान, राम ! तुमको पहचाना ।।
होता जगत कृपालु जगत-वैभव मिल जाते ।
अपनी कृपा कृपालु ! आप अपने अपनाते ।।

अपनाली, मैं किंतु न अपना सकी अभागन ।
ईंधन जानी, मलयाचल-भिलनी सी चंदन ।।
पाया मन-मृग नाभि, सुगंध भरी कस्तूरी ।
ज्यों आया नभ हाथ, नपे कैसे तल-दूरी ।।

क्यों प्रहेलिका कहूँ, छिपा क्या ।जसे छिपाऊँ ।
किन शब्दों में हाय! हृदय की व्यथा सुनाऊँ ।।
कुछ क्षण के ही लिये प्राण राघव! अटके हैं ।
व्यामोहितहो अंत-समय पामर भटके हैं ।।

यद्यपि कुछ भी नहीं, किंतु फिर भी सब कुछ है ।
कभी सोचती जब का सब कुछ,क्या अब कुछ है ।।
एक टीस सी कभी-कभी ऐसी उठती है ।
लगता जैसे अभी-अभी छाती फटती है ।।

जिसके कारण लोक और परलोक गँवाया ।
दुख-कलंक-वैधव्य शेष क्या, जिसे न पाया ।।
मेले में से बिछुड़, भीड़ में पड़ी अकेली ।
विगत-कलों की राज-मुद्रिका खोटी-धेली ।।
कौन शेष सम्मान, पा न ने कई चुकी जो ।
कौन शेष अपमान, पा न केकई चुकी जो ।।
जेठी-मँझली राम ! सुदेवी थीं, न मानवी ।
बना गया सुत-प्रेम मुझे ही हाय! दानवी ।।
ये प्रपंच के मंच क्षुद्र छल-छद्म रचाये ।
त्रिय-चरित्र के भेद कौनसे, जो न दिखाये ।।
दोष मंथरा को क्यों दूं, दीना चेरी को ।
काठ मार तो गया नहीं था मति मेरी को ।।
यत्न-प्रयत्नों सूझ-बूझ की ताना-भरनी ।
अपने हाथों बुनी श्वेत - साड़ी ये अपनी ।।
क्या था तुमसे वैर, किंतु जग वैरिन जाना ।
जिसका हित गुरु मान, शेष को अति-लघु माना ।।
जिसके कारण शेष बचा, क्या हां सुनने को ।
उसी भरत से तरस गई हूँ "मां" सुनने को ।।
राम-राज्य में सब कुछ बदला, भरत न बदला ।
घुल-घुलकर घोसकी तनय का हृदय न गदला ।।
मुख नीचे कर नयन चुराता मिलते-मिलते ।
लगता छिड़का लवण छिलौरी छिलते-छिलते ।।
मुंह भर, दृग कर, एक न कहता बात भूलकर ।
क्या मर जाऊँ राम ! हृदय यह शूल हूल कर ।।
भरत-वदन से "मां" सुनने को प्राण पड़े हैं ।
समझाती हूँ किंतु कुटिल के कुटिल अड़े हैं ।।
लगता, देती नित्य लहर सरयू की झाला ।
करती नित आह्वान प्रज्ज्वलित मख की ज्वाला ।।

नित्य-निशा सम्राट और वे जेठी-मँझली ।
कहते बारम्बार 'अरी! आजाना पगली ।।
जिन्हें गुंजा कर मौन हो गये सिय के नूपुर ।
उन भवनों में शयन शांति से करतो निष्ठुर ।।

पर मैं सोती कहां, रात-रातों रोती हूँ ।
भरत कहेगा 'अंब' प्रात नित मुँह धोती हूँ ।।
इस मरीचिका में कैकेई मृगी फँसी है ।
राम ! हृदय का दाह,जगत के लिये हँसी है ।।

मम मुखपाटी बँधी,चढ़ी जगती-दृग पाटी ।
उधर रतौंधीं बढ़ी, इधर घिर आई लाटी ।।
परिभाषा क्या पाप-पुण्य की समझ न पाई ।
दे चरणों में स्थान, शरण प्रभु ! तेरी आई ।।"

कहते-कहते उखड़ चला कैकेई का स्वर ।
प्रभु ने देखा प्राण-पोत के उठते लंगर ।।
"है कोई" प्रभु-शब्द सुने, त्यों दासी आई ।
"आये भरत तुरंत" श्रवण कर दसियों धाई ।।

क्षण-भर में ही मची सदन-भर में हलचल सी ।
मां-निवास की ओर लगी चल-चल-चल-चल सी ।।
ज्यों बैठे थे तुरत स्वामि - अनुशासन पाकर ।
खड़े हुए आ भरत तुरत केकई-द्वार पर ।।

रघुपति बोले "भरत ! अरे आ जाओ अंदर ।
चला-चली के ठाट, गँवाओ समय न रुककर ।।"
हुए खड़े नतशीश कक्ष में आ, चरणों में ।
'मां से बोलो', बोले प्रभु नयनों-नयनों में ।।

स्तम्भित से रह गये, हो गये अधर-चरण जड़ ।
प्रभु ने फिर से कहा "भरत ! आ आगे को बढ़ ।।"
यंत्र-चलित पुतलीव बढ़े कुछ इधर-उधर पद ।
"सुन मां क्या कह रही अरे" प्रभु बोले गद्-गद् ।।

अध-मुंद पलकें, झुकी ग्रीव कुछ और झुका कर ।
खड़े हो गये पुनः चरण-अंगुल सरका कर ।।
"बोल भरत ! कुछ बोल" "नाथ! क्या बोलूं, बोलो ।।"
"कह मां ! मैं आ गया, नयन तो खोलो-खोलो ।।"
प्रभु बोले कुछ तीव्र, भरत को लखकर गुमसुम ।
"कहता मैं सम्राट पूंछ मां ! कैसी हो तुम ।।"
"कैसी हो मां ! पूंछ रहे सम्राट" भरत कह ।
पुनः प्रथम से मौन हुए दुस्सह-शासन सह ।।
खोलीं अधमुंद पलक, पलक में अपलक झांका ।
कहतीं ज्यों 'सम्राट ! आज तुझको भी आंका ।।
पद्मकोष कितने वज्रों के मृदुल-बिछौने ।
कमल-वनों के वज्र पहरुए सुदृढ़ सलौने' ।।
झुकीं राम की पलक, मिली रह सकीं न पल-भर ।
देख राम की हार, लटी मां-पलक हार कर ।।
रहा उपस्थित चकित स्वजन-दल चित्र-लिखा ज्यों ।
लगा सोचने स्वप्न, सत्य यह दृश्य दिखा ज्यों ।।
मां के चमके बिन्दु, बिन्दु दो प्रभु के टपके ।
अ-घन प्रकंपन-मय नभ से, दृग रहे भरत के ।।
कुछ लोचन बह चले, रहे कुछ परिधि भरे ही ।
कुछ ने बिचले जान, फिरा मुख, मले परे ही ।।
फिरते अद्भुत-करुण सटे से त्यों शंकित-चित ।
लेते पथ-पथ रोक चतुष्पथ क्षण-क्षण अगणित ।।
मां ने पुतली फिरा-फिरा सब ओर निहारा ।
ज्यों फिरती नर्तकी भरे थाली भर पारा ।।
फिरती-फिरती दृष्टि लगी पग-पग पर रुकने ।
उठतीं-उठतीं पलक लगीं पल-पल में गिरने ।।
प्रभु ने देखा प्राण-अतिथि अब अल्प-क्षणों के ।
शैया तकते सुभट - सैन्यपति महारणों के ।।

काल और मृत्तिका की पूरी आंख-मिचौली ।
चली अमावस ज्यों पूनम की भरने कौली ॥
कंक-किंकरी ने संयमनी के पट खोले ।
भरे कंठ को खोल शीघ्र ही राघव बोले ॥
"लीप मांडवी ! चौक, उर्मिला! कुशा बिछा री ।
महाराज का चित्र यहां श्रुतिकीर्ति ! लगा री ॥
ला तुलसी शत्रुघ्न !, लखन ! रे ला गंगाजल ।
लव! कुश! अंगद! चित्रकेतु! अरिघाती ! पुष्कल ॥
तक्ष! सुबाहू सुतो ! पुण्य हरि-नाम उचारो ।
पितामही को धीर धार कर धरा उतारो ॥
पंचरत्न ये भरत ! अधर पर माता के धर ।
बैठो दक्षिण - अंक अंब का मस्तक लेकर ॥"
हिलीं पलक कुछ, लगा सुकंपन सा अधरों पर ।
"भरत! राम! 'सा लगा दृगों को क्षीण-स्वरों पर ॥
नाभि-हृदय से उठी, कंठ से निकली हिचकी ।
कैकेई की एक ओर को ग्रीवा लटकी ॥
"गई-गई मां गई" गिरा राघव की निकली ।
"गई-गई मां गई" वधू चीखीं हो पगली ॥
"गई-गई मां गई" अवध तड़िता सी तड़की ।
"गई-गई मां गई" भरत की पलकें फड़की ॥
उठा भरत को, भूमि अंब का शीश टिकाकर ।
उत्तरीय आपाद कंध से उठा, उढ़ाकर ॥
लगे बिलखने राम, भित्ति पर शीश पटक कर ।
दौड़ भरत ने भरा वक्ष में प्रभु को कसकर ॥
"नाथ ! नाथ! रघुनाथ! हमें दो धीरज कृपया ।"
"मत कह नाथ, अनाथभरत! मैं आज हो गया ॥
उन मांओं ने अंत समय कर जिसे थमाया ।
देख ! राम-दुर्भाग्य, उसे भी हाय ! गँवाया ॥

वे देवीं यह किंतु देवियों की देवी थी ।
महा-भेदियों के कुल भेदों की भेवी थी ॥
हाथों में से हाय ! काल ने वही छीन ली ।
संसृति-रज से निठुर-धूर्त ने सुमणि बीन ली ॥
भाया मुझको कोटि अयोध्याओं से वह वन ।
किंतु अयोध्या सत्य आज की लगती निर्जन ॥
जो वन देकर लगी मुझे, वरदान-मयी मां ।
वही अवध अभिशाप-सरिस दे आज गयी मां ॥
'रामचन्द्र!राजाधिराज!' तो बहुत कहेंगे ।
क्या आज्ञा-आदेश शीशनत अमित रहेंगे ॥
पर यह अंतिम गई "राम" की कहने वाली ।
आज्ञा-दायक रहा, न मैं आज्ञा - प्रतिपाली ॥
भरत ! हमारे होम रचाते गये हाथ जल ।
सत्य दिखायें किसे, अमृत में गये कमल गल ॥
कनक-भवन सी मुखर राम-छवि प्रखर दिखेगी ।
नींव-शिला सी लुप्त, हाय ! मां सुप्त रहेगी ॥
यह अनघड़ सी मौन, मौन में मौन समाई ।
जाना जिसको जगत न, वह केकई कहाई ॥
एक बार में एक बार पी गरल शंख-भर ।
महादेव विख्यात हुए पल में प्रलंयकर ॥
किन्तु अनेकों बार अनेकों ने प्याले भर ।
दिये अनेकों जिसे, पी गई शीश झुकाकर ॥
वह केवल केकई - अंब की सहन-शीलता ।
क्या संज्ञा दे उसे शब्द-ब्रह्म की दीनता ॥
लोटी पंक-कलंक लोक की निंदा सहती ।
पंकज-माला रही सलिल पर नर्तन करती ॥
पूंछा कितनी बार, आज ही जिह्वा खोली ।
अनबोली दो-बोल बोल, होकर अनबोली ॥

कैसी सोई, कभी न जागो ही हो जैसे ।
जाग-जाग ज्यों थकी, सो गई माता ऐसे ॥
कैसा रूप अनिंद्य, धुली ज्यों क्षीर ज्योत्स्ना ।
कुंतल-माला धवल, रची ज्यों इला-अल्पना ॥
लगता, जैसे अभी खोलकर विमल विलोचन ।
कर डालेगी सकल शोक-संताप-विमोचन ॥
जिसने कंटक एक-एक पलकों से बीना ।
आंचल में ले गई छिपा छलनी सा सीना ॥
राम-राज्य के शुभ पाटल का यह, वह कांटा ।
बहुत चाह कर जो कि राम से गया न छांटा ॥
रामचन्द्र का पौरुष हार यहां पर माना ।
यह रवि-अंकित भाल यहीं हा! पड़ा झुकाना ॥
कभी राम रामत्व -दंभ से जाए न मारा ।
विधि ने मेरे हेतु दिठौना यही विचारा ॥
काल-चक्र के कर्ता-हर्ता-पालनकर्ता ।
तव इच्छा हो पूर्ण, शीश धरती पर धरता ॥
सुरकुल-चौसर की जा चली बावली-सारी ।
हो न खेल का अन्त, दाँव दे जीता, हारी ॥
पग-पग जागी रही आरती की बन बाती ।
जल पल-पल सस्नेह अर्चना रही निभाती ॥
सरस्वती-माता के ध्वज की प्रबल-दंड जय ।
मूर्तिमती-साधना सिद्धि साधन-प्रचंड जय ॥
अपराधी मैं खड़ा, हाथ फिर बढ़ा थाम ले ।
ममतामयि! इस दीन राम का फिर प्रणाम ले ॥

दोहा

'दुखित न कर वधु ! चित अधिक,' कहना मां! सिय थाम ।
लेगा मना स्वमानिनी, किसी दिवस आ राम ॥"

दशा देख रघुनाथ की, होता देख प्रभात ।
सविनय लाये अजिर में, प्रभु को मंत्री-भ्रात ॥
कौशल्या से अधिक दे, विविध भाँति सत्कार ।
स्वयं किया रघुनाथ ने, कैकेई-संस्कार ॥

रोला

कर स्नानादिक सकल, तिलांजलि दे तदनन्तर ।
अति शोकाकुल मौन सभाजिर बैठे आकर ॥
रघुनन्दन के नयन देख निर्भर से झरते ।
अत:पुर से उठे कई स्वर और सिसकते ।
मुनिजन कहने लगे विरति-मय कथा पुरानी ।
"हार मृत्यु के द्वार विधाता तक ने मानी ॥"
प्रभु बोले "संसार-धर्म इसका क्या रोना ।
जो जन्मा है आज, यही कल उसका होना ॥
मां ने तजा शरीर पूर्णवय भोग सर्वथा ।
कह आकस्मिक-निधन बात क्यों करूं अन्यथा ॥
मातु-मृत्यु का शोक वस्तुत: मुझे न इतना ।
ज्यों पाई वह अंत, शोक है उसका जितना ॥
मन के पाहन मान विमन मन से मन ही मन ।
मां नें ढोये प्राण-पाहुने जर्जर कर तन ॥
कितना अद्भुत, गये विपिन जो जिसके कारण ।
उन्हें न आता स्मरण विपिन-दुख का लघु क्षण-कण ॥
किंतु मानती रही शाप, वरदान-मयी वर ।
गई हृदय ले शूल, रिसाती लोचन निर्भर ॥
मन की मन में रखी, न मुख से भाप निकाली ।
कल बोली दो-बोल, काल ने आज उठाली ॥
वह मर कर जी गई भार देकर जीवन का ।
हम जीते जी मरे, करें क्या पामर-तन का ॥

दें तृण सा तन तोड़ कि तिल-तिल जलें सजीवन।
वन में वन वरदान, सदन में शाप गय बन।।
है चारों ही तनुज सदा तीनों वे माने।
अंब-प्रसवनी भेद कदापि न हम भी जाने।।
उस दिन पहली बार. भनक यह पड़ी कान में।
जब कौशिक मुनिराज पधारे पूज्य - पास में।।
बोले, दो रघुराज ! राम कौशल्यानंदन।
साथ सुमित्रा-तनय शूर-शिर-भूषण लक्ष्मण'।।
सुन मिथिला में गीत नारियों के अति-मनहर।
एक बार हो मौन, हँसे हम सभी ठठाकर।।
कहा अवध जब लौट, हँसीं तीनों मुस्काकर।
हुए पूर्ववत सकल गई-आई बातें कर।।
पर उस दिन क्या हुआ, न मैं यह अब तक जाना।।
क्यों चाहा युवराज भूप ने मुझे बनाना।।
साथ-साथ ही जन्म-केलि-उपवीत-अध्ययन।
लालन - पालन हुआ, हुआ वरयात्रायोजन।।
कर विवाह भी साथ-साथ वधुयें घर लाये।
फिर चारों में राजमुकुट क्यों एक सजाये।।
मैं विचार रह गया, विचारा विधि ने भी पर।
फिर सबको सब विदित,हुआ क्या-क्या उस अवसर।।
लघु-मां की दृग-ज्योति बनी चेरी चिंगारी।
अंबाकुल-सिंदूर चढ़ा बलि सा अग्यारी।।
भुवन-भुवन में फैला निंदा - धूम्र बवण्डर।
अवध-रमा माँ, महाबला सी लगी भयंकर।।
वल्कल लाकर दिये हमें जिस भाँति तमक कर।
ब्रह्मनिरत गुरु-दम्पति भी रह गये चमक कर।।
हुए विमूर्च्छित तात, तात का तो क्या कहना।
सीखे उनसे जगत प्रेम-वश जीना-मरना।।

किंतु न आता याद एक भी, उस वय का जन ।
जिसके सावन नयन न, फागुन धधक उठा मन ।।
वातायन से नयन-चार चमके मुरझाते ।
बड़वानल पर शांत कुहू-दधि से लहराते ।।
अंतर परम-अधीर, परस्पर धीरज देतीं ।
नयन-सरित नयनों की मरुमाला पी लेतीं ।।
रही वेंत सी झुकी समर्पित हो प्रवाह को ।
कण-कण करतीं क्षार, मानती हार दाह को ।।
वे, वे दोनों अंब धर्म की यशस्तम्भ थीं ।
धर्म-स्नेह पय-नीर विवेचक परम-हंस थी ।।
पर माता केकई, एक क्या उसकी संज्ञा ।
कहूँ कांचनी-उषा आंजनी अथवा संध्या ।।
रण-भू प्राभांजनी राजंनी स्वजन-रंजनी ।
कठिन समस्या-व्यूह-यूह की सबल-भंजनी ।।
सकल विरोधी-भाव बना अविरोधी जिसने ।
किया भुवन-तम विजय, किया जय जिसे न मद ने ।।
वन-वेला क्या क्रोध, बोध क्या चित्रकूट पर ।
शतकंधर-अवरोध मोद क्या, वयस छिपी डर ।।
फिर वह शाश्वत-मौन न जानी कौन पास में ।
निखिल हलाहल पान कर गई स्वांस-स्वांस में ।।
अपने में ही व्यस्त, अस्त करती अपनापन ।
अपना ही उपमान बनी, जी कर जग-जीवन ।।
चरित कल्पनातीत अलौकिक लेकर माता ।
गई, धरा से जोड़ पहेली का सा नाता ।।
ज्यों गज-मस्तक चीर ले गई मणि वनरानी ।
रहीं लोथ अब चीथ शृगाली वन भट-स्यानी ।।
उसका हल बन गया समस्या आज हमारी ।
सरित तरी वह तैर, यहाँ तरि बिन पतवारी ।।

सदा-सदा की शांत हुई क्यों सहसा कर्कश ।
सबल-सिंहनी धेनु-सरिस की, किसने निज वश ।।
कहें भरत का विमत, लोक-मत का असमर्थन ।
यह झंझानिल स्नेह रिता कर, दीप-प्रकाशन ।।
जाने सुत की प्रकृति न मां, यह कैसे संभव ।
मातृ-मनीषा, भरत-सरलता दुर्लभ विधि-रव ।।
थी मां को पहचान पूर्णतः पुत्र भरत की ।
उतरी सम्मुख-समर चतुर वह सुदृढ़ पृष्ट की ।।
यदि न जानती धैर्य भरत का अडिग हिमाचल ।
करती निश्चित नहीं कभी नृप से दो-दो छल ।।
बोल रहा वह आज, बोलना था जो पहले ।
खोल रहा वह आज, खोलना था जो पहले ।।
किंतु हाय! निर्देश-वेष में दैव भयंकर ।
देकर जग को सूर्य, सूर्य को तम प्रलयंकर ।।
लिये कुटिल - मुस्कान खड़ा कैसा मुस्काता ।
कर स्मृतियों का स्मरण, न सहसा देखा जाता ।।
जिसने प्रबला परम बनाकर छोड़ी अबला ।
पति-पुत्रों से छीन मराली वधी निर्जला ।।
यद्यपि यात्रा-समय कहा कुछ मुनि अगस्त्य ने ।
किंतु न जाना भेद आज तक तनिक जगत ने ।।
सूत्रधार कुछ यहां विराजे उस नाटक के ।
यदि अब माने उचित, कृपण मत बने वचन के ।।"

दोहा

मची सभा में खलबली, देख राम को मौन ।
लगे सोचने नाट्य क्या, सूत्रधार कुछ, कौन ।।
फिर-फिर कर ठहरीं सकल, गुरु वशिष्ठ पर दृष्टि ।
बोले गुरु "वन - नाट्य की, सत्य हमारी सष्टि ।।

कवि-कौशिक-घटजादि भी, मेरे जैसे अन्य ।
सोच रहे हैं आज हम, धिक्कृत हुए कि धन्य ।।"

रोला

मुनि कौशिक की ओर देख, आसन से उठकर ।
बोले झांक अतीत तिमिर-मय रघुकुल-गुरुवर ।।
"देख रहे हैं आप सभी क्यों कैसे हम को ।
अनदेखा कर, देख रहे हम उस त्रिभुवन को ।।
जिसमें हाहाकार घोर - चित्कार भयंकर ।
क्रंदन करते गगन-क्षितिज दशदिशा-दिगन्तर ।।
धधक रहे कौमार्य-सतीत्व वासनानल में ।
रही मनुजता डूब, दनुज-दल मद-सरि-जल में ।।
बंदी बना कुतर्क-कंदरा धर्म-सनातन ।
संस्कृति करती आत्मघात पाखंड-विषाशन ।।
खंडित होता राष्ट्र, स्वजन हो रहे पराये ।
हुआ ज्ञान-रवि अस्त भ्रमाम्बर तम-घन छाये ।।
अमित काल पश्चात् दशानन कुफल फला कल ।
जब खल-पादप-मूल उठा भू पर शिर के बल ।।
सकल नभानिल सोख, तलातल का पीकर जल ।
बना गृद्ध-जन-वास, बना बैठे विल अहि-दल ।।
किंतु ब्रह्मवेत्ता त्रिकालदर्शी कुछ ऋषिजन ।
जान गये थे यह कटु-भावी का आमंत्रण ।।
पृथक-पृथक बहु यत्न किये, पर हुए न सुसफल ।
देखे सात्विक - तत्व पूर्णतः सब विधि निर्बल ।।
कहां हीन-मन भग्न-मनोरथ, कहां संगठन ।
करते विल के उरग कहीं क्या धरती धारण ।।
मैं ये कौशिक-भरद्वाज-कवि-अत्रि पंचजन ।
लगे ममाश्रम बैठ, बुद्धि का करने मंथन ।।

दक्षिण से संदेश मिला था घटसंभव का ।
"अतिशय मलिन-विचार पुनः है दशकंधर का ।।
देख, ताडका-सुभुज घोर संहार सपरिकर ।
सौंप स्वधनु तप-हेतु गये, हो शान्त परशुधर ।।
त्रिपुर-दलन त्रिपुरारि-चाप खंडित धरती पर ।
बढ़ता नित्य प्रचार निशाचर - अन्त राम-कर ।।
सम्मुख-रण से अधिक कूट-नय का ले प्रश्रय ।
फैल रहा दशशीश प्रगट यह अशुभ-समुच्चय ।।
स्वयं वालि से हार स्व-श्यालक-वध विलोक कर ।
नित्य भेजता यान सुरा-सुन्दरियों से भर ।।
वैध संधि के बिना टाल कर विग्रह-कारण ।
बसा गौतमी-तीर ससैन्य त्रिशिर-खर-दूषण ।।
तांक रहा है गृद्ध-दृष्टि से समुचित अवसर ।
भारत - जय का स्वप्न पुरातन मन में लेकर ।।
दनुज-पराजय - हेतु कार्य का यही समय है ।
बिना युक्ति के किन्तु न अपनी जय निर्भय है ।।
फैल रहे हैं ठौर-ठौर अति क्रूर - निशाचर ।
छिप जाते हैं देख बृहद् - सेना को पामर ।।
महापुरुष यदि दिव्य सकल गुण-व्यूह-समन्वित ।
लेकर दृढ़-संकल्प, चले] कोई निर्मल-चित ।।
रामचन्द्र ही दिखे हमें निर्दिष्ट घटज के ।
किंतु बनें किस भांति पथिक-वर वे इस पथ के ।।
किये -सनातन - धर्म-तत्व को हृदय समर्पित ।
तो होगी उपलब्धि सिद्धि की सम्मुख, निश्चित ।।
प्रबल-समस्या परम-ममत्व भूप-दशरथ का ।
बनने देंगे पथिक न सुत को दुष्कर-पथ का ।।
शंबरारि-वात्सल्य अनोखा, परम अनोखा ।
जगत विदित सुत-शौर्य, स्नेह-वश कहते धोखा ।।

कहते थे एकान्त रानियों से, मुझसे भी ।
मर सकते क्या दनुज अहेरी-धनुशर से भी ।।
कहां कुंवर सुकुमार, कहां ताडका भयंकर ।
कहां शूर मारीच, कहां लघु-वाण बिना फर ।।
जिसने अवधागार ढहाये पदाघात से ।
गिरा लंक वह किस पचासवीं अ-श्रुत-वात से ।।
हो निर्द्वन्द सुबाहु ससेना द्वन्द मचाता ।
राम-लखन के हाथ कहीं वह मारा जाता ।।
शिव का महा-पिनाक त्रिपुर दल डाले जिसने ।
देखा जिसकी ओर न रावण-बाणासुर ने ।।
जिस पर भूप अनेक संगठित होकर बरसे ।
वह हो क्षण में भंग कुंवर के सुकुंवर कर से ।।
यह मानेगा कौन, मूर्ख है क्या जग इतना ।
बढ़ा-चढ़ा कह रहे महामुनि कौशिक जितना ।।
शिष्य-कीर्ति की पुष्ट, नष्ट कर खल स्वशाप से ।
टूट गया शिव - चाप शंभु की कृपामाप से ।।
करने को उपहास मिला मैं चौथेपन में ।
लेता हूँ मैं मान, मना कर मन को मन में' ।।
फिर करते परिहास स्वयं प्रमुदित निज सुत से ।
अरे सुभुज-भुज-दलन! बोल तो दो-पल हम से ।।
कौशिक को सुत दिये धर्म-संकट के कारण ।
आज अकारण पुत्र न भेजेंगे समरांगण ।।
रामचन्द्र नृप-स्नेह - नयन की पुतली-श्यामल ।
रखते सदा सम्हाल जिन्हें पलकों में पल-पल ।।
हो न राम-कर देव-कार्य संपन्न, असंभव ।
नृप से करना किंतु राम को पृथक, न संभव ।।
पड़े शोच में सकल, गगन फैली अँधियारी ।
प्रकटी एक तुरन्त पुरुष-छवि छवि सी नारी ।।

घेर शैल-संकल्प ऊर्मि नयनोर्मि उगलती ।
धर्म-स्नेह ध्रुव मध्य भाव-दधिमाल मचलती ।।
कौन पुरुष यह, जो दयार्द्र नारी सा कोमल ।
नारी तो वह कौन प्रबल पौरुष की संबल ।।

करने लगे विचार परम विस्मित से मति-मन ।
रख प्रलंब-शल भूमि, किया आ निकट सुवंदन ।।
बोले हम सब चौंक "विजन-वन कुवय तमानी ।
आप अकेली यहाँ कहां कैकेई रानी ।।

आर्थ क्या सम्राट, बात क्या, सकल सुमंगल ।
चली आ रहीं तुरत, रुकीं या बाहर दो पल ।।"
बैठी हँसकर पास, मंद-मृदु-स्वर से बोली ।
"छिपी नहीं गुरुदेव ! गांठ तो छिपकर खोली ।।

सुन लीं सारी बात, किंतु निश्चिंत रहे मन ।
आश्रम से कुछ दूर टिकीं हय ले दासी-जन ।।
समझ गई थी है रहस्य कुछ, भारी संकट ।
गुप्त-रूप से मिला तभी यह मुनिवर-संघट ।।

राजा की विश्वास-पात्रता न्यून जानकर ।
या राजा पर कष्ट-विशिष्ट स्वहृदय ध्यान कर ।।
रहे छिपे वन-तिमिर जगत अविवेक-तिमिर-हर ।
बैठे आश्रम-मध्य अर्धनिशि, दिवस बिता कर ।।

गुप्त-चरों से जान आपका अवध-आगमन ।
आये तुरत विवाह-समय के स्मरण, संस्मरण ।।
ले विवाह-प्रस्ताव पधारे जब सुमंत्र शुचि ।
पितुवर ने प्रण रखा देखकर नृप की वय-रुचि ।।

'होगा मम दौहित्र अवध का भावी-भूपति ।
लिया सचिव ने मान, किंतु बोले कणाद-यति ।।
"व्यर्थ तर्क तव भूप ! व्यर्थ धीसख-आश्वासन ।
सजते चौसर-सारि-सरिस रघु - नृप सिंहासन ।।

ब्रह्मज - कुंभज-भरद्वाज - कवि-अत्रि-गाधिसुत ।
भारत-शासनकारि यही ऋषि-परिषद् संयुत ।।
दिशि-दिशि आश्रम बना वास ये यद्यपि करते ।
पर कुंभादिक - समय परस्पर मिलते रहते ।।
सूक्ष्म दृष्टि से देश-दशा का कर अवलोकन ।
करते नय-निर्माण, पूर्व-नय खंडन-मंडन ।।
श्रुति-सम्मत परिवर्तन-परिवर्द्धन-संशोधन ।
देते न्यायक-भाव जगत को स्मृति-सुसंस्करण ।।
यज्ञ-पर्व अतिरिक्त देख कर भीषण - वेला ।
गुप्तरूप से हो जाता है इनका मेला ।।
तब जानो नृप! सत्य, भयानक-विपद् उपस्थित ।'
मँझली-मंदिर भेज स्वामि को, हो आतंकित ।।
लेकर दो विश्वस्त दासियों को मैं आई ।
गई समस्या जान सकल, जो कुछ सुन पाई ।।
क्षमा करें अपराध, जान निज पुत्री गुरुजन ।
राजा औ युवराज लखे, पर लखे न लघुजन ।।
देश-धर्म हैं प्रथम, पुनः पति-सुत-पुर-परिजन ।
अमृत-प्राप्ति हो लक्ष्य, समान सुरासुर साधन ।।
पहले भारतवर्ष पुनः साकेत हमारा ।
प्रथम सनातन - धर्म पुनः जग का सुख सारा ।।
यदि जगती का कष्ट, राम से ही कट सकता ।
तो वह मम सुत-प्रथम न कष्टों से नट सकता ।।
करती हूँ सन्नद्ध, राम कल वन जायेगा ।
कर इति निशिचर-वंश, कीर्ति वर कर लायेगा ।।
प्रात दूत को भेज भरत को बुलवाती हूँ ।
साथ राम के विपिन उसे भी भिजवाती हूँ ।।
आज नहीं तो कल ये तो वन से आयेंगे ।
धर्म-देश-ऋषि-देव अभय तो हो जायेंगे ।।"

"नहीं नहीं कल्याणि !" तुरत ही बोले ऋषिजन ।
देंगे नृप न कदापि सहज ही पुत्रों को वन ।।
होगा नष्ट सुकार्य तुरत शिशु-अपरिपक्व सम ।
पातक, साधक सिद्धि न सहसा खोकर संयम ।।

बिना युक्ति सम्पन्न कार्य हो, परम असंभव ।
जिसका तल ले झेल क्षार, शिर झेले बाड़व ।।
करता पारावार पार वह पोत मात्र ही ।
बनता पथिकों - हेतु अन्यथा काल-पात्र ही ।।

दो त्रुटियों से पूर्ण देवि ! है कथन तुम्हारा ।
नहीं करेंगे प्रथम, पृथक नृप प्रथम-दुलारा ।।
पुनः गये यदि भरत-राम दोनों भाई वन ।
शोकाकुल नृप - वृद्ध न कर पायेंगे शासन ।।

अतः राम के साथ उचित है लखन गमन ही ।
कुसमय अवधाधार सुशील कुमार भरत ही ।।
'उचित भरत पुर, राम विपिन' पाँचों हम बोले ।
दिखा लक्ष्य, पर पथ न पथिक-वर जिसके होलें ।।

रहकर कवि कुछ मौन पुनः बोले सकुचाकर ।
"है तो एक उपाय. न आता किंतु गिरा पर ।।
कर सकतीं सम्पन्न जिसे केवल लघुरानी ।
मानस - कमलासीन हो रहीं पानी-पानी ।।

शब्द हंस दिखते न,. बैठकर जिन पर वाणी ।
हो जगती पर प्रकट जगत के हित कल्याणी ।।"
बोली "निस्संकोच कहें ऋषिराज कवीश्वर ।
धारूगीं निर्देश, देह देकर भी शिर पर ।।"

"तन का कुछ न महत्व यहाँ" ऋषि बोले "रानी ।
मन-प्राणों से अधिक यहां की अकथ-कहानी ।।
गिरा दीन की दीन उचित है यहाँ, यही की ।
कारण से भी कठिन कार्य-प्रवल्ही कहीं की ।।"

"समझ गई, विश्वास न मुनिवर को है मुझ पर ॥
टाल रहे इस हेतु और ही बात बता कर ॥"
"बोलें भी तो रानि ! बात हम कैसे बोलें ।
श्रेष्ठि-राशि की ग्रन्थि श्रेष्ठि-सम्मुख क्या खोलें ॥"
"मतिमानों की बात समझती यदि मति-हीना ।
यों न पूछती कभी, मूढ़ सी होकर दीना ॥
कह सकती हूँ बात एक ही ऋषिजन - सम्मुख ।
देव-कार्य हित देव ! केकई का अर्पित सुख ॥
अब जो समझें उचित कहें, या दें अनुशासन ।
निशि का चरण तृतीय त्यागने चला नभांगन ॥"
इतने में दी पास तुरग की टाप सुनाई ।
बोली रानी "चलूँ मंथरा लेने आई ॥
कुब्ज - लंक अति-नम्र चतुरता की सी प्रतिमा ।
रानी की मुँह - लगी भारती की सी महिमा ॥
युक्ति तर्क - संयुक्त कुलीन सतर्क सुन्दरी ।
कर्म - वचन-मन से रानी की सत्य किंकरी ॥
लगा कि स्वप्न-अभीष्ट हुआ साकार धरा पर ।
हुए एक - मत पंच कोर-कोरों में सत्वर ॥
कौशिक बोले "रानि ! आप आगार पधारें ।
कर हम नियमित-कर्म पुनः कुछ और विचारें ॥
यज्ञादिक - पश्चात् मंथरा आश्रम आये ।
बने स्वप्रण - हित पथिक आप, यह पथ दर्शायें ॥"
गई केकई मौन, मुदित कर ऋषिजन-वंदन ।
लेकर बहु फल-फूल मंथरा चढ़कर स्यन्दन ॥
आश्रम में मध्यान्ह शुक्ल-शशि छवि सी आई ।
जो ले गई निदेश, भूमिका वही निभाई ॥
देश-कार्य ऋषि-गीत मंथरा सफल गायिका ।
संसृति-रंगागार केकई बनी लास्यिका ॥

देख दंग रह गये, सु-अभिनय निर्देशक-गण ।
रघुपति को जिस भांति दिया उस देवी ने वन ॥
कुलिश-आचरण-मध्य विमल निर्झर सा अन्तर ।
कहां देखता जगत, निठुर गिरि ऋषि पहरे पर ॥
करता हाहाकार जगत-निन्दा सुन मम चित ।
देती मुझको धैर्य सदा ही रही अविचलित ॥
एक बार फिर हँसी, एक दिन केवल रोई ।
लजा धैर्य का धैर्य घोर - निद्रा में सोई ॥
गये राम वन, भूप गये कौशल्या के घर ।
अरुंधती के साथ न मैं हिल पाया पल भर ॥
वह रोई पद थाम, धरा पर शीश पटक कर ।
"गये विजन-वन हाय! सुकोमल बालक गुरुवर ॥
राम-लखन सह यदि सिय का भी गमन जानती ।
शाप धार तव शीश, परम-शुभ नरक मानती ॥
कैसे वन के कष्ट उठायेगी वह बाला ।
इन्द्र-भाग हा-हा बलि का बन गया निवाला ॥
छल ली अबला हाय! दैव ने देव-काज मिष ।
गई शांति-मणि प्राण-मूल के साथ ब्याज मिष ॥
अपने से ही आज लजाई, सिय को खोकर ।
वय भर रहे रहस्य, मिले जीवन भर ठोकर ॥
प्रायश्चित यह एक मात्र है इस पातक का ।
मिले न मान कदापि, मुझे जीवन-भर जग का ॥
जन-जन की विष-बुझी दृष्टि जब बींधेगी मन ।
तब जाँनूगी यों भटकी मम प्रिय-वधु वन-वन ॥
कठिन हो गया स्वयं मुझे ही धीरज धरना ।
यह रानी का अयश न था, यह मेरा मरना ॥
त्याग उसे जलहीन मीन सी दीन तड़पती ।
नत-शिर आश्रम गया, गिरा नभ फटी न धरती ॥

सिंहासन को त्याग भरत जब चले मनाने ।
चित्रकूट रघुनाथ राम को तिलक चढ़ाने ।।
कितनी आकर हँसी धरा पर लोट-लोटकर ।
देखा मेरा श्याम - सुतनय समुज्ज्वल-अंतर ।।
कितना पितु पर गया, गया कितना भ्राता पर ।
उन सा निस्पृह-सुदृढ़-सुजान-उदार-विमल वर ।।
मुझे कहे कुछ जगत, अमित दे मन भर दूषण ।
किंतु कहेगा "भरत केकई - गर्भ - विभूषण ।।
मैं होऊँगी जहां, वही सुन कर यह वाणी ।
हूँगी मरु में तृप्त कुरंगी सी कल्याणी ।।
मेरी तो हो गई गया, भूली कल, लख कल ।
मिला मुझे जीते-जी पुत्र-सुकर्म फल्गु-जल ।।
लाज गर्त में डूब अन्यथा क्या गति पाती ।
अब मैं जानी गिरा-मूक वाचाल कहाती ।।
यदि लेती मैं देख तनिक उसका कुत्सित-मन ।
राजासन के हेतु भरा मन भोगाकर्षण ।।
तो नृप की सौगंध स्वयं देती विष जाकर ।
आनें देती आँच परन्तु न रामासन पर ।।
पर देखीं गुरुदेव ! सुरक्षित युगल स्व-पुतली ।
रखना आप सम्हाल, न हो जाऊँ मैं पगली ।।"
वह पगली क्या हुई, हुआ पगला जग सारा ।
जिसे लगी प्राची-मरीचि-माला उष-तारा ।।
अब क्या कहना, गया बीत वर्षा सा जीवन ।
निकल न पाया पारिजात में लघु अंकुर कण ।।
उस सी थी वह स्वयं, कहां अब उस सी आनी ।
जो मर कर जी गई, केकई वही कहानी ।।
पहन शुभ्र-परिधान शुभ्र इतिहास बनाया ।
शीतल कर संसार, राहु को देकर काया ।।

काल-भाल पर वह कलंक-मसि साज सजाया ।
काल लाजवंतीव देख कर जिसे लजाया ।।
शरद्-पर्व की निशा गई वह, होकर काली ।
लखो रेख, ले गई काल-विल काली व्याली ।।

है अब प्रश्न ज्वंलत, एक ही सबके सम्मुख ।
बैठे हम क्यों मौन, देख उस देवी का दुख ।।
बोल रहे जो आज, न बोले क्यों कुछ पहले ।
क्या उत्तर, जो लगे उचित वह आप समझलें ।।

होनी-ईश्वर-भाग्य, मध्य में उचित न लाने ।
कारण इसके कई, न मुझ को आज बताने ।।
जब तक मेरा और राम का यह भौतिक-तन ।
तब तक इससे अधिक न समुचित और प्रकाशन ।।

अब तो केवल एक बात ही मैं कह सकता ।
जो दें इसके हेतु दंड, नत-शिर सह सकता ।।"
बोल उठे सब एक साथ "यह उचित न गुरुवर ।
करें न लज्जित देव ! हमें अब और कृपाकर ।।"

रुँधे कंठ को खोल पुनः बोले विधि-नंदन ।
"कहने दो जो आज चाहता कहना मम मन ।।
यदि राघव-वन पाप, सत्य तो गुरु पापी-गुरु ।
सुखद पुरोहित मैं न, प्रपंची-परितापी गुरु ।।

द्विज, दंभी, यजमान-वित्तहर्ता अति-पामर ।
निगमागम-विज्ञान-हीन अघपोषण तत्पर ।।
जगशापों का अधिकारी मैं एक अकेला ।
सूर्य-वंश पर विपद्-शैल यह मैंने ठेला ।।

दें मुझको नृप ! दंड, सभासद सब धिक्कारें ।
उससे पूर्व परन्तु परिस्थिति सकल विचारें ।।
भेज राम को विपिन, न बैठे मौन धार कर ।
पल-पल की हम खोज रहे लेते पग-पग पर ।।

देते आयुध अमित, दिखाते रहे सुपथ वन ।
कभी चंद्र-शरभंग-सुतीक्ष्ण-मतंग कभी बन ।।
स्वयं प्रभा - संपाति-जटायू-शवरी-सुरसा ।
सिंधुस्थित मैनाक, लंकिनी परम कर्कशा ।।
थे थे किसके चार-वेष में स्थान-स्थान पर ।
इनकी चर्चा की न परिस्थिति, न ही सुअवसर ।।
हो सकती इस समय शेष वह, शंक एक ही ।
निराकरण अनिवार्य मानता मम विवेक ही ।।
वह केवल वह,जो होती प्रति-उपरोहित-प्रति ।
जग उपरोहित-अर्थ, मात्र यजमान-वित्त-रति ।।
फिर मेरा यजमान सूर्य-कुल वैभवशाली ।
स्वाभाविक ही, दिखे मूर्ति यह सबसे काली ।।
पर था पूरा ज्ञान पूर्व - पुरुषों को मेरे ।
इसी हेतु वे जाग गये थे बहुत सवेरे ।।
करा गये प्रारम्भ, कोष-आयव्यय लेखा ।
गुरु-गुरुकुल पर मध्य-मध्य है उसमें रेखा ।।
करके सबका योग, कोष देखो गुरुकुल का ।
होगा अंतर नहीं, एक गौ-मणि-पण कण का ।।
सारा मम परिवार नंदिनी का पय पीता ।
आश्रम का कृषि-धान्य भोग कर केवल जीता ।।
एक कमंडलु, दो मृगछाला, दो-दो चीवर ।
इस संपति का स्वामि सदन मम प्रति नारी-नर ।।
यदि हमने पय पिया नृपति की किसी धेनु का ।
तो जानों उपभोग किया गौरक्त - रेणु का ।।
उपरोहित का कर्म जगत में सबसे निंदित ।
यही जानकर किये अमित-नृप-मान न स्वीकृत ।।
किंतु एक दिन ब्रह्मदेव ने आज्ञा देकर ।
भाव हमारे जान चेतना में भविष्य भर ।।

श्रुति-स्मृति-संस्कृति-देश-धर्म हित हमें विवश कर ।
बिठा दिया इस श्रेष्ठ सूर्यकुल के गुरु-पद पर ।।
तब से क्या-क्या हुआ वशिष्ठ-वंश के द्वारा ।
मैं मुख से क्या कहूँ, मुखर इतिहास हमारा ।।
रवि-कुल ने वह दिया हमें सम्मान अपरिमित ।
लोक और परलोक हमारे हुए अयाचित ।।
यद्यपि वे बहु कर्म, किये जो हम ऋषि-जन नें ।
गिना दिये, की प्रमुख भूमिका किंतु राम ने ।।
यदि होता अवतरण न रघुनंदन का भू पर ।
तो हर पाता कौन भुवन का भार भयंकर ।।
भुवन-धरा ऋषि-कृषक साधना-वृष साधन-हल ।
हुए सफल सब सिद्ध सिद्धि-रघुनाथ-कृपा-जल ।।
युग-युग से था कौन न, मौन रहा क्यों छाया ।
रघुनायक के वेष जगत-नायक अब आया ।।
कल्प-कल्प का हुआ पूर्ण संकल्प हमारा ।
उतरी निर्भय धरा धर्म-गंगा की धारा ।।
अब विधिवत संयास मुदित होकर लेता हूँ ।
देश-संपदा सकल देश को ही देता हूँ ।।
कहीं दीन द्विज-वृत्ति न व्यर्थ नष्ट हो जाये ।
नृपति-प्रवृत्ति सु-श्रुति-सम्मति न भ्रष्ट हो जाये ।।
इसी हेतु यैं दान-दक्षिणा सब लीं, लेकर ।
व्यय न वराटक किया किंतु लघु भी संतति पर ।।
निष्कलंक वैराग्य, न रागाक्रांत कलंकित ।
लेकर होता विदा, विदा दें होकर प्रमुदित ।।

दोहा

कहूँ इस समय और क्या, देता ऋषि आशीष ।
धर्म-धान्य-धन सुनयमय, रखे राष्ट्र जगदीश ।।

जग में अनुकरणीय हो, रघुकुल का आदर्श ।
प्रजा सुखी, निर्भय अवध, हो नित रामोत्कर्ष ।।"

रोला

नृपति सहित सब सभा उठी संभ्रम ही सहसा ।
"मां अंतिम क्या गई, गगन से अंतक बरसा ।।
छत्र छिने सो छिने, शिखर भी हुए विखंडित ।"
प्रभु बोले "अब हुआ अमा-निशि सूर्य समाहित ।।
करो न नाथ! अनाथ, बनाकर नाथ जगत का ।
राम रहे किस भांति, आज आश्रय ले किसका ।।
संयासी का धर्म आपने क्या न निभाया ।
फिर कैसा संयास, आज यह हृदय समाया ।।
यह संयास न, अविश्व.स है गुरुवर ! हम पर ।
क्षमा करें अपराध, दास-जन दीन जानकर ।।
रह जायेगा निराधार यह अवध अभागा ।
देव ! सूर्य-कुल सूर्य उदयगिरि ने यदि त्यागा ।।"
"निराधार हा ! रह आयेगा अवध ऋषीश्वर ।"
बोले प्रभु के साथ सभासद् सकल निरन्तर ।।
"दें कौशिक मुनिराज व्यवस्था आप कृपाकर ।
करें हमारा त्याग न यों पुण्योदधि गुरुवर ।।"
कौशिक बोले "रहे मान गुरु-प्रजा-भूप का ।
बनें पुरोहित अन्य सुयोग्य वसिष्ठ-वंश का ।।
कृपया ले अज्ञात-वास बैठें न ऋषीश्वर ।
करते हुए प्रवास परिव्राजक संवत्सर ।।
आकर चातुर्मास अवध में सदा बितावें ।
निजस्थान पर पौत्र पराशर प्रथम बिठावें ।।
कैकेई का शोक मास - पर्यन्त मना कर ।
जब तक हो गृह स्वस्थ्य न,तब तक आप स्वपद पर ।।

रहें, पुनः शुभदिवस समस्त स्वरीति निभाकर ।
चलें ममाश्रम प्रथम, निजासन बिठा पराशर ।।
करें न चिंता नृपति! पराशर से मैं परिचित ।
यह अदृश्यन्ती का बालक ब्रह्म-निरत चित ।।
शक्ति-पुत्र श्रुति - ज्ञान गर्भ में इसने पाया ।
इसकी छांया छू न सकेगी निशिचर-माया ।।
इसका राक्षस-सत्र न यदि पुलस्त्य रुकवाते ।
तो निश्चित् ही राम, न इतना कष्ट उठाते ।।
रक्ष-वंश प्रति निश्चित् दृग यह प्रलयंकर का ।
रघुकुल-प्रति यह प्रतिनिधि स्वय दिव्य दिनकर का ।।
अन्य ब्रह्म सा अनुभव में यह ब्रह्मकुलोद्भव ।
शुक्र सरिस मति,जीव सरिस गति इसकी राघव ।।"
प्रभु बोले "है सत्य किंतु" "अब किंतु कहो मत ।
कौशिक बोले तुरत "हुई अब अर्ध-रात्रि गत ।।
निराहार-शोकाकुल श्रमित दिवस भर के सब ।
ले ईश्वर का नाम, करें विश्राम सभी अब ।।"

दोहा

उठी मौन सारी सभा, गाधि-पुत्र के साथ ।
भरत-स्कंध पर हाथ धर, चले नमित रघुनाथ ।।

सोरठा

अंब-चरित मन लीन, व्यथा पीन अति दीन मन ।
प्रात विचार नवीन, लगे काटने नृपति निशि ।।

त्रयोदश भुवन

मंगलाचरण

श्रीभरत-वंदना

छप्पय

जय-जय दशरथ-पुण्य-पयोनिधि-पर्व चंद्रमा ।
जय कैकेयी-अमा-अजिर सुभ्रु व ध्रु व-सुषमा ।।
जय शीतल-शशिहास मांडवी-हिय-कुवलय के ।
शारद-नैश्य-विलास अवध के तपित-हृदय के ।।
सियरामचंद्र-पद-चांद्रि के, चारु-चकोरक भरत जय ।
सियराम-पदांबुज-रति-निरत-मति-प्रति स्वतः सदा सदय ।।

हरता अपलक छद्म-मृगों का जो कंचन-जल ।
विमल भाद्रपद-गगन सरिस रसमय तन श्यामल ।।
समाधिस्थ शिव नयन-ज्वाल सम, कंध शरासन ।
सशर तूण कटि, कंक-शंक हर ज्यों विधि-भाजन ।।
स्मिति कण-कण में खेलती, कुलवंधु चितवन सी सरल ।
मंगलमय श्रीभरत के, पग-पग पल-पल पद-कमल ।।

बने अधर्म सुधर्म, विदूषण भूषण सुन्दर ।
अमा-तमस दिवसेश, तलातल मेरु-शिखिर वर ।।
अनल अनिल, वृष फाग, नरक वैकुण्ठ सलौना ।
कंटक-पथ पंथेश, कराल-कलंक दिठौना ।।
पाकर सुखद चरण-शरण, जिन कैकेयी-तनय की ।
रामचरित-सर-सरसता, जय-जय उन श्रीभरत की ।।

बना प्रेमिका प्रेम, प्रेम जिनका निहार कर ।
जिनका लख वैराग्य, बना वैराग्य राग-वर ।।
जिनका देख सु-शील, शील बन गया शिला सा ।
लख जिनके व्रत-शिखर, हिमालय लगा इला सा ।।
शेष धरा धारे रहे, जिनके धर्माधार से ।
किसकी उपमा दे गिरा, उन केकयीकुमार से ।।

भक्ति हुई उत्पन्न द्रुहिण-वदनोदर श्रुति-स्वर ।
हुई शुद्ध, कर प्रथम प्रसूतस्नान शंभु-सर ।।
शिवा-प्रश्न पय-पान खोलना सीखी लोचन ।
बढ़ी दिनोंदिन चांद्रि-सरिस सनकादिक-आंगन ।।
जानी नारद-वीण की—झंकृति से किलकारना ।
भरताश्रम प्रभु-पादु-पट, सीखी वृष-लिपि आंजना ।।

खिली भक्ति-बालिका चले जब प्रभु-हित वन-पथ ।
उभरी गौरी सु-छवि, तजा जब गुह को लख रथ ।।
किया त्रिवेणी-स्नान, किशोरी सी तब निखरी ।
सजी सकल शृंगार, चित्रगिरि-शिला भांवरी ।।
भरी मांग सिंदूर से, ज्यों लीं शिर प्रभु-पांवरी ।
नंदि-ग्राम यति-वेष लख, हरि-प्रिया गोदी भरी ।।

हुए प्रयासी संयासी जिनके व्रत लखकर ।
हुए अनंग अनंग सु-रति जिनकी लख पलभर ।।
हुई अचल मारुति मारुत-गति जिनके लघु-शर ।
हुई सुवीणा गातु-वीण जिनके शंखस्वर ।।
जना लाल किस जनी ने, मिला नयन जिनसे सके ।
प्रभु भी बैठे पृष्ट दे, बना स्वामि निज छत्र के ।।

समय व्यास कर उठा महाभारत उच्चारण ।
पर करनी लेखनी धार, बन विघ्नविनाशन ।।
रामायण लिख गये त्याग कर पितु-सिंहासन ।
दिया धर्म को बन पदाति निर्भीक धरासन ।।
धार जटा संस्कृति-जटी-जटा उतारीं तल-अटा ।
छटा सुधारे भरत की, मेरे भारत की छटा ।।

शैलूष-वध

रोला

बजा तूर्य, रघुसूर्य सभा-मंडप में आये ।
गुरु वसिष्ठ कर नमन स्वदक्षिण दिशि-बैठाये ।।
सभाजनों का पुनः शांत - चित ले अभिवंदन ।
सुर-पितरों को झुका शीश बैठे रघुनन्दन ।।
साग्रह तीनों - अनुज बिठाये निज सिंहासन ।
सजे स्वयं पदपीठ - समीप अंजनीनंदन ।।
छत्र-चँवर-शस्त्रास्त्र-लेखनी-पत्रक सज्जित ।
दिग्पतियों से हुए अष्टदिशि पुत्र सुशोभित ।।

सुभग-सौम्य-धर्मिष्ठ-बलिष्ठ-नीति गुण-सागर ।
अधिक एक से एक नम्र, सेवा में तत्पर ।।
मानों दशरथ - पुण्य प्रात-ऋतु प्रभा-प्रभाकर ।
दिग्दिगंत दिव्यांक प्रकाशित प्रखर-प्रखरतर ।।
खिलीं जनक-सौभाग्य-सरोवर ललित कमलिनी ।
कलिकावलि अति-कलित सजीं रवि-कला गुल्मिनी ।।
जिनके चारु चरित्र पराग राग से भारी ।
भरे मही - प्रति स्नेह काव्य-मारुत नभचारी ।।
रामराज्य का शरद शीतलस्मिति मुस्काया ।
मोहित गंध वसंत सगुण, मन अंग समाया ।।
हुआ लोक-व्यवहार अलौकिकता-आलोकित ।
सूर्य सूर्य-अपरान्ह स्वर्ग-सुषमा आन्दोलित ।।
मुनि वसिष्ठ सानंद उदयगिरि सरिस विभासित ।
हुए, निरख निज प्रभाल्हादिनी-गंग प्रवाहित ।।
मुक्ति-महोदधि मर्म भगीरथ सम समझाकर ।
योगीश्वर को योग-कर्म का मर्म बताकर ।।
बैठे ज्यों कृत्कृत्य स्वयं को अनुभव सा कर ।
तभी पौर ने कहा "पौर पर हे राजेश्वर ।।
खड़े दूत कैकेयराज के तव दर्शन हित ।"
प्रभु बोले "रिपुदमन! लखन! स्वागत कर समुचित ।।
मातामह के प्रणिधि तुरत ले आओ सादर ।
मातुल का संदेश सभाजन जाने सत्वर ।।"
चले युगल - सौमित्रि चार चर लखे द्वार पर ।
ज्यों त्रिभुवन दुख-शोक-हानि-भय खड़े देह धर ।।
मौन लखन-रिपुदमन ले चले आश्रय देकर ।
"त्राहि-त्राहि" कर उठे, देख चर सम्मुख रघुवर ।।
उठे तुरत रघुनाथ उठाकर भुजा भीतिहर ।
"सविस्तार सब समाचार भय त्याग कहो, चर ।।

कहो मातृकुल-कुशल, प्रजा कैकेयी सकुशल ।
अनावृष्टि-अतिवृष्टि-महामारी - दैवीछल ।।
भड़क उठा विद्रोह, हुआ या बाह्य-आक्रमण ।
बोलें बोलें, मौन छोड़कर शीघ्र दूत-गण ।।"
"प्रभु ! खंडित उपवीत, बुझा पावन यज्ञानल ।
रक्त-रँगा यह सिंधु-वितस्ता का जल पद-तल ।।"
जटा चीर पत्रिका युधाजित की दी जर्जर ।
ली पसार कर स्वयं, राम ने आगे बढ़कर ।।
दे दूतों को धैर्य अतिथिशाला भिजवाया ।
पत्र बांचने हेतु भरत को निकट बुलाया ।।

दोहा

धीरे-धीरे पत्र की, परत-परत को खोल ।
लगे सुनाने भरत, कर—सभानुकूल स्वबोल ।।

पत्रिका

स्वस्ति-स्वस्ति साकेत स्वस्ति श्री सरयू पावन ।
रामचंद्र राजाधिराज ! जय जन-मन-भावन ।।
रघुकुलमणि-शूराग्रणि-मर्यादा पुरुषोत्तम ।
आदि नृपति-मनु निगमागम-शिवनीति नृपोत्तम ।।
कौशिक - आहव-पौर, सतीश्वर-चाप-विभंजन ।
सीता - शिर-सिंदूर -जनक-दृग-सिद्ध सुअंजन ।।
दशकंधर - बल-सिंधु-मथन-मंदर महिमामय ।
भरत - भूमि के प्राणनाथ सर्वस्व गुणालय ।।
निष्कासित-पीड़ित-अपमानित - भीत-प्रवासित ।
करता तव वंदना युधाजित आज निराश्रित ।।
कल का केकयराज, आज का रौरव-कीड़ा ।
कैसे वर्णन करूँ असह्य प्रजा की पीड़ा ।।

दस्युराज शैलूष पार कर तुंग हिमाचल ।
यवन-म्लेच्छ-गंधर्व गणों के जुटा प्रबल दल ।।
करता अत्याचार लिये सेना प्रलयंकर ।
मिले और भी आन अनेकों दुस्साहस भर ।।
विश्वामित्र-वशिष्ठ कलह के निष्कासित-जन ।
वे राक्षस, कर गये लंक से जो कि पलायन ।।
देवासुर-संग्राम - शेष असुरों के वंशज ।
आर्यसमाज-विरोध-लीन बहु लम्पट-जारज ।।
वेदविरोधी वामपंथ-पंथी कौलादिक ।
पुनर्जन्म - परलोक - विनिंदक दंभी-नास्तिक ।।
सब एकत्रित हुए प्रथम - वर्षा के जल से ।
मल में मल से मिले, निठुरता में छल-बल से ।।
एकछत्र सब तंत्र स्वतंत्र विधाता नेता ।
है जिनका शैलूष, किया कलि जैसा त्रेता ।।
क्रूर, कुटिल, पाखंड-कुशल, वाणी-आकर्षक ।
उच्छृंखल-उद्दण्ड-व्यवस्था-व्यथा नियामक ।।
घड़ता नव सिद्धांत, बना नित नव नियमावलि ।
दृढ़ चित करतीं भ्रमित, बोलता वह शब्दावलि ।।
घोर वेद-विपरीत वेद की व्याख्या करता ।
मर्यादा दासता न अंतर कण भर, कहता ।।
चोरी-जारी आदि-काल से मनुज - मात्र का ।
है मौलिक-अधिकार, निठुरता भेद-गात्र का ।।
प्रकृति-सुकृति संसृति, संस्कृति है उसे भोगना ।
जन-जन शोषण - हेतु की गई ईश-कल्पना ।।
अकर्मण्य मुनि, नामधारियों बलवानों ने ।
की है, जिसका लाभ लिया है धनवानों ने ।।
जब तक ईश्वर - भीति धसी जगती के मन में ।
तब तक सारी प्रगति वंदिनी स्वप्न-भवन में ।।

जप-तप, संयम-नियम-श्राद्ध-तर्पण-तीर्थाटन ।
सत्य-अहिंसा, दया-धर्म-श्रुतिशास्त्र विवेचन ।।

पाप-पुण्य परलोक - लोक का गमन-आगमन ।
किसने देखे कहां, कपट का सकल प्रसारण ।।

शाश्वत् श्रद्धा सुविश्वास पर घात लगाकर ।
करता है आघात, बात में बात मिलाकर ।।

दया शून्य हो हृदय, अनय से चित्त अभय हो ।
करत: वे-वे कार्य, मनुजता जिससे क्षय हो ।।

रागबधिर-मोहांध जीव पर प्रबल - वासना ।
सेये शव प्रेमात्म-सरीखी, यही योजना ।।

नित्य बनाकर वही कुविधि कार्यान्वित करता ।
अंधकार ज्यों सूर्य - दीप्ति कण-कण से हरता ।।

पकड़-पकड़ लघु ललित कीश-शिशु, शशक, गिलहरी ।
छेद अंग-प्रत्यंग सेकते मंदी उपरी ।।

ज्यों-ज्यों शावक करुण-दृष्टि से दया मांगते ।
त्यों-त्यों कर वीभत्स कुमुद्रा क्रूर डांटते ।।

ज्यों-ज्यों करती करुण क्रदन प्राणान्तक पीड़ा ।
त्यों-त्यों बढ़ती अधिक-अधिक अधमों की क्रीड़ा ।।

नगर-नगर की डगर - डगर पर भरी-दुपहरी ।
त्यों दिखते ये दृश्य, चींखती निशा टिटहरी ।।

कायरता का वेष अहिंसा-दया धारकर ।
जो मानव - मन रमी, उसे हम आज रहे हर ।।

परम्परा-प्रिय वृद्ध बोलते मूढ़ अनर्गल ।
चींख-चींख कर मरें, यही इनका हल केवल ।।

पर आवश्यक युवक-मनीषा का प्रक्षालन ।
उसका यह ही परम सरल संभव सा साधन ।।

करता है प्रतिरोध तनिक भी यदि कोई जन ।
करते दुष्ट तुरंत त्रिशूलों से तन छेदन ।।
इधर तड़पते पुरुष, नारियां उधर बिलखतीं ।
ले जाते खल खींच, रुदन संतानें करतीं ।।
पय-पीते शिशु छीन छातियों से मांओं की ।
करते क्रूर किलोल ठिठोली कर आहों की ।।
लखकर मरणासन्न पकड़ ऊपर उछाल कर ।
खेल-झेलते शूल-त्रिशूल-भिंदि-भालों पर ।।
चीर किसी की टांग कढ़ाहों में उबालते ।
खींच किसी को आंत पाग सी शीश बांधते ।।
ऐसे अत्याचार जहां शिशुओं पर होते ।
अनाचार फिर क्या न झेलतीं अबला रोते ।।
सत्य-अहिंसा-न्याय-नीति-मर्यादा आदर ।
क्या जाने नभ उड़े, समाये तल कि चीर कर ।।
शांति स्वप्न की वस्तु, बंधुता निरी कल्पना ।
बनी मूर्खता मात्र युगों की देव-अर्चना ।।
परम्परा अन्यान्य मान्य जो आर्य-जनोचित ।
प्रलय-काल की काल-तृप्ति सम हुईं तिरोहित ।।
नित्य-नित्य के सहते-सहते कठिन आक्रमण ।
जनसंकुल पुर बने महाशमशान विजन वन ।।
वीथि-वीथि में सड़ते शव, पथ-पथ होते रण ।
अभय न कोई रहा, सभय सब नर-नारी गण ।।
भय साधारण नहीं, मृत्यु से खुला सामना ।
सुजन घटातीं नित्य-नित्य घटतीं दुर्घटना ।।
पशु-रेवड़ सी डगर-डगर पर हुईं दिगम्बर ।
दिखतीं बाला विकल निकलतीं पहर-पहर भर ।।
पदाघात कर गर्भपात पामर करवाते ।
रह जाते शव, क्रूर परन्तु भोगते जाते ।।

हा ! सामूहिक शील-भंग नित-नित की क्रीड़ा ।
अगणित घृणित कुकर्म, स्मरण करते ही व्रीड़ा ।।
दिनचर्या है किंतु यहाँ तो उन यवनों की ।
प्रतिक्रिया क्या व्यक्त करूँ इन मृतक-मनों की ।।
लूटमार-संहार- दहन निशिदिन के क्रंदन ।
सहते-सहते नरक बना यह कल का नन्दन ।।
रिक्त हो रहे वास, रक्त से मारुत न्हाता ।
गिद्ध-काग-शृंगाल निकर नित पर्व मनाता ।।
गगन चूमते भवन, बन रहे सपट हथेली ।
खड़ी फसल जल रहीं, धुम्रों से धूपें मैली ।।
सरिताओं के बांध, समाये सरिताओं में ।
सूखीं सारी नहर, बाढ़ आईं गाँवों में ।।
कहीं मरुस्थल, कहीं योजनों तक जल-प्लावन ।
करते हाहाकार त्रसित हो नर-नारी गण ।।
कहीं प्रजायें तृषित, समाधि कहीं भँवरों में ।
एक समय में उभय - दृश्य नगरों-नगरों में ।।
कल के श्रेष्ठि कुबेर बीनते बेर वनों में ।
टिके प्राण तव नाम राम ! इन भग्न-मनों में ।।
दूत संधि-संदेश कभी यदि लेकर जाते ।
रीति-नीति सब त्याग उन्हें भी वधकर खाते ।।
"संस्कृतियों का युद्ध लड़ा ऐसे ही जाता ।"
सब प्रश्नों का मात्र एक उत्तर यह आता ।।
केवल निर्धन-धनी एक करने का नारा ।
कुछ परिवारों - मध्य बँटा पर वैभव सारा ।।
भोग रहे ये भोग, पिशाचों जैसे पामर ।
जनत्रास को घोर - असुर जनतंत्र बताकर ।।

है केवल पाखंड प्रजा-सम्मति निर्वाचन ।
स्वपद सुरक्षण-हेतु सकल साधन अनुशासन ।।
अत्याचार अनन्त चतुर्दिक राक्षसाचरण ।
हरी-भरी भू बनी रक्त-रंजित रण-प्रांगण ।।
देकर प्रगति सु-नाम, हमारे युवजन हमसे ।
छीन, हमारी छाँव क्षुद्र छिलवाते उनसे ।।

किसका करें विरोध, क्रोध बन गया करुणिमा ।
हुई कालिमा व्याप्त, तिरोहित हुई अरुणिमा ।।
क्या जाने प्रभु ! आप, पधारें जब तक, तब तक ।
प्राण पखेरू रहें, न रहें नीड़ के बंधक ।।
आत्मा अमर परन्तु वहीं नभ में मँडराती ।
विजय-दुंदभी-घोष श्रवण-हित अति ललचाती ।।

गैरिक-स्वर्णिम-पीत ध्वजेश दर्श को अपलक ।
दैवी-चतुरंगिणी-वंदना-हेतु प्रलय तक ।।
खड़ी, अड़ी सी पड़ी रहेगी, नहीं हिलेगी ।
लख केकय-स्वातंत्र्य सिंधु में बूंद मिलेगी ।।
यहां सभी से कहा आप भी सुन लें भगवन ।
यदि दुर्दैव-विपाक छूट ही जाये यह तन ।।

रखना संभव हो न, भस्म तो कर ही देना ।
किंतु शेष-अवशेष सुरक्षित रख ही देना ।।
सिन्धु-वितस्ता-अटक-चन्द्रभागायें जिस क्षण ।
करें प्रतीची-सरितराज का अभयालिंगन ।।
तब गंगा में नहो, यहीं कर गंगावाहन ।
करना अस्थि-प्रवाह सिंधुनद-सिन्धु संगमन ।।
अंतिम ही इस वृद्ध अभागे का प्रणाम लो ।
भारत-मां का राम ! पश्चिमी-छोर थाम लो ।।"

दोहा

सुन संकट कैकेय का, कुपित हो उठे राम ।
दक्षिण - भुज शर-दिशि बढ़ी, थमा शरासन वाम ।।
हुआ प्रलय - घन सा अरुण, श्रावण-मेघ सुवर्ण ।
उठे अधर त्यों फड़फड़ा, वातचक्र ज्यों पर्ण ।।
चढ़ी भ्रकुटि रक्ताभ दृग, ज्यों प्रज्ज्वलित मखऽग्नि ।
गरजे प्रभु, ज्यों गरजतीं, शत-शत तप्त-शतघ्नि ।।
"चढ़ा पयोनिधि पर प्रखर, लषण ! उठा वह बाण ।
राम जी रहा, जा रहे, जन्म-भूमि के प्राण ।।
अश्वमेध असफल हुआ, खंडित हुआ किरीट ।
माता का तन नोंचते, पामर कुटिल कुकीट ।।"
सकल सभा भयभीत हो, खड़ी हुई कर-बद्ध ।
प्रलयोदधि - गति देख ज्यों, प्रलयंकर सन्नद्ध ।।
चकित रिपुदमन, त्रास में, बदला शेष - हुलास ।
चला हृदय कंगन दबा, दबे पांव रनवास ।।
चँवर छुटे कंपित हुए, थर-थर राजकुमार ।
मानों पुनः नृसिंह ने, धरा धरा अवतार ।।
प्रभु को बढ़ते देखकर, मारुति हटे हठात् ।
सहमा लोकालोक, लख—अकस्मात पविपात् ।।
विधि विधिसुत-गुरु-दृष्टि लख, शिशु प्रहलाद समान ।
बढ़े भरत, कहते हुए "शांत-शांत भगवान ।।
बालक सम्मुख आपका, दें आशिष-आदेश ।
तव बल का पल निमित बन, हरे सकल कुक्लेश ।।"
दृष्टि उठी रघुनाथ की, उठे छलछला नैन ।
"कैसे भेजूं भरत प्रिय, यह कर सकता मैं न ।।
कहां समर - कौटिल्य वह, कहां बंधु - सारल्य ।
जगत कहेगा, कर गया, राम बाल-चापल्य ।।

जिनमें कुशपैंती-श्रुवे, सजी सुमरनी-माल ।
उन हाथों में धनुष दूँ, नहीं-नहीं प्रिय ! लाल ॥"
"अपनी ओर निहार प्रभु, देखें मेरी ओर ।
कौन असंभव कार्य जो, संभव किये न कोर ॥
कृपा - कोर वह आपकी, मेरी सदा सहाय ।
क्या स्वभाव तज आज रण, कर देगी निरुपाय ॥
लवण-इन्द्रजित वध समय, उठा अभय जो हाथ ।
वही हाथ मम माथ पर, रखें देव रघुनाथ ॥"
कहते-कहते भरत में, उठा वीर-रस जाग ।
समाधिस्थ शिव-नयन ज्यों, लगा उगलने आग ॥
"खंड-खंड जिसने किये, सुरपतिजित-भुज - शीश ।
लवण-प्राणहर बाण दो, पुनः चराचर-ईश ॥
माला वाले हाथ में, दो भाला भूपाल ।
देखे जग तव दास का, रण में कर्म कराल ॥
धूं-धूं कर गढ़ लंक कपि, फूंका जिनके नाम ।
वही भरत के दाहिने, सदा-सदा श्रीराम ॥
तैर गईं भूधर - शिला, सागर जिनके नाम ।
विघ्नहरण-मंगलकरण, राम-नाम अभिराम ॥
'पाये जय लघु भालु-कपि, लंका-समर मँझार ।
'जयप्रदा विजयप्रदा, प्रभु रघुपति जयकार ॥'
हुआ हलाहल अमर-रस, जिस शुभ नाम-प्रताप ।
नीलकंठ - आधार वे, करें सुवर, अभिशाप ॥
कुंभज जिनके नाम पर, सिंधु कर गये पान ।
करें स्वगौरव स्मरण फिर, रामचन्द्र भगवान ॥
जिनके बल से विधि सृजन, हर करते संहार ।
हरि पालक रवि-शशि स-छवि, शेष धरा-आधार ॥
तरा, तरी कर पादुका, अपयश - पारावार ।
यश निश्चित् जब साथ प्रभु, कैवर्तक साकार ॥"

हरि के चरणों पर गिरे, होकर भरत विनीत।
बोले प्रभु गद्‌गद् गिरा, "भरत गया फिर जीत ॥
अब अपना करणीय क्या, दें गुरुवर आदेश।"
बोले गुरु "श्री भरत का, सजे समर वर-वेष ॥

वनमाला

उठ, पियें भेरियां सुन्दरियां,
रघुपुरुषों का अधरामृत फिर।
शिखरों पर स्वर्णिम अरुणिम ध्वज—
लहरे, सोपान बने अरि - शिर ॥

ये मौन नृसिंहे मृतक नहीं,
इनमें फिर होगी प्राण-सृष्टि।
यह नासिकाग्र पर टिकी हुई,
दिशि-दिशि देखेगी प्रलय-दृष्टि ॥

दण्डकारण्य में जय-धनु पर,
जो प्रत्यंचा थी चढ़ी कभी।
कोई भी कभी परीक्षा ले,
दृढ़ता से वैसी कसी अभी ॥

जो फेनिल लोहू लाल पिये,
खर-दूषण - त्रिशिरा वक्षों का।
कर चुके भ्रमण रण में सुबाहु—
मारीच - वक्ष-व्रण-कक्षों का ॥

जिस पथ से बालि-कंबध गये,
वे पथ न अभी अवरुद्ध हुये।
यम-गण उन पर सन्नद्ध खड़े,
पहले से अधिक प्रबुद्ध हुये ॥

श्रीहत खंडित कुंठित न हुए,
लुंठित हैं इन तूणीरों में।
जिसका जब जी चाहे परखे,
चौदह-भुवनों के वीरों में।।

प्रभु चन्द्रमौलि पर मुंडों की—
माला पर माला चढ़ा चुके।
काली के खप्पर सागर में—
शोणित — सरितायें बहा चुके।।

नभ में विहगों से विचरे बिँध,
दशभाल - सुभालों भालों से।
लिख निज लिपि अमिट, मिटा आये—
ब्रह्मा के अंक कपालों से।।

जिनकी छांया यज्ञाश्वराज,
आ गया अछूती ले छांया।
जिनके चढ़ने पर, दिखा न अरि—
रुंडों पर मुंड चढ़ा पाया।।

प्रलयंकर की वीणा-तंत्री,
प्रत्यंचा जिनके चापों की।
कालिका-चरण को गति देती,
गति जिनके सैन्धव-टापों की।।

जिनकी हुंकार मृदंग - थाप,
भैरव-भ्रू तीक्ष्ण कटाक्षराज।
बरबस कृतान्त - नर्तन करता,
कंकांकशायिनी का समाज।।

जिन परम हठीलों की हठ से,
ब्रह्मद्रव धरती पर उतरा।
रवि आदि पुरुष जिनके, जिनसे—
त्रिभुवन अनादि-वय से निखरा।।

गोरी-शंकर का शिखरराज,
पहना जिनका नौका-कंकण ।
जो बैठे सादर इन्द्रासन,
शंबर से कर संवर्तक-रण ।।

जिनकी रथांग- रेखाओं ने,
सीमा प्रदान की पृथ्वी को ।
बिछुवे-वेणी ध्रुव - युगल सजा,
दी मेरु - किंकणी श्रोणी को ।।

विज्ञान-सिद्ध जिनकी मेधा,
वह बनी दोहनी भाग्यवान ।
जो भरी वनस्पति रत्न-क्षीर,
यह अचला कामदुहा समान ।।

जिन रघु-पुरुषों के अग्र-भाग,
श्रुति-ऋचा सदैव चलीं सस्वर ।
हरतीं त्रिभुवन अज्ञान - तिमिर,
सद्धर्म - प्रसारण में तत्पर ।।

मानवता का संदेश सुभग,
'सबको जीने दो जिओ अमर ।'
सब वाद-विवादों से ऊपर—
सुर-असुर न, रह जग मनु बनकर ।।

मनु - पथ न कायरों-क्रूरों का,
यह पथ चिर-परिचित शूरों का ।
पथ-पथ सुवीथि सरणियां मिलें,
यह संगम-राज सुदूरों का ।।

अद्वैत - विशिष्टाद्वैत - द्वैत,
सद्वैताद्वैत - त्रैत - नास्तिक ।
वैष्णव कि शैव या गाणपत्य,
या शाक्त-सौर विधि-विधि आस्तिक ।।

पश्चिमाभिमुख मृतचिन्हप्रिय,
अगणित प्रकार पूजन - अर्चन ।
यह विषय न कभी विवादों का,
शाश्वत् मानवता - संरक्षण ॥

फिर भी जो दुष्ट दुराग्रह कर,
इस परम-लक्ष्य से द्रोह करें ।
उनके शोणित से आर्य-विशिख,
निर्मोहित होकर मोह करें ॥

उन मानवता के रिपुओं के,
तन-त्राण चीर दें प्रखर बाण ।
लिखदें देवों की कीर्ति-कथा,
उर-पत्र रक्त-मसि से कृपाण ॥

जगदुत्कर्षणहित ही अमर्ष,
वर-रूप रुचिर, अभिशापों का ।
करता संस्थापित सुदृढ़ - धर्म,
प्रक्षालन त्रिभुवन - पापों का ॥

भोगों ने भोगा नहीं जिसे,
जिसने भोगा भव-भोगों को ।
नृप बन, दी जग को मर्यादा,
तप कर औषधि भव-रोगों को ॥

उत्तराधिकारी उस मनु के,
तुम रघुवंशी पहले मानव ।
निज शक्ति समुज्ज्वल, शांत करो—
प्रज्ज्वलित भयंकर दानव - दव ॥

करते स्वकीय - जन सानंदित,
आतंक्ति करते अरिजन को ।
प्रस्थान करो उत्तर-पथ को,
लौटो श्रीसहित निकेतन को ॥

आशीष ब्रह्मवादी वशिष्ठ,
देता, ईश्वर कल्याण करे ।
यह रामराज्य का निष्कलंक,
ध्वज सादर अंबर पर फहरे ॥"

दोहा

नवोत्साह भर, कर उठी, सकल सभा जयकार ।
मानों पूनम - पर्व लख, प्रमुदित पारावार ॥
रत्नजटित तन-त्राण से, सजा भरत निज हाथ ।
लगे निरखने अनुज-भुज, भाव भरे रघुनाथ ॥
बोले "जाओ प्राण-प्रिय ! एक बार रनवास ।
कुलदेवी का नमन कर, लौटो गुरुवर पास ॥
चले लषन-रिपुदमन सह, भरत सजे रणवेष ।
पहुँचे अन्तःपुर - घिरे, कुल-स्वामिनी-सुदेश ॥
वासिष्ठी ने अर्चना की—पुनीत सविधान ।
बांधा रक्षा - सूत्र भुज, सादर अंब समान ॥
सुमन चढ़ातीं सुन्दरी, करतीं मंगलगान ॥
किंतु भरत दृग नमित कुछ, करते अनुसंधान ॥
देखी सम्मुख मांडवी, लिये सुतों के हाथ ।
"भेंट नाथ ! यह आपकी, भेंट आपको नाथ ॥"
सजे ललित तन-त्राण से, मृदुल किशोर सुगात ।
आयें कावेरी नहा, ज्यों मधु-मलय सुवात ॥
देती संज्ञा सूर्य को, ज्यों अश्विनीकुमार ।
लिये प्रिया से मौन त्यों, प्रिय वे प्रिय-उपहार ॥
नयन लखन-रिपुदमन के, मिले झुके मन साध ।
वदन फिरा पूंछीं पलक, घूम गया नद बांध ॥

चढ़े शंख-स्वर-सरित प्रिय—प्रिया-वचन बन फूल ।
भेरी-सागर सरि मिलीं, रहे देखते कूल ।।
देखा प्रभु ने दूर से, तक्षक-पुष्कल साथ ।
"नहीं-नहीं यह क्या, भरत! बोल उठे रघुनाथ ।।"
"धर्म-देव के श्रीचरण, ये रंकिनी - वराट ।
कृपया रहने दें चढ़े, कृपासिंधु सम्राट ।।"
सुनी मांडवी की गिरा, हुए नमित शिर राम ।
तक्षक पुष्कल रण, अवध - लव-कुश का क्या काम ।।"
"नहीं-नहीं ये अमर निधि, उस देवी की शेष ।
जिसने जीवन भर सहे, विष पी-पीकर क्लेश ।।"
मर्म-बिद्ध रघुनाथ के, रख कंधे पर हाथ ।
बोले गुरु "नृप! भरत के, तिलक लगाओ माथ ।।"
यंत्र सरिस शत्रुघ्न-कर, बढ़े सम्हाले थाल ।
तरल नयन प्रभु ने किया, तिलक भरत के भाल ।।
तक्षक-पुष्कल भाल पर, तिलक लगाते राम ।
भरे गर्व-वात्सल्य से, विह्वल करुणाधाम ।।
मस्तक पर कर फेरते, बोले भर कर अंक ।
"कुछ तो माँगो आज तो, मेरे सूर्य-मयंक ।।"

सोरठा

"मुनि कौशिक के यज्ञ, जिन्हें धार कर द्वार पर ।
खड़े हुए सर्वज्ञ, पूज्य-पाद वे चाप दें ।।"
प्रभु का पा संकेत, ललित धनुष लाये लखन ।
पहिना तूण समेत, लगे देखनें मुदित हो ।।
"लो प्रिय लखन! निहार, पुनः-पुनः निज वेष-वय।"
"खड़े आप साकार, मुझको तो प्रभु दिख रहे ।।"
"दशरथवंश कुमार, राम-लखन से ये युगल ।
सजा ललित श्रृंगार, चले पुनः" बोले अमित ।।

"मंजुल मृदुल रसाल, भरत रसाल-सुशाल के ।
करो पराजित काल, यही कामना राम की ।।

दोहा

लो जय - धनु जो दे गये, परशुराम भगवान ।"
भरत धार, लगने लगे, प्रभु श्रीराम समान ।।
छत्र-मुकुट शस्त्रास्त्र निज, दे वैदेहीनाथ ।
सैन्य - निरीक्षण-हित चले, थाम भरत का हाथ ।।
सकल व्यवस्था देखकर, लौटे हो सन्तुष्ट ।
नागेश्वर रक्तार्चना, की दक्षिण-अंगुष्ठ ।।
देव - दर्श कर भरत ज्यों, लौटे राजद्वार ।
मौन शंख करने लगे, पुनः गगन गुंजार ।।
प्रभु वामन के चरण - सम, बढ़ा दुंदभी-नाद ।
छलक खमंडल से उठा, आल्हादित उन्माद ।।

वनमाला

गुरुवर की पा आशीष भरत,
रघुपति के चरण झुके ज्योंही ।
झुक कर प्रभु ने भर बाहों में—
हिय के प्रिय लगा लिये त्योंही ।।

"आज्ञा दें देव !" भरत बोले,
"लौटो प्रिय! शीघ्र यशस्वी बन ।
विचरो बन त्रिनयन-नयन-ज्योति,
कर दो त्रिपुरेव दहन रिपु रण ।।

तव वरण जयश्री सहज करे,
अभिनंदन करे अवध-नंदन ।
जग देखे राघव-साधुपुरुष,
कैसे फबते शोणित-चंदन ।।

अक्षत पुष्कल-तक्षक मम निधि,
निज हाथ सौंपना हाथों को ।
ये राम मांगता है तुमसे,
फिर मुख चूमे इन माथों को ।।"

"आशिष अमोघ तव देव ! सदा,
तव इच्छा कौन टाल सकता ।
जगती-निमित्त रघुपति-कर्ता,
सिद्धांत अटल यह, कब टलता ।।"

कर आलिंगन फिर रघुपति ने,
भुज थाम चढ़ाया स्यंदन में ।
कर वंदन चढ़े कुमार युगल,
उत्साह छलकता कण-कण में ।।

पर फैला नाचे मन मयूर,
त्यों छत्र लषण ने चढ़ ताना ।
ले कषा रास बैठे सम्हाल,
शत्रुघ्न सारथी का बाना ।।

प्रभु होते मुदित-व्यथित पल-पल,
फिर पलकें फिरीं मरुतसुत-दिशि ।
गुरु-प्रति रघुपति ने नमित दृष्टि—
देखा, लख सम्मति-सूचक ऋषि ।।

आगे बढ़ आये आंजनेय,
प्रभु बोले "प्रिय! तव अर्पित प्रिय ।
लौटा लाना, लौटा लाये—
जैसे संकट से लक्ष्मण-सिय ।।"

"तव कृपा सुलभ सब कृपानाथ!
लघु कीश कृपा-महिषी वाहन ।"
दी विदा राम ने बार - बार,
शिर सूंघ-सूंघ, कर आलिंगन ।।

प्रभु - इंगित पाकर उछल चढ़े,
स्यंदन-ध्वज कह 'जय सिया-राम'।
छुट अमालान प्राची-सिंधुर—
ज्यों सजा सुमेरु सु-शिखर थाम ॥

रघुकुल की कीर्ति-पताका वधु,
रघुपति का यश कपिवर वर सा।
कपिदेह-लालिमा लसी ध्वजा,
सिंदूर सुहागिन - शिर बरसा ॥

स्वर्णिम-रथ शिखरोपरि निश्चल,
ज्यों चंचल स्वर्णिम शिखर अपर।
प्रत्यंग उमंग सरित रिसती,
त्यों हुए सुशोभित वानर-वर ॥

समयानुकूल लहरा दुकूल,
गरजे वरिष्ठ मेधावी - कवि।
'जय जय रघुवीर समर्थ' लगा—
ज्यों दिशि-दिशि झूमें अगणित पवि ॥

बज उठे दमामे-नक्कारे,
धम-धम-धम धौंसे धमक उठे।
भेरियों-नृसिंहों की ध्वनि से,
धूं-धूं अंगारे धधक उठे ॥

मानों वाद्यों से प्रलयंकर—
घन निकल-निकल कर मचल उठे।
तड़-तड़ तड़िता से बीच-बीच,
जयकारों के स्वर चमक उठे ॥

बिखरा अयाल हिनहिना उठे—
हय टप-टप टापें टकराते।
पंखों से कानों को फहरा,
गज चिंघाड़े मद चुचुआते ॥

सरयू-सरि की मंथरगति-से,
घर्घर करते स्यंदन सरके ।
छवि की छवि नत करते आयुध,
शिर से ऊँचे-ऊँचे उठ के ।।

निकला मतंग पर अग्रध्वज,
उत्तरी-द्वार से फहराता ।
बढ़ चला सैन्य-चतुरंग-व्यूह,
रसराज वीर सा लहराता ।।

श्रीराष्ट्र सुरक्षा-कवच-पाठ,
कर उठे विप्र-परिकर सस्वर ।
यों लगा कि जैसे शिला-शिला—
से उफन चले निर्मल निर्झर ।।

श्रीराष्ट्र-सुरक्षा कवच-स्तोत्र—
मंत्र के ऋषीश्वर परमेश्वर ।
देवता अखंडित भरतखंड,
गतिमान गीतिका छंदेश्वर ।।

परलोक-पुनर्जन्मादि शक्ति,
ओंकार बिंदु संयुत कीलक ।
अक्षय- स्वातंत्र्यप्रीति-अर्थ,
यह राष्ट्र-सुरक्षा-विनियोगक ।।

छप्पय

हरगिरि कलित किरीट, तिलक काश्मीर भाल पर ।
गंगा-यमुना हार सुशोभित उर विशाल पर ।।
कर्क-सुर्फेटा लंक, लंक पद-पीठ मनोहर ।
अभय-हस्त ब्रह्मप्रदेश, गांधार भीति-हर ।।
सेवित षट्ऋतु सिंधु-त्रय, सुस्वभाव से देखता ।
तीर्थ-विभूषण सुदर्शन, भारत-राष्ट्र सुदेवता ।।

स्तोत्र

सुखमालिनी

शशि से शीतल, रवि से उज्ज्वल,
तारों से अधिकाधिक गाथा ।
जिसके प्रिय संतों-शूरों की,
सुर गाते उठा, झुका माथा ॥

जिसमें विधि से ले क्षुद्रकीट—
तक के अस्तित्व सदा खोये ।
उस प्रलय-पयोनिधि में जिसने,
निज छत्र-ध्वजा केवल धोये ॥

वह भारतवर्ष हमारा ही,
पितृस्थल मातृस्थल प्यारा ।
पुण्यस्थल धर्मस्थल शिवमय—
भगवती-प्रकृति जिसकी दारा ॥

जिसके सम्मुख सुरपुर नगण्य,
वैकुण्ठ छिपा पाताल-ताल ।
करता स्तुतियां कैलास सदा,
अपलक-दृग सादर झुका भाल ॥

विधिलोक तान कर छत्र खड़ा,
कर रहे चँवर बहु दिव्य-लोक ।
धर्मार्थ-काम-कैवल्य बसे,
जिसके मृत्तिका-कण बना ओक ॥

मन-वाणी-बुद्धि अगोचर जो,
परिमाण - हीन दुर्गम ईश्वर ।
विचरा करता अवतार धार,
युग-युग साधारण वपु धर-धर ॥

देवाधिदेव वह श्रीभारत,
तव पल-पल करे सकल मंगल ।
पग-पग तव सुपथ प्रशस्त करे,
मन को उमंग दे तन को बल ।।

पर्वत - सम्राट हिमालय तव,
गर्वोन्नत सदा रखे मस्तक ।
गोखुर-प्रमाण तव शीश-शिरा,
हो सरवरराज मान रक्षक ।।

हों शुभ्र समुज्ज्वल युगल-रेख,
केदारनाथ-हर अमरनाथ ।
श्री सिद्ध सुपीठ वैष्णवी का,
हो शोभित अरुणिम-बिंदु माथ ।।

मार्तण्ड-क्षेत्र कोणार्क-धाम,
तव नयनों को दें ज्योति-विमल ।
विधिपुत्र-सिंधु नदराज युगल,
स्वर-सिंधु करे तव श्रवणस्थल ।।

मरु-मालव जिसके रवि-शशि स्वर,
वह अरावली हो घ्राण-पौर ।
कुरु-संगम सुप्ता सरस्वती,
मुखरित करदे तव अधर-सौर ।।

गंडकी - चंद्रभागा - चक्रा,
वसुधार-वितस्ता - विष्णुमती ।
तव अलकराशि को दे सुहास,
वाग्मती-कौशकी - इरावती ।।

थल व्यास-शतद्रु गंग - यमुना—
के रखे प्रफुल्लित गण्डस्थल ।
विधि-निगम-बोध-प्रद इंद्रप्रस्थ,
मुस्कान भरे तव रदन-धवल ।।

तव वक्षस्थल को हरिद्वार,
कंठप्रदेश को वृंदावन ।
साकेत हृदय, काशी मन को,
दे दिव्य नित्य-नव संरक्षण ।

मूलस्थानीय नृसिंहदेव,
श्रीशालग्राम विमुक्तिनाथ ।
रक्षक हों तव भुज-मूलों के,
नख प्रखर-धारि, हरि लुप्त-हाथ ।।

पीवर गांधार-प्रलम्ब ब्रह्म,
आजानु - भुजाओं के रक्षक ।
कूर्पर अभयप्रद रखें सदा,
निश्चिंत हठीले अटक-कटक ।।

कामाक्षी - हिंगलाज - पुष्कर,
नव-द्वीप रखे सुस्थिर पंजर ।
दे उदर त्रिवलि को बल अनंत—
सिद्धाश्रम-कामद - भुवनेश्वर ।।

शिप्रा-तट - वासी महाकाल,
नर्मदा-कूल के परमेश्वर ।
गौतमी-तीर के त्र्यंबकेश,
पट्टुका बन लिपटे कटि-तट पर ।।

जंघायें ताप्ती-महानदी,
कटि करे सुरक्षित विंध्याचल ।
हों भट-मणि सैन्य-किंकणी के,
सौराष्ट्र-विदर्भ-आंध्र - उत्कल ।।

तव अधोप्रदेशों की रक्षा—
करती ही रहे कर्मनाशा ।
साक्षी - गोपाल विठोबा से,
हो पूर्ण जानु-बल अभिलाषा ।।

श्रीसुब्रह्मण्य-क्षेत्र के स्कन्द,
श्रीकुंभकोण के विघ्नेश्वर ।
हों तव आरक्त-एड़ियों के,
संरक्षण में निशिदिन तत्पर ।।

तव पदरक्षण, कंकणी करें—
मीनाक्षी-महिषमर्दिनी की ।
कन्याकुमारिका तलवों की,
कांचियां-युगल युग टखिनी की ।।

कृष्णा - कावेरी-शोण - केन,
मंदाकिन, चर्मण्वती इरा ।
भीमा, ब्राह्मणी, तुंगभद्रा,
संचार करें तव स्नायु-शिरा ।।

तव रोम-रोम में अजर-अमर—
नवशक्ति सुशक्ति-पीठ भर दें ।
रसमय जीवन तव पंपासार,
सांभर, पद्मिनी-ताल कर दें ।।

तव गात्र करें नित ज्योतिर्मय,
प्रभु आशुतोष के ज्योतिलिंग ।
दृढ़ अस्थि करें सतपुड़ा-सह्य—
गिरनार-नील के तुंग शृंग ।।

श्रीहस्ति चिदम्बर-जंबुकेश,
तिरुवण्णमलै एकाम्रेश्वर ।
तव पंचतत्व के, प्राणों के—
रक्षक अक्षयवट-राजेश्वर ।।

भगवती उषा की प्रिय प्राची,
प्रभु जगन्नाथ का प्रखर चक्र ।
रक्षक वारुणी प्रतीची तव,
द्वारकाधीश की भृकुटि-वक्र ।।

बदरीविशाल की गदा करे—
विध्वंस उदीची - अरि समूल ।
हर रामेश्वर का प्रलयंकर—
दक्षिण-दिशि तव रक्षक त्रिशूल ।।

नैऋत्य - कोण करवीर - प्रिया,
ईशान-कोण में प्रभु पशुपति ।
आग्नेय - कोण में सोमनाथ,
वायव्य वेंकटाचल तिरुपति ।।

तव रक्षक-रक्षक - रक्षक हों,
पदपीठ - प्रांत भगवान शेष ।
ब्रह्मद्रव से अभिषेक करें,
कमलोद्भव ऊर्ध्व-प्रदेश केश ।।

चन्द्रमा ग्रीष्म, मन्मथ वसन्त,
रवि शरद्,अग्निनिर्धूम शिशिर ।
निधिपति हेमन्त, इन्द्र पावस,
मुदिता-निधि शत भरदें फिर-फिर ।।

वय मार्कण्डेय, समय लोमश,
वाल्मीकि सुधारें परम्परा ।
धनवन्तरि - अश्विनिसुत - सुषेण,
हर लें तव तन से जरा-ज्वरा ।।

संस्कृति की रक्षा वेद करें,
साहित्य वृद्धि भगवान व्यास ।
शिल्पादिक कार्य विश्वकर्मा,
संगीत करें नारद विकास ।।

कृषि शाकम्भरी, भ्रामरी भू,
वन श्रीकूष्मांडा कल्याणी ।
मातंगी खनि, औषधि रोहिणि,
दें धातु मंगला शर्वाणी ।।

घर को मंदिर कर दे तुलसी,
गोमाता संसृति निरापदा ।
अनुवंश वल्लरी अविच्छिन्न,
तव रखे भगवती स्वधा सदा ।।

स्वाहा विज्ञान, ज्ञान संध्या,
श्रद्धा अर्चना, प्रार्थना सति ।
दे श्रुति विश्वास, पुराण-कथा—
विभ्रम को प्रत्युत्पन्न सुमति ।।

भारती बुद्धि की, श्री चित की,
रति निद्रा की, शचि जागृति की ।
ब्राह्मी स्वर की, शाम्भवी करे—
नित रक्षा चित्त-समुन्नति को ।।

सरिसर्पों से मनसा देवी,
पापों से रक्षा गंग करे ।
भय तस्कर चोर लुटेरों का,
चामुंडा शव पर बैठ हरे ।।

अंतर गायत्री शुद्ध करे,
सावित्री दे वाणी विमला ।
रण-कौशल सिंहवाहिनी दे,
सौभाग्य प्रदान करे कमला ।।

अहि छत्र, सिंधु शैया, विष रस,
वैभव - सौन्दर्य बनें किंकर ।।
बड़वानल अंजुलि समा जाए,
दावानल करलें पान अधर ।।

नतमस्तक बैठे मृत्यु मौन,
प्रतिकूल बनें अनुचर सादर ।
कुंडली दिखायें ग्रह गृह आ,
वह दे सामर्थ्य तुम्हें शंकर ।।

सोरठा

खोते त्रिभुवन प्राण, जिनसे पाये प्राण फिर ।
करें सदा तव त्राण, राम-बाण सिय-सिद्ध-व्रत ।।
रसा रसातल चीर, जाने कब जाती समा ।
भरत धराधर धीर, धरा धैर्य धारे धरी ।।
लगा अलोना काम, कनक मलिन, जिनको निरख ।
लक्ष्मण ललित ललाम, हर हर्षाये समर कर ।।
अवधराज-प्रासाद, चंपक - उपवन सा विमल ।
तनिक न सुना निनाद, चंचरीक शत्रुघ्न का ।।
लखने में लघुकीश, शाखा-शाखा डोलता ।
किंतु किये नत शीश, अग्नि-राहु-रवि-पवि-गरुड़ ।।
तुम उनके प्रिय वीर, जिनका चाकर विघ्नकुल ।
बढ़ो धार कर धीर, कीर्ति स्वयंवर रच रही ।।
देते हम आशीष, विप्र-ब्राह्मवादी निकर ।
करे सुमंगल ईश, कर्ता रघुपति, तुम निमित ।।"

इति कवच

सुखमालिनी

तीर्थों का पुण्य - सलिल छिड़का,
अक्षयवट की शाखाओं से ।
रघुवीर चले उड़ते, नभ की—
उल्काओं की ऊर्जाओं से ।।

पदचर निकले, हय-गण निकले,
स्यंदन निकले गर्जन करते ।
करते प्रलयंकर-आवाहन—
ज्यों हर-हर महादेव कहते ।।

प्रलयोदधि - सम चतुरंग मध्य,
कमलोद्भव जैसा भरत-यान ।
चम-चम-चम-चम-चम चमक उठे,
उद्याचल पर रवि ज्यों विहान ।।

तक्षक - पुष्कल के मध्य भरत—
की छिटक उठी छवि यों मन-हर ।
ज्यों जाते त्रिपुर विजय करनें,
गणपति-गुह से घिर प्रलयंकर ।।

सरयू को दक्षिण कर सेना,
कौशल की सीमा पर आई ।
बोले रथ रोक भरत, "पुर को—
अब गमन करो दोनों भाई ।।"

बोले रिपुदमन "आपनें प्रभु!
कब मुझे अकेला यों छोड़ा ।"
हँस पड़े भरत-"मधुपुर-प्रयाण—
प्रण तुमने प्रिय ! पहले तोड़ा ।।"

"मैं तो कुछ कहनें योग्य कहां,"
बोले लक्ष्मण होकर उदास ।
"मेरा अब तो गुरु-कार्य यही,
प्रिय ! शीघ्र पधारो देव-पास ।।"

कर स्नेहालिंगन विदा कियें,
वंदन कर चले अनुज दोनों ।
ज्यों-ज्यों बढ़ती सेना त्यों-त्यों,
भरते उत्साह तनुज दोनों ।।

वन-गिरि-सरि-नगर-पार करती,
आ गई चन्द्रभागा - तट पर ।
उस पार पड़े शैलूष - शिविर—
देखे बहु व्यूहों में बँटकर ।।

कर तदनुसार ही निज रचना,
सेनायें उतरीं सीमा -पर ।
राघव मंत्रणा लगे करनें,
किस भांति तरें संगर-सागर ।।

सादर मारुति खींचे समीप,
पुष्कल-तक्षक बैठे हटकर ।
पथ-पथ से भूप अनेक मिले,
बैठे क्रम-क्रम से बांधे कर ।।

रामानुज का संकेत देख,
अभिमत अभिव्यक्त लगे करनें ।
कहते, करते स्वयंमेव शंक,
निश्शंक लगे फिर कुछ कहने ।।

बोले मद्रेश "द्वितीय प्रहर—
निशि, सरि तरि छिप कर पार करो ।
जितनें में हो रिपु सावधान,
उतनें में उसके प्राण हरो ।।"

"सोते पशु का आखेट न रघु—
भट करते" बोल उठा तक्षक ।
कर उठी प्रशंसा रण-परिषद्,
सुत-सुकथन स्वाभिमान-सूचक ।।

पुष्कल बोला "कल कुलगुरु का—
अरुणिम-ध्वज ज्यों प्राची फहरे ।
रिपु-अंग कढ़ी फुलकारी का,
त्यों धरती रक्ताम्बर पहरे ।।"

मारुति बोले "होगा यह ही,
दो कार्य किन्तु करनें पहले ।
केकय-नृप अनुसंधान तथा,
वैरी रघुपति - अभिमत सुनले ।।"

'समुचित-समुचित' कह उठे सभी,
पर लगे भूलनें प्रश्न मौन ।
खोजें कैसे भूपाल कहां,
इस काल दूत उपयुक्त कौन ।।

"यदि जीवित तो दिन दो-दिन मैं,
मातुल तो निश्चित मिल लेंगे ।"
बोले रामानुज "यह सोचो,
संदेश किसे दे भेजेंगे ।।"

"भिक्षुक उन्मत्त शिविर में प्रभु,
है एक चतुर्दिक डोल रहा ।
"है राम कहां, है राम कहां,"
हँस-हँस रो-रोकर बोल रहा ।।

यदि जाते पास, भाग जाता,
यदि पास बुलाते, छिप जाता ।"
सुन सैनिक - वचन, भरत बोले,
"तुम चलो स्वयं मैं ही आता ।।"

दोहा

लखा दूर से भरत ने, घोर अघोरी-वेष ।
मलिन वदन जलते नयन, बिखरे रूखे केश ।।
विधवा युवती सा कभी, करता करुण विलाप ।
अट्टहास करता पुनः, दिशि-दिशि जातीं कांप ।।
अनमिल अक्षर निरर्थक, अद्भुत लय-मय गान ।
एकचित्त सुनने लगे, भरत लगाकर कान ।।

कवित्त

"मारो-मारो-मारो मरे-मरे मारो-मारो-मारो
मरते को, मारते को मारो ऐसी मार रे ।
डूब जायें सागर, महीधर धसक जायें,
दावा से धधक जायें, बाड़व अंगार रे ।।
केले के से पात सी, पतुरिया के चोर सी ये,
चिर जाये मेदिनी ध्रुवों के आर-पार रे ।
चीथ डालो रुंड-मुंड मींज डालो रक्तकुंड,
डालो दिग्पालों के कपालों में दरार रे ।

फूंकों-फूंकों नगर-नगर की डगर फूंको,
फूंको-फूंको ग्राभ-ग्राम होली सी हुलस के ।
लाल-लाल लोहू की ललाई लाल-लाल करे,
कूलहीन सरि - कुल कुलिश - सी मथ के ।।
चंद्र लीले भानु को औ चंद्रमा को लीले राहू,
नरक की ज्वाला नाचें कुहू में धमक के ।
हाहाकार चीतकार धुंआधार मारामार,
बार-बार मार-मार अलट-पलट के ।।

हाथी हथसाल जले, घोड़े घुड़साल जले,
ईंधन से स्यन्दन धधक गये पल में ।
खाते पाकशाला जले, आते निज शाला जले,
गाते रतिशाला जले, नये-नये पल में ।।
गुरुकुल जाते जले, आंगन में धाते जले,
छाती पय पीते गाती छाते तये पल में ।
लोट गईं अटा अट्टहास कर बार-बार,
टोलियों के टोले जले ढये-ढये पल में ।।

लुट गये नगर, नगरपाल पिट गये,
चाट लिये नरपाल लपटों ने कीट से ।
पंजरों की पींजरों - सी गांवों की चौपाल हुईं,
हाटक से हाट मृतघाट श्री कुईंट से ।।
सध्वज जो झूमते गगन रवि चूमते-से,
शिखर सो टूटे रज, रोटी पै कै टींट से ।
राजहंसिनी के ताल, गरुड़ों के क्षीर-पाल,
काल ने बनाये काले-कागले की बींट से ।।

प्रतिशोध-प्रतिशोध धराधूलि डालो बोध,
मद से अबोध जागो सांड के से क्रोध से ।
तेज से जलाते भानु, शीत से कँपाते सोम,
ढोल से डुलाते डोल पावक - पयोद से ।।
आततायियों के प्राण मार के कृपाण खींची,
नरक के पोखरों में डालो कीट - थोक से ।
प्रेतों के प्रखर परिहास से प्रहार घोर,
भेजो काल - लोक वैरी लौट काल-लोक से ।।

दोहा

सहसा ही बोले भरत, "हा ! हा ! मातुल हाय ।
ऐसे कैसा वेष क्यों, कहां कुटुम्ब-निकाय ।।"
"अरे भरत ! तू आ गया, बता कहाँ है राम ।"
"तव सुत को सेना सहित, भेजा करुणाधाम ।।"
"संकट में कैकेय के, क्यों आता भूपाल ।"
"नहीं-नहीं श्रीराम की, निंदा पाप कराल ।।
मैं हठ कर आया स्वयं, आने को थे राम ।
प्रभु-बल तव आशीष से, जय निश्चित् संग्राम ।।"

१०४६

रोला

अश्वजीत को भरत शिविर में सादर लाये ।
बहुविधि मज्जन करा सहठ नव-पट पहराये ।।
स्वस्थ-चित्त हो, सभा विराजे केकय-भूपति ।
राघव बोले "कहें सकल वृत्तान्त महामति ।।
तवागमन से पूर्व सभी कर रहे मंत्रणा ।
किसे बनायें दूत विचाराधीन योजना ।।

परामर्श दें पूज्य ! कि क्या करणीय हमारा ।
किंतु बतायें प्रथम कहाँ परिजन-दल सारा ।।"
"कहां राज-परिवार, अरे अब भरत! पूंछ मत ।
हरा न कर अति-हरा और यह छाती का क्षत ।।
करा दुर्दशा, आत्मघात कर गये सकल ही ।
छिपा भाग कर शेष, सुनाने को यह खल ही ।।

दाह-क्रिया की स्वयं राज-प्रासाद दग्ध कर ।
आया हूँ सुत ! छिपा अस्थि-घट देवी-कंदर ।।
मम विचार में दूत भेजना वत्स ! निरर्थक ।
रवि-मर्यादा रहे किन्तु जग उन्नत-मस्तक ।।

भेजो अतः कपोत-कंठ में पत्र बांध कर ।
लेना स्वयं विलोक पुनः वैरी का उत्तर ।।"
अनुमोदन पा, लिखी पत्रिका मारुत-नंदन ।
"यदि शास्त्रीय-विवाद विचारें तो पंडित-जन ।।
भू-लिप्सा तो करो अतल में जाकर विचरण ।
शक्ति-दर्प प्रत्यक्ष उपस्थित तो रण-प्रांगण ।।"

भेजा सजा कपोत-कंठ में पत्र डालकर ।
छिन्न-पत्र शर-विद्ध विहग आया 'रण, उत्तर ।।'

दोहा

भरत अधर लग, कर उठा—देवदत्त उद्घोष ।
हुंकारा कपि रथ-ध्वजा, गरजे वाद्य सरोष ।।

रोला

बँधे अमित शर-सेतु चन्द्रभागा पर अपलक ।
बढ़ी राघवी-सैन्य बाढ़ मानो संवर्तक ।।
भाग चले गन्धर्व देखकर दिव्य-पराक्रम ।
मुदित हुए रघुवीर, सफल लख प्रथम-परिश्रम ।।
घुसे रिक्त-रिपु-शिविर, दृश्य अद्भुत ही पाया ।
पड़ीं नर्तकीं अमित श्रमित सीं ढ़कतीं काया ।।
धरे, भरे मद-भांड़, अग्नियों पर पशु भुनते ।
पड़े बेड़ियां पहिन बंदि-बहु मस्तक धुनते ।।
मार लात कर दिये चूर शूरों ने भाजन ।
मुक्त किये सब काट-काट कर पल में बंधन ।।
बोले सचिव "स्वतंत्र आप हो सभी नर्तकी ।"
"होकर फिरीं स्वतंत्र बनी हम तभी नर्तकी ।।
किंतु हो उठा आज घोर दुर्भाग्य हमारा ।
हाय ! आपने भी कहकर 'नर्तकी' पुकारा ।।
रामानुज श्रीभरत-लाल के साधु सचिवगण ।
दे न सके जो आज 'सुता-भगिनी' संबोधन ।।
आये करने विजय धरा क्या राघव केवल ।
पायें अबला निराधार हम किससे संबल ।।"
सुन शुचि अंतर-गिरा भरत-दृग छलके छल-छल ।
"मातृ-शक्ति! दो क्षमा, भरत अर्पित तव पद-तल ।।"
"करो न लज्जित नाथ! पतितं अबला दुखियारीं ।"
बनती कुल-वधु कभी न, पुरवधु स्ववश बिचारीं ।।

पी-पीकर अपमान गरल, पी अपयश मदिरा ।
लुटी लाज ढक सकी न किसी स्वजन की सु-गिरा ।।
जिनकी वस्तु, 'कुवस्तु' उन्हीं ने कह धिक्कारीं ।
भोग्य-वस्तु हम बनीं विवश दुर्भाग्य-दुलारी ।।
पतिताओं के हेतु करें निश्चित अनुशासन ।
हम सी और अनेक मिलेंगी अभी अभागन ।।
की पतितों ने पतित जिन्हें छल-बल से हर कर ।
जिनका केवल दोष यही, वे नहीं सकीं मर ।।
किसकी शपथ पवित्र उठा, अपवित्र कहें हम ।
वरे हृदय से नहीं, देह से ये दनुजधाम ।।
सहती आईं स्त्रियां युगों से यह प्रवंचना ।
ऋषि दे अबला नाम, उचित माने चुप रहना ।।
दशकंधर से महावीर का दंभ दमन कर ।
करा वैरि-विध्वंस, अवध के सिंहासन पर ।।
जनकनंदिनी राम-प्रिया जो युग में बैठीं ।
वह भी अबला हुईं हाय ! निर्जन में पैठीं ।।
पुरुष, युगपुरुष, महापुरुष, पुरुषोत्तम, होकर ।
कापुरुषों से रहे मौन नृप मन-मणि खोकर ।।
जो निज सत्य-कलंक चित्रगिरि पर धो आये ।
सिय का असत-कलंक देख, वे क्या कह पाये ।।
जिसने निज पद फँसी फाँस की पीड़ा जानी ।
उसने पर - हिय गड़ी न क्यों शूली पहचानी ।।
किन्तु आपके साधुपुरुष होने में संशय ।
या कि राम के महापुरुष-पद को ही कुछ भय ।।
हो, ऐसा कुछ नहीं सत्पुरुष महापुरुष तुम ।
नहीं निरंकुश, अनय-दंति-मस्तक-अंकुश तुम ।।
किंतु न पाये बदल भाग्य-रेखायें स्त्री की ।
नियति, नियंता नियंत किंतु स्त्री-हेतु यहीं की ।।

नारी मृतिकापात्र, पड़ी तो पड़ी दरारें ।
पुरुष वज्रमणिमाल सूत्र नव नित-नित धारें ।।
तार अहिल्या कीर्ति समस्त पुरुष ने पायी ।
किंतु अहिल्या, निष्कलंकिनी कब कहलाई ।।
दे सुहाग-सिंदूर, तनुज की स्नेह-सगाई ।
क्या कंकेयी हृदय-दाह शीतल कर पाई ।।
सुता - जन्म इस हेतु जगत भरता सिसकारी ।
क्या जाने कल यही लखेगी क्या, बन नारी ।।
अस्तु, आर्य ! दें, शिरोधार्य है तव अनुशासन ।
पालन, देकर प्राण करेंगी हम अबला - जन ।।"
किंकर्तव्यविमूढ़ भरत भू लगे ताँकने ।
आई सहसा बात स्मरण, जो कही राम ने ।।
ले जाकर एकांत परम संकोच भरे स्वर ।
"वत्स ! त्रिकूटा-गुहा तपस्या अतिशय दुष्कर ।।
करती देवी एक, समस्या यदि आ जाये ।
जाना उनके पास स्वयं ही शीश झुकाये ।।"
बोले बुला अमात्य "देवियें ये सब सादर ।
देकर भोजन-वस्त्र बिठाओ न्हिला-धुलाकर ।।
ले मारुति को साथ त्रिकूटा-घाटी आये ।
घुसे विविर में शीश समादर सहित झुकाये ।।

दोहा

लखी दिव्य छवि, चरण तल, स्वतः जान्हवी-सृष्टि ।
अधर 'राम-राघव-हरे', नासिकाग्र पर दृष्टि ।।

रोला

कृशतनु दृगजल स्मीत-मुखी शिर जटाट्टालिका ।
ज्यों प्रभु-विरहिन सीय सदेह अशोक-वाटिका ।।

कपि ने देखा, भरत-नयन भी देखे विस्मित ।
लगीं अपरिचित किंतु सीय-सी वह चिरपरिचित ।।
वही रूप - स्वर - शील - सत्वभावना-साधना ।
वही अर्चना वही दर्श-लालसा प्रार्थना ।।
दीनदयालु विरदसंभारी संकटहारी ।
झरती रति-निर्झरी रोम-रोमों की झारी ।।
डाली प्रभु-मणिमाल अंक में कपि ने हरषा ।
लगीं देखने उठा पलक विस्फारित सहसा ।।
"पवनपुत्र! तुम, प्राणनाथ-से पुरुष कौन ये ।
समझ गई केकईपुत्र ही भरत मौन ये ।।
नंदि-ग्राम के तरुण - तपस्वी घोर - मनस्वी ।
प्रभु-पद-पद्म-पुनीत-पादुका-सचिव यशस्वी ।।"
गिरे भरत-कपि 'राम राम' कहते चरणों पर ।
"माते ! बैठीं यहां, धरा में वहां समाकर ।।"
"धरा समाई जो कि, दिव्य गोलोक पधारी ।
समझो मुझको एक परम साधारण नारी ।।"
"नहीं-नहीं हो आप अंबिके ! स्वयं जानकी ।
अमर-मूर्ति साकार राम के प्रेम प्राण की ।।"
"कुछ भी कह लो, गोपनीय यह तत्व परम है ।
रघुपति के अतिरिक्त विषय सबका दुर्गम है ।।"
पहचानी प्रभु-माल, भाल पर सहज सजाई ।
चीर अमा-निशि उषा मुदित मानों मुस्काई ।।
"क्या हो कहो, न कहो, हमारी तो हो माता ।
कठिन परिस्थिति,सहज सुजीवन-दाता त्राता ।।"
'सत्य-सत्य' कह युगल भक्तवर पास बिठाये ।
मधुर-मधुर फल स्नेह-सहित निज हाथ खिलाये ।।
भरत - समस्या सहज भाव सुनकर, मुस्काकर ।
बोलीं "बाला सकल यहां पर छोड़ो लाकर ।।

करो अभय हो समर, पुनः जय पाकर आओ ।
सिंधु-सिधु - संगमन नृपति - अवशेष चढ़ाओ ॥"
"मां ! मातामह-अस्थिकलश क्या रखा यहीं पर ।"
रँगा रक्त,पट ढका, लखा घट, रखा वहीं पर ॥
घट लखते ही भरत-विलोचन लाल हो उठे ।
कमल-कोष दृग-गुलक घोर विकराल हो उठे ॥
मधुर-अधर आजानु-भुजायें उठीं फड़फड़ा ।
गिरा लड़खड़ा उठी, रदावलि उठीं कड़कड़ा ॥
"यदि मैं रघुपति-दास सदा मन-कर्म-वचन से ।
तो मातामह हों सु-तृप्त अरिरक्तार्चन से ॥"
दिशि-दिशि गूंजा घोर गाज-सा वीर भरत-स्वर ।
"भरत या कि शैलूष रहेगा, देखें निर्जर ॥
पामर-शिर-मालिका कालिका पूजें शंकर ।
चढ़े भरत-शिर या कि सतीश्वर-पाद-पीठ पर ॥
रामचंद्र श्रीचरण-शपथ, साक्षी तुम माता ।
भरत या कि शैलूष रखेगा एक विधाता ॥
दो अविलंब अशीष-निदेश, विलंब असह मां ।
दर्श करूँगा विदा कराते मातामह मां ॥
या मातामह - साथ करूँगा नभ से दर्शन ।"
"नहीं-नहीं तव हाथ भरत ! है अस्थि-विसर्जन ॥
करे त्रिपथरण विजय सहज तव वैरि - संवरण ।
करो मृत्यु को विबुध-वैरिगण - वंश समर्पण ॥

दोहा

जटा-मुकुट जलधर - सुछवि, कर धनु - सूर्याकार ।
रक्षा करे सदैव तव, मम प्रिय प्राणाधार ॥"

१०५५

रोला

चले नमनकर, जान सत्य सिय की परछाईं ।
"रहती हैं या यहां हमें जय देने आईं ।।"
करते - विविध विचार शिविर में दोनों आये ।
वृद्ध मंत्रियों सहित अंगना-वृंद पठाये ।।
पा आक्रमण - निदेश शूर शायक से निकले ।
लगता परिधि पछाड़ सिंधु - संवर्तक बिचले ।।
बढ़ते ही भट चले, न सम्मुख पड़ी लड़ाई ;
जलीं फसल, पुर खुले, विषैले ताल-तलाई ।।
करतीं हाहाकार प्रजा बहु पड़ीं दिखाई ।
करने पर प्रतिरोध, न कोई सेना आई ।।
पुनर्वास की सकल व्यवस्था पग-पग करते ।
बिना किये पल व्यर्थ गये रामानुज बढ़ते ।।
लखे वितस्ता-पार शत्रु के व्यूह भयंकर ।
उगल अग्नियाँ रहीं शतघ्नी मुख में भर-भर ।।
तीर-तीर प्राचीर अनेकों दुस्तर गिरि सीं ।
खड़ीं, खड़े भट शृंग बहाते खर-शर सरि सीं ।।
बोले मारुति "शेष-व्यूह रिपु खड़ा रचाकर ।
फण बहु दल मणि सुभट, शरासन मुख, रसना शर ।।
गहन-वितस्ता सिंधु - तरंग अभेद्य कवच सी ।
स्वांसायुध विषवायु, विदारण-सिद्धहस्त सी ।।
की रचना अतिशीघ्र भरत क्षय-दधि व्यूहों की ।
फैली प्रलय-पयोधि पंक्ति दुर्जय यूथों की ।।
स्यंदन मत्तमतंग तरंग हरावल धाई ।
सलिल - राशि सी तुरग-पदग सेना लहराई ।।
सजे शरों के सेतु वितस्ता-वक्ष अपरिमित ।
बन पताक पर्जन्य-अस्त्र बहु हुए प्रवाहित ।।

गईं शतघ्नी सील, भरीं प्राचीर-दरारें ।
जब तक सम्हले शत्रु, सैन्य जा लगीं किनारे ।।
लगे गदा पर गदा फेंकनें सुभट घुमाकर ।
हिलीं फणावलि, खिली कुंडली होकर जर्जर ।।
बड़वानल से कुपित शूरमा अभय धधकते ।
शेष - अंग बह चले सिसकते, शोणित-रिसते ।।
लगे काटने 'जयति राम' कह पद-पद पदचर ।
चले पराजित हुए विपल-पल निशिचर संगर ।।
प्रलय-मार सुव्यूह अनंत-व्यूह चर्राया ।
क्षुब्ध - सर्प सा चला भीत रिपुदल थर्राया ।।
गरुड़-व्यूह रच भरत विविर-पथ लगे नोंचने ।
धूर्त शत्रु को शूर लगे पग-पग दवोचने ।।
खंड-खंड हो यान खटाखट लगे टूटने ।
टाप-टाप शिर कटे पटापट लगे फूटने ।।
द्विरदन-रदन समूल मूल-माला से उखड़े ।
देह-शिखर, पद-स्तम्भ, गदाघातों से पिछड़े ।।
गंडस्थल पर खड्ग चोट से पड़ी दरारें ।
ज्यों प्राताशन - हेतु शिवा तरबूज बनारें ।।
सर-सर कर करवाल गिरातीं श्रवण मही पर ।
योगिनियों के लिये पड़े पनवारे सुन्दर ।।
चिरते जाते उदर, निरन्तर तन होते क्षय ।
भागे जाते असुध टपकते टप-टप हय-गय ।।
कटते-कटते सुभट कटाकट लगे काटने ।
कटे-कटे शिर लगे परस्पर पड़े डाँटने ।।
बिना मुंड के रुंड केतु से प्रलय मचाते ।
सुरसा से भुजाहीन वदन फैलाये धाते ।।
कहीं ग्रीव अधकटी लटकती लहू डुबोई ।
ज्यों छींके पर फिरी महावर भरी कमोई ।।

कहीं गदा से गदा छटाओं सी टकरातीं ।
कहीं ढाल से ढाल घटाओं सी भिढ़ जातीं ।।
कहीं इंद्रधनु सरिस खुलीं सतरंग कटारीं ।
नवला सी भयभीत समातीं आंत अटारीं ।।
कहीं मंडलाकार कार्मुकों से तोखे शर ।
आ-आकर विपरीत-दिशा से भल्ल मल्ल कर ।।
एक-एक में धँसे चालकों में धस जाते ।
कहीं शरासन कटे, कषा से कसक घुमाते ।।
कहीं परशु पर परशु पसर पंखों-से झलते ।
खट्वांगों से अंग कहीं खट्वांग मसलते ।।
भिंदीपाल त्रिशूल परिघ-कुल कहीं खेलते ।
कहीं ठेल प्रिय परे, हेल कर सेल झेलते ।।
सहसा विपुल विमान गगन-मंडल पर छाये ।
ज्यों वक्री-ग्रह सतनु लोक-लोकों से धाये ।।
झंझरियों से चले गर्जना कर पवि-छवि शर ।
भेद-भेद कर अतल, लगे लहराने सागर ।।
उठी खिलखिला भीति, खिले नभ पावक-पंकज ।
दिशि-दिशि भरने लगी प्रभंजन रघु-सेना-रज ।।
इधर लीलता अतल, उधर धधकाता अंबर ।
लगा भटकने सुभट ज्वार-भाटा दिशि-परिकर ।।
लगे सुखाने वीर अग्नि-अस्त्रों से भूतल ।
लगे बुझाने अमित मेघ-शर मार नभस्थल ।।
लिये जिन्होंने घाव वक्ष पर देवासुर-रण ।
गिरि-गर्तों में लगे वही छिपने राघवगण ।।
कभी घेरती तमा, चमकती कभी चंचला ।
त्राहि-त्राहि कर उठी सकल सेना ज्यों अबला ।।
"जिसने जीते असुर, न क्या वे मारुति जीते ।
जिसने फूंकी लंक, डरे क्या देख पलीते ।।

वृद्ध हुए या काल स्वयं कैकेय पधारा ।
दिग्विजयी-चतुरंग अन्त विधि हाय ! विचारा ।।"
दिखा न कपि जब, राम-स्मरण उच्चस्वर से कर ।
लगे छोड़ने तान कान तक धनुष, भरत शर ।।
ताने वाण-वितान भूमि पर ऐसे, क्षण में ।
किया प्रवेश निषिद्ध रंच अणु का भी कण में ।।
ढकनों जैसे ढके बाण फिर तल-स्रोतों पर ।
हरा भरत ने सैन्य-शोक बाणांड बनाकर ।।
जला बाण की ज्योति, बाण की चला समीरण ।
कनकभवन सा बना दिया क्षण में समरांगण ।।
स्वस्थ्य सैन्य फिर लगी समर करने प्रलयंकर ।
गूंजा नभ बजरंगबली का नाद भयंकर ।।
रिपु का एक विमान कौतुकी कपि ने छीना ।
किया विमानावरण गदा से झीना-झीना ।।
ठेला सकल विमान-व्यूह सागर के नभ पर ।
लगे गिराने पुनः-व्योमरथ खंड-खंड कर ।।
नीचे से वरवीर भरत के बाण भयंकर ।
बींध-बींध कर तली, गिराने लगे भूमि पर ।।
करता अजगर पसर खगों का ज्यों प्राताशन ।
त्यों दर्शाता शौर्य भरत का महा-शरासन ।।
लोट-पोट हो यों विमान दिखते नभ जलते ।
उल्काओं में धूम्रकेतु ज्यों नर्तन करते ।।
करते समर कराल पुनः यों जलते-जलते ।
ज्यों नभगंग-प्रवाह अमित नक्षत्र उछलते ।।
खंड-खंड हो गिरते फिर यों टूट-टूट कर ।
दिशि-शुंडाल सुशुंड - कुंभ ज्यों फूट-फूट कर ।।
होते हों संवर्त-विवर्तित-वीचि जाल लय ।
हिले सिंधु लख दिवस-काल शत राकेशोदय ।।

लक्ष्य चूक एकाध मेदिनी पर ज्यों गिरते ।
लगते, गलते सूर्य तेज से तप्त तड़फते ।।
अंगारों की शिला, शैल - माला ज्वाला की ।
लावाल्हादिनि चलीं सुगति अहिपति-व्याला की ।।
हुई ह्रास, आकाश-वास में स्थिर दिशिगरिमा ।
रवि से रवि-गृह आंख-मिचौली अमा-पूर्णिमा ।।
लगीं खेलने खुलीं बजाकर निर्भय ताली ।
ढकतीं पल-पल पलक,ललक मुख मलतीं लाली ।।
धम-धम गिरतीं शिला, बजाते ज्यों मृदंग यम ।
चंडी का आलाप जलद-जलनिधि दल संगम ।।
लगी गूंथने कुंत, कली कालिका नवेली ।
भार-भरी भू लसी रुद्र-रमणी अलबेली ।।
हाहाकारें लगीं गीति - स्वर मुखरित करने ।
तज समाधि ज्यों उग्र लगे क्षय-क्षेत्र लहरने ।।
गंधर्वों के गिरे गगन-रथ एक-एक कर ।
बचा एक कपि-यान नभोदधि मथता मंदर ।।
उतरा भू पर मुदित, बोलता जय-जय रघुवर ।
इन्द्र-स्कंद से मिले युगल वर-वीर भुजा भर ।।
नाची रघु-चतुरंग देव-सेना सी हर्षित ।
भाग भीत गंधर्व हुए गढ़ में अन्तर्हित ।।
घेर दुर्ग, रण लगे भयंकर करने राघव ।
पा न सके पर पार, हुए सब लाघव,लाघव ।।

सोरठा

हुई प्रतीची लाल, रण विराम डिंडिम बजे ।
'आना प्रातः काल,' सैन्य फिरीं कहती हुईं ।।

१०६०

ऊर्मिका

आदि-कुलपुरुष अनादि दिनेश,
चले नभरथ रक्ताम्बर धार ।
मसलते दिशि-दिशि भाल गुलाल,
प्रकाशित करते प्रभा-प्रसार ।।

धीर-ध्वज हो रघुवीर अधीर,
बोलते 'रघुवर' की जय-कार ।
शस्त्र झंकार, कवच तन-धार,
पधारे समरागार मँझार ।।

दुर्ग दुर्गम में वैरी-सैन्य—
विलोकी, आयुध लिये कराल ।
विजय, नववधु वीरों को लगी—
सजी शैया अवगुंठन डाल ।।

प्रतिस्पर्धा सी हहरी हृदय,
लहर सी लहरी देह उमंग ।
पदों में उग से आये पंख,
छलछला उठा नयन रण-रंग ।।

प्रखर शर करने लगे कटाक्ष,
गा उठीं प्रत्यंचायें गान ।
मिलन को आतुर सी हो उठी,
विजय-मानिनी त्याग कर मान ।।

उधर कृष्णाभिसार लघु-द्वार,
इधर शुक्लाभिसार मुख-द्वार ।
तनिक सी अलक, पलक भर हिली,
ललक सा उठा समर-श्रृंगार ।।

द्वार पर ज्यों-ज्यों पड़तीं चोट,
कोट से त्यो-त्यों होते वार ।
हठीले हटते, डटते पुनः,
लक्ष्य पर करते हुए प्रहार ।।

रत्नगर्भिणी रक्त से नहा,
सजी युवशिर रत्नालंकार ।
दर्शनीया अधिकाधिक हुई,
समर का निखरा निरख निखार ।।

प्रमुख-पौर पर बढ़े मद्रेश,
दिया मातंग पिला मद, हूल ।
गेहपति घुसे गेह, त्यों देह—
धसे पट-पट पर प्रगट त्रिशूल ।।

वज्र की हाट कि शिला विराट,
गईं साहस द्विजिह्विनी चाट ।
भूप के लगे टूटने प्राण,
टूटने दूर, न हिले कपाट ।।

"समाये प्राचीरों के गर्भ,"
युधाजित बोले "इनके यंत्र ।
खुलेगा प्रमुख पौर यह तभी,
करे भट कोई शिखर स्वतन्त्र ।।"

शिखर क्या, स्वर्ग-द्वार-सोपान,
उँचाई लखते गिरती पाग ।
भुवनभास्कर तज प्राची-भवन,
जहां पर प्रथम रचाते फाग ।।

कंदरा तुंग नगाधिप-शृंग,
प्रशस्ता-भित्ति भयद-कांतार ।
खड़े करते साहस-उपहास,
अभय अरि, हिंसक जंतु अपार ।।

तक्ष-पुष्कल ने अपलक पलक—
मिला, कर पितु-वंदन, कस फेंट ।
चले मृगराज - कुंवर से कुंवर,
वनैले - शूकर के आखेट ।।

खींच कर चाप करीं टंकार,
बढ़े शर भुजग-निकर फुंकार ।
बनीं निश्रेणी शर-श्रेणियां,
बना शैलूष-ध्वजा आधार ।।

तान स्वयमेव स्वशिर शर-छत्र,
भरत के निर्भय राजकुमार ।
चंचला की चंचलता लजा,
उछलते चले, उठी जय-कार ।।

गिराने लगे शिलायें शत्रु,
काटकर कुंवर गिराते भूमि ।
तैरते ज्यों प्रतिकूल-प्रवाह—
शंख सप्राण चीरते ऊर्मि ।।

बढ़े त्यों वीर युगल सुकुमार,
देखते शत्रु-मित्र साश्चर्य ।
प्रशंसा रण-पंडित कर उठे,
मांडवी के जाये रण-वर्य ।।

शिखर-गृह देखा, सम्मुख खड़ा,
स्वयं गंधर्वराज शैलूष ।।
भरे व्यभिचार-कालिमा गंड,
बताते कभी सूर्य प्रत्यूष ।।

रत्नमय-तप्त सुकांचन - स्तम्भ,
मंजुमणि मंडित मरकत छत्र ।
बिछावन बिछे भूमितल मृदुल,
महकती इत्र-गंध सर्वत्र ।।

भरा बहुशैया शिखरागार,
कि ज्यों सर-शारदीय शतपत्र ।
पड़े बहु द्वार-द्वार ओहार,
किन्तु प्रायः थीं स्त्रियां विवस्त्र ।।

झुके कुँवरों के लोचन स्वतः,
हुईं विस्मित सुन्दरियां सर्व ।
रूप क्या रूप, रूप के गर्व,
कि हर कर खड़े रूप का गर्व ।।

प्रफुल्लित मंजुल कोमल कमल,
कि नभ-गंगा के चंचल मीन ।
कि विकसित ये ऋतुराज रसाल—
डाल के किसलय परम नवीन ।।

हरित सावन उपवन के ललित,
ललकते श्यामल कलित कुरंग ।
केतकी की सु-रंग वेदिका—
रचाते रास कि भृंग अभंग ।।

श्रवण-मूलों तक फैले नयन—
मौन से, फिर भी कुछ वाचाल ।
तरुण होने को मानों अरुण,
भेद सा रहे तिमिर का जाल ।।

भौंह मानो तत्पर से धनुष,
बिठाने को तुरन्त शर प्रखर ।
अधर पर भीगी-भीगी मसें,
लहरते लहर घिरे ज्यों भँवर ।।

सांवले-गोरे सुभग शरीर,
कसे मणिमय-कांचन तन-त्राण ।
लगे ज्यों नवल तमाल-कनेर—
कलेवर, सोन-जुही के प्राण ।।

सोचने लगीं हतप्रभ हुईं—
सभी, ये कौन-कौन ये कौन ।
हुए मुखरित बहु हृदय विचार,
गिरा पर रही मौन की मौन ।।

युगल ये यदि अश्विनीकुमार,
धनुष क्यों रखे हाथ में थाम ।
पंच-पुष्पों के चापों बिना,
समझ भी लें तो कैसे काम ।।

विश्व का धैर्य - शौर्य-सौन्दर्य,
सकल लाये सकेर सुकुमार ।
हुए किसके सुपुण्य से प्रकट,
अतल-अंबर से शिखरागार ।।

"भरत के बैटे हैं पगलियो !"
हँसा गंधर्व रिता मदपात्र ।
"अरे ! सकुचाये, कैसे युवक,
तपस्वी हो या बांके क्षात्र ।।

मानते जिसको तुम-से धर्म,
स्वर्ग ही तो उसका उद्देश्य ।
साधना - सिद्धि - समय- संकोच,
लखो, तव सम्मुख स्वर्गिक-प्रेक्ष्य ।।

करेंगे समर, समर के समय,
यहां तुम मेरे अतिथि कुमार ।
हृदय से करो, सुहृद! स्वीकार,
आज गंधर्वराज - सत्कार ।।"

कई सुन्दरी झूमतीं चलीं,
चषक भर, करती हुईं कटाक्ष ।
काम-सम हटीं सहम, ज्यों दिखे—
क्षयेच्छुक विरू पाक्ष कुंवराक्ष ।।

"दृगों से भरे-भरे मद - पात्र,
सुपावक - परिणीता से मात्र ।
पिया करते रघुवंशी-वीर,
न चाटा करते झूठे पात्र ॥"

कुमारों की गर्वीली - गिरा,
हँसा सुनकर लंपट गंधर्व ।
"अवध का सर्वनाश कर चुका,
तुम्हारा पहले ही यह गर्व ॥

राज को एक त्याग चल दिया,
एक पहुँचा लौटाने राज ।
झपटकर पड़ी एक पर गाज,
एक ने झपट पकड़ ली गाज ॥

युगल ही यौवन बैठे गला,
बताते हैं, 'रहस्य है गूढ़' ।
पड़ीं परिणीता घर-वन रहीं,
उन्हीं मूढ़ों के तो तुम मूढ़ ॥"

"नीच ! कब उच्छित-तल का जोंक,
देख पाया मुक्ता, तल गूढ़ ।
मनुज के स्थान दनुज बन गया,
जन्म ले देवयोनि में मूढ़ ॥

दयावश करो पंक से पृथक—
कीट को, तो दे देता प्राण ।
इंद्र क्या सुख दे सकते उन्हें,
पंक हो जिनको स्वर्ग समान ॥

भोगते हैं शव आत्माहीन—
चिता पर बैठ दुरात्म-पिशाच ।
काम-वाटिका कामना-भ्रटा,
विज्ञजन आत्म-तत्व को जांच ॥

रमण करते देवों - सम शांत,
प्रकृति से भ्रमर-वृत्ति स्वीकार ।
नाचते दंभी दंती - सरिस,
सफल तरुमाल विदार-विदार ।।

मनुज, सात्विक-रति-जीवी जीव,
असुर, पण--व्यवहारी निर्जीव ।
एक ही सरवर की संतान,
पृथक पर पंकज-पंक गतीव ।।

धर्मरत आर्य, अधर्मी दस्यु,
कुटिल पर रच पार्थक्य-पुराण ।
सिद्ध करते फिरते दो - जाति,
जिताते वैदिक - अनुसंधान ।।

न असुरों के शिर उगते शृंग,
सुरों में क्या वैशिष्ट्य विशेष ।
भावनाओं का अंतर मुख्य,
गौण स्थितिवश भोजन-परिवेश ।।

अरे ! सौन्दर्य और ऐश्वर्य—
बता, तव किस सुरेन्द्र से न्यून ।
जन्म से गातु, कर्म से किन्तु—
लग रहा कौणप का सा भ्रूण ।।

पांच-भौतिक शरीर म्रियमाण,
कहें संक्षिप्त शब्द तो 'देह' ।
देह क्या, मरु का अंध - निपान,
हरित यौवन चौमासा - मेह ।।

निगल कर पड़ा राजपथ मध्य,
तुम्हारा निर्झरिणी सा स्नेह ।
इंद्रियां रहीं प्यास ही टेर,
उन्हीं का तो समूह यह देह ।।

मान ऐसा कुराय सर्वस्व,
वंदि बनता बलनिधि मातंग ।
गिराता तरुवर सहज समूल,
वही गिरता बन परम-अपंग ।।

देह पर जिसका शाश्वत-गेह—
ईश वह, वही मनीषा - प्राण ।
स्वयं होता दुर्गति को प्राप्त—
मूर्ख नर, कर उसका अपमान ।।

जन्म तो देता न्यायी ईश,
पूर्व-कर्मों के फलानुसार ।
जीव के कर्म किन्तु आधीन,
बनाये देव कि दनुजाधार ।।

देह-रति मान सनातन - धर्म,
बने अज्ञान-विवश दुष्कर्म ।
प्रात का भूला लौटे सांझ,
उसी विधि समझ पुनः सत्मर्म ।।

त्याग कर अंत-मूल अभिमान,
सत्य का करो पुनः सम्मान ।
लगालो बिछुड़ी वीणा हृदय,
करो सप्राण राग, निष्प्राण ।।

कई थल हैं हम तुमसे न्यून,
प्रार्थना मानें आप विनीत ।
आप ही के है हित की बात,
बुरा हम रहे न किंचित चीत ।।"

कालवश अट्टहास कर उठा,
रिताता पान-पात्र गंधर्व ।
"अरे! तुम घोर दया के पात्र,"
मूढ़ की निकली गिरा सगर्व ।।

"न यौवन - वदन सुशोभन लगी,
पुरातन - वृद्धों की सी बात ।
सरस सावन, फागुनी वसंत,
कहां पियराये पतझर पात ।।

आरसी दिखा तनिक उर्वशी,
कुंवर देखें निज सौकौमार्य ।"
"चमकते खड्ग मुकुर निज मुकुट,
किया करते हैं बाँका आर्य ।।

दिखायेंगी अंधा ही बिंब,
आरसी पल-पल हुई मलीन ।
सत्य प्रतिबिंब - सुदर्शन - हेतु,
आरसी हो निष्कलुष नवीन ।।"

गिरीं मर्माहत उठतीं हुईं,
हुए मद-रत्नारे दृग म्लान ।
पारदर्शी छवि में आपाद,
बाल सा झलक उठा अपमान ।।

कल्पनातीत घोर अपमान,
समर्पित-नारी - प्रति वैराग्य ।
पिशाचिन सा देता है बना,
सकुच त्यागी, नारी का त्याग ।।

प्रथम नारी, पर-नारी पुनः,
पुनः पुर - नारी किये कु-पान ।
चौथ का चौथा - चंदा मंद—
मंद की साढ़ेसाति समान ।।

धधकती क्रोधानल में धधक—
उठा मस्तिष्क - गिरा का बोध ।
"भरो प्रिय ! शत्रु-रक्त से मांग,
हमारा तभी पूर्ण प्रतिशोध ।।"

"अरे ! कोई है कर लो बंदि,
न जाने पाये अरसिक एक ।"
घुसे प्रति द्वार-द्वार से सास्त्र,
निमिष भर में ही सुभट अनेक ।।

बोल 'जय-जय रघुवीर समर्थ'
कुमारों ने खींचीं करवाल ।
काल लख रुकें स्वांस त्यों रुके—
म्लेच्छ, लख सम्मुख कुंवर कराल ।।

देख ज्ञानोदय ज्यों पाप की—
कामना देती हैं चित त्याग ।
सभीता सीं तज शिखरागार,
चलीं गंधर्व-कामिनी भाग ।।

"अभी गंधर्वराज का अरे !
अवध-अज्ञों देखा माधुर्य ।
हमारी ढील, ढीट से बनें,
दिखाते रहे वाक्चातुर्य ।।

धूर्त-भेदी को जीता छोड़,
मर गया मूर्ख दशानन दीन ।
बींध कर धर्म-भीरू की नाभि,
बना जग - जेता कपट-प्रवीण ।।

बोलते जिस की जय-जयकार,
कहां तब गया, कहो वह धर्म ।
कायरों सम जब छिपकर दिया,
बींध उस वीर बालि का मर्म ।।

सुपनखा के हर नासा - कान,
किया जो नारी का सम्मान ।
स्वर्ग में गाती रघु-यश गान,
ताड़का करती तव आह्वान ।।"

"दशानन-बालि-ताड़का जहां,
वहां अब तू भी जा रे ! नीच ।
वैरि-शिर-कमल शिवार्चन वीर—
चीर कर करते रण सर-कीच ।।

भेद पाताल यज्ञवाराह,
रसा का करते हैं उद्धार ।
अपावन तिमिर-रुधिर से रुचिर—
उषा का करते रवि शृंगार ।।

पाप तुझसे अधमाधम अमित—
डालते, लेती लील तरंग ।
किंतु कह सका युगों से कौन,
'हो गई पतित सुपावन गंग ।।'

वेद-सम्मत पितुवर को विदित,
स्त्रैण-वध यद्यपि निश्चित् पाप ।
इसी भय से क्या देंगे छोड़—
कि कल क्या तुझसे देंगे शाप ।।

धर्म की गति अतिशय है सूक्ष्म,
जानते राघव इसका मर्म ।
धर्म कब धर्म और क्यों धर्म,
निमिष में ही क्यों घोर अधर्म ।।

अ-शस्त्रों पर प्रहार है पाप,
किंतु व्रण-शल्य-क्रिया क्या पाप ।
न दंडित अपराधी को करे—
भूप यह सोच कि देगा शाप ।।

यज्ञ से मरते हैं कीटाणु,
इसी से कहें पाप क्या यज्ञ ।
दया है परम धर्म, अघ क्रोध,
न करना, रहें अज्ञ ही अज्ञ ।।

करेगा यह व्याख्या जिस दिवस—
लोक का सदाचरण स्वीकार ।
उसी दिन होगा स्वयं विनिष्ट,
आत्महत्या-पातक संसार ।।

खड्ग की, की सृष्टा ने सृष्टि,
दुष्ट ! तुझसे दुष्टों के हेतु ।
शास्त्र-शस्त्रों का पा आधार,
सुदृढ़ होता मर्यादा-सेतु ।।

हमारे अधरों पर श्रुति-ऋचा,
धनुष कर, कटि-तट कसे निषंग ।
हृदय विस्तृत, मस्तिष्क स्वतंत्र,
चुने कोई भी, कोई रंग ।।

विनीतों के प्रति परम विनीत,
विदुषजन के चरणों के दास ।
शत्रु सम्मुख यदि धारे शस्त्र,
कृषक हम, वह साधारण घास ।।

दशानन - नाभिभेद ही उचित,
बालि का वृक्ष-ओट प्रतिकार ।
दूर से डलता उस पर वारि,
आग जो बन जाता अंगार ।।

तुम्हारे सम्मुख दोनों खुले,
शास्त्र-सिद्धांत शस्त्र-दुर्दान्त ।
चुनो तुम प्रथम, तुम्हें अधिकार,
वृहस्पति रुचिकर या कि कृतान्त ।।"

बढ़ा गंधर्व सुभट समुदाय,
देख शैलूष-नयन संकेत ।
अमित शस्त्रास्त्रों से कर उठे,
एक ही साथ वार समवेत ।।

युगल दिनकर से दिनकर-कुँवर,
झेलते रिपु-दल प्रखर प्रहार ।
नृसिंहों - सरिस विचरने लगे,
वैरि के वारों पर कर वार ॥

खड्ग से खड्ग, ढाल से ढाल,
गदा से गदा, शूल से शूल ।
घोष से घोष, रोष से रोष,
सकल अपलक करते निर्मूल ॥

बन गई रंगभूमि रणभूमि,
मृदुल उपधान बने व्यवधान ।
पान-पात्रों से मदिरा बिखर,
बह चली कायर-रुधिर समान ॥

फेंकने शैया लगे कुमार,
समर करते फिर-फिर घमसान ।
लगा त्रिपुरारि-शरों से बिँधे,
गगन से गिरते त्रिपुर-विमान ॥

बने दलदल से तुंदिल-मृदुल—
बिछावन, मची रक्त की कीच ।
लगा ज्यों शोभित शोणित-कूप,
शिखर-छतरी के बीचों-बीच ॥

चित्रसारी के चित्र विचित्र,
अंग-प्रत्यंग रिसाते घाव ।
फूट से चले झरोखे द्वार,
धरा के फेनिल-उष्णिम स्राव ॥

शस्त्र-झंकार धनुष-टंकार,
घोर-हुंकारें प्रति - हुंकार ।
लगीं रँगने दुर्गम प्राचीर,
निरन्तर झरती शोणित-धार ॥

हुए व्याकुल विद्याधर देख,
हुआ शैलूष तनिक गंभीर ।
धिरा अधरों पर कुंचित - हास,
नयन झलका मरीचिका-नीर ।।

"रुको सब" बोला बढ़ता हुआ,
"मुदित हम, यह वय-विक्रम देख ।।
न रण-प्रिय रघुवंश न गंधर्व,
रहे पढ़, पर अनपढ़ विधि-लेख ।।

हुआ जो, वह होनी बलवान,
मिलें फिर, बीती बात बिसार ।
हमारे भी प्रिय तुम उस भांति,
भरत के जैसे राजकुमार ।।

हमारे घर के थे जामातृ,
तुम्हारे प्रपितामह-अजराज ।
हमारी इन्दुमती की प्रजा,
अवध के सिंहासन पर आज ।।

अकारण ही भय बढ़ता गया,
उसी का प्रतिफल यह संग्राम ।
संधि-ध्वज लहरा, खोलो द्वार,
घोषणा कर दो, 'युद्ध विराम ।।'

भरत का सादर स्वागत करो,
हमारे कुसुमध्वज - प्रासाद ।
हो उठे फिर से परम नवीन,
पुरातन संबन्धों की याद ।।"

बढ़ा विह्वल सा बनता हुआ,
वकुल-पंखों सी भुजा पसार ।
न समझे सरल हृदय,छल तनिक,
सियापति - सेवक के सुकुमार ।।

लगा उपवन सा कठिन कुराय,
ढका निर्मूल - वल्लरी जाल ।
हुए कलभों से मोहित कुँवर,
समझ पुष्करिणी, कूप-कराल ।।

रुके सहसा दोनों के हाथ,
तूण से लेते-लेते बाण ।
बढ़ा आगे पामर गन्धर्व,
"लगो हिय, करो सुशीतल प्राण ।।"

भरे दोनों भुज दोनों कुंवर,
तनीं शिर सहसा अमित कृपाण ।
"प्राण प्यारे तो रख दो तुरत।'
धरा पर धनुष-त्राण तन-त्राण ।।"

कुँवर 'विश्वासघात' कह हटे,
सटे तन से अगणित शस्त्रास्त्र ।
पाश पर पाश कस गये अंग,
पूर्णतः पंगु बन गये गात्र ।।

"गाड़कर गढ़ - कंगूरे शूल—
टांक दो बोटी-बोटी काट ।
भरत के मुख पर दो कुछ फेंक,
शेष दो गिद्ध-दलों में बांट ।।"

लगा ज्यों मतवाले मातंग,
रौंदते राजहंस पग-पंक ।
पड़े जा विधिवश गरुड़-कपोत,
बाज - पंजों में जकड़े पंख ।।

दुर्ग के पाषाणों से छिला,
खरोंचे खा-खा मंजु शरीर ।
रुधिर-निर्भर कण-कण से भरे,
न भलके अधर आह, दृग नीर ।।

चमकते चम-चम चपला सरिस,
भित्ति पर गाड़े युगल त्रिशूल ।
बांध कर टांके युगल कुमार,
उन्हीं की कटि से खोल दुकूल ।।

सुरा पी, लगे नाचने असुर
बजाने लगे दमामे-ढोल ।
"पिया जिसने जननी का दूध
शूर वह आ, ले जाये खोल ।।"

हुई निश्चेष्ट वाहिनी सकल,
द्वार को गई तोड़ना भूल ।
सभी के नयन-मनों में उठे—
कसक से, दुर्गभित्ति के शूल ।।

भरत के मुख से निकला 'राम—
राम भगवान ! राम भगवान ।'
कुपित हो उछल पड़े हनुमान,
बढ़ा ज्यों गगन विंध्य-सप्राण ।।

"सम्हल रे अहिरावण दुर्दान्त,
कालिका तेरी तेरा काल ।
मखानल तेरे तेरा शीश
चढ़ेगा तेरी ही करवाल ।।

स्वयं ही वज्र-मूर्ख निज मृत्यु,
अरे ! निज कर से लाया बांध ।
क्षुधा निज क्षुधा करेगी शमन,
तुझे ही तेरे घर में रांध ।।"

देख वज्रांग - पराक्रम घोर,
हुए परकीय-स्वकीय अवाक ।
अलक्षित-अश्रुत-अद्भुत वीर,
रूप - गुण में मैनाक मनाक ।।

धरा पर दिखे, गगन पर दिखे;
दिखी श्री ज्योतिर्लिंग की रेख ।
काल का काला-काला लेख,
कीर्ति की कीला कंचन-मेख ।।

रह गये चित्र-लिखित से खड़े,
बांधने वाले, बांधे हाथ ।
गिरे कुछ, मरे और अधमरे,
शेष भागे, सुन 'जय रघुनाथ' ।।

उतारे बंधन काट कुमार,
उखाड़े पादाघात त्रिशूल ।
लगाये हृदय, अरुण ज्यों सेक—
खिलाते कलित कमल के फूल ।।

गगन पर बजीं देव-दुन्दभी,
धरा पर रघुवीरों के शंख ।
लगा कपि-दर्शन से फिर उगे,
दग्ध मन संपाती के पंख ।।

"नीच शैलूष! निकल है कहाँ,
देख निज काल, कीश प्रत्यक्ष ।"
जूझने लगे भरे उत्साह,
पुनः प्रमुदित हो पुष्कल-तक्ष ।।

"तुंग कंगूरों पर जा चढ़ो,
दुर्ग के अन्दर करो प्रहार ।"
कुमारों से कह कर वज्रांग—
बोलते रघुपति की जयकार ।।

शिखर-गृह देख शिखर जा चढ़े;
उखाड़ा पदाघात ध्वज-दंड ।
गिर पड़ा गदापात से शिखर,
नहुष के से विमान का खंड ।।

मरे कुछ, दबे, सिसकते चले,
भागते लेकर कायर प्राण ।
दबे सब स्वर, स्वर गूंजा एक,
'अरे भागो आया हनुमान' ।।

भटों की भारी भीड़ों भरीं,
रह गईं शून्य भीत सीं भीत ।
इधर अर्गला-नियंत्रण-यंत्र,
खोजने लगे अनेकों रीन ।।

फेंकने लगे दुर्ग में उठा,
हटा पाषाण, शवों के ढेर ।
अश्वजित चिन्ह चीन्हते लगी—
न पल-भर की प्रवीण को देर ।।

भयंकर किया त्रिशूलाघात,
लगा ज्यों हुआ कठिन पविपात ।
अचल से अंचल चंचल हुए,
हठीले हटे कपाट हठात ।।

बोलते 'जय-जय श्री रघुवीर,'
वीर दौड़े भूचाल समान ।
नियन्ता पाकर भरतादेश,
ले चला आगे-आगे यान ।।

शिंजिनी खींच करी टंकार,
उठा ज्यों सुप्त भुजग फुंकार !
दुर्ग की दुर्गम भू के वक्ष,
किया बाणों ने पथ - विस्तार ।।

लगे होने पग-पग पर समर,
दिखाने लगे पराक्रम वीर ।
झेलने लगे वार पर वार,
शिला सा निश्चल किये शरीर ।।

छुड़ाने और छोड़ने हेतु,
भूमि का तिल-तिल भर का भाग ।
जूझने लगे जुझार खिलार,
खेलते धल-डोल का फाग ॥

तुरंगों से रण-रंग तुरंग,
मत्त मातंगों से मातंग ।
स्यंदनों से स्यंदन सोत्साह,
भंग करते उत्साह - अभंग ॥

भयंकर तिमिर भयंकर नाद,
पौर में मचा घोर घमसान ।
आक्रमण प्रत्याक्रमण कराल,
गई छुट निज-पर की पहचान ॥

हाथ से हाथ, पैर से पैर,
वक्ष से वक्ष, शीश से शीश ।
हरावल-पक्षों के यों सटे,
उठा प्रति पक्ष-पक्ष रद पीस ॥

भरत - स्यंदन के सैन्धव-सप्त,
उगलने लगे विकल हो फेन ।
प्रभा-शर चढ़ा शरासन भरत,
सुशोभित किया यान-ध्वज ऐन ॥

चढ़ा कंधों पर युगल कुमार,
अजिर में कूदे पवनकुमार ।
भयंकर अस्त्रों की कर मार,
दिये व्यूहों के पृष्ट विदार ॥

निजासन लुढ़के जैसे श्रेष्ठि,
पृष्ठ का हटते ही उपधान ।
गिरे त्यों यवन, हरावल-भूमि—
भरत का बढ़ा, दौड़ता यान ॥

रौंदते हुए शत्रु-समुदाय,
अधीरों से धाये रघु-वीर ।
दुर्ग में फैले, ज्यों रवि-किरण—
फैलती भुवन तरुण-तम चीर ।।

उठीं कवचों की कड़ियां कड़क,
मिला ज्यों खुली वायु में स्वांस ।
लगे करने फिर वैरि-विनाश,
अमित उत्साह स्व-विजय विकास ।।

विलोके मारुति-पुष्कल-तक्ष,
भयंकर करते यों संहार ।
मथ रहे मानों मंदर तीन,
झूम कर अंतक—पारावार ।।

घुसे अरि-घेर भुजग सम चीर,
दिया नेती सा घेरा डाल ।
लगे देने अरि-रत्न निकाल—
काल को, भेद-भेद पाताल ।।

दुर्ग के भाग-भाग को देख,
भरत ने किया अनीक विभाग ।
बढ़ी निज-निज दिशि पा निर्देश,
सिंधु से ज्यों निकली बड़वाग ।।

यवन-हय-सेना से जा भिड़े,
मद्र-नृप लेकर तुरग-समूह ।
शकों की गज सेना के बने,
प्रभंजन-पुत्र प्रबल प्रत्यूह ।।

पदग - पूतना-पंक्तियां - प्रबल,
स्वयं कुंवरों ने कीं स्वीकार ।
लगा कुंचित कुंजर-कांतार,
खेलते काननराज-कुमार ।।

भरत रथ-सेना को ले बढ़े,
खड़ा था जिधर स्वयं शैलूष ।
दिखाती नयन-कालिमा झांक—
पंक-मय यह कंचन-मंजूष ।।

"भरत ! है यही नीच शैलूष,"
अश्वजित बोल उठे अति-व्यग्र ।
विश्व के वंद्य मार्ग का विघ्न,
मनुजता जिससे व्यथित समग्र ।।

राम के धर्मराज्य का मूर्त—
घोर अपवाद, बना अपवाद ।"
ग्लानि से हुई शांति आक्रांत,
क्रोध में बदला विषम विषाद ।।

समूची शकुली जाता निगल,
लखा, उस वक सा शुभ्र-शरीर ।
भुजग-भक्षी शिखि की सी आंख,
झलकता स्नेह ऊषरी-नीर ।।

विजन-वन की छलना सी कुटिल,
छलकती अधरों पर मुस्कान ।
तांत्रिकों के ज्यों क्रिया-कलाप,
जगाते मोहन-मंत्र मसान ।।

उसी विधि हँसता, लखता, क्रूर—
टहलता, दिखा उपेक्षाभाव ।
भरत ने देखा मनु-मर्याद--
सुतनु के कुष्ट-घाव का स्राव ।।

भौंह तन गईं, हुए दृग अरुण,
उभर आईं बहुरेखा माथ ।
तूण-दिशि बढ़ता हुआ परन्तु—
गया रुक रामानुज का हाथ ।।

पुनः बोले "यद्यपि गन्धर्व !
किया तुमने अतिशय अन्याय ।
तुम्हारा शिरच्छेद ही उचित,
धर्म-रक्षण का यही उपाय ।।

अकारण-कारण किन्तु कृपालु,
परम करुणा-वरुणालय राम ।
उन्हीं के चरणों में रख शीश,
अभय विचरो निज वीणा थाम ।।"

ठठाकर निर्लज्जों सा हँसा,
गटक कर मदिरा का गंडूप ।
कांपती वाणी, बोला "भरत !
देख गंधर्वराज शैलूष ।।

जानता था पहिले ही कभी—
न धनु ले पायेंगे, ये हाथ ।
इसे इन सुन्दरियों के चरण—
डाल, ले क्षमा मांग नत-माथ ।।

अवध - वाले से अधिक दयालु,
हमारी प्रेयसियां, सच जान ।
जहां से आया, निर्भय वहीं—
लौट जा, पुनर्जन्म निज मान ।।

दिया तेरे पुत्रों को छोड़,
इसी से इतना ढीठ कृतघ्न ।
देख जाकर अपने परलोक,
स्व-मातामह को नरक-निमग्न ।।

नित्य करना नाना-दौहित्र,
पुण्य - शैलूष-कीर्ति का गान ।
दया-वश ले जायेगा स्वर्ग,
कहीं से कोई कभी विमान ।।

सम्हल ! देते मम कोप-कृशानु—
प्रथम तव कर्पराहुति बाण ।
निमिष में धधकेगी रघुसैन्य,
शुष्क समिधा-शाकल्य समान ।।

अनन्तर पूर्णाहुति नारियल,
बनेगा तेरे प्रभु का शीश ।"
धनुष पर चढ़ा भरत का वाण,
चला ज्यों फण फुंकार फणीश ।।

"बचा अब प्रभु-निंदक शैलूष !
भरत से अपने पापी-प्राण ।"
काट शैलूष-बाण तन-त्राण,
समाया वक्ष-भेद तल बाण ।।

अचेतन हो स्यंदन में गिरा,
लगीं करने कुलटा उपचार ।
भरत बोले "ले जाओ इसे,"
रथों की भागीं भीत कतार ।।

उधर चढ़कर तुरंग मद्रेश,
काटते यवन समूह तुरंग ।
विचरने लगे अभय हो समर,
मुदित ज्यों फिरते विपिन कुरंग ।।

गगन में ज्यों मृगांक मृगराज,
अमा का अहं कलभ कर चूर्ण ।
विभा का कर देते विस्तार,
सहज ही पूनम तक सम्पूर्ण ।।

चढ़े मानों मध्यान्ह सुमेरु,
सूर्य के अश्व, उदयगिरि लांघ ।
सूर्य-कुल के कुलीन वे अश्व,
लसे त्यों शव-गिरि मार छलांग ।।

उधर पैदल सेनायें भिड़ीं,
बोल निज-निज नृप जय-जयकार ।
हरित-नीली भूषा गंधर्व,
भरत-दल केशरिया-रत्नार ।।

लगा अलसी की क्यारी मध्य,
पीत सरसों के फैले फूल ।
प्रहारों के प्रभंजनी-वेग,
झाड़ते, किंशुक खड़े दुकूल ।।

चतुर्दिक मचा घोर घमसान,
मसानों का सा धूँआधार ।
चढ़ी चापों के विपुल विमान—
शरों की बहकी हुई बयार ।।

नाचने नाक-नटी सी लगीं,
शिरों पर तन्वंगी तलवार ।
गदा, मानों मृदंग की थाप,
समर-गीतिका, प्रचुर जयकार ।।

करधनी की लड़ियों सी तड़ित,
कवच की कड़ियों की झंकार ।
ढाल के अवगुंठन में, शूल,
नयन करते अभिसार-प्रसार ।।

लगा, कापालिक की चौपाल—
कालिका करती अंतक-नृत्य ।
व्यवस्था करते भाममभाग,
स्वकौशल दिखलाते यम-भृत्य ।।

घुसे गज-दल केशरीकिशोर,
लगे साक्षात् केशरी-किशोर ।
परिधि धधकाता, धाता मध्य—
द्विरद-वन के ज्यों दावा घोर ।।

मारुति-पराक्रम

कवित्त

तोड़ तोड़ सांकलों को, काले काले बादलों से,
हाथियों के धाये दल, गाज से गुंजार के।
झूम-झूम - खुले, झूल - घंट यम-कंठ जैसे,
सुन-सुन भागे धीर, धीरज बिसार के।।
गगन-तरंगिणी में सुर-तरीं तैरतीं ज्यों,
लगती अम्बारियां, सजाईं जो सँवार के।
मारुति विशाल-विकराल-तन तान कूदे,
नाचें नटराज जैसे ताली मार-मार के।।

अचला के अचल किले ज्यों किलकार धाये,
दिग्गज उतर आये भूमि, नभ छोड़ के।
सिंधुर शकों के कि सिंदूर शक-रानियों के,
देखने सुहाग-फाग आये केश-क्रोड़ा के।।
संगर की शैया, जय-वधु की कलैया थामे,
अंजनी का छैया देख, लौटे मुख मोड़ के।।
साहस सकेर आये, साहस बिखेर धाये,
देखा ज्यों कपि ने मूंछ तनिक मरोड़ के।।

प्रलय के बादलों से, कुधर से काजलों के,
काले-काले केश से प्रतीची के कुभाल के।
धूं-धूं कर जिसमें धधक उठे धरा-धर्म,
धुंआधार धुंए, उसी पाप की सी ज्वाल के।।
मारते चिग्घाड़ नभ-मंडल घुमाते शुंड,
शकों के वितुंड-झुंड लगे उस काल के।
मारुति के भोग को अछूती शिलाजीत भेजी,
स्वर्ण-पट डाल, थाल काल ने सम्हाल के।।

छाती तान, बिना ही वितान की अंबारी बैठे,
पैठे गज-सेना के गजों में मृगराज से ।
प्राची के कपाट खोल, गोला जैसे गोल आये,
धार के शरीर धाये मानों गाज गाज से ।।
भक्त-भूमि-भूसुर-सुरभि-सुर प्यारे कपि,
कारण से प्रथम सफल राम-काज से ।
लव में लवा से अरि - हवा में हवा से हुए,
भरत अहेरी के सुनहरी सु-बाज से ।।

छाती को अछूती रख, पार पारावार किया,
अंगुल से नापा हिम, नीलाचल पैर धर ।
सूखे तिनके से जो विभीषण-सुकंठ दीन,
अक्षय-सुवट से जमाये, पीन कल्प-सर ।।
काल की उड़ाते खिल्ली, शेष-शीश किल्ली गाड़,
बाली-दशशीश फेंके गिल्ली से उखाड़कर ।
पयनिधि कृपा-कोप-पौरुष-पराक्रम के,
राजा रामचन्द्र के ये आये वे ही वीरवर ।।

छूते नभ भूधर, पाताल के अतल-ताल—
जिसकी धमक धसे, गीली-गोली शूल से ।
हाथियों से हाथियों के हाथों से मिलाते माथे,
दिग्गज गिराते ज्यों प्रलय रुद्र हूल से ।।
चैन न, अचेत अबला सी शक-सेना धाती,
छाती छिपा पाती ज्यों न जर्जर-दुकूल से ।
अरुण की लाली ज्यों पिलापी मिली चंचला की,
चीखें शक 'कीश ये अकाल-काल फूल से' ।।

मुष्टिका की मार कि ये वज्र के प्रहार घोर,
हाथी जीते जागते कि माटी के खिलौनें ये ।
वीरव्रतधारी शस्त्रधारी शक शूर ये कि,
बलि-हेतु बांधे गये बकरी के छौने ये ।।
व्यूह-कोट-द्विरद-कंगूरे-हय-यान-भित्ति,
था कि हैं कमलिनी के कोमल से दौने ये ।
चंडी के घंमड कि चंडीश ही अखंड हैं ये,
अंजनी के अंबक के अंजन सलौनें ये ।।

'मैं न' बोला अनल 'ये वंशकुंज दावानल,'
दावानल बोला 'नहीं बड़वा - प्रयाण ये ।"
बोला नत बाड़व 'न धूम्रकेतु धूम्रकेतु,'
केतु बोला 'राहू' राहू बोला 'रवि-यान ये ।।'
रवि बोले 'इंद्र-वज्र' इन्द्र बोला 'कालदेव,'
काल बोला 'नहीं, महाकाल भगवान ये ।'
महाकाल कालिका की कौली भर बोले 'न-न,
राम जी के कोप विकराल हनुमान ये ।।

टेरें भूतनाथ सारे छोरी-छोरे हेर-घेर,
कपि किलकारे, चूल्हा-न्योता सा समाज का ।
लोहू की चटोरी काली, खप्पर कटोरी खाली,
लिये चली, वोली "बड़े भाग, भोज आज का" ।।
भरत के ठाठ, पहलौठी के ही ट्हेले देखो,
आंट खोल 'बरत' की समय न लाज का ।
खड़ा सदा-बरत चलाता आंट खोल कपि,
सुनहरा साहूकार मानों राम-राज का ।।

अजनी की कोख में समाया होगा वीर कैसे,
शेष में क्या शेष होना इसकी धमाक से ।
झिला होगा वार कहां अक्षय से क्षीण-छाती,
डूबा होगा स्वेद की कछार में छपाक से ।।
लड़ा होगा कहाँ वह रावण रे! राम जी से,
दी होगी धरा की धूलि धोख कीश-धाक से ।
बैठ के निचंत, सीखे कौनसे गुणी से गुण,
दीखते मैनाक ये, ये दिखते मनाक से ।।

आज जाने-जाने, कल सोचते थे जाने कैसे,
कैसे रही थामे जी, परायों में जा जानकी ।
अचला अचल रखी प्रभु ने लखन-व्रण,
आंसू से बहाई न जलाई ज्वाला बाण की ।।
पिया न गरल, गिरे गिरि से न सिंधुतल,
ढोई लंकराज-कीशराज शिला प्राण की ।
भरत ने क्यों न ली समाधि ही समाधि में ही,
सब के मनों में रही आशा हनुमान की ।।

विजय की मांग का सुहाग तू अखंडित रे,
पंडित प्रकांड रण-रंग-राग - गान तू ।
पाप-ताप-दीनता-दरिद्रता की लंकिनी के,
मानसिक-क्लेश का निदान वरदान तू ।।
अंजनी के जाये राजा-राम के लगाये मुंह,
प्राणियों के प्राणों का प्रमाण, परिमाण तू ।
तेरी महिमा का क्या बखान करे जीभ एक,
मेरे जैसे दासों का सहारा दयावान तू ।।

बालधि ने जिसकी विशाल विकराल लंक,
धूं-धूं कर फूंक डाली, रावण के सामनें ।
सदा पाप-कामना का, पापियों की कामिनी का,
मांग का सिंदूर लूटा जिसके सुनाम ने ।।
बोले शक, "आया वही मारुति, न भाना मानी,
जिसके सुचित-चिता चुनी स्वयं काम ने ।"
भागे क्यों अभागे ! आगे, आग का सा आगा आज,
वैरी - रनवास - हेतु भेजा राजा राम ने ।।"

खड़े रण-खंड ये प्रचंड वृष के मार्तण्ड,
डेरा डाल पड़े यम पितर -उद्यान ये ।
धूं-धूं कर धधकाता धराधाम धूमकेतु,
कुलिश का धराधर-नगर प्रयाण ये ।।
धर्म का है श्राप कि ये चंडी की मृदंग-थाप,
खोले त्रिनयन, त्रिनयन भगवान ये ।
दशानन - आनन के कानन में रामबाण,
न-न आया अंजनी का जाया हनुमान ये ।।

घोटे कृतघातकी-घटा के घेट घोंटे-घाट,
चोट कोट-लाट लोटीं, ओटीं आसमान जो ।
राहु-तुंड चंड गंडमंडल कमंडलु में,
सहज स्वभाव धार धाये यति ध्यान जो ।।
द्रोण-तुंग-शृंग मन म्लान हुआ, नीचा हुआ,
ऊँचा किया, ऊँचा हुआ हर-गिरि छान जो ।
आग का सा गोला, त्रिभुवन होला भूनने को,
देखो! देखो! आया है वही तो, हनुमान जो ।।

फलों की अटा सी अटी रावण की वाटिका जो,
नटी सी नचाई निज उदर - अटालिका ।
विरचि विरंचि ने स्वशक्ति से सशक्त-शक्ति,
भक्ति से खिलाई खेल, झेल वक्ष-वाटिका ।।
बावला सा ब्रह्मपाश किया परिहास कर,
पल में लगा दी लंक अनल की हाटिका ।
अंजनी का जाया, ये खिलाया रे! प्रभंजनी का,
आया, लाया भ्रकुटि विराट की विराटिका ।।

अंजनी नें जा-के देखा, केशरी ने जाके देखा,
पवन ने देके देखा, लेके देखा राम नें ।
तरणि नें झांक देखा, सुरसा ने फाँक देखा,
सिंहिका ने तांक देखा, आंक देखा नाक नें ।।
लंकिनी नें ता-के देखा; लंका ने तपा के देखा,
सिया ने दिखा के देखा, देख देखा ज्वाल नें ।
किया स्वयमेव स्वमृगेन्द्रता के भाव सिद्ध,
स्वयं को विशुद्ध-स्वर्ण सिद्ध हनुमान नें ।।

पवि पर हनु सुरराज नें परख देखी,
खुरच के छाती देखी भरत नें बाण से ।
आंख देखीं रावण ने खोल बीस-बीस आंख,
आंख मूंद लखन ने देखी नाक नाक से ।।
छपा पद-छाप शीश कालिका ने देखा छिप,
वेष को बदल देखा शिव नें स्वधाम से ।
बोले एक-एक कर सारे स्वर साध सारे,
रामजी के वीर हनुमान हनुमान से ।।

अधमुंद भरत ने, मुंदी आंख जानकी ने,
देखा यों पसार ज्यों पसारे प्यासा आंजुरी ।
रवि जो विराट-दृष्टि, रावण जो पाप-दृष्टि,
देखने में देखीं दृष्टि दोनों की भयातुरी ॥
देवों की पलक भीत, दैत्यों की पलक स्मीत,
दोनों ने स्वकालों की विलोकी काल-बांसुरी ।
ऐसीं मोह-नागरीं विमोह, कैसे मौन बैठे,
वारीं ब्रह्मचारी ! तेरी चातुरी पै चातुरी ॥

अज्ञ,अज्ञ बन क्या अज्ञान की प्रदर्शनी से,
ज्ञान किस ज्ञान का दूं तुझे, ज्ञानवान तू ।
सुना किस सुरसा की रसिक ! रसीली-गाथा,
कौन सा बहाके रस कहूँ, रसखान तू ॥
कौन सिंहिका सी सिंहिनी न सिंह! चेरी तेरी,
भक्त प्रहलादों का नृसिंह-भगवान तू ।
तेरी उपमा के उपमान का विधान कहां,
प्यारे हनुमान ! तेरे जैसा हनुमान तू ॥

सृष्टि से विरक्ति सी विरंचि के हृदय आई,
रही अनुरक्ति न शक्तीश में सँहार की ।
कमला से कमल-नयन वे प्रथम बार,
पालन से मुक्त हो, विमुक्त-आंख चार की ॥
कंध से सुरेन्द्र ने उतारा वज्र, व्यर्थ जान,
बही धर्मराज ने बनाई क्षार क्षार की
सीधी ग्रीव, छाती को फुला के सांस शेष ने ली,
देख चतुराई रण केशरी-कुमार की ।

जिन के जुड़ी न छछिया सी छाछ एक जून,
जन्म-जन्म न्योत के जिमाये पकवान तू ।
नीचे तल-अतल औ ऊपर अपार-शून्य
ऐसे अनाथों का कल्प-लता का वितान तू ॥
जिनके ललाट लिपि लिखी विधि अंजन से,
किया सो दिठौना भर कंचन-खंदान तू ।
किस की न बिगड़ी, न किसकी सुधारी तूने,
राम के दुलारों का दुलारा हनुमान तू ॥

रमा मन आपका चरण सियारामजी के,
मानो, हरजाई मन मेरा रमा लीजिये ॥
आपके अपार उपकार का है भार शिर,
जानता न चित कि आभार कैसे कीजिये ।
छोटा सा लंगोटा एक, वो भी झूंठा खोलूं कैसे,
कौन सा अछूता फल, हिय कहे 'दीजिये' ।
दीनता-दरिद्रता ने लाज लूटी राज-पथ,
कपिराज ! आज आप स्वकृपा पसीजिये ॥

तीनों काल, तीनों लोक, तीनों ने, न एक कहा,
मैं क्या कहूँ बावला, सुजान हनुमान तू ।
राम जो बड़ों में बड़े, श्रीजी बड़ियों में बड़ी,
ऐसे बड़े-बड़ों की बड़ाई पाया, प्राण तू ॥
मेरा कड़ा-मन, स्वचरण का बनाले कड़ा,
छोटे से की छोटी सी ये एक-बात मान तू ।
राम की कथा में जहां-जहाँ जाये, जाऊँ साथ,
जानता हूँ आगे-पीछे तारता पाषाण तू ॥

श्री भरत-पराक्रम

कवित्त

सावन के सघन-गगन का नहाया घन,
धूप अवगुंठन सा, एक ही सा श्याम-तन ।
शरद के विमल सुकोमल कमल जैसे,
दोनों के हैं दोनों ही सलौने एक से नयन ।।
एक द्विज चिन्ह का जो अन्तर, सो त्राण छिपा,
एक से स्वभाव, एक से ही मुख सु-वचन ।
भारती ने मौन हो विचारा कुछ और ही है,
रामजी के शील से भरत का सुशीलपन ।।

गोलाकार चाप कि सदाप रवि-मंडल ये,
भेजता पलाश - हेतु पारिजात, थांवले ।
बाण हैं कि बाणों की प्रियाओं के ले प्रेम-पत्र,
धावन प्रवीण जाते हवा से उतावले ।।
उठे दृग, खुले होंठ जिनके मुहूर्त देख,
'साधु वे भरत ये ही' सोचें वीर बावले ।
'राम से भरत हैं कि भरत भरत से ही,
सांवले से सांवले ये सांवले ही सांवले' ।।

नवल सुपल्लव वितान सा धनुष तना,
तूण तरुणाई अँकुराई मानों डाल की ।
पृष्ट पृष्ट-पांख मंजु मंजरी सी झोंक खातीं,
कली सी किलकती चमक, बाण-फालकी ।।
वारों के पराग से बयारें हुईं बावली सी,
वोलीं 'लाई ऋतु मतवाली प्याली काल की ।'
लगी ऋतुराज के पलाश सी सुहास भरी,
भरी भुजा लाल-लाल केकयी के लाल की ।।

वीरता वही है रण-रंग धीरता है वही,
वैसे ही मिटाते शशि-शर अरि-धाम हैं ।
यान की चढ़ाई-उतराई-चतुराई वैसी,
वैसी ही प्रहारों की अजस्र धूमधाम हैं ।।
वैसी ही तरुणिमा है, वैसी ही करुणिमा है,
वैसी ही अरुणिमा विलोचन ललाम हैं ।
राघव सा राघव का लाघव विलोको वही,
कहना कठिन है ये भरत कि राम हैं ।।

तक्षक-पुष्कल पराक्रम

कवित्त

श्याम-गौर गात ऋतुराज के नवल पात,
शरद-सरोवर के कमल सलौनों से ।
धनु-मुख दाबे दानवीय दूब सावनी सी,
चरें मांडवी के जाये राजमृगी-छौनों से ।।
आगे बढ़, पीछे हट, आड़ी टेढ़ी, काट-काट,
घिर-घिर घेर-घेर झूमते तरौनों से ।
बोले हनुमान "देखो राघव ! कुँवर रण,
अवध के आँगन ज्यों खेलते खिलौनों से ।।"

आंखों-आंखों बाँट-बाँट, ठान के हठीले हठ,
बाँटें के प्रथम काट, बांटें में से बाँटते ।
पहरे न भूषण-वसन पहिराये बिना,
वे ही प्रतियोगियों से आपस में डाँटते ।।
मारुति भरत से ठटा के बोले "ठाट देखो,
वैरियों को कैसे ये कुमार मिल काटते ।
आपसे वैरागी के कहाँ से अनुरागी हुए,
छोटे-छोटे छोड़-छोड़ मोटे-मोटे छांटते ।।"

लूगीं-लूगीं भीगीं-भीगीं कैसी मनोहारी मसें,
दूध के न पूरे दांत अभी झड़ पाये हैं ।
कंचन की मेखला तो कल तक काटी कटि,
कैसे कवचों की कड़ी आज कस आये हैं ॥
लोरी गाती, छाती मां सुलाती 'चौंके रात नहीं',
जग-नींद-निंदक उन्हीं ने ये सुलाये हैं ।
सीधे-सादे भरत के कौतुकी कुमार देखो,
जाने किस गणिका ने बैठ के पढ़ाये हैं ॥

श्याम-गौर देह मानों मंजुलता-मृदुलता,
कोमलता सुन्दरता ललित-लताओं की ।
कारी जरतारी घुंघरारी सी लटूरीं लसीं,
सावन के सघन घनों ने घनी छाओं की ॥
छलकती आंखों में लुनाई कैसी गागर की,
नई पनिहारी ससुराल आई गाओं की ।
भरत के लाल कैसे काल जैसे डोलें रण,
गृह ने उजाली मानों कोख छः-छः मांओं की ॥

मांडवो ने जाये उर्मिला ने ये पिलाये पय,
न्हिला-धुला इन्हें श्रुतिकीर्ति ने सजाये हैं ।
जानकी के जीवन की गाथा का मुकुट माथे,
कुल की कुलीन ये पुरानी निधि पाये हैं ॥
जन्मभूमि जननी भरत - भूमि आह भरी,
नवला बिछौने छोड़ सिंह - छौने धाये हैं ।
माता महा-कालिका के पूजन को केकय में,
केकयी - लड़ैते के लड़ैते लाल आये हैं ॥

"बालक हैं, करो बचपना जान बालक न,
आग के अंगारे रघुवंशी बलवान हैं ।
चढ़नी थी चढ़ली सो काठ की कपट हांड़ी,
कुलिश की छाती-छीलो ! छलने को प्राण हैं ।।
मेघनाद-लवण विजेता हैं हमारे चाचा,
प्रजा हैं, हमारे राजा राम भगवान हैं ।
जिनका है यश राजहंस हैं उन्हीं के अंश,
गुरुवर लाडले हमारे हनुमान हैं ।।"

"खाने खेलने के हैं हमारे दिन सत्य कहां,
खाने-खेलने ही तो तुम्हारे यहाँ आये हैं ।
केकय में कीर्ति सुकुमारी के स्वयंवर में,
कुल का आभूषण धनुष धार धाये हैं ।।
सुना था तुम्हारे दंभ-बाग में वसंत आया,
उसे चखने को नये हैं न, ललचाये हैं ।
तुमुल-तुमुल खेलें प्राणों से खिलायें प्राण,
चाप की चकई सायकों की डोर लाये हैं ।।"

"तने तने कंध टूटे, शीश थे कि नारियल,
मुकुट को तनिक उतारने में भाल से ।
कवच में भूसे से भरे थे ये कलेजे कैसे,
तनिक कुरेदने में खिँच आये खाल से ।।
प्राण थे कि प्रेत थे जो बाण-मंत्र देख भागे",
बोलते कुमार बालकों की बोल-चाल से ।
भैरव विलोकते ज्यों सीखते हों काल-केलि,
मारुति मुदित हुए गुरु महाकाल से ।।

ऊर्मिका

हो गई छिन्न-भिन्न चतुरंग,
धूल में मिला शिला सा गर्व ।
भयंकर करते हाहाकार,
प्राण ले कर भागे गंधर्व ॥

मुख्य प्रासाद-द्वार पर पहुँच,
भरत ललकारे बारम्बार ।
"जा छिपा, खपा निरीह अनीक,
प्राण-लोलुप पामर! धिक्कार ॥"

तिमँजिले से बोला शैलूष,
खोल वातायन का पट एक ।
"यही क्या न्याय, यही क्या धर्म,
एक को घेरे खड़े अनेक ॥"

"एक शैलूष भरत भी एक,
एक से एक करेगा युद्ध ।
एक को एक समर में मार,
प्राप्त करले जय पूर्ण विशुद्ध ॥

चढ़ा शैलूष-शीश प्रभु-चरण,
समर्पित करे, भरत जय-माल ।
सजाये जय-शिर या शिरफूल,
काट शैलूष भरत का भाल ॥

प्रतीची-भवन सूर्य-भगवान,
करेंगे आज तभी विश्राम ।
भरत-शैलूष एक जिस समय—
त्याग देगा यह वसुधा-धाम ॥

राघवों-गंधर्वों की शेष—
सैन्य दे शस्त्रों को विश्राम ।
शांत शैलूष-भरत का लखे,
द्विरथ निर्णायक ही संग्राम ।।"

कवच पर कवच धार शैलूष,
सहस्त्रों अनुचर लेकर संग ।
राज-प्रासाद-द्वार लघु खोल—
चला, बोला, चढ़ मढ़े तुरंग ।।

"बंद कर लो सुंदरियो ! द्वार—
चला रण में तव प्रिय भर्तार ।
न लौटूं यदि मैं, आप सतीत्व—
बचाना, अपना तन कर क्षार ।।"

हँसीं गंधर्व-कामिनी ठटा,
"सती छोड़ी ही तुमने कौन ।
क्षार हो जो सतीत्व के हेतु",
हो गया घायल सा हो मौन ।।

"और इस विषय न लघु भय हृदय,
क्योंकि इनके हैं राजा, राम ।
भरत-हनुमत से सेनप साधु,
अभय करिये द्वैरथ-संग्राम ।।"

उतर रण में, बोला शैलूष,
"कौन सा भरत ! तुम्हें प्रिय युद्ध ।"
"वही प्रिय,जिस हित तुम संन्नद्ध,
वही अप्रिय, जो आप विरुद्ध ।।"

"उचित है, लो कर में असि थाम,
और हो जाओ अश्व-सवार ।"
बोल 'जय-जय समर्थ रघुवीर',
चढ़े हय भरत, खींच तलवार ।।

शांत-रस-सागर हिलीं हिलोर,
मंत्र-ध्वनि ज्यों धधके मख-कुंड ।
दर्प - उत्साह - अमर्ष - प्रताप,
एक ही से अनुशासित-झुंड ॥

लगा 'जय' संज्ञान्वेषण हेतु,
सप्तसैन्धव-सैन्धव गतिमान ।
या कि कलि-रण का पूर्वाभ्यास,
चले करने कल्की भगवान ॥

लगी उस काल, काल सी कठिन,
भरत की निर्मल तेजोमूर्ति ।
राम के रूप - गुणों की पूर्ति,
राम - अवतरण - कार्य-सम्पूर्ति ॥

बजाकर अपने-अपने शंख,
विचरनें लगे वीर निर्द्वन्द ।
खोलते अंग प्रलय से पूर्व,
कँपा तरु, भूमिकंप स्वच्छंद ॥

"न मन की रह जाये मन मध्य,
भरत ! करले तू पहले वार ।"
"नमन ही करते पहले आर्य,
न करते पहले कभी प्रहार ॥

न छेड़ा करते राघव प्रथम,
न छोड़ा करते, रहते शीश ।
अतः गंधर्व ! करो तुम वार,
तनिक तव लखूं वीर्य-वारीश ॥"

झपट कर दौड़ चला शैलूष,
चोट खाया ज्यों क्रूर भुजंग ।
महोदधि का प्रलयंकर ज्वार,
सृष्टि का करने कालाभ्यंग ॥

चंचला सी चंचल चंचला,
दिगंचल दृगंचलों से चीर ।
भरत का वक्षस्थल कर लक्ष्य,
मृत्यु सी चली स्वयं सशरीर ।।

भरत का चंद्रहास हँस उठा,
वैरि का करता सा उपहास ।
छूटने फुल-झड़ियाँ सी लगीं,
लड़ीं ज्यों तड़ित-लड़ी आकाश ।।

समर का होनें लगा विकास,
लगा ज्यों होने द्वन्द-विलास ।
लगा युग-सुभग-भुजा-भुजगेश—
भुजंगी करती लासोल्लास ।।

अंग-प्रत्यंगों की मणि मंजु,
चमक सी उठतीं बारम्बार ।
कभी हटतीं, करतीं फुंकार,
कभी टकरातीं कर झंकार ।।

कभी मतवाली सी फण उठा,
छटा सी देतीं घटा विदार ।
कभी करतीं यों प्रखर प्रहार,
कि लगता हुआ-हुआ संहार ।।

कभी लगता न्हा कर ही उठीं,
कभी लगता भर आईं मांग ।
कभी लगता कुल-वधु सी मौन,
कभी लगता पुर-वधु का स्वांग ।।

कभी लगतीं द्वितिया की क्षीण,
कभी लगतीं पूनम की पीन ।
सितासित-पक्ष चंद्रिका कभी,
वृषानी करतीं तेजोहीन ।।

कभी बनतीं भादों की घाम,
कभी करतीं प्रावृट-विस्तार ।
भँवर सी भांवर देतीं कभी,
कभी लेतीं तटिनी-छवि धार ।।

भ्रांत - उद्भ्रांत- पाद - पादार्ध,
सव्य - समुदीर्ण-वराह-निपात ।
अनालक्षित - दक्षिण - विस्फोट,
विभीषण - तृतीयांश - सम्पात ।।

लुलित-प्लुत-विप्लुत-आप्लुत-अर्ध,
महासख - करालेन्द्र - अवधूत ।
भयानक - प्रत्यालीढ़ालीढ़,
आकुलाविद्ध - समग्रोद्धूत ।।

श्येन-वारिज-विकराल विभेद,
चलाते भांति-भांति करवाल ।
घूमकर पाते पल विश्रांति,
घुमाकर करते वैरि निढ़ाल ।।

भरत-शैलूष युगल वर-वीर,
विपुल व्रण धारण किये शरीर ।
लगा ज्यों भिड़ते उन्नत-स्कंध—
वृषभ, सींगों से छाती चीर ।।

हिमाचल-नीलाचल अल्पना—
रचाते, झरते गेरु-प्रपात ।
न्हा गये मानो वकुल-तमाल,
सरस किंशुक-सुहास बरसात ।।

कि कुवलय - पुंडरीक सर छिपे,
देखकर अरविंदों का चाव ।
लग्न में हुए शुक्र-शनि अस्त,
व्याप्त ग्रहराज-गृहस्थ प्रभाव ।।

घाव पर देते जाते घाव,
घाव पर खाते जाते घाव।
शिथिल से होते जाते पिंड,
मानते मन न, मनाक प्रभाव।।

भरत के श्यामकर्ण - हय-कर्ण,
हुआ शैलूष - खड्ग का वार।
गिरा स्वर्णिम-कुंडल रण-भूमि,
पृथक हो श्रवण सुमूलाधार।।

भरत ने पाणिपृष्ट पर किया,
खड्ग का एक तीक्ष्ण सा वार।
गिरा विद्याधार का कट मुकुट,
टूट कर छिटकी दूर दुधार।।

हुआ भयभीत बिना तलवार,
भरत बोले "ले-ले तलवार।
पलायित-प्रार्थी- पतित-अशस्त्र—
शत्रु से, रामानुज अविकार।।"

खड्ग जब तक लाया शैलूष,
सजा कुंडल से भरत-तुरंग।
नोंक से क्षण में कर्णिक उठा,
प्रथम सम सज्जा करी अभंग।।

कह उठीं 'साधु' गातु-कामिनीं,
झांकतीं थीं जो खोल गवाक्ष।
हुआ क्रोधित कुत्सित-शैलूष,
चला भैरव-रव कर, अरुणाक्ष।।

भुजग सम झुककर, फण फुंकार,
भरत की जंघा किया प्रहार।
पड़ी रामानुज कोपज्वलन,
यूप सी रक्त-तूप की धार।।

द्विरथ-रण-यज्ञ, पुरोहित गातु,
भरत शत-जिह्वी अग्नि-कराल ।
तंत्र में ज्यों दुर्दैव-विपाक,
कर्म विक्षेप, इष्ट ही काल ।।

बना करता है, त्यों ही भरत,
बन गये सहसा ही विकराल ।
घाव पर कसकर बांध दुकूल,
गरज कर बोले "वार सम्हाल ।।

सम्हल गंधर्व ! धर्म-विपरीत—
कर्म कर, किया काल विपरीत ।
भरत का यह प्राणान्तक घाव—
बचा, है यदि प्राणों से प्रीत ।।

खड्ग की नोंक स्वाधरस्पर्श,
कवच को काट, उधेड़ा वक्ष ।
पलल सा निकला, पलक कपाट—
पलट, मद प्रकटा कनखी-कक्ष ।।

अश्व दौड़ा सीधा शैलूष—
चला, तक भरत-अश्व का भाल ।
जान, निज ज्ञाति-बंधु सम भरत,
मला शिर, रिष्टि-सुमुष्टि गुलाल ।।

पैर पसराता जीभ निकाल,
बहाता शिर से शोणित धार ।
लखा गिरता निजाश्व ज्यों गातु,
भरत के अश्व हुआ असवार ।।

चरण से चरण, वक्ष से वक्ष,
खड्ग से खड्ग, शीश से शीश ।
लगे टकरानें, जय-फल हेतु,
डाल ज्यों भिड़े लाल दो कीश ।।

कभी झुक जाते बांई ओर,
कभी झुक जाते दांयें वीर ।।
कभी आगे, पीछे कुछ अधिक—
उलझते साधे युगल शरीर ।।

वार पर करते जाते वार,
कभी असफल, फिर सुसफल वार ।
कभी टकराते केवल शीश,
परस्पर लेते थाम दुधार ।।

गिरा शैलूष-खड्ग लख, भरत—
खड्ग निज फेंका, खिंचीं कृपाण ।
घाव पर घाव रिसाने लगे,
चलाते हुए तिक्त-वच-बाण ।।

न अनुशासित रह पाया अश्व,
धरा पर दोनों गिरे समान ।
लिपट लुंठित-वट के ज्यों गये—
परस्पर, गिरते हुए प्रतान ।।

दिखाने और देखने लगे,
युगल-भट क्रम-क्रमशः आकाश ।
गिराते, उठते-उठते पुनः,
कंठ में डाल, भुजा-पद-पाश ।।

गिरे सहसा टकरा कर दूर,
खड़े हो गयें एक ही बार ।
उठालीं दोनों ने ही दौड़,
तुरत फिर एक-एक तलवार ।।

लगे प्रतिदिशि-दिशि करने तुमुल,
भरत को दिखी प्रतीची लाल ।
स्व-प्रण हो आया फिर से स्मरण,
'जयति-रघुपति' कहकर करवाल ।।

तान कर सीधी, झपटे तुरत,
लपट सी लगी लपकती एक ।
काट, शैलूष-शीश को दिया—
धरा की धूलि-धार में फेंक ।।

मुकुट-कुंडल मंडित वह शीश,
लगा यों खंडित लोहित-भूमि ।
चंद्र से विजित राहु, पाताल—
ताल में गिरा त्रिपथगा-ऊर्मि ।।

सुशोभित हुए समर-भू भरत,
तुला-वेदिका विराजे सौरि ।
किये माणिक्य-जपा शृंगार,
लगा प्रत्यंग पतंग-सुखौरि ।।

कर उठी रघुसेना जयकार,
'भरत सेनापति की जय-कार ।
अवध-युवराज, शूर-शिर-मौर,
जयति जय-जय केकयी-कुमार, ।।

भरत बोले "जिनकी यह विजय,
उन्हीं रघुपति की जय-जयकार ।"
भाव - विह्वल हो छाती लगे,
दौड़कर प्रमुदित पवनकुमार ।।

चढ़ाने लगे कंध, कह उठे—
भरत,"यह सियपति-पीठ कपीश ।
यहां कैसे रख सकता पैर,
झुकाता इस पर नित-प्रति शीश ।।

भक्ति-आचार्य शिरोमणि-संत,
विश्व के अद्वितीय-कवि वीर ।।
हुए गुण जिनको पाकर धन्य,
कहूँ या गुण-गण ही सशरीर ।।

जगज्जननी - सह जगन्निवास,
सदा करते तव हृदय विलास ।
राम के आप सनातन-वास,
अवध तो क्षण का मात्र प्रकाश ।।

जानता है त्रिभुवन यह तत्व,
किंतु मम हित कुछ और महत्व ।
चित्त में होता है संकोच,
प्रगट क्या करूँ हृदय का सत्व ।।

इसी से कहता सखा-पुनीत !
सुहृद से अनुचित क्योंकि दुराव ।
तवालिंगन ममहेतु द्विहेतु,
भरे दोनों ही स्वार्थ - सुभाव ।।

एक में प्रायश्चित का भाव,
किया तव हिय,जो शर नें घाव ।
भरा तव राम कृपा से घाव,
किंतु मेरे अंतर्मुख-स्राव ।।

तवालिंगन कर बारम्बार,
किया करता उसका उपचार ।
सहज ही तव कंधे लग कीश!
प्राप्त करता, प्रभु-चरणाधार ।।"

कहा मारुति ने गद्गद् गिरा,
"दास को देते हो सम्मान ।
अन्यथा दो शरीर, मन एक,
युगल-राघव उपमा-उपमान ।।"

अश्वजित ने खंडित शैलूष—
शीश पर, कसकर मारी लात ।
"सियारों का भोजन हो नीच !
कीच में लोटा तेरा गात ।।"

भरत ने दौड़, पकड़कर चरण,
कहा "मातुल! यह अनुचित-कार्य ।
मृतक प्रत्येक, पितर सा पूज्य,
वधा करते जीवित-रिपु आर्य ।।

रुदन करते नृप बोले "भरत !
इसी नें किया हमारा नाश ।
झलकतीं वे ही पुतलीं कुटिल,
छिने जिनके संकेत प्रकाश ।।

क्षमा कर दूं इनको किस भांति,
बींधने दे, ये दोनों बिंदु ।
वत्स ! वे दिखने भर की बिंदु,
पीं गईं किंतु सिंधु शम-सिंधु ।।"

"धैर्य धारो कर दृढ़ विश्वास,
परम-मंगलदायक प्रभु-राम ।
जिन्होंने हरी निराशा-निशा,
वही हिय-कमल-विकास ललाम ।।

बना मन भ्रमर, रमो निशि-दिवस,
वही शाश्वत, प्रकाश-सुखधाम ।
स्वांस प्रभु के सुस्वादु प्रसाद,
भजो प्रति-पल सीतापति राम ।।"

लगे आ हिय से पुष्कल-तक्ष,
अंगरागों से अंगज, अंग ।
उठीं ज्यों सद्यावतरित गंग—
सनातन उमग उमंग तरंग ।।

गहन अगहन-धारा के विमल—
सुकूलों से लहरा सुदुकूल ।
नाचने लगी वैष्णवी-सैन्य,
बरसने लगे गगन से फूल ।।

शवों को करते दुर्गति, लखे—
रणस्थल वायस-गृद्ध-सियार ।
किये सब एकत्रित, समभाव—
सभी का किया अग्नि-संस्कार ।।

पुनः अन्तःपुर पहुँचा दूत,
भरत का ले करके संदेश ।
"करें संस्कार, स्वविधि-अनुसार,
पड़े रण, मृत शैलूष-नरेश ।।"

"विचारा जो युवनृप ने उचित—
वही समुचित मृत-प्रति व्यवहार ।
भेद क्या मृतक-मृतक में शेष,
स्वयं दें अंतिम दव-उपहार ।।"

मौन, साश्चर्य, चिना कर चिता,
जोड़ शैलूष-अंग प्रत्येक ।
लिटाया अपना उढ़ा दुकूल,
विलोका तब ही एकाएक ।।

कलाधर-कृष्ण-चतुर्दशि - कला—
सरिस गंधर्व-सुन्दरी एक ।
विलखती 'नाथ-नाथ हा नाथ,'
यष्टि सी टूटी वीणा टेक ।।

निकल कर आई, बैठी चिता—
अंक में लेकर स्वामि-शरीर ।
जोड़कर कर बोली शिर नमित,
"धर्म के आप भरत! मम वीर ।।

स्वजीवन में याचना द्वितीय,
आपसे पहली, अंतिम बार ।
कर रही हूँ, करिये स्वीकार,
स्वसांचल रखें स्वयं अंगार ।।'

भरत बोले "माते ! साकेत—
चलो, मत करो देह यों क्षार ।"
"क्षार का अब क्या होगा क्षार,
स्वामि ही आर्या का संसार ।।

न मानें, मन-मानी कर, गये—
स्वयं परलोक, छोड़कर नाथ ।
अनाश्रित हो भारत की सुता—
न जीती, जाती प्रिय के साथ ।।

मिला जिस दिन प्रिय से चार्वाक,
पढ़ा मैंने तब हो यह लेख ।
विश्व ने बांचा बारम्बार,
खिची तव असि तो अंतिम-रेख ।।

हो चुका सकल वंश संहार,
कृपाकर ! कर दो उपसंहार ।
बंधु ! निश्शंक - भाव से करो,
तुरत अंगार-रत्न शृंगार ।।"

नमन कर, परिक्रमा कर भरत,
शराग्नेयाग्नि-ज्वलित दी मौन ।
शत्रु से बांधव का व्यवहार,
करेगा तव बिन भारत ! कौन ।।

निमिष में धूं-धूं धधकी चिता,
"पधारी सुरपुर सती विमान ।
सुना था, देखा सम्मुख यहीं,
काष्ठ की तरी तरा पाषाण ।।

दोहा

लंकापति की भामिनी-सरमा-जननी धन्य ।
हुए दग्ध तव दर्श कर,हिय-विचार हिय,अन्य ।।"

११०६

ऊर्मिका

निमज्जन किया सिंधु-सरि मुदित,
शिवार्चन कर, धर नव-परिधान ।
विराजे भरत सपरिकर शिविर,
वंदना की धावन ने आन ।।

"राजगृह में गन्धर्वी-वृंद,
आपका करता है आह्वान ।"
"अभी तो निशि का प्रहर द्वितीय,
उचित-वय आयेंगे मतिमान ।"

विदा कर दूत - भरत ने किया—
शिविर-पुर-देश सुचारु-प्रबन्ध ।
सभी को दे विश्रामादेश,
यान में लेटे वृषभस्कंध ।।

रखा कपि की गोदी में शीश,
चरण-सेवा रत हुए कुमार ।
भरत बोले "कपि ! रघुपति-कृपा,
शौर्य तव, हुआ शत्रु संहार ।।

यहां के शेष-कार्य, निश्शेष—
तुरत कर, चलो बंधु ! साकेत ।
बहुत दिन प्रभु-दर्शन बिन गये,
लखें पद-पंकज सैन्य-समेत ।।

झपकतीं पल - भर पलकें कभी,
तभी दिखते, कहते 'आ भ्रात' ।
चतुर्दश उन वर्षों से अधिक,
विरह अतिशय असह्य यह तात ।।"

भरा सहसा नयनों में नीर,
गये कपि-कंधे कर रख बैठ ।
मिली मणि-ज्योति, दृष्टि से दृष्टि,
दृष्टियां गईं हियों में पैठ ।।

'विपिन में जबसे जननी गईं,
विलोका करते थे आकाश ।
किन्तु जब से भूतल से गईं,
नमित-मुख रहते परम-उदास ।।

सत्य तो यह है, ढोते भार—
प्राण का बरबस हम सब आप ।
सिलगता दावानल रघुवंश,
जानकी-परित्याग के पाप ।।

एक भी गया न मां के साथ,
कसकती निशिदिन हिय यह टीस ।
कहें हम किससे क्या, हा बंधु !
छत्र ने दिया, भाल ही पीस ।।

नियति से जीता कौन सजीव,
कहो, कहते यह ही निरुपाय ।
गगन से जो ले आये गंग,
न वे, सिय को ला पाये हाय ।।

गई जो छांया सी वन साथ,
न जा पाये, छांया बन साथ ।
उसी की कंचन-छाँया किन्तु,
बने झुलसी सी छांया, नाथ ।।

छोड़कर ऐसे रघुकुलनाथ,
स्वयं मैं यद्यपि आया भ्रात ।
समर में पलभर बिसर न सका,
शिशिर का सा प्रभु-मुख-जलजात ।।

फँसा कर्तव्य-फाँस में यहाँ;
हृदय के पंछी की जड़ पांख।
चलो, कल ही अपना कर कार्य,
मीत रे! भर-भर आतीं आंख।।"

पूंछ कर बोले कोर कपीश,
"शेष को कहते वसुधाधार।
राम के प्रखर-प्रेम की मूर्ति,
आप ही धराधार साकार।।

प्रार्थना मान, करें विश्राम,
श्रमित दोनों सुकुमार कुमार।"
लक्ष बोले "श्रद्धेय कपीश!
आप ही के श्रम का यह सार।।

करें विश्राम" देख कपि-सकुच,
भरत बोले "क्या कहते अज्ञ।
सुलाते उसे, किया निश्चिंत—
जागरण से जिसने सर्वज्ञ।।"

नमन कर उठे, नियंता-पीठ—
विराजे वीरासन हनुमान।
ढके ममतावश अंड स्वपंख,
विहग-खंजन से कोटर यान।।

शयन-हित लेटे त्यों ही भरत,
रखे पुत्रों के शिर पर हाथ।
लगे जपने मारुत-सुत मौन,
राम! रघुनाथ! जानकीनाथ।।

दोहा

ब्राम्ह-मुहूर्त उठे सकल, कर वैहानिक-कार्य।
शिविर-सभा बैठे मुदित, "क्या आज्ञा अब आर्य।।"

"मातामह के सुमन-कण, पांयें सिंधु-प्रवेश ।
आतुर-मन, सुन विजय-ध्वनि, लखता पथ अनिमेष ।।
दूर दुर्ग से मुदित - चित, करें सुवीर विहार ।
मातुल-मारुति सहित मैं, आता तुरत कुमार ।।"
चला वितस्ता-शशिशिरा, भरत-यान कर पार ।
बढ़े वाणगंगा नहा, नव पावन-पट धार ।।
झुका शीश पहुँचे गुहा, लखीं पुनीत त्रिमूर्ति ।
मध्य भगवती वैष्णवी, पुण्य-पिपासा - पूर्ति ।।
विविध भाँति की अर्चना, वंदन बारम्बार ।
"युग-युग अक्षय - कीर्ति हो, तव केकयीकुमार ।।"
ले प्रसाद-माला रुचिर, धारी भरत किरीट ।
किया चरणगंगाचमन, मां का कृपा-कृपीट ।।
बोले "मां ! रघुनाथ - प्रति, दें कृपया संदेश ।"
"उनके ही निर्देश से, बसती गुह्य-निवेश ।।
सह न सकेगी भूमि जब, कलि का कलुषित भार ।
आयेंगे रघुनाथ तब, किये समर-शृंगार ।।
जैसे धाये राहु पर, लिये भयंकर चक्र ।
कंचनमृग-आखेट ज्यों, किया भृकुटि कर वक्र ।।
तैसे ही कलिकाल में, बनकर काल कराल ।
आयेंगे चढ़ तुरग पर, लेकर कर करवाल ।।
मैं उन रघुपति कल्कि की, नीराजन-कर्पूर ।
डाल पलक-पट हिय-भवन, हुई मिलन-मद चूर ।।
युग से युग तक बैठकर, अपलक लखती बाट ।
विरह-तिमिर अनभिज्ञ सी, मेरे हिय हियराट ।।
कहना तो कहना यही, पाकर प्रभु एकांत ।
देना इतनी शक्ति प्रभु, करूँ क्लान्त - जग शांत ।।
देना नारी - जाति को, मेरा प्रिय - संदेश ।
प्रिय से मांग न कनक-मृग, देना-लेना क्लेश ।।"

श्री वैष्णवी-वन्दना

पादाकुल

जय वैष्णवि ! देवि ! सदा वरदे !
शुभमूर्ति ! सुशोभामयि ! शुभदे ।।
जय सागरपति-सुकुमारि-सुमुखि !
भवि ! विभवि ! पराभवि ! अभवि! त्रिमुखि ।।

भुवि-भव्य-भवन-छवि दीपशिखे !
त्रिभुवन-वसंत-वन प्राणपिके ।।
लक्ष्मीस्वरुपिणी रमाग्रजे !
विमले ! वैकुंठ - वारि-विरजे ।।

जय लोक-विमोहिनि ! सम्मोहिनि !
कवि-शिव-शिर कविता-कल्लोलिनि ।।
जय शब्द-ब्रह्म की गृहस्वामिनि !
अज्ञान - सघन - घन - सौदामिनि ।।

मनसिज मातंगार्चित भार्गवि !
धर्मार्थ-सरोरुह-सर रवि-छवि ।।
कैवल्य - गंगमाला - गोमुखि ।
मां ! भक्ति कल्पतरु छायोन्मुखि ।।

जय विरति-सुरति की परिभाषे!
जय अमर-प्रेम की अजराशे ।।
हरि-प्रेम-पौर-की प्रतिहारिणि!
स्वप्रिय प्रेयसि! प्रिय-प्रियकारिणि ।।

तव कृपा-दृष्टि से खल निशिचर ।
बन गये साधु, निर्जर वनचर ।।
लंका, युग-युग की पंक पली ।
जा तपीं, तपा, की कंज-कली ।।

मनुजाद, मनुजता-मनुज-क्षयी ।
उन पर कपि-भालु किये विजयी ॥
प्रभु-शर-ज्वाला की ज्योति! जयति ।
सात्विके! परम-सति! जय-भगवति ॥

भटके कर्मों - वश जीव कहीं ।
भूले रघुपति-पद-पद्म नहीं ॥
अब प्रसवनि ! दे वरदान यही ।
हो ममाधार, तव कृपा-मही ॥

दोहा

बने न तेरा शिशु कभी, भिक्षु किसी के द्वार ।
हार न पाये मां कभी, पाया तेरा हार ॥"
उठा अभय - कर अंब का, अधर खिली मुस्कान ।
'हृदयेच्छित पाओ भरत ! राम-कृपा वरदान ॥
क्या दूं, मैं तेरी ऋणी, प्रिय अंजनीकुमार ।
है मेरा आगार नित, तव-हिय रामागार ॥
लो प्रिय! कीकस-कलश यह, भूपति-व्रत सम्मान ।
विदा स्वर्ग सादर करो, संगम-लहर विमान ॥"

रोला

चले नमन कर भरत, कलश ले संगम आये ।
जहां सिंधु में सिंधु समाती भुज-फैलाये ॥
लखा भरत ने अर्बु-सिंधु ज्यों करता नर्तन ।
भरे सलिल-कण सुमन, लहर-कर करता अर्पण ॥
मातृभूमि पर मुक्त-हस्त, सर्वस्व लुटाता ।
मां का मानसपुत्र सिंधु-नद हृदय लगाता ॥
क्षार-विधु में अंब-क्षीर के मिला सिंधु कण ।
मारुत-माध्यम पिला मुक्ति-रस, करते पोषण ॥

नव-यौवन सम्पन्न पयोधर सुवन बनाकर ।
भेज रहे उत्ताल-तरंग विमान चढ़ाकर ।।
जलधि-लहर-सुत गगन जलद बन, लहर बरसते ।
ज्यों कुलीन-मृगराज-सुवन गिरि-शिखर गरजते ।।
मधुर-क्षार संगमन, स्वमन स्मृति मधुर-क्षार भर ।
कहा भरत ने "करो विसर्जित मातुल ! सादर ।।"
"नहीं भरत ! यह पुण्य-कार्य भी करें वही कर ।
जिनका विक्रम अजय, आज लाया यह अवसर ।।
शूरों का शृंगार श्राद्ध, मैं पामर कायर ।
मैं न करूँगा शुभ्र-अस्थियां कलुषित, छूकर ।।
जिस विषमस्थिति-मध्य पिता ने प्राण गँवाये ।
मैंने पापी-प्राण, पलायन-पाप बचाये ।।
दोनों रहते साथ-साथ या दोनों जाते ।
तभी पूज्य पितुदेव सत्य - सुतवान कहाते ।।
मातामह का श्राद्ध, पुत्रिका पुत्र-भाव से ।
शास्त्र विहित है, करो, कुवय तो भी सुचाव से ।।"
पा मातुल-आदेश, भरत ने पोत मँगाया ।
मारुति को दे मुकुट, दुकूल शीश लिपटाया ।।
कर दक्षिण-उपवीत, अस्थि-घट लेकर सादर ।
चढ़े, उपस्थित स्वजन पोत पर सकल चढ़ाकर ।।
पुष्पांजलियां अमित चढ़ीं नृप - अवशेषों पर ।
विप्र अथर्वण-ऋचा उठे उच्चार उच्च-स्वर ।।
बोले भर कर नयन भरत "वंदन मातामह ।
बने भारतादर्श आपका यह अपरिग्रह ।।
जिसके हित बलिदान आपने किया देह का ।
बने सनातनधर्म-शिखर वह राष्ट्र-गेह का ।।
यदि हो सीमा-प्रांत कभी आक्रांत हमारा ।
बने प्रेरणा मातामह ! शुभ-चरित तुम्हारा ।।"

कुवलय-किसलय-द्रोणि सुमन पर, सुमन सजाये ।
लख घुन खाईं अस्थि, नयन फिर जल भर लाये ।।
पोत-पुलिन से द्रोणि छोड़ दी झुक कर जल पर ।
एक बार तो लगा, चैत्ररथ-कुंज उतर कर ।।
तैर रहा, पर लगीं तुरत लहरें लहराने ।
ज्यों बिछुड़ा-शिशु लगी अंब हँसकर दुलराने ।।
"पूज्य ! पधारो स्वर्ग,सुरेन्द्र खड़े स्वागत-हित ।
दो आशिष तव भरत-भूमि यह रहे अभय-चित ।।"
लगा पुलिन पर पोत, हुए सब शुचि, मज्जन कर ।
चले यान चढ़ शिविर, हुए कृतकृत्य नमन कर ।।
गये नगर में भरत, लखा पूरा पुर उजड़ा ।
ध्वस्त-वीण पर दीन पड़ा स्वर-दल ज्यों उखड़ा ।।
देखे घर अधजले, रक्त-रंजित अति खँडहर ।
व्यथा-कथा दुर्गंधि-गिरा में कहते पंजर ।।
मिले अर्धविक्षिप्त-वृद्ध कुछ, स्वांसें गिनते ।
कहतीं मुंदतीं आँख, अधर-जड़ क्या, जो कहते ।।
बोले दृग भर भरत "तुम्हारा मैं अपराधी ।
हुई दुर्दशा हाय, श्रोणि अविलंब न बाँधी ।।
रखने को मम मान न रघुपति ने छोड़ा शर ।
रहे रौंदते हाय ! सकल सीमान्त निशाचर ।।
करना कृपया क्षमा. अज्ञ सा अज्ञ समझकर ।"
दहन किये एकत्र करा घर-घर से पंजर ।।
स्वच्छ कराकर नगर, दुर्ग में भरत पधारे ।
देखे बहु- गंधर्व कांपते भय के मारे ।।
अभय किये कर उठा, राज-मन्दिर में आये ।
बहु सुन्दरियां लखीं, मुदित-चित मांग सजाये ।।
लगे छनकने वाद्य, झनकने लगीं पायलें ।
"विद्याधरियां नमित, नमन श्रीमहाराज लें ।।"

एक बार हो चकित, कुपित हो उठा भरत-मन ।
बोले "बैठो शांत-शांत" मांडवी-प्राणधन ।।
बैठीं भू-पर सकल खड़े ही रहे भरत पर ।
लगीं निरखने रूप, नयन कुछ तिरछे से कर ।।
करतीं कुछ संकेत परस्पर, हँस धीरे से ।
मंजीरों से मंजु दांत दिखला हीरे से ।।
बोलीं "बैठो अजी ! सजा पर्यंक सामने ।
क्या न आक्रमण किया आप पर कभी काम ने ।।"
"हट पगली ! क्या लखे न, रण में करते टोने ।
वे इन ही के कुंवर, सांवले - गौर सलोने ।।"
"इनके थे, ये स्वयं सलोने कुंवर - सरीखे ।
ठगना अबला जाति अरी, जग इनसे सीखे ।।"
किंतु भरत का गहन-मौन लख, मौन हुईं सीं ।
बैठीं शंकित-चित्त, प्रकंपित प्रात-कुईं सीं ।।
बोले सहसा भरत "यहाँ की यह ही संस्कृति ।
इतने दिन के, इतने प्रिय की, इतनी सी स्मृति ।।
पिंजरे का, यदि पला विहग भी लौट न आता ।
घर भर को,उस दिवस न भोजन-आसन भाता ।।
कल ही, कल का स्वामि पुरातन, विक्रमशाली ।
तव सम्मुख रण गिरा, वक्ष पर झेल भुजाली ।।
उस प्रिय की प्रेयसीं, उसी के क्रूर-वधिक से ।
प्रेम जिताने चलीं, आज किस मन, किस चित से ।।
कैसा हा! तव हृदय ! हाय तुम कैसी नारीं ।
विधि ने जिन्हें सकेर मंजु-मृदुभाव सँवारीं ।।
बहकाया शैलूष भरत को या बहकातीं ।
वह नाटक था या कि आज यह नाट्य रचातीं ।।"
"भोग्य-वस्तु हम भरत! कमलिनी स्त्रियां, पुरुष अलि ।
भोगानल में किसी मंत्र से दे कोई बलि ।।

दिखतीं नाटक-पात्र, मात्र हम नाटक-दृष्टा ।
की अनहोनी हाय! रूप दे, होनी सृष्टा ।।
सती हुईं गंधर्वराज की जो पटरानी ।
समा आग सी गई आग में मिला न पानी ।।
देख न सकी अनीति मौन, प्रिय को समझाया ।
क्या उसका फल मिला, उसी की कहती काया ।।
प्रथम देखते उसे, देखते ही रह जाते ।
जिसके पद-तल देख, हमारे वदन लजाते ।।
कौन यातना हाय! न झेली पल-पल उसनें ।
डिगे सुयौवन-रूप, न किन्तु दिया चित डिगनें ।।
किया न अर्पित धर्म, धर्मतः समर्पिता ने ।
पतिव्रता वह, शांत अंत में, करी चिता ने ।।
हमें विलोको, अमित-यंत्रणा सहकर हमनें ।
पुरुष वृकों को, हृदय-हीन तन सौंपे अपने ।।
त्याग लाज-संकोच, यही इस चित में धारी ।।
पुरुष खिलाड़ी चतुर, खिलौना सुन्दर नारी ।।"
'नहीं-नहीं यह नहीं, आप उस भू की नारी ।
जिस धरती ने जनी जानकी, जनक-कुमारी ।।
वही जानकी हुआ हेतु जिसके, रण-भीषण ।
प्रस्तुत हुए प्रतीक-रूप, जग में प्रभु-रावण ।।
कहते भोगी धूर्त जिसे, 'वह भोग-युद्ध था ।'
किन्तु महायोगिनी-सिया का योग-युद्ध था ।।
तनिक विचारो, कही सीय अर्पित हो जाती ।
झुकी राम की दृष्टि, लंक पर क्या उठ पाती ।।
स्वाभिमान सत्त्व का, तनिक होता रावण में ।
तो भिक्षा-हित नहीं, समर-हित जाता वन में ।।
देता लेता शीश, परन्तु अमर हो जाता ।
जग में ऋषि का अंश, न निशिचर तो कहलाता ।।

किन्तु निराशा - भरी, स्वयंवर-खीझ मिटाने ।
जा पहुँचा लंकेश, सीय एकांत चुराने ।।
यद्यपि हमने भस्म किया लंका का कण-कण ।
पर होने दी नहीं, स्वमर्यादा निरावरण ।।
कौशल्या-केकई-सुमित्रा-सीता मां सी ।
आप हमारे लिये, सकल सेना तव दासी ।।
हो सब आप स्वतन्त्र, बसाओ शुचिता से घर ।"
एक बार सुन भरत-वचन} सब हँसीं ठठाकर ।।
बिलख उठीं फिर, सकल स्व-आंचल ढक-ढक मुख पर ।
हमें स्वघर ले बसा, कहां नृपवर! वह शुचि-नर ।।
झुका रह गया शीश भरत का हुआ निरुत्तर ।।
बोले पुनः विचार, "मार्ग निकलेगा सत्वर ।।"
तभी त्रिकूटा - धाम त्याग, आईं सुन्दरियां ।
मिलीं, छलकते नयन, शिशिर की सी वल्लरियां ।।
भरत सभी के साथ, सभा में तुरत पधारे ।
उठे सकल-जन मुदित, गगन गूंजे जयकारे ।।
कर वंदन स्वीकार, अश्वजित का वंदन कर ।
बोले "मातुल-नृपति! विराजें निज-आसन पर ।।"
"जिसने नृप का श्राद्ध किया, उसका नृप-आसन ।
अतः भरत! तुम स्वयं करो सिंहासन पावन ।।"
सुन हयजित की गिरा, भरत बोले, जोड़े कर ।
"नहीं, आपकी देवी! सुशोभा इस आसन पर ।।
बैठे साग्रह नृपति, बिठा निज पास भरत को ।
कपि ने तान सु-छत्र, किया शोभित मस्तक को ।।
चले चँवर ले कुंवर सचिव-गण आगे आये ।
कर विचार, ऋषि कण्व-और्व मद्र से बुलाये ।।
सहसा वृद्ध - वसिष्ठ उसी क्षण सगुण-ब्रह्म से ।
यों प्रकटे, ज्यों प्रगट हुआ फल सफल-यज्ञ से ।।

रोम-रोम उद्दीप्त, छका छवि-राशि वृषांबर ।
ज्ञान-भक्तिमय धर्माश्रम सा विमल कलेवर ।।
मुखरित प्रमुदित चित्त उठे संभ्रमित सभाजन ।
लगा लिये हिय भरत, धरा पर करते वंदन ।।
''सत्य कैकई-कोख योग्य ही वत्स भरत! तू ।
मूर्त राम-रति, पूर्ण धर्म का सत्त्व भरत! तू ।।
कर-द्वैरथ संग्राम, शिरच्छेदन कर खल का ।
जग को संबल दिया सबलतम भजन सु-बल का ।।
सबको समझा दिया स्वकृति से अर्थ शक्ति का ।
संत ! धार कर खड्ग सु-परिचय दिया भक्ति का ।।
राम-नाम का जाप प्रताप अमित वह देता ।
जो पल में परितप्त, जगत के दुख हर लेता ।।
कायरता का अर्थ न भक्ति, न ज्ञान पलायन ।
शुद्ध लोकसंग्रह-पूरित परलोक-विचिन्तन ।।
तनिक न जो भग्नाश, न जिसमें तनिक दुराशा ।
पूर्ण और संक्षिप्त हिन्दु की है परिभाषा ।।''
पुनः पुराण सुशास्त्र, परिस्थिति देश-काल की ।
भली-भांति लख, शुद्धि-व्यवस्था निर्धारित की ।।
रेचकादि से शुद्ध-प्रथमतः देह कराये ।
चित विशुद्ध कृच्छादि-व्रतों से पुनः बनाये ।।

दोहा

पंचगव्य कृत्यादि कर, कर जल तीर्थाह्वान ।
देवी सीं नव-पट सजीं, किये सचैलस्नान ।।

रोला

हुए स्वतः पावस-किसलय-कुल से मन निर्मल ।
खिले हृदय-सर राम-चरण पंकज-सहस्रदल ।।

भटक रहीं थीं जो करील-वन पहले पल तक ।
करने लगीं विहार, कमल-वन अलि सीं अपलक ।।
औवश्रिम में गईं सगर्भा थीं जो नारी ।
जिन्हें स्वजन मिल गये पुनः परिवार पधारीं ।।
फिर भी बचीं अनेक, गईं वे सब कण्वाश्रम ।
लगीं मिटाने ग्लानि तपस्विनियां, ममता-क्रम ।।
सुन-सुन कथा अनेक, जान बहु-विधि निगमागम ।
भारत-माता बनीं, भारती-बाला आश्रम ।।
औवश्रिम की बाल, निबट निज समय प्रसव से ।
शनैः-शनैः सा मिलीं सभी में मुदित हृदय से ।।
समय-समय पर कण्व, स्वयंवर लगे रचाने ।
वीर-मनस्वी-युवक घरों में लगे बसाने ।।
दिया गोत्र निज और्व ! निजाश्रम की संतति को ।
मानो शाश्वत-धर्म, विपद-व्यथिता संस्कृति को ।।
वे गोलक-कानीन-कुंड-संकर संताने ।
दम्पति निस्संतान स्व-दत्तक लगे बनाने ।।
भरत-घोष सुन, अभय लौटने लगे नागरिक ।
लगे बसाने सदन, शुद्धि कर लौकिक-वैदिक ।।
पुनर्वास की मिलीं प्रशासन से सुविधायें ।
विध्वंसों पर लसीं, नवल निर्माण-लतायें ।।
सरिताओं पर सेतु, तीर पुर-ग्राम रचाये ।
मंजुल मणियों सरिस राजपथ - सूत्र सजाये ।।
की प्रतिमायें देव - मंदिरों में संस्थापित ।
ग्राम-ग्राम में किये रुग्णगृह - गुरुकुल विकसित ।।
दूर -दूर से पुनः भरत ने वणिक बुलाये ।
कर साधन सम्पन्न, सकुल, दे वास बसाये ।।
नृप-निर्धारित भाव सुलभ कर वस्त्रान्नादिक ।
जन-जीवन सामान्य सहज ही किया चतुर्दिक ।।

लगे गुंजाने अभय-विप्र मन्त्रों से घर-घर ।
आहुति लेने लगे उतर कर निर्जर-परिकर ।।
रही वासना-वस्तु न, नारी पुरुष-दृष्टि की ।
पाई निज सम्मान, सनातन-केन्द्र सृष्टि की ।।
दैन्य-दंभ अवसाद-द्वेष-आतंक आंतरिक ।
अनावृष्टि अतिवृष्टि महामारियां प्राकृतिक ।।
चोरी-जारी-भूतोपद्रव - अपहरणादिक ।
भरत-शील प्रत्यूष-काल के बने निहारिक ।।
पहिले से भी अधिक राज्य सम्पन्न बनाया ।
सरयू का सा विभव सिंधु-शशिभागा छाया ।।
हुई सुखाकर सकल परिस्थिति अल्प-समय में ।
छाया अभिनव राम-राज्य निर्भय केकय में ।।
बोले नृप से भरत, एक दिन जोड़ युगल कर ।
"यदि आज्ञा दें देव ! करें प्रभु-दर्श मनोहर ।।"
अति विह्वल नृप हुए भरत के वचन श्रवण कर ।
सहम उठे मन-बुद्धि, बन गये लोचन निर्झर ।।
बोले हतप्रभ भरत, "कहें तो अभी न जाऊँ ।"
"राम-दर्श से रोक हाय ! फिर पाप कमाऊँ ।।
जा न राम से मिला, उसी का पाया यह फल ।
जला स्वजन मधु-विपिन रहा मैं ईंधन केवल ।।
चक्रपाणि ! भगवान गदाधर ! प्रभु मधुसूदन ।
गरुणध्वज ! गोविन्द ! रमापति ! हरि ! नारायण ।।"
कहते-कहते सहज समाधि लगी भूपति की ।
पहुँचे त्रिकुटि-त्रिकूट प्राण लज्जित हरि-गति की ।।
दृश्य देख यह, जुड़े भरत के करतल जब तक ।
पंजर-पिंजरे का कपाल-पट पटु सा तब तक ।।
खोल, मुक्त हो राजहंस उड़ चला विहँसता ।
चकित रह गया भूमिभोग-लुब्धक कर मलता ।।

अधर पंख से हिले, हुआ नभ खग ओझल।
सरित सरित्पति मिली, रहे गिरि छलकाते जल॥
विधिवत् नृप की सकल क्रिया केकयी-कुँवर कर।
बना पुरुषपुर-तक्षशिला दो केन्द्र मनोहर॥
मद्राधिप को सौंप सचिव-पद सकल-व्यवस्था।
चले नमन कर गणप-सिन्धु,कर पार वितस्ता॥
सजे फूल से फूल, सजे अलकों से तरुवर।
मां का शुभ्र-सुभाल वितस्ता मांग मनोहर॥
लगा पुलिन-युग स्वयं विराजों श्री आसन पर।
रखा नाम श्रीनगर उसी का सिया-स्मरण कर॥
संध्या होते सैन्य चंद्रभागा से उतरी।
लगी तपी के तीर, भरत की शिविर-परिकरी॥
लख जाम्बूनद-सरिस सु-वर्ण, सरल नर-नारी।
संज्ञा पुर की सहज भरत ने जंबु विचारी॥
पावन-समतल-सुखद-स्वच्छ-सुस्थान निरख कर।
रघुपति-मंदिर भव्य रचा, हिय दिव्य-भाव भर॥
चले प्रात, मध्याह्न - पूर्व ही देखी रावी।
लव-कुश आकर मिले, राष्ट्र के रघुपति भावी॥
मिलीं देश की युगल-विजयवाहिनी बांह - भर।
'राम-भरत जयकार' भरे, भूभंडल-अंबर॥
दे आशिष कुल-कुशल जान कर, अति प्रमुदित चित।
इरावती के तीर किया लवपुर संस्थापित॥
करता शुभ - संस्कार देश का, चला धर्म-दल।
लखा इरा के पार, पुरातन वालमीकि - स्थल॥
राम-कीर्ति सा भव्य, स्वर्णमय शिखर चढ़ाया।
अमृत-सरोवर निरख, 'अमृतसर' रुचिर बसाया॥
व्यास-पार, कर्पूरस्थल की मंजु सृष्टि की।
देवी जालन्धरी, शंभु की दीप्त-दृष्टि की॥

बहुविधि पूज, ससैन्य शतद्रु पार कर पल में ।
पहुँचे गुह - जन्मस्थल सारकंड - जंगल में ।।
"ज्यों जीते सुर, असुर-निकर सेनप कुमार पा ।
त्यों जीते हम पवनपुत्र का दृढ़ाधार पा ।।
उन्हीं अंजनीलाल राम-प्रिय के सुनाम पर ।
कहलायेगा सदा कपिस्थल यह पुर सुन्दर ।।"
देख दूर से ध्वजा रँगोलीं रचतीं अंबर ।
"यह दिलीपपुर, पितृस्वसा कालिंदी-तट पर ।।
विधि का बोधागार, शतक्रतु का यज्ञस्थल ।
इन्द्रप्रस्थ यह, अरावली का स्वर्णिम-कुंडल ।।
वहीं खांडवारण्य पूज नंदिनी-नंदिनी ।
साम्राज्ञी की मुक्त हुई शुभ - कुक्षि वंदिनी ।।
वल्कल धारण किये, बने नृप चरवाहे यति ।
की प्रमुदित-चित देह समर्पित, मृगपति शिव-प्रति ।।
यह रघुकुल के आदिपुरुष रघु का दिलीपपुर ।
खुर-खुर थल, निज-तीर्थ बनाकर बैठे सुर-सुर ।।
सत्युग केन्द्र प्रयाग, अवध त्रेता का संबल ।
द्वापर हस्तिग्राम, कलियुग इन्द्रप्रस्थ-स्थल ।।"
गर्भस्तुति कर, कवच-सरिस शंकर बैठाये ।
यमुना-जल सम जम्बु-नीलमणि छत्र चढ़ाये ।।
इन्द्रप्रस्थ की परिक्रमा कर, यमुना न्हाये ।
कहते 'जय रघुवीर' गोमती-तट पर आये ।।
हृदय हिलोरें उठीं, देखकर धवल - हिलोरे ।
धोए आयुध, पड़े सलिल सिंदूरी - डोरे ।।
लखे, "कपीश्वर ! लखे" भरत प्रमुदित हो बोले ।
"अवध - पौर ज्यों वीर-लखन के डले हिंडोले ।।"
दे लक्ष्मणपुर नाम, बजते शंख - दुंदभी ।
चले गोमती नहा, शौनकों को दे सुरभी ।।

ज्यों-ज्यों आते अवध पास, त्यों-त्यों गति बढ़ती ।
कनकभवन की दिखी पताका सहसा उड़ती ।।
भूमि बज उठे वाद्य, गगन गूंजे जयकारे ।
सुमन-गुच्छ वरवीर सींक - शायक श्रृंगारे ।।
लगे सुमन-घन, भवन-भवन के गगन बरसने ।
"आये-आये भरत" लगे हर्षित जन कहने ।।
गिरा राम-पदपीठ सामने एक पुरुप-शर ।
हृदय लगाया रामचन्द्र ने स्वयं उठाकर ।।
"अरे लखन ! रिपुदमन ! भरत आ गया राम का ।
करो शिखर चढ़ घोष, सजे वपु धाम-धाम का ।।
घर-घर वंदनवार, मांगलिक-कलश सजाओ ।
अटा-अटा पर ध्वजा, दीपमालिका जगाओ ।।
वीथि-वीथि अरगजा, सुपथ-पथ छिड़को चंदन ।
दो फुलवारीं लगा, लजाये सखवन-नंदन ।।
अन्त:पुर में कहो, सजें श्रृंगार कामिनी ।
लिये दामिनी-दमक आरती-थाल भामिनी ।।
चलें तुरत प्रासाद-पौर पर मंगल गातीं ।
लगे कि अमरावतीं उतर पुर में इतरातीं ।।
गुरु-दम्पति, शत्रुघ्न! तुरत ला रथ सज्जित कर ।
बिछें सेतु पर सेतु त्वरित पुर-परिखाओं पर ।।
अरे ! बावला हुआ, कार्य ही भूला पहला ।
लखन ! सौध कह, सुवधु मांडवी को दें नहला ।।
अनुष्ठान की क्रिया पूर्ण द्विजदेव करादें ।
सकल शेष शाकल्य, एक ही बार चढ़ादें ।।"
पा लक्ष्मण-निर्देश, दासियां दसियों धाईं ।
ले आचार्य-निदेश, मांडवी अन्दर आईं ।।
लगीं जटा-अंटियाँ कीर्ति - उर्मिल सुलझाने ।
चलीं सुगंधित-द्रव्य बहू प्रत्यंग लगाने ।।

भर-भर कर फिर कलश, स्वयं ही लगीं न्हिलाने ।
नव भूषण-पट लगीं प्रौढ़-वृद्धा पहनाने ।।
धार स्वल्प-शृंगार, शीश सिंदूर सजाकर ।
खड़ी मांडवी हुई, अदिति का तेज लजाकर ।।
शक्ति-प्रिया ने कहा "और कुछ धारो रानी ।"
सकुचाई, लख पलक-अपांग ललकता पानी ।।
गीतों के स्वर किन्तु विपल में तरल हो गये ।
"मेरा लौटा प्राण, तुम्हारे कंठ सो गये ।।"
सुन रघुपति की गिरा, लगीं किंकरियां गाने ।
स्वर में स्वर वधु शनैः-शनैः फिर लगीं मिलाने ।।
बहिनें तीनों किंतु चलीं दृग-माल झुकाये ।
इस मंगल-वय स्यात् सीय भू से आ जाये ।।
भ्राता-शास्तावर्ग सहित बहु वाहन चढ़-चढ़ ।
भरत-स्नेह में, योजन भर रघुवर आये बढ़ ।।
दिखी भरत की ध्वजा जानकीपति को ज्यों ही ।
बोले परमाधीर हुए 'हांको रे!' त्यों ही ।।
आते प्रभु स्वयमेव, भरत ने ज्यों अवलोके ।
धनु-धर कूदे भूमि, सूत रथ जब तक रोके ।।
रुका राजराजेश - राजरथ, उतरे रघुवर ।
करते भूमि-प्रणाम, भरत को लिया भुजा भर ।।
कंठ लगा रह गये, भूलकर सुधि तन-मन की ।
गूंज उठीं जय घोषमाल दिशि-दिशि जन-जन की ।।
मिले लखन-रिपुदमन पुनः प्रभु बोले "सकुशल ।"
"मंगलमय ! तव कृपा, सकल मंगल ही मंगल ।।"
तक्षक-पुष्कल गिरे राम-चरणों में आकर ।
दे आशिष, शिर सूंघ, हृदय बहु-बार लगाकर ।।
कहा 'कहां' ज्यों राम, कीश त्यों दिखे पदों पर ।
बोले हँस रघुनाथ "धन्य कौतुकी कपीश्वर" ।।

लगा हृदय हनुमान, कुशल पूँछी नयनों में ।
नयनों में ही कही, सुनी 'जय' ही वचनों में ।।
स्यंदन चढ़, ले सैन्य-वंदना कर अभिनंदन ।
चले विजय-वाहिनी लिये पुर रघुकुल-चंदन ।।
करने लगीं शतघ्नि, भित्तियों से जय-गर्जन ।
करने लगीं सुगंध गगन - गोलों से नर्तन ।।
प्रमुख-पौर पर गुरु-वसिष्ठ का अभिवंदन कर ।
भारी भीड़ विलोक, चले पैदल ही रघुवर ।।
बाजे बजते इधर, उधर उठते जयकारे ।
गातीं पुर-वधु अटा, भूमि भूसुर उच्चारे ।।
ज्यों ऊपर से सुमन एक ही साथ बरसते ।
बीच-बीच में उछल, फुहारें झेल खेलते ।।
जलावेग, मारुत-प्रवेग, फूलों की छतरीं ।
तनतीं, कलिका कलित बिखरतीं निखरीं-निखरीं ।।
त्यों शूराग्रणि संत-भरत के विजयोत्सव पर ।
करते कृत्रिम तुमुल-प्रदर्शन वर्षा-ऋतुवर ।।
मन ही मन कर दर्श, शरद्-उष्मक मुस्काते ।
जन संकुल घुट, निकल, चाव से फिर घुस जाते ।।
शनैः-शनैः चल-समारोह आया प्रशस्त-पथ ।
लगतीं सरकीं हाट, देख सम्मुख बढ़ता रथ ।।
अटी अटायें हयन-वसन ज्यों फर-फर उड़ते ।
रत्न-विभूषण, रूप-दीप, छवि द्विगुणित करते ।।
नभ के दिनकर छिपे, हृदय के उमगे दिनकर ।
पुत्तलिका अलि-अवलि खेलतीं दृग-इंदीवर ।।
नथ के मुक्तास्तबक हंस से पंख पसारे ।
अलक निशा, सिंदूर सांझ, 'प्रत्यक्ष पुकारे ।।
किंतु खिले रक्तारविंद-दल अधर मनोहर ।
ले शतदल रदमाल उठे अठखेलि कलित कर ।।

जिसने सिय-अनुराग त्याग रँग-राग दिया था ।
अंतर-मन से धार स्वयं वैराग लिया था ।।
वह वैरागी अवध, कर उठा प्रमुदित नर्तन ।
अनुरागी बन गया, भरत-वैरागी दर्शन ।।
गूँजे अमित उमंग भरे किंकरियों के स्वर ।
"महाराज-युवराज पधारे राज-द्वार पर ।।"
देखा बालधि उठी, लदे पुष्पों से कपिवर ।
आगे आते मुदित, कंध पर कनक-गदा धर ।।
घेरे छहों कुमार, तक्ष-पुष्कल को चलते ।
विह्वल हुए वसिष्ठ, स्नेह से पीठ थपकते ।।
सेनापति-सामंत-सचिव परिकर से घिर कर ।
दे गल-बांही भरतलाल के हँसते रघुवर ।।
एक-एक निज वदन निरखते, हिय दर्पण में ।
आते निज प्रतिबिंब निहार मुदित-मन मन में ।।
थाम मांडवी-हाथ, पुरोहित-बाला आईं ।
चतुर्वर्ण कन्यका भरे मंगल - घट धाईं ।।
कर वधुयें कुछ ओट, सुखद छवि लगीं निरखने ।
पिकबयनी कामिनीव्यूह - स्वर लगे उभरने ।।
दिया आरती-थाल उर्मिला ने आगे कर ।
बढ़ा कुमारों सहित भरत को, सरके रघुवर ।।
ऋचा-गान आचार्य-प्रिया कर, कर नीराजन ।
तीर्थ-तीर्थ का सलिल शीश पर छिड़का पावन ।।
दिव्या देवी देख, छुए पग, पाये श्री-वर ।
लिया कीर्ति ने थाल, कुँवर दुलराये हँसकर ।।
अपलक प्रियतम-प्रिया मिले पलकों से पल भर ।
लगा, भेंटते परम-योगिनी से योगीश्वर ।।
छूते चरण कुमार, हृदय से ललक लगाये ।
मानो ऊषर-हृदय तरल - जलधर घिर आये ।।

कर न्यौछावर रामचन्द्र ने रत्न बिखेरे ।
"पाया मैंने भरत, मांडवी ! सत्व्रत तेरे ।।"
दुलरातीं श्रुतिकीर्ति-ऊर्मिला कुँवर मनोहर ।
चलीं मंगलाचार सकल करती सुमोद भर ।।
गुरु-पत्नी के साथ मांडवी वधुओं से घिर ।
चलीं, चले प्रभु विदा सभी को करते फिर-फिर ।।
भवन पधारे लिये भ्रातृगण-मारुतनंदन ।
बोले "मज्जन करो, करें फिर मिलकर भोजन ।।"
भरत नहाने चले, साथ रघुनाथ पधारे ।
तक्षक-पुष्कल बुला वस्त्र स्वयमेव उतारे ।।
क्षत-विक्षत तन देख जघन में लगा गहन-व्रण ।
छल-छल छलके अरुण-विलोचन प्रभु के जल-कण ।।
बोले "समझा धर्म-विरुद्ध किया खल ने रण ।
करें सुमार्जन भिषक, लखन ! दे तुरत निमंत्रण ।।"
"नहीं-नहीं, भर गया घाव अब तनिक न पीड़ा ।
कर आया भय त्याग, मुदित गंगा में क्रीड़ा ।।
चिन्ह शेष हैं, मिटें, मिटें ना मिटें, हानि क्या ।
मिटा सकूंगा किंतु आपकी चित्त-ग्लानि क्या ।।
यही सोच है" "सोच व्यर्थ है" हँसकर लक्ष्मण ।
बोले "हर ले समय भले ही सब व्रण, लक्षण ।।
किंतु सकेगा भूल न प्रभु का हृदय एक क्षण ।
अपने भूषण, या कि विदूषण हैं ये रण-व्रण ।।
"दूषण क्यों ये मंजु हमारे कीर्ति-आभरण ।
सेवक-स्मृति प्रभु-हृदय सुरक्षित रखते क्षण-क्षण ।।"
शत्रुदमन के वचन श्रवणकर, साश्रु विलोचन ।
बोले केकयजयी "यही तो प्रभु का प्रभुपन ।।
जिसने हमें अनाथ न होने दिया निमिष-भर ।
लोक-छत्र, परलोक-ढाल, रघुपति करुणाकर ।।"

भींगे भूरे केश बिना जल डाले कपि के ।
"अरे ! नहाओ शीघ्र" शब्द सुनके रघुपति के ।।

दोहा

मज्जन कर आये सकल, कुलदेवी-सुनिकेत ।
लिये द्विजों से फूल-फल, आशीर्वाद समेत ।।

रोला

यज्ञ-नारियल लिया दुकूल पसार भरत ने ।
किये तृप्त द्विजदान-दक्षिणा दे रघुवर ने ।।
प्रभु बोले "अब करो सभी जन भोजन जाकर ।
कहा भरत ने "नहीं चलेंगे आप, कृपाकर ।।"
"भरत ! तवेच्छा सदा, राम के व्रत से ऊपर ।
रही, रहेगी सदा, चलो, अब चलो बंधुवर ।।"
आये पाकागार, सुना प्रभु स्वयं पधारे ।
तुरन्त व्रती मांडवी चली व्रत-श्रांति बिसारे ।।
हटा चरी-चरं, लगीं सजाने वधुयें भोजन ।
छम-छम करतीं, ललित ललाटों तक अवगुंठन ।।
नमित-नम्र दृग तनिक-तनिक तिरछे-तिरछे कर ।
लगीं देखने, भोग लगाते कैसे रघुवर ।।
आठों वधुयें कनक-भवन में जब से आईं ।
तब से लगता थाल श्वशुर का देख न पाईं ।।
केवल कुछ फल, वृषल एक वेला ले जाते ।
उसमें से भी लौट, अधिकतर नित्प्रति आते ।।
कैसे खाते, स्नान-शयन कब कैसे करते ।
कभी न जानीं, चित्त-कल्पना करते रहते ।।

जितने देखे-सुने, सभा ही वातायन से ।
अधिक न पाईं जान, जानकर भी पतिजन से ।।
पूंछा जब-जब, स्वांस खींच कर सास रह गईं ।
रिसतीं-रिसतीं पलक, सूत्र से कभी कह गईं ।।
जोड़ा करतीं, किसी वृद्ध-दासी मिल कर ।
बात सुनीं कुछ किसी-किसी से या कुछ नैहर ।।
छटे-छमासे सास कभी कोई कुछ कहती ।
बनी प्रहर-भर शिला, स्वयं फिर बैठी रहती ।।
ये रहस्यमय श्वसुर, लोकनायक-राजेश्वर ।
जिनको कहते संत मुदित चित हो, परमेश्वर ।।
क्या, किससे, किस भांति कहेंगे, कैसे-कैसे ।
बढ़ा कौतुहल और, देखतीं मां हम जैसे ।।"
कभी स्फूर्ति से, कभी ठिठक कर थाल लगातीं ।
पूंछ नयन फिर नयन पूंछती, नयन जगाती ।।
फिर नयनों को भेज पृष्ट-दिशि नयन मंगाती ।
मना-मना कर नयन, मांडवी थाल लगाती ।।
देखी कृश मांडवी खड़ी, बोले करुणाकर ।
"बहू ! बड़ी-मां खड़ी, बिठाओ आसन लाकर ।।"
आसन लाईं कई एक ही साथ उठा कर ।
बैठी कर कुछ ओट मांडवी भूमि, हटा कर ।।
पा इंगित उर्मिला-कीर्ति थालियां लगाकर ।
देतीं जातीं, ललक-ललक वधु रखतीं जाकर ।।
"बहू ! तुम्हारी थकीं सास, मत और थकाओ ।
तुम सब, सब विधि कुशल, इन्हें सादर बैठाओ ।।"
बैठीं सुन प्रभु-गिरा, पुनः प्रभु बोले हँसकर ।
"तीनों मांओं-सरिस लग रही तीनों सुन्दर ।।
बहुत दिनों में भरत! दृश्य यह सम्मुख आया ।
पितुवर-पुण्य-प्रताप, पूर्णिमा सा पुर छाया ।।

भरत तुम्हारा पौत्र देख-लूं, उर-अभिलाषा ।"
कहा मांडवी श्रवण, लषन बोले "पूर्णाशा ।।"
वधु-सुत-सकुच विलोक, मंत्र बोले राजेश्वर ।
भोग लगाने लगे, पितर-सुर-भाग पृथक कर।।
चमस - कौलियां थाल-थाल में लगे खनकने ।
भरीं चाव से लगीं सु-वधु रुनझुन कर फिरने ।।
थाली-थाली, स्वयं 'अलम्' प्रभु कहते, लखते ।
इन्हें परोसो, उन्हें परोसो, यह, वह कहते ।।
"अरे ! युवक तुम, लगे अभी से 'ना-ना' करनें ।
क्या होगा, यदि पुनः लगा शैलूष बिफरने ।।"
पुष्कल बोला "देव ! आपकी कृपा-दृष्टि से ।
होते आये, हटे, हटेंगे पुनः सृष्टि से ।।
जिनके रघुपति स्वामि, कपीश्वर परम सहारे ।
उनके हित लघु - कीट, लवण-शैलूष बिचारे ।।
सरित-तीर तरु आज हरे फहरे, कल हहरे ।
किसी लहर में लहर, भँवर लहरे फिर लहरे ।।"
"पुष्कल अपना भरत ! हुआ यह पूरा पंडित ।
युग-युग निश्चित श्रीरघुवंश-भविष्य अखंडित ।।"
रघुपति ने जल पिया, रुके सबके रुकते कर ।
उठे, किये कर शुद्ध, पान ले आये अनुचर ।।
बोले चलते हुए राम "सब कर लें भोजन ।
आओ मांडवि सुवधु ! लिये वधु कनक-निकेतन ।।"
रथ चढ़ राम स-बंधु, सैन्य-शिविरों में आये ।
लख सम्राटागमन पौरजन शंख बजाये ।।
जब तक सैनिक उठें, राम जा पहुँचे अंदर ।
"बैठो-बैठो आप श्रमित, विश्राम रहे कर ।।
शेष करेंगे सभी सभा-मंडप चर्चा कल ।
कहो, कर चुका स्नान-भोजनादिक प्रिय-रघुदल ।।

भिषक-चिकित्सक आदि दे गये औषधि समुचित ।"
"हुआ देव ! सब हुआ, सभी हम सब-विधि प्रमुदित ॥"
मिले सभी से राम, गँवा सब श्रम, हर्षाये ।
अभिनंदन ले, चले, अश्व-गजशाला आये ॥
देख व्यवस्था, भवन चले संतुष्ट खरारी ।
कहा "करो अब शयन, श्रमित अति तुम सुकुमारी ॥
कुछ करनी हैं बात, करेंगे और किसी दिन ।"
चलीं नमन कर सकल, विराजे प्रभु श्यामाजिन ॥
"भरत ! लखन! शत्रुघ्न ! श्रमित तुम, श्रमित तनुज-गण ।
अर्ध-निशा ढल रही, करो विश्राम सभी जन ॥"
अभिनंदन कर, पा निदेश सब चले निकेतन ।
पटुका-मुकुट उतार, पुनः बैठे रघुनंदन ॥

दोहा

बिछा भूमि कुश-सांथरी, बना भुजा-उपधान ।
मन में कर सीता - स्मरण, लेटे नृपति महान ॥

सोरठा

प्रभु प्रसन्न मन जान, लगे चाँपने कपि चरण ।
"कहो विदुष हनुमान! आदि-हेतु इस पतन का ॥"

रोला

बोले कपि "यों देव ! न अविदित तनिक आपसे ।
पूंछ रहे जिस हेतु, तथ्य वह सुनें, दास से ॥
विमल - वंश गंधर्व, सुगायन-वादन-तत्पर ।
शारीरिक-सौन्दर्य, भोग-वैभव सब घर-घर ॥
ललित-कला लालित्य, स्वयं ही वैर-विभंजन ।
चला शांत, कुछ पृथक-मिला, युग से जन-जीवन ॥

लख दशशिर-आतंक, विभीषण को सरमा दी ।
सुता-दान के पुण्य, स्वशासन को स्थिरता दी ।।
जिस क्षण से वह अभय हुआ सुर-असुर दलों से ।
भोग लालसा बढ़ी, चित्त में उन्हीं पलों से ।।
बना कुष्ट की खाज, अमित उपहार-प्राप्त धन ।
शेष न्यूनता हुई पूर्ण, कर लंका-दर्शन ।।
सामूहिक-व्यभिचार मुक्त भोगोपभोग लख ।
फिर निज छवि-धन-क्षेत्र, असंभव सहज योग लख ।।
करता अमित विचार, लौट कर ज्यों ही आया ।
शनैः-शनैः कर सकल, लंक का स्वांग रचाया ।।
गायन-वादन-नृत्य-नाट्य की नित मंडलियां ।
करने दिन की निशा, निशा की भोरावलियां ।।
लगीं, हो गईं छिन्न-भिन्न चर्यायें सारी ।
घिरे घोर आलस्य, दिध्यगायन नर-नारी ।।
उतरी औषधि-रूप वारुणी, व्यसन बनी फिर ।
एक-एक कर सकल-दोष-दल गये सकल घिर ।।
उनका रूप-विराट बना खल, गायक कल का ।
यति-विहीन संगीत, तमिस्रा - वीणा छलका ।।
डूबा केकय-देश, युधाजित रोक न पाये ।
अंतिम-क्षण भग्नाश, घात कर सुर-पुर धाये ।।
बना क्षयानल घोर, प्रमादीपन अर्चक का ।
देखा अंतक-नृत्य क्रूर, पूजन-दीपक का ।।
आंचल से लग देह, देह से सदन, देश में ।
लगा पुनः विकराल-वेष संस्कृति - सुवेष में ।।
गँवा नासिका विगतनासिकी ज्ञाति बढ़ाते ।
कहते ज्यों दे नाक मूढ़, प्रभु-दर्शन पाते ।।
रक्तबीज-सम बढ़ा दिवस-निशि त्यों खल-मंडल ।
भरत-खड्ग कालिका-पात्र, प्रभु ! तव रोषानल ।।

यद्यपि खपा कुकर्म स्वयं के, तनिक न संशय ।
सावधान हों किंतु, उपस्थित हो न पुनः भय ।।
निशा-जागरण हानि जान कर ही ऋषि-जन ने ।
की प्रस्तुत आचार-संहिता, मन मथ अपने ।।
प्रातकाल की वायु, स्वास्थ्य-प्रद यद्यपि निश्चित् ।
भरती चित में श्रेष्ठ-सत्त्वभावना अपरिमित ।।
रात्रि-हानि लख, उचित तार-संध्या ठहराई ।
शीघ्र शयन कर उठो, सत्यता सम्मुख आई ।।
जागेंगे सत्संग स्वल्प, रसरंग अनेकों ।
छलकेगा शैलूष - रंग, फिर रंग अनेकों ।।
यद्यपि अपने यहां, समस्या आज न ऐसी ।
किंतु भविष्यत्-गर्भ, न जाने संतति कैसी ।।
अतः धर्म-मर्याद, तनिक ऐसी कस डालें ।
बनें न पवि-क्षुर, चक्र-सुदर्शन सी वृष-ढालें ।।"

सोरठा

हनुमत-अभिमत जान, प्रभु बोले "कपि! सत्य हैं ।"
कर वंदन हनुमान, चले राम-निर्देश पा ।।
पुनः सोचने राम—लगे परिस्थिति पूर्णतः ।
रघुपति करुणाधाम, जाने कब सोये, उठे ।।
धन्य-धन्य मम देश, भारत ! तव सौभाग्य अति ।
धार सगुण शुभ-वेष, करते चिन्तन स्वयं हरि ।।

चतुर्दश-भुवन

मंगलाचरण

श्रीरामस्तवन

आकारहीन सा चित्रकार, सर्वथा शून्य सा चित्र-फलक ।
किसकी छवि क्या तूलिका रंग, पर रँगता ही जाता अपलक ।।
वह रंग जिसे संवर्त-सृष्टि, श्रुति-स्मृति कहतीं 'अति प्रिय-प्रिय-प्रिय' ।
कैसा विचित्र-निरुपम-निरीह, गुरु क्रिया-कलापों का निष्क्रिय ।।
जग कहता जिसको निरंकार, ओंकार-प्रणव-अक्षराकार ।
दिखलाता अद्‌भुत-चमत्कार, वह स्ववश भक्ति-वश शुभाकार ।।
श्यामल, पीला-झगुल धारे, घुटनों के बल मुड़ मुस्काता ।
वह दशरथ-अजिर-विहारी शिशु, मम हिय-विषयों का विषय बने ।।

"बोलो पलाश ! कदली ! करील! हिंताल ! तमाल! ताल! पीपल ।
वट पंचवटी के खगो ! मृगो ! गौतमी-गंग के निर्मल जल ।।
ओ मौन दिशाओ ! धरणीतल ! ओ सह्यशैल-माला के दल ।
क्या देखी मेरी वैदेही, मैं पूंछ रहा विरही-निर्बल ।।"
जग मौन, महामाया मन के—मथने को माया हुई मुखर ।
अंतर बोला 'जय परमेश्वर', अंतर बोला 'ये परमेश्वर' ।।
कण-कण से क्षण में सिय निकलीं, तिय-छवि से हुई विमोहित तिय ।
वे मायापति अंतर्यामी, मम अहंकार को सद्‌गति दें ।।

"मेरी शबरी का कहो ! कहो! किस वन के किस कण में आश्रम ।"
सुन प्रेम भरी आतुर-वाणी, मुनियों का बिखरा सिद्धि-अहम् ॥
रह गये सजे सँवरे आश्रम, रह गये नवाजिन कटि लिपटे ।
रह गये जटा-मंडल लटके, रह गये प्रदर्शन सब सिमटे ॥
धनु कहीं, कहीं पट, कहीं तूण, बस "कहां-कहां" ध्वनि बार-बार ।
रह गई चकित शबरी विलोक, साकार श्रुतीश्वर कर पसार ॥
क्षुधितों से बैठे सकुच त्याग, जो यज्ञपुरुष दो-बेरों हित ।
वे सीतानाथ पतितपावन, मम चित्त-वृत्ति के वृत्त बनें ॥

हनुमान-सरिस विश्वासपात्र—ला रहे, छिपा फिर भी गिरि पर ।
यद्यपि पहले ही जान लिया, यह सब विधि दीन-हीन-कायर ॥
की किंतु मित्रता अग्नि-साक्षि, भुज भर बैठाया अर्धासन ।
दी सफल परीक्षा ताल-भेद, फिर भी न हुआ निश्शंकित मन ॥
बरबस भेजा, भग्नाश फिरा, सह शाप, किया नृप विपिन-वास ।
पा भोग, भुला बैठा निज प्रण, तब रोष दिखाया लघु, स-हास ॥
ऐसे सुकंठ को वहन किया, दे सखाभाव वात्सल्य भरा ।
वे धूर्त-बालि-पशु-व्याध राम, मम आत्मा के परमात्मा हों ॥

कपि का शुभागमन दिखा नहीं, पर दिखा प्रतीची चन्द्र-गमन ।
जागृति-भूषण लक्ष्मण सव्रण, देखे निजांक में गत - चेतन ॥
प्राकृत नर-से कर उठे रुदन, भूले क्षण भर को प्रिया-हरण ।
आई न अवध-वैभव की स्मृति, पितु-मातु-भ्रात आये न स्मरण ॥
चित से वह प्रण भी उतर गया, जो किया, उठा भुज दंडक-वन ।
नयनों से एक व्यथा सरसी, अधरों पर उभरा एक वचन ॥
"हा मित्र विभीषण ! तव शिर पर—ये दृग न देख पाये किरीट ।"
वे शरणागत-पालक कृपालु, मन मन-कानन के पथिक बनें ॥

रण का यौवन था निरावरण, साकार प्रलय थीं नाच रहीं ।
पर रावण की बीसों - आंखें, थीं खोज किसी को रहीं कहीं ।।
सहसा देखा, बिन देखे ही—दी छोड़ प्राणघातिनी सेल ।
वह सेल, सेल क्या, खेल-खेल ज्यों छुटी काल-कर की गुलेल ।।
त्रिभुवन का कण-कण धधक उठा, कह उठा विभीषण "त्राहि-त्राहि ।
रघुवंशनाथ ! हरि ! रक्ष-रक्ष, राजाधिराज प्रभु ! पाहि-पाहि ।।"
बन गये श्रवण ही सहस्राक्ष, हिय पर हिय-भक्षक वार लिया ।
वे करुणा-वरुणालय दयालु, मम जीवन-संजीवनी बनें ।।

जो मुखर केकयी कर न सके, जो दृग न भरत से मिला सके ।
जो मारुति-मौर न सजा सके, केवट से रूप न छिपा सके ।।
जो पितु की ग्लानि न मिटा सके, बेरों का स्वाद न भुला सके ।
जो सिय की कंचन-प्रतिमा से, जीवन की गंध न छुग्रा सके ।।
दे सके देह का ज्ञान न जो, ज्ञानी विदेह से परिजन को ।
निज धाम-गमन से रोक सके—धनु-भूषित जो न दशानन को ।।
जिन जगदीश्वर से जगती की—मर्यादा संरक्षण पाईं ।'
वे मर्यादा-पुरुषोत्तम हरि, मम सकल विवशता विवश करें ।।

जिनका माधुर्य मनोहर लख, मुनियों के मन कामना भरे ।
जिनका संवर्तक-क्रोध देख, बोले कंपित दधि 'हरे ! हरे' ।।
जिनका विराग लख, कनक-भवन पड़ गये श्रयोध्या के श्यामल ।
जिनका सु-राग लख, दंडक के कंटक - उद्दंड बने नव-दल ।।
जिनकी करुणा से कठिन-शिला, पावन मुनि-तीय बनी पल में ।
जिनकी वत्सलता से कपि-कुल, गणना पाये रणपटु-गण में ।।
जिनके चरित्र का श्राश्रय पा, संगठित हुए गुण-गण श्रनाथ ।
उन रघुनंदन की सरस-कथा, मम जन्म-जन्म का कार्य बने ।।

११३९

सोरठा

बैठे रघुपति राम, कनकभवन-आंगन मुदित ।
अष्ट सुपुत्र ललाम, मारुति-अनुज-कुटुंब युत ।।
करता बालविनोद, पाणि-जानु-बल किलकता ।
कुश-शिशु अतिथि समोद, बैठा आकर गोद में ।।

रोला

पीत-झगुलिया ललित, दँतुलियां दो-दो निकलीं ।
अलकें कुंचित कलित, अछूतीं मुख पर मचलीं ।।
परम सरल मुस्कान, कान तक खिले विलोचन ।
भाल दिठौना श्याम, त्रिरेख खिंचा गोरोचन ।।
कृष्ण-कोष-गुण गुंथा कंठ कठुला अति सुन्दर ।
नवमणि कंचन-जटित व्याघ्र-कररुह रवि-हिमकर ।।
क्षुद्रघंटिका लंक, सुपद मंजीर सलौने ।
गज-कच-कंकण-वलय सुकोमल अंग अलौने ।।
नववासन्ती - बौर, हरित श्रावणी - गाभ सा ।
चंचलता की मूर्ति, सुमंजुल कंचनाभ सा ।।
शिव-शेखर-शशि रूप सु-शिशु का ज्यों घर मनहर ।
कनकभवन-चौसार चाव से उतरा हँसकर ।।
क्रिया अँगुलियां थमा, राम ने खड़ा जघन पर ।
कुश-शैशव अनलखा, झांकता दिखा वदन पर ।।
स्मृति पर्वोदधि-ज्वार निमिष भर खोये रघुवर ।
लौटा अतिथि हठात्, हाथ से हाथ छुड़ाकर ।।
हृदय-रत्न में हृदय-रत्न लख निज परछांईं ।
लगा खेलने, प्रभु बोले "कह, आओ भाई ।।"
हँसे खिलखिला अनुज, पुत्र आठों सकुचाये ।
मिला परस्पर नयन, रहीं वधु शीश झुकाये ।।

श्रुति-उर्मिल-मांडवी रह गईं स्वांस खींचकर ।
प्रभु बोले "पगलियो! हँसो, शिशु को लख क्षण भर ।।
अब हैं वे क्षण पास, मिलेगी जब वह मुझसे ।
सत्य कहूँगा दिया न हँसने तुमने, उससे ।।"
कुश बोला "पितुदेव ! नहीं, ये वचन न बोलो ।
बने प्रलय तक छत्र, हमारे मस्तक डोलो ।।
आप मातु-गुरु-तात तात ! सर्वस्व हमारे ।
सदा निहारें रूप आप में सकल, निहारे ।।"

दोहा

बोला प्रतिहारी तभी, आकर "हे जगपाल ।
खड़े द्वार पर एक मुनि, तपनिधि तेज विशाल ।।"
देकर कपि के कर अतिथि, उठे तुरत श्रीराम ।
लाये मुनि को भवन में, कर प्रणाम सुखधाम ।।

रोला

प्रभु बोले "हे महापुरुष ! निर्देश दीजिये ।
राम स्वानुगत वचन-कर्म से जान लीजिये ।।"
मुनि बोले "एकांत जगतपति ! परमावश्यक ।
वह प्रबंध हो, पड़े न वार्ता अन्य-श्रवण तक ।।
किसी प्रबल से प्रबल हेतु, प्यारे से प्यारा ।
करदे यदि विक्षेप, तुरत हो वध्य तुम्हारा ।।"
आशय जान समस्त, फिरे ज्यों प्रभु के लोचन ।
दिखे पृष्ट सन्नद्ध लखन कर लिये शरासन ।।
"होगा यह ही नाथ! "तुरत ही कहकर लक्ष्मण ।
बैठे पौर-सुपीठि, विदा कर पौरिक तत्क्षण ।।

प्रभु ने देखा, भ्रकुटि-चिकुर-ओहार झांकते ।
मुनि-दृग निज अस्तित्व सुरक्षा-हेतु कांपते ।।
होते-होते कुटिल, सरल से क्षण-क्षण बनते ।
संशय में विश्वास ढूंढ़ते, चपल ठिठकते ।।
उठतीं पल-पल पलक, धरा में धँस-धँस जातीं ।
ज्यों न कथन-पथ गिरा, भाव-व्यूहों में पातीं ।।
बँध-बँध कर, कर बार-बार मस्तक पर जाते ।
फिर मल-मल कर आंख, जटा सुलझी उलझाते ।।

दोहा

मुनि को बारम्बार लख, अतिशय भाव-विमूढ़ ।
बोले सीतापति विहँस, सरल-भाव मृदु गूढ़ ।।

सोरठा

"देव! राम का वेष, जगत-कार्य निश्शेष कर ।
गमन-पुरोगम शेष, बैठा हुआ विचारता ।।

रोला

क्यों मर्यादा-पुरुष बताता मुझको त्रिभुवन ।
अब तन देकर उसे सत्य दूंगा संरक्षण ।।
शिरोधार्य है आर्य ! कार्य निज करें असंशय ।
भोगों की ही भूख, काल से खाती है भय ।।
भोग चुका सब भोग, भोग अब मुझे भोगते ।
शयन-हेतु ये नयन, आपका अयन देखते ।।
करें अभय हो आप अभय मेरा आलिंगन ।
लगते तव दृग, प्रथम-दिवस के से श्री-लोचन ।।"
बोला तज छवि-छद्म, काल गिरकर चरणों में ।
"नयनों से वे लखे, राम थे जो नयनों में ।।

"देव ! विदा दें, देव करें तव स्वपुर-सुवंदन ।"
"नहीं-नहीं यों नहीं", विहँस बोले रघुनन्दन ।।
"निष्क्रिय की कृति मित्र ! रही है सदा अधूरी ।
लखते, होती स्वाश मात्र सक्रिय-जन पूरी ।।
लौटा अब तक साधु न रीता राम-द्वार से ।
चाहे जैसा वेष, रखा जिस भी प्रकार से ।।
बनी भिक्षुणी दाता बनकर जिसकी सिय वन ।
क्या बैठेगा राम, आज वह स्वगृह नतानन ।।"
इतने में आ गये, सुमित्रानन्दन अन्दर ।
बोले "प्रभु ! मुनिवर, दुर्वासा खड़े द्वार पर ।।
कहते हैं, 'हैं कहां, कार्य मम अभी राम से ।
दग्ध करूँगा राज्य-वंश अन्यथा शाप से" ।।
मिला काल से नयन, हँसे रघुनाथ, ठठाकर ।
विदा हुए मुनि ससंकोच, हो सु-सफल सादर ।।
आये रघुपति द्वार, किया दुर्वासा-पूजन ।
ऋषि बोले "रघुनाथ! आज मम व्रत-उद्यापन ।।
केवल तव अंगुष्ठ-अवट सुक्षीर पान कर ।
जाऊँगा तप-हेतु पुनः अवभृथस्नान कर ।।"
प्रभु ने लेकर पात्र, स्वयं कर सुरभी-दोहन ।
करा दिया विधि-सहित मुनीश्वर का उद्यापन ।।

दोहा

मुनि बोले "मैं मुदित हूँ, मांगो नृप! वरदान ।"
प्रभु बोले "संसार का, करो रुद्र ! कल्याण ।।"

रोला

'एवमवस्तु' कह चले गये मुनि जैसे आये ।
बैठे स्वासन राम मौन हो शीश झुकाये ।।

हुए तुरत करबद्ध उपस्थित सम्मुख लक्ष्मण ।
प्रभु चरणों में रखे मुकुट-तूणीर-शरासन ।।
बैठ जानु-बल कहा "नाथ ! चरणार्पित मस्तक ।
क्षमा करें अपराध हुए जो अगणित अब तक ।।
प्राणदण्ड राजाधिराज ! दें, दास उपस्थित ।"
लगा हृदय से लिये राम ने लखन तरल-चित ।।
आये लेकर वृषल तुरंत वशिष्ठ-पराशर ।
बोले भावी देख, सकल वृतान्त श्रवण कर ।।
"किसी भांति भी न्यून न वध से त्याग-निरादर ।
करें वही भूपाल ! लगे जो इनमें रुचिकर ।।"
बोले "जिसने सहे, विहँस मम हेतु प्रखर-शर ।
करूँ ईश से द्रोह, निरादर उस प्रिय का कर ।।
जो छांया सा फिरा, रात-दिन निर्जन-निर्जन ।
उसका वध तो दूर, कल्पना भी मन-दाहन ।।"

दोहा

लक्ष्मण बोले "नाथ ! दें, शुभाशीष-आदेश ।
ले तव शिशु-सेवक-अनुज, सीताम्बा-पथ-वेष ।।"

रोला

देख राम का मौन, भरा अन्तःपुर क्रंदन ।
"तजे भूप ने हाय ! सुवीर सुमित्रानन्दन ।।"
दावानल सा समाचार फैला पुर-भर में ।
महाशोक हो गया व्याप्त क्षण में घर-घर में ।।
परिक्रमा कर, नमन राम का बार-बार कर ।
रामानुज घन-मुक्त सूर्य से निकले बाहर ।।
चली चीर रनवास ऊर्मिला केश बिखेरे ।
"नहीं रहेंगे प्राण, त्याग प्रियचरण - बसेरे ।।

निकले पहले मौन, मौन रह गई अभागी ।
हो तव कर कर्पूर काल-मख तन, अनुरागी ।।"
वज्र-ज्वाल से झुलस गई ज्यों कल्पवल्लरी ।
गिरी लखन-पद त्यों सु-पौर उर्मिला सुन्दरी ।।
रख मस्तक पर हाथ, उठा कर बोले लक्ष्मण ।
"चलो प्रिये! सिय-स्वसे ! सीय-धीरज की छवि बन ।।"
प्रिय-दुकूल पुंछ, लगे उर्मिला-दृग यों निर्मल ।
हुए समुज्ज्वल ज्यों स्नेहाहुति पा यज्ञानल ।।
दौड़े अंगद-चित्र, देख पितुमातु - निर्गमन ।
"तज ये बाल अनाथ चले कैसे जग निर्जन ।।"
बोले रख तर्जनी अधर पर, दृग तरेर कर ।
"तुम नाथों के नाथ, नाथ रघुनाथ शीश पर ।।
तुम लक्ष्मण के अंश, न ऐसा फिर विचारना ।
प्रभु-चरणों को सदा स्व जननी-जनक जानना ।।"
प्रभु ने लक्ष्मण-पुत्र लगाये ललक हृदय से ।
ज्यों पतझर-नभ घिरा स्वल्प मधु जलद-प्रचय से ।।

दोहा

चले परम निश्चित हो, लक्ष्मण प्रिया-समेत ।
ज्यों स-साधना सिद्ध-वर, जाता सिद्धि-निकेत ।।

रोला

बोले रघुपति "भरत! लखन से कह दो जाकर ।
मिलता हूँ मैं तुरत, बंधु रे ! पथ में आकर ।।
पीछे चला सदैव, आज भी कुछ रुक जाये ।
लेकर मुझ को साथ मातु-पितु दर्शन पाये ।।
परलोकों की राह न जाये छोड़ अकेला ।
डस लेगी हिय, विरह व्याल की व्याली वेला ।।

छोड़ चला संसार सामने मेरा बालक ।
अब मैं रघुपति नहीं, सत्य रे ! रघुकुल-घालक ।।
आ आगे बढ़ भरत ! मुकुट यह शीश धारले ।
होती धरा अनाथ, बढ़ा कर हाथ थामले ।।
मुझे विदा दे, विदा मांगते प्राण देह से ।
कर न सकूँगा स्नेह-स्वांग, इस जगत-स्नेह से ।।"
ज्यों मस्तक से मुकुट राम ने स्वकर उतारा ।
लगीं गरजने भरत-लोचनों की जलधारा ।।
"जान गया प्रभु ! किया क्षमा अपराध न मेरा ।
राज-दंड पर इसी हेतु दे रहे बसेरा ।।
दो प्रिय-कुश को पिन्हा, नाथ ! यह मुकुट इसी क्षण।
तव अनुगामी सदा दास का तन-मन कण-कण ।।
लक्ष्मण-पथ का देव ! आप अनुसरण करेंगे ।
पथ-प्रक्षालक दास, प्रथम ही स्वाग्र लखेंगे ।।"

दोहा

ज्यों ही रघुपति की फिरी, शत्रुदमन-दिशि दृष्टि ।
भरे भाव बोले तुरत, "नाथ ! आप शिशु-सृष्टि ।।"

रोला

बोले सीतानाथ "विमान तुरंत मँगाओ ।
गुह-लंकेश-कपीश-वृद्ध ऋक्षेश बुलाओ ।।
कहो देश से, 'राम जगत यह कल छोड़ेगा ।
टूटा माया-सूत्र पूर्णतः कल तोड़ेगा' ।।
सूर्यमहालय-मध्य अष्ट - पीठिका लगाओ ।
तीर्थ-सलिल अभिषेक-साज अविराम सजाओ ।।
मज्जन पुत्रो ! करो, करो नागेश्वर-अर्चन ।
सकल सुसंयम-अनुष्ठान-व्रत-शंकरदर्शन ।।

वही शुद्ध-शुभ समय, गगन में जब श्रुति घहरे ।
वही मांगलिक-काल द्विजाशिष जब भू लहरे ।।
मान-चित्र भूमि का संजवन में फैला दो ।
सरल-पृथुल नव-रेख, प्रबल नव-परिधि बनादो ।।
बनें शंभु-निर्माल्य सरिस अनुलंघ्य परिधियां ।
सोच न पायें कुटिल-नेत्र लखने की विधियां ।।
कौस्तुभ-मणि गोलोक, कल्पतरु नंदनवन में ।
कामधेनु विधिधाम, मुदित मन नाम-स्मरण में ।।
भरत-लखन-रिपुदमन, राम-सौभाग्य धरा पर ।
एक साथ ही आज सुलभ दुर्लभ-दुर्लभतर ।।
ऐसे भ्राता नित्य न आया करते भूपर ।
बसते जग में जो कि चंप-वन के बन मधुकर ।।
देखो अविकल, विकल-सछल कल का कल आता ।
कलि-द्वापर का काल, प्रीति का ताल सुखाता ।।
आयेंगी बहु बाढ़, समय पा-पाकर अपना ।
अतः करो साकार, बांध-बंधन का सपना ।।
सन्तति-विग्रह-नींव प्रमाद सदा गुरुजन का ।
जिनमें ईश्वर-भीति न, प्रेम न सत्य स्वकुल का ।।
दे न राम को दोष भविष्यत्, करो कार्य वह ।
करो कार्य वह, रहे आर्य ही आर्यवर्त यह ।।"
भारत-भू की सचिव-जनों ने सुछवि पसारी ।
बार-बार विधि सविधि नृपति ने सकल निहारी ।।
चारों दिशि से किया प्रथमतः प्रथम-विभाजन ।
पुनः एक में किये विभाग उभय निर्धारण ।।

दोहा

एक-एक ऋषि मुख्यतः, धर्म-व्यवस्था हेतु ।
तीर्थ-पर्व निश्चित किये, शाश्वत्-संस्कृति-सेतु ।।

रोला

लेखेक्षक-लेखापालों के लखे विलेखन ।
सैन्य-ग्राय-राजस्व प्रभृति का किया आकलन ।।
दिये, समस्या देख विधानों को संशोधन ।
पहुँचे कोषागार लिये गुरु-सचिव-ग्रनुजजन ।।
विगत अर्ध-निशि नृपति मंत्रणागृह में ग्राये ।
कर बहु - भांति विमर्श, शेष सिद्धांत बनाये ।।
करा ग्रष्ट-षट् शासन-पत्रक की प्रतिलिपियां ।
पुनः कराईं. भरत-शत्रुसूदन की सहियां ।।
देख, लिखा निज-पाणि पुनः नृपवर रघुनदन ।
"किया किसी ने कभी कहीं यदि धर्म-उलंघन ।।
होकर भी वह सूर्य-वंश का ग्रंश, धरा पर ।
होगा भावी राहु-बालि-दशकंधर पामर ।।
बिना काल के काल करेगा उसका भक्षण ।
होगा वह भी वही, उसे जो देगा रक्षण ।।"
पत्रक प्रभु ने दिये अमात्यों को कर स्वाक्षर ।
रखे कनक-मणि - संपुटकों में नामांकित कर ।।
फिर प्रभु ने श्रुतिकीर्ति-मांडवी तुरत बुलाईं ।
लख व्याकुल-मन मौन-स्नेह से निकट बिठाईं ।।
बोले "ज्ञात समस्त तुम्हें, क्या शेष बताना ।
जो कहना सो कहो अन्य, मत हिय सकुचाना ।।"
बोलीं "बोलीं हम न ग्राज तक सम्मुख पड़कर ।
आज बचा क्या शेष, कहें हम जो राजेश्वर ।।
लगता है संसार भार, ये देह प्रेत सीं ।
बचीं हाय ! हम शुष्क-सरित की ग्रधम-रेत सीं ।।
प्रातःकाल प्रयाण न यदि होता निर्धारित ।
तो कर देतीं सत्य ज्योति में ज्योति समाहित ।।

बने दोष अवधेश ! अमित जाने-अनजाने ।
करें क्षमा, कर-बद्ध निवेदन इतनी माने ।।"
सिसक उठीं, कर रखा शीश पर, ग्लानि-हरण कर ।
कहा, "करो निज-काज, अष्ट-वधु भेजो सत्वर ।।"
चलीं तुरत ही; कुमुदवती-कंजाक्षी-चपला ।
मदनसुन्दरी-सुमति - कांति - कंजाक्षी-अचला ।।
ढके भाल, पद-भूमि तांकते भरे विलोचन ।
लिये परम-संकोच खनकते नूपुर-कंगन ।।
खड़ी हुईं आ, स्वयं राम उठ "आओ" बोले ।
अजिर लांघ, निज शयनसद्म-पट बढ़कर खोले ।।
वधू खड़ी रह गईं अलौकिक-दृश्य निरखकर ।
मंजुल मृदुल मयंक-सरिस पर्यंक मनोहर ।।
तनें चँदोवे, श्वेत - फेन सी बिछीं चांदनीं ।
लगे ललित उपधान, चतुर्दिक पड़ीं उपरनीं ।।
करते शयन प्रशान्त दशानन-जयी धनुष-शर ।
सिय-चन्द्रिका निजांक,शुद्ध प्रियतमा-भाव भर ।।
बिछा भूमि-तल स्वच्छ कुशा का एक बिछावन।
जिसे अभी तक सुना, देखने लगे विलोचन ।।
लगीं सोचने, चरण पसरते होंगे कैसे ।
सोते होंगे पूज्य जागरण-कर्ता जैसे ।।
जगत-भोग उपलब्ध हमारे हित समस्त नित ।
सार्वभौम-सम्राट यही करते प्रमुदित-चित ।।

दोहा

पलकें गीली हो गईं, करते हुए विचार ।
देव-गर्भगृह सा लगा, सिय का शयनागार ।।

रोला

रह कर दो पल मौन, शांत कर अग्नि धधकती ।
बोले प्रभु "बेटियो! यहीं वह सिय थी रहती ।।
मिली धूलि, कर गगन सुगंधित कनक-कली सी ।
चढ़ी भोग-शिव-शीश न, सुर-शापित पगली सी ।।
पा जीवन भर व्यथा, गई वह तजकर धरती ।
अजर-अमर पर कीर्ति-कलेवर धार विचरती ।।
यदि उसका सम्मान-जनित सुख, मुझे न मिलता ।
परम-दुखी यह राम, कभी का जग तज चुकता ।।
नहीं राम ही, त्याग धर्म भी धरा भयावह ।
अतल कभी का समा चुका होता, सच तो यह ।।
सत्य सत्त्व-प्रतिमूर्ति, यही वे मां कौशल्या ।
जग में जंगम-रूप दूसरी एक अहल्या ।।
अंब सुमित्रा, त्याग-तपस्या की ये प्रतिमा ।
ये माता केकई, स्वयं अपनी ही महिमा ।।
क्या कलंक-वैधव्य, कौन दुख जिसे न पाया ।
वह शिव का श्री-वेष हलाहल पी मुस्काया ।।
यदि इस भू पर, अंब केकयी हुई न होती ।
तो मानवता आज महानिद्रा में सोती ।।
यही उर्मिला थी वह, जो, भव-दधि-बड़वानल ।
महामीन सी तैर, ले गई अक्षत-आंचल ।।
सिय-उर्मिल प्रतिमूर्ति सत्य श्रुतिकीर्ति-मांडवी ।
दिव्य देवियां युगल, न ये सामान्य-मानवी ।।
संज्ञा-शतरूपा-सुदक्षिणा-शैव्या माता ।
पातिव्रत्य-पावित्र्य-त्याग से जग-विख्याता ।।
रविकुल इनका उदर, इन्हीं की ये श्री मनहर ।
सुधा-मुधा के नहीं, कीर्ति के विमल कलेवर ।।

इनके भूषण-वस्त्र-छत्र-चामर-सिंहासन ।
भोगोगी निर्द्वन्द आज से तुम निज शासन ।।
रखना विमल सदैव इन्हें, रघुवंश-रानियो ।
विमल-वंश की सुता आप हो सकल, स्यानियो ।।
ये पुटकीं - सम्पुटक - पेटिका - मंजूषाँयें ।
हाट-भाव से स्यात् आज कुछ निकल न पांयें ।।
पर इनमें जो छिपीं शुद्ध-शाश्वत्-सुभावना ।
समय पड़े तो देह वार कर, रक्षा करना ।।
रविकुल की भावी-माताओ ! यही प्रार्थना ।
अंतिम-वय कर रहा राम, नत शिर कर अपना ।।"
कंठ रुँधे रह गये, हो गये तरल बिछावन ।
बोल न पाईं एक, एक भी अक्षर तत्क्षण ।।
कुमुदवती कुश-प्रिया समय लख दारुण, बोली ।
"दें पितुवर ! वरदान, हमारी हो न ठिठोली ।।
अग्निपरीक्षा-मध्य कभी हम झुलस न पायें ।
करते पुण्यस्मरण आपका लजा न जांये ।।"

दोहा

"रहे सदैव सुपुत्रियो ! तव सौभाग्य अनन्त ।
बढ़े कीर्ति-कुल-संपदा, कल्प-कल्प पर्यन्त ।।"

रोला

नत दृग, नत ही किये भवन से चले नृपेश्वर ।
किया नमन कपि-ऋक्ष-रक्ष भूपों नें बढ़कर ।।
गुह-लक्ष्मीनिधि-बालितनय आ गिरे पदों पर ।
लगा हृदय से लिये राम ने उठा-उठा कर ।।

बोले "होते अस्त गगन में अंतिम तारे ।
कर स्ननादिक शीघ्र, सभा में सकल पधारें ॥"
देखे सम्मुख खड़े, चारि-प्रहरी-अनुचर-चर ।
भट-नट-भाट कलाप हिलकते दीन करुण-स्वर ॥
दी प्रभु ने सांत्वना "यही सम्बन्ध जगत के ।"
साग्रह, हिय से लगा दिये बहु भार कनक के ॥
कर श्री सरयू-स्नान, अर्चना नागेश्वर की ।
पौ फटते ही चले दिशा निज सभा-भवन की ॥
भरा खचाखच कोण-कोण, स्थल बचा न तिल-भर ।
देख राम को भरा भवन स्वर "जय राजेश्वर ॥"
चार-चार शुभ पीठि, पीठ के दक्षिण-उत्तर ।
लगीं अविषमाकार-प्रकार उषा - सीं मनहर ॥
कर गुरुपद - वंदना, सभा का ले अभिवंदन ।
बैठे निस्पृह भाव भरे राजा रघुनन्दन ॥
लगे उठाने छत्र-चँवर ज्यों भरत-निषूदन ।
प्रभु ने किया निषेध नम्रता भरे विलोचन ॥
बिठा लिये प्रिय अनुज थामकर कर निज आसन ।
देख गगन की ओर, विलोके सार्थ सचिव-जन ॥
पाते ही संकेत तिलक-सामग्री आई ।
लखते ही बढ़ चले नमित-मुख आठों भाई ॥
फिर वशिष्ठ-दिशि देख कहा "मुनिराज ! पधारो ।
राजतिलक का कार्य शास्त्र-विधि पूज्य! सँवारो ॥"
लगे बनाने मन्त्र-घोष आकाश सुहावन ।
करने भूतल लगे तीर्थ-जल पावन, पावन ॥
चँवर लहरने लगे, छत्र-दल लगे छहरने ।
अष्ट-मुकुट निज दीप्ति, लगे दिशि दीपित करने ॥
करने मुनिवर लगे तिलक मस्तक पर सादर ।
लगे प्रजाजन लखने पल-पल पलकें भर-भर ॥

लगी थिरकनें करुणा कर श्रृंगार संवरण ।
अब गिरता नभ, अब फटती भू, लगता क्षण-क्षण ।।
प्रभु-निदेश पा, आये सचिव सुमंत्र सामनें ।
खोल एक सम्पिटक, सुपत्रक लगे बांचनें ।।

दोहा

संदर्भों के अंत में, सचिव विज्ञ विख्यात ।
कहते कुछ, जो खोलते, बहु रहस्य-अज्ञात ।।

राज्यप्रबंध-विभाजन

ब्रह्मप्रदेश नागप्रदेश, प्राग्ज्योतिषपुर शुभ शिवसागर ।
मणिपुर मेघालय श्रीलवंग, त्रिपुरा अरुणाचल हाटज्वर ।।
वनसंपति-मधु-कोशाणु-तैल, भंडार भरे जिनके कण-कण ।
वह ब्रह्म-असम शस्यश्यामल, घन-सघन जहां करते विचरण ।।
कामाक्षी-ढाकेश्वरी जहां, जो गंगा-ब्रह्मपुत्र सिंचित ।
मुनि कपिल सांख्यदर्शन-वेत्ता, नवरात्रपर्व-परिकर शोभित ।।
की गोहाटिका नृपति नगरी, श्रृंगार स्वकुंडल वाम किया ।
अंगद, लक्ष्मणसुन-प्रथम प्रथम, वंगाधिप प्रभु ने बना दिया ।।

कैलास-शिखर सरराज-मान, नयपाल-अंग-मिथिला-उत्कल ।
कटि-तट तक जिसको नहलाता, पूर्वोदधि का शुभ्राभ-सुजल ।।
वन-गिरि-भूश्रियां सगुण होकर, जिस पर बिखरातीं मंजु हास ।
गंगा-वैतरणी-विष्णुमती-गंडकी-महा रचतीं सुरास ।।
नीलाचल-पशुपतिनाथ-गया, करते निवास कौशिक-ऋषिवर ।
श्रद्धा-पूरित पर्वाधिराज, शुभ पितर-पक्ष कृत-शिव-शेखर ।।
निज अंगद-वाम उतार दिया, पाटलीपुत्र नृप-वास किया ।
उर्मिलापुत्र-लघु चित्रकेतु अंगाधिप प्रभु ने बना दिया ।।

कैकेय-पंचनद-मूल-मद्र, हिमशैलमूल-किन्नर प्रदेश ।
संमेलन करते सिंधु सिंधु, खेलती शतद्रू शुभ्र-वेष ।।
बहु रत्न-धातु-फल-फूल-धान्य, दुर्लभ औषधि-आकर पूरित ।
अवगुंठन हटा प्रकृति-नटिका, जिस पर नर्तन करती मोहित ।।
मुनि-पतंजली की तपस्थली, हर-अमरनाथ का हिम-मंदिर ।
उल्लास भरा वैशाखी का, रविसंवत्-पर्व किया सुस्थिर ।।
की तक्षशिला नृपपुरी नियत, निज दक्षिण-वलय प्रदान किया ।
श्रीभरत-ज्येष्ठसुत तक्षक को, केकयपति प्रभु ने बना दिया ।।

नदराज सिंधु के पश्चिम से, यवनप्रदेश तक की धरती ।
जिसकी जलवायु शिराओं में, पौरुष-मय प्राण-वायु भरतीं ।।
सादर, पद-मूल दुकूल-कूल, मुक्तामंडित करता सागर ।
मां-हिंगलाज की अमर-ज्योति, भूनेत्र कटाक्षराज सरवर ।।
गंधर्वदेश जिसका गवाक्ष, जिसके नर नरहरि, हरि तुरंग ।
नृप-नगर पुरुषपुर किया नियत, वैशेषिक-पिता कणाद संग ।।
निज दक्षिण-श्रवण-सुकुंडल दे, शिव-रात्रि सुपर्व-विधान किया ।
गांधारराज मांडवी-पुत्र, पुष्कल को प्रभु ने बना दिया ।।

रविसुता-शतद्रू-चर्मण्या, सौराष्ट्र-सिंधु-सौवीर मध्य ।
भारतमां की दक्षिण-सुकुक्षि, हरयाणा-राजस्थान भव्य ।।
अर्बुदगिरि आंचल की शोभा, शुभ कुरुक्षेत्र; वर वृंदावन ।
पुष्कर-प्रभास-भुज-इन्द्रप्रस्थ,विकसित विस्तृत संस्कृति-प्रांगण ।।
की मथुरा नृपति राजधानी, संरक्षक श्रुतिमर्मज्ञ-च्यवन ।
ठहराया देश-काल को लख, पर्वाधिराज दिननाथ-ग्रहण ।।
रवि-मणि मंडित अति दिव्यहार, उर से उतार कर पिन्हा दिया ।
अरिहनसुत-प्रथम सुबाहू को, मथुराधिप प्रभु ने बना दिया ।।

विंध्यांचल का दक्षिण-प्रदेश, सह्याद्रिमाल कृष्णा सरि तक ।
उज्जयिनी-माहिष्मतीपुरी, गोमांतक-त्र्यम्बक-शूर्पारक ।।
क्षिप्रा-मेकलजा-वेत्रवती-ताप्ती-भीमा-गौतमी ललित ।
लहराकर जिसके आंगन में, करतीं कण-कण पल्लवित-हरित ।।
दो-दो कुंभों की पुण्य-भूमि, ज्योतिर्लिंगों की आकर सी ।
ऋषिराज-अत्रि की तपोभूमि, प्रत्यक्ष विधाता के वर सी ।।
विदिशा को बना राजधानी, कटि-सूत्र कंठ का हार किया ।
श्रुतिकीर्ति-सुपुत्र शत्रुघाती, मालवपति प्रभु ने बना दिया ।।

श्रीसरयू-सरि के उत्तर से, जान्हवी पार रवितनया तक ।
कुरुवन-मयराष्ट्र-उत्तरापथ, धुर चीन त्रिविष्टप-परिखा तक ।।
सब भांति धान्य-धन भरी भूमि, सुरपुर का प्रतिनिधित्व करती ।
जिस पर सुभक्ति-पद पर स-भक्ति, भगवती मोक्ष मस्तक रखती ।।
गंगा-यमुना के हृदय-हार, बदरीविशाल-शिरफूल ललित ।
सतवार अष्ट-त्यौहार युक्त, सात्विक-उमंग मंगल-मंडित ।।
नृपगृह श्रावस्ती, ऋषि गौतम, मणिमय निषंग कटि-पटा दिया ।
उत्तर-कोसल का सियसुत-लव, नरनायक प्रभु ने बना दिया ।।

उत्तर सरयू, गंडकी पूर्व, दक्षिण-पश्चिम गंगा पावन ।
काशी-प्रयाग-नैमिषारण्य, चरणाद्रि-विंध्यवासिनी सदन ।।
सुर-धर्मभूमि, जग-पुण्यभूमि, नृप-कर्मभूमि, शुभ भूमि-भवन ।
आकार न्यून, अधिकार पीन, त्रिभुवन-शासकजन-अनुशासन ।।
बहुपर्व भरी, बहुतीर्थ भरी, ऋषिवर वसिष्ठ-कुल-संरक्षित ।
की अवध आदि-मनु की नगरी, फिर देश-राजधानी निश्चित् ।।
ऋषि-सचिव-अनुज-भावी नृप-मत, भारत-प्रांत कुशस्वीकार किया ।
प्रभु ने नपदंड-राजमुद्रा-कंकण-चड़ामणि-मुकुट दिया ।।

दोहा

दिये रत्न-कंचन-रजत, अमित भार के भार ।
सैन्य-शस्त्र-गज-रथ-तुरग, देश-काल अनुसार ।।
ग्रन्थ-शास्त्र-सुस्मृति सकल, दिव्य-प्रकाश-विकास ।
दिये नृपों को राम ने, बता सूक्ष्म - इतिहास ।।

रोला

इसके भी अतिरिक्त, पूर्णतः अभय-शांति हित ।
अन्य व्यवस्था अमित, नृपति ने कीं निर्धारित ।।
उत्तर केकयराय, दाश-रक्षेश अवाची ।
पश्चिम ऋक्ष-कपीश, जनककुल-नरवर प्राची ।।
धारण कर नृप - दंड दिशापालेव सनातन ।
भरतखंड का करें, प्राण-प्रण से संरक्षण ।।
सर्वतंत्र स्वातंत्र्य-युक्त ये भूपति सारे ।
पर विदेश-नय नृप-मंडल के साथ विचारें ।।
मिले वर्ष में एक बार तो नृपकुल निश्चित ।
बैठ सहित सम्राट विचारें देश-जगत हित ।।
करें समय पर दृष्टि-पात पूर्वाग्रह - विरहित ।
हो विधान ऋषि-जन अनुमोदन से संशोधित ।।
विपद्-ग्रस्त हो किसी भांति जो क्षेत्र कदाचित ।
करें मुक्त, दे मुक्त-हस्त सहयोग अयाचित ।।
प्रकृतिकेलि-वश यदि सीमा कुछ सकुचे-फैले ।
झुका ईश को शीश, करें मन तनिक न मैले ।।
कई-कई सरि कई-कई राज्यों में बहतीं ।
कभी सूखतीं कभी उफनतीं प्रायः रहतीं ।।
समय-समय पर उन्हें दिया जाये अनुशासन ।
ध्यान रहे पर, हो न धरा का भाग्य-विभाजन ।।

सकल राज्य ये एक राष्ट्र ही माने जाँये ।
देह-अंग सम प्यास प्यार के संग बुझाँये ।।
एक सनातन-धर्म, एक ही मानव-संस्कृति ।
निज-निज रुचि अनुकूल रखें सब पूजा-पद्धति ।।
भाषा-भूषा विविध, विविध हो यद्यपि भोजन ।
किंतु ग्राम्य-अश्लील-अभक्ष्य कदाचित क्षम्य न ।।
संस्कृत भाषा, सूत्र विभूषा, गोरस भोजन ।
राष्ट्र-ऐक्य - हित बाह्य-प्रतीक हुए निर्धारण ।।
विषय-विषय के विज्ञ, देश के क्षेत्र-क्षेत्र के ।
अधिक न, कतिपय श्रेष्ठ-सुनेत्र तृतीय-नेत्र के ।।
एकत्रित कर लोक-सभा की हो संरचना ।
रचे राष्ट्र-पथ जो समृद्धि की सिद्ध-अल्पना ।।
लोकसभा-सुविवेक, नृपति सविवेक विचारें ।
पुनः राज्यहित सत-शिव-सुन्दर पथ विस्तारें ।।

दोहा

लख प्रभु-दिशि बैठे सचिव, खड़े हुए श्रीराम ।
शरद्-दिवस के तेजयुत, विमल-सुखद घनश्याम ।।
पीत-वसन मख-भस्म तन, कच-विमुक्त श्रीभाल ।
हरि-हर-मणि-माला ललित, हृदय-सुबाहु विशाल ।।
ज्यों दिखतीं मिलतीं विलग, तीर्थराज युग-धार ।
किये मंजु-अनुराग से, त्यों विराग-श्रृंगार ।।
आठों पुत्रों को दिये, पत्रक अष्ट सुवेष ।
गुरु-निमि-कपि-गुह-लंकपति, पाये पांच विशेष ।।
शेष एक पत्रक जड़ा, कांच कनक - प्राकार ।
जन-जन दर्शन-हित लगा, राजमहालय-द्वार ।।
केकयपति - निमिराज को, चामर किये प्रदान ।
फिर कीं लंकानाथ को, निज पादुका प्रदान ।।

विदा किया धननाथ का, सजा स्वच्छत्र विमान ।
कपिपति को आसन दिया, गुह को दिनकर-यान ।।
आंजनेय को देखकर, सजल हुए रघुनाथ ।
नतमस्तक नत-शीश पर, रखे मौन हो हाथ ।।
देखा पड़ा अचेत सा, पादपीठिका जीव ।
दी इंगित मंगलमयी, जन्म-जन्म की नींव ।।
सकल सभा का कर नमन, नत शिर दोनों हाथ ।
सलज जलद गंभीर स्वर, बोले त्रिभुवननाथ ।।

श्रीराम का आत्मावेदन

देवो ! गंधर्वों ! सिद्धगणो ! किन्नरो ! वानरो ! निशाचरो ।
ऋषि ! मुनि! विद्याधर! यक्ष ! ऋक्ष ! चौदह-भुवनों के नारि-नरो ।।
भरत-भू के भावी-भूपो ! आत्मार्पण के सुन्दरतम क्षण ।
कृपया सुनिये, कर रहा राम, करबद्ध आपसे आवेदन ।।

वह आदि-सृष्टि की महज्ज्योति, शुभ भारतीय-संस्कृति अपनी ।
जो नर-विशेष की उपज नहीं, ईश्वर के श्रुति-पथ की सरणी ।।
कर परब्रह्म का दिव्य दर्श, ऋषियों ने जिसे प्रशस्त किया ।
शूरों ने शरमाला-मरीचि, जिसका विषाद-तम ध्वस्त किया ।।
दे वीतरागियों ने निजास्थि, जिसको मनोज्ञ पवि-हस्त किया ।
सतियों ने सत् की आभा से, जिसका श्रृंगार समस्त किया ।।
यति-सती-शूरमा-दानी जन, जिसके शुभ चरण सदैव रहे ।
वह उठे शिरों पर उठा रहे, शाश्वत्-संस्कृति का सिंहासन ।।

धर्मप्रधान हिन्दू-संस्कृति, अनुदार नहीं, संकीर्ण नहीं ।
यह हीनभाव-ज्वर क्षीण नहीं, दीनत्व जरा-वश जीर्ण नहीं ।।
नभ-गंगा अगणित तारों से, ज्यों मधु-ऋतु अगणित रंगों से ।
त्यों ही इसकी एकता अमर, अगणित अनेकता-संघों से ।।
यह दिशि-दल दासीजन-सेवित, नभ-लक्ष्मी की गुरु-गरिमा सी ।
इसकी विशेषता ही विशेष, यह निज उपमा की महिमा सी ।।
यह अपनी इसी हथेली सी, जो बँध सुमुष्टि, खुल बहु-मुद्रा ।
यह भारतखंड-अखंड पिंड, सद्धर्म सदा जिसका जीवन ।।

जो धारण करने योग्य सदा, जो करता धरती को धारण ।
जो भुवन-मंडलाधार अचल, जो सकल कारणों का कारण ।।
जिससे हो जाता अमर मर्त्य, पशु से मनु-पुत्र मनुज बनता ।
वह रक्षक की रक्षा करता, वह भक्षक का भक्षण करता ।।
ज्यों गंगा गंगाजल से पुज, दे फल जल में मिलती हो जल ।
त्यों विविध-विविध पद्धति-पूजित, यह गंग-धर्म गांगेय विमल ।।
जो लड़ते पद्धति-भेदों को—आधार बना मतभेदों का ।
वे मूर्ख या कि फिर महाधूर्त, वे अघ रावण के मृग धावन ।।

जिसमें लघु-कीटक से विधि तक, चतुवर्णाश्रम अहि से रवि तक ।
नृप से सामान्य-प्रजाजन तक, वैतरणी से निर्जर-सरि तक ।।
संसृति-जीवों से शंकर तक, अंधतामिस्र से हरि-पुर तक ।
जड़-चेतन-खग-मृग-नर-किन्नर-वानर-निशिचर से सुर-सुर तक ।।
सब का सम्यक-विधि समस्थान, सबको सब गतियों के अवसर ।
यह धर्म हमारा वीणा सा, प्रति तार-तार में स्वर-परिकर ।।
मर्याद-गुहा में छिपकर भी, निज चिन्ह-घोष से परम प्रकट ।
यह आस्था दुर्गा का वाहन, त्रिभुवन कानन का पंचानन ।।

ईश्वर फिरता नर-सरिस यहीं, नर बनता ईश्वर-सरिस यहीं ।
परमार्थ पोत का महासिंधु, यह स्वार्थ प्लवों का कूप नहीं ॥
इसके विनाश का प्रण ले-ले, यद्यपि युग-युग से असुर चले ।
बन-बन पतंग बन गये पंक, इसकी छवि पर तन वार जले ॥
इसका प्रभाव कितना दुर्जय, जिससे न वैरि भी बच पाये ।
इसकी छवि धर रावण विधर्म, चार्वाक अधर्म अधम धाये ॥
धर्म से अपरिचय की संज्ञा, है एक, एक, वह आत्मघात ।
जुड़ धर्म-नेमि भव-चक्र करे— हो अभय उभय-स्थल परिभ्रमण ॥

फिर यह संसार असार नहीं, सारे सारों का सार सरस ।
पथ-तरुकुल का वासंती सा, चतुफल सुबौर श्रृंगार सरस ॥
विज्ञान-ज्ञान वल्ली संबल, जातिस्मरता पिक रासस्थल ।
वर मलय-बयारों का यौवन, संचित-अघ-व्यूह होलिकानल ॥
अनुराग भरा हरिभक्ति फाग, चैतन्य-चेतना का संगम ।
इस शाश्वत् समय-सारिणी में, नव-संवत्सर का दिवस प्रथम ॥
सच्चिदानन्द का शुभ प्रसाद, प्रासाद अमर-जन का बनता ।
परलोक खिलाता करतल पर, इस भरतभूमि का शुभ-चिंतन ॥

पर ज्यों खंडित-प्रतिमा-पूजक, सौभाग्य गँवा देता निज कर ।
त्यों जाने बिना समग्र धर्म, अभिशाप बना लेता नर, वर ॥
सूने-सिद्धांतों में उलझे, नव-मोह कि मात्र प्रतिष्ठा-हित ।
निज नाम चलाते कुछ नव-पथ, तज सत्पथ श्रुति-स्मृति प्रतिपादित ॥
कर गौण प्रमुख विषयों को कुछ, गौणों को प्रमुख बना रखते ।
निज बिंब दर्श-हित, स्वगृह खोद, सागर का जल लाकर भरते ॥
यदि राष्ट्र वृक्ष हित धर्मान्तर—दावाग्नि, छाछ तो धर्म-भेद ।
यह मूल गला देता तल तक, जिसका न निदान कहीं त्रिभुवन ॥

अतएव गिराराधना व्याज, हो जाए निरंकुश गिरा नहीं ।
वाणी का ओजस्वी प्रमाद, कर दे वाणी की इति न कहीं ।।
यद्यपि समष्टि का अंग व्यक्ति, कर्तव्य-क्षेत्र में पर अंतर ।
गुण एक-हेतु जो, अपर-हेतु-वह अवगुण क्या, अघ वह विषधर ।।
जिसके न दंश का मंत्र सहज, जिसका प्रायश्चित परम-कठिन ।
व्यक्ति को घोर संसृति देता, करता संस्कृति-इतिहास मलिन ।।
करता नत संतति-भाल एक, देता संतति को क्लेश एक ।
नर बनता सहज अमर वह, जो—निर्विघ्न बनाता राष्ट्रायन ।।

प्रत्यक्ष-परोक्ष सूक्ष्म-स्थूलक, तल उतर कभी, चढ़ गगन कभी ।
चलता देवासुर समर सदा, सुर-प्रमन कभी, सुर-शमन कभी ।।
दिख जाता स्थूल-युद्ध सबको, पर वे ही सूक्ष्म निरख पाते ।
जो तत्त्वनिष्ठ कृतमुख त्रिनेत्र, अंतर का अंतर लख पाते ।।
आचार-लोप विधिलोक-विजय, दुर्रचना-रति भारती-विजय ।
धन-दुरुपयोग अलकाधिप-क्षय, पारतंत्र्य प्रकट सुरलोक-प्रलय ।।
दिनकर-दासत्व विवेक-मांद्य, चितानल-चिति-चित चंद्र-ग्रहण ।
इनका निदान, आक्रमण-पूर्व, प्रत्याक्रामक विराट-चितवन ।।

यद्यपि सब सुख-दुख कर्मों से, ज्यों हिम-आतप, ऋतुओं की गति ।
फिर भी करती ज्यों स्वानुकूल, मानव की आविष्कारक मति ।।
त्यों प्रमुखों का कर्तव्य प्रमुख, सारे समाज का मान रखें ।
यह उस विराट का पुण्य-वेष, अविभाज्य विभाजन ध्यान रखें ।।
शोषण-विहीन पोषण सदैव—हो सबका साम्य-सुभाव भरा ।
ज्यों निशिदिन से युग-कल्पादिक, जनती निज बहु गति सतत् धरा ।।
आता न किसी गति में अंतर, रखती अक्षुण्ण स्वस्थिरा छवि ।
त्यों भेदभाव - विरहित निर्भय, नृप करें प्रजा का प्रतिपालन ।।

अतिशय एकाग्र चित्त करके, यह सुनें, सकल भावी भूपति ।
ये छत्र-चँवर-आसन-भूषण-सुभवन-करनिधि-संचित कुल-रति ।।
चतुरंग-सैन्य आरक्षीदल, उदयास्त-अंक विस्तृत धरती ।
ये प्रजा, बहू-बेटीं जिनकीं, लघु-छिव रति-रूप-मान हरती ।।
धर्मतः आप यद्यपि स्वामी—सबके निस्संशय आजीवन ।
अधिकार-कुमद कर्तव्य-विमुख, यह मानेगा जिस दिन तव मन ।।
उस दिन यह गौरव-वैभव-श्री, पूर्वज-जन की कुल-कीर्ति सहित ।
युग-युग की स्थिर, पल भर में ही, कर लेगा काल कराल, अशन ।।

ये संपति, देह पांचभौतिक, जग में रहते सब को सुविदित ।
यह जीव स्वकृत-आकृति लेकर, आता-जाता यश-अयश सहित ।।
सत्संग-रहित कुछ व्यामोहित, फिर भी तजते ले चित्त दुखित ।
कर जाते अमित स्वसंतति पर, निज-निज अर्जित आशा प्रकटित ।।
पर कुछ का जीवन-लक्ष्य मुखर—रहता सबके सम्मुख, सब विधि ।
होती उनको चिंता केवल—करदे भविष्य यह नष्ट न, निधि ।।
कितना विष पी-पी जीवन भर, रह अमर, रखोगे अमर हमें ।
कुछ उसी भांति की ही चिंता, निश्चित् निश्चित हुए मम मन ।।

कह चुका स्वकृति-आकृति से बहु, क्या शेष, जिसे कहता जाऊँ ।
लांघा न कौन स्वर सातों-सुर, अब किस स्वर पर क्या नव गाऊँ ।।
जिसको जग कहता रामराज्य, नव-पथ न, सनातन श्रुति-पथ वह ।
जो समय-धूलि से लुप्त हुआ, यह लाया राम सजा रथ वह ।।
सद्धर्म-हेतु यदि पलभर, हित—यह धर्म पड़े तजना, तज दो ।
तरु-ओट बालि, दशशीश-नाभि—भेदन कर, धर्म अभय कर दो ।।
परलोक दांव पर लगा जन्म—भू-जननी-हित करना पुत्रो !
परधर्म न करना ग्रहण कभी, करना स्वधर्म में मृत्यु वरण ।।

सोरठा

ये पद रखना याद, दंडकवन-कंटक बिंधे ।
यह याचना स-नाद, पितर-वेष में राम की ।।
चले भानु-कुल भानु, सूर्यासन को नमन कर ।
ज्यों ऋतु त्याग कृशानु, स्नेह-पान कर, सिद्धि दे ।।

दोहा

कीर्ति लेखनी, गंध मसि, गगन पत्र, यश लेख ।
लिखी ऊर्ध्वमुख धूम्र ऋषि, रही धरा स्मृति-रेख ।।
मधुवन तज ज्यों स-गजमणि, चला स्वगुहा मृगेन्द्र ।
राज-भवन से त्यों चले, स-यश राम राजेन्द्र ।।

रोला

पूर्ण-मनोरथ भाग्यवंत के साथ चले ज्यों ।
भरत-दमन सह राम महालय से निकले त्यों ।।
श्री-भूदेवी सरिस चलीं श्रुतिकीर्ति-मांडवी ।
लगा देवियां दिव्य, निजेच्छा बनीं मानवी ।।
लक्ष्मीनिधि-गुह-जाम्बवंत-कपिपति-निशिचरपति ।
गय-गवाक्ष-नल-नील-मयंद-द्विविद-मारुति यति ।।
चले नवल नृप-भ्रष्ट बनाते पथ, बन पदचर ।
लिये पूत-यज्ञाग्नि चले वाशिष्ठि-पराशर ।।
चली नंदिनी घिरी धेनुदल करुण-रँभाती ।
फिर-फिर बारम्बार देखती प्रभु को जाती ।।
विहग विकल लख, चरियों ने मणि-पिंजरे खोले ।
पिक-शुक-खंजन-हंस-सारिका शिर पर डोले ।।
"कहां चले राजेन्द्र ! आज क्यों मुकुट उतारे ।
कहां हार-केयूर-सुकुंडल - वलय तुम्हारे ।।
हाय ! तुम्हारे छत्र-चँवर-रथ किसने छीने
कहां रोमपट-पाट, लपेटे पट क्यों झीने ।।

चार, तीन रह गये, कहां पर छोड़े लक्ष्मण ।
उर्मिल रानी कहां गई, बोलो रे ! राजन् ।।
होते प्रमुदित मित्र, भीत अरि, सुन जिनके स्वर ।
वही शंख बज रहे आज क्यों ठहर-ठहर कर ।।
कहां पखावज-झांझ-तुरहियां-वीणा-मुरलीं ।
एक साथ सो गईं कहां, ये सारी पगलीं ।।

दोहा

मौन नृपानुज, मौन नृप, मौन सचिव, कपि मौन ।
अरे ! ले गया हरण कर, तव सिय-वाणी कौन ।।"

रोला

हुई उदासी तरल, बन गईं सिसकीं क्रन्दन ।
बिलख उठीं दश-दिशा 'चले राजा रघुनंदन' ।।
हृदय-धीर के साथ सबल टूटा अनुशासन ।
चले त्याग गृह-हाट, विकल हो विपुल प्रजाजन ।।
"पाली पल-पल प्रजा, पलक में पुतली जैसी ।
दी जिनके हित त्याग, सती वैदेही जैसी ।।
मलिन गोलियों का गोलक बिन कहां ठिकाना ।
हमें त्याग निर्मोह-भाव रघुनाथ ! न जाना ।।
सदन-सदन में किये सुलभ सुरदुर्लभ-साधन ।
क्या इस दिन के हेतु, कहो तो, यह क्या राजन ।।
क्यों उपवन की मृगी छोड़कर चले विजन-वन ।
राजहंसिनी करे क्षार-दधि का क्या मंथन ।।
हे आधाराधार ! बनाकर निराधार सब ।
धार सुसंयम चले, हमारा हरकर संयम ।।
देकर इतना स्नेह, देह से प्राण न खींचो ।
मधुर-दूध के बिरवे खाटी छाछ न सींचो ।।"

लगे पटकने शीश भूमि पर, छाती धुनने ।
थाम-थाम प्रभु-चरण राह में लगे लोटने ।।
'धीर धरो प्रियजनो !" उठाकर कर प्रभु बोले ।
"सदा उतरते भादों, श्रावण डले हिंडोले ।।
शुभ-प्रदीप प्रतिपदा-प्रात लक्ष्मी - पूजन के ।
धराधूलि-धन बनते, दाता अक्षय-धन के ।।
यह संसृति का अटल-नियम, जो आता, जाता ।
रुदन मचाता एक, एक पर हँसता गाता ।।
प्रबल वैरि-प्रतिरोधन प्राणोत्सर्ग, परम गति ।
चढ़ा प्राण ब्रह्मांण्ड त्यागते देह, महामति ।।
एक देख वय, शांत मृत्यु की बाट जोहते ।
अनदेखा कर काल, एक व्यामोह विचरते ।।
एक-एक कर सकल इंद्रियां तजतीं जातीं ।
कालोदधि पर भित्ति, भित्ति पर अमित उठातीं ।।
उनके हित ही लिये पाश यम-दूत विचरते ।
पुनर्जन्मवादी न मृत्यु से किंचित् डरते ।।
किये आपनें प्रथम राम के ज्यों बहवोत्सव ।
करो प्रियो ! त्यों मुदित आज नव-परिधानोत्सव ।।"

सोरठा

शाश्वत् सत्याधार, निश्छल-शीतल प्रभु-गिरा ।
अवध-कमलकासार, बिखरी धवल तुषार सी ।।

रोला

धरते-धरते धीर, नारि-नर बिलख उठे फिर ।
करते-करते चित्त शांत मति होती अस्थिर ।।
"विदा हुआ सौभाग्य, विदा जब हुई जानकी ।
जीवन-चौसर सारि दांव ही बनी आज की ।।

वचन-चातुरी छलो न दुर्बल-दीनजनों को ।
दो न ओष इन दर्श-सुधा प्यासे नयनों को ।।
देख हमारी ओर लौट रघुनंदन! आओ ।
अथवा अपने साथ हमें भी लेते जाओ ।।"
"जाता किसके साथ कौन" प्रभु बोले हँसकर ।
"देखो यह भी नाथ!" उठे समवेत कई स्वर ।।
'जय-जय प्रभु श्रीरामचन्द्र का जय-जयकारा' ।
एक साथ भू-गगन दशों-दिशिदल गुंजारा ।।
दल के दल देने जीवन-धन को जीवन-धन ।
चले मुदित मन, मान मृत्यु-यम सखा-सनातन ।।
हुए देवगण चकित, अवधजन-प्रीति निरखकर ।
बोले नतशिर "चमत्कार-विग्रह श्रीरघुवर ।।
नंदन-वन के सुमन लगे गद्‌गद् बरसाने ।
तज-तज व्योम-विमान लगे धरती पर आने ।।
कर-कर प्रभु-पद नमन, लगे अनुचर से चलने ।
मुदित हुए रघुनाथ, लगी ज्यों सरयू दिखने ।।
धर धरती पर शीश वंदना की मुस्काकर ।
"आया माँ! तव पुत्र, अंक में ले, हर्षाकर ।।"
लगीं लहरनें श्वेत-तरंगें लख छवि श्यामल ।
जुटे पुलिन पर ऋक्ष-कीश-मानव-दानव दल ।।
लगा दृगों से नीर, नहाने लगे अवधपति ।
देख राम का स्नान, जानकर प्रिय-गति संप्रति ।।
उतरे जल में सकल मुदित, तन लगे सींचने ।
रंग-रंग की स्वांगराग से सरयू करने ।।
उठा जलस्तर तुरत निमिष भर में वितस्ति भर ।
चले भँवर हो सरल, फिरीं लहरें चक्राकर ।।
निकले प्रभु के साथ-साथ सब नहा-नहाकर ।
तन-मन का कालुष्य निमिष में बहा-बहा कर ।।

प्रभु नें आकर पुलिन, किया पितरों का तर्पण ।
कीं श्रद्धा से पुनः-पुनः सुमनांजलि अर्पण ।।

सोरठा

कर-कर पंचस्नान, लगा सु-रज, कर आचमन ।
मनु, ज्यों सुमन प्रतान—लहराते, देखे अमित ।।

रोला

रुमा-तारिका सहित गिरे सुग्रीव पदों पर ।
"लो चरणों में नाथ ! नाथ ! रघुनाथ ! कृपा कर ।।"
प्रभु बोले "कपि-राज्य" कोशपति बोले "रघुवर ।
अभी लगाता तिलक तुरत अंगद-ललाट पर ।।"
ले प्रभुपद-रज चले, तिलक ज्यों कपिपति करनें ।
अंगद बोला "देव ! मुझे दें प्रभु-पथ वरनें ।।"
होता तर्क-वितर्क देख बोले रघुनंदन ।
"अंगद ! यें तव अनुज, अभी दे इन्हें सुरक्षण ।।"
मौन रुदन-रत बालिपुत्र के तिलक लगाकर ।
नाच उठे सुग्रीव मुदित तालियां बजाकर ।।
सुत-मस्तक पर तिलक तुरत हो गुहराजा कर ।
लिये निषादी साथ, डटा निज इष्ट-पृष्ट पर ।।
भक्ति-चातुरी प्रेम-माधुरी लख कल्याणी ।
कह न सके कुछ राम, अधर-पथ भूली वाणी ।।
लक्ष्मीनिधि निमिराज सहज बोले "रघुनन्दन ।
निशि ही, निमि कर चुके सकल यह रोली-चंदन ।।"
पा निज पितु-संकेत सामने गुणनिधि आया ।
एक-एक प्रभु - भरत-दमन पर सुपट चढ़ाया ।।
दियें सुपट श्रुतिकीर्ति-मांडवी को दृग भरकर ।
हटा, पुनः पट तीन बिछा सरयू के जल पर ।।

लगे, स्वपरिकर साथ सजे निमि-पट यों राघव ।
करता पूर्वाभ्यास लोक, नव-परिधानोत्सव ।।
ज्यों सरमा के साथ दिखे करबद्ध विभीषण ।
प्रभु बोले "प्रिय ! रुको, अभी तव शेष लोक-रण ।।

दोहा

जिसके पीछे हो न प्रिय ! पद्धति-प्रकृति सुधार ।
वह न धर्म-रण, पापमय—निश्चित् जन-संहार ।।

रोला

लोक-सुशिक्षण हेतु अतः ठहरो लंकेश्वर ।
तव सुभूमिका शेष वहां से अधिक यहां पर ।।"
जाम्बवान से राम, स्वयं बोले बढ़ आगे ।
"होंगे त्रिभुवन भ्रमित आपके बिना, अभागे ।।
वयोवृद्ध ऋक्षेश ! रुकें, दें जग को शिक्षा ।
समय-हेतु दें, स्वल्प-समय की कृपया भिक्षा ।।"
भक्ति हृदय में, रोमांचित-तन में अतिकंपन ।
दिखे धरा पर मौन विनम्र अंजनी-नंदन ।।
भर कर बरबस भुजा, हृदय से लगा भक्तवर ।
बोले गद्गद्-कंठ जानकीनाथ पलक भर ।।
"कपि आत्मा तन राम कि आत्मा राम कीश तन ।
है इनमें क्या सत्य, न जाना जीवन भर मन ।।
जानूंगा जिस दिवस, उसी क्षण प्रिय ! कह दूंगा ।
आज वास विध्वस्त न पर निज, देख सकूंगा ।।
तव मन-मन्दिर पवनपुत्र ! मम वास, जगत का ।
अतः राम-हित पल-पल हरते त्रास जगत का ।।
विचरो जब तक सप्त-सिंधु में लहराता जल ।
लिये धूप-चांदनी खेलते रवि-शशि नभ-तल ।।

राम गमन कर, अगम न होगा प्रिय ! तव कारण ।
हो विदेह, कर दिव्यदेह देहों-हित धारण ।।"

दोहा

ले कपि से लौकिक-विदा, बोले रघुकुलनाथ ।
"जग-ऋण इच्छा-मुक्त हो, चलें देव-पुर साथ ।।
त्याग लाज-संकोच-भय—भ्रांति - क्लांति-अभिमान ।
जो चलना चाहे चले, करता राम प्रयाण ।।"
गिरे पुत्र आठों चरण, दी कर उठा अशीश ।
"करो कर्म शुभ धर्मपथ, भजते श्री जगदीश ।।"
पुनः बुला अजमीढ़ को, दिये सुतों के हाथ ।
कहा "नृपति ! जानें सदा—सुत कि राम हो साथ ।।"
फिर बोले कर जोड़ कर, देख सूर्य की ओर ।
"देव ! रखें निज वंश पर, कृपा-दृष्टि की कोर ।।
धर्म न त्यागे धरणि को, धरणि न त्यागे धर्म ।
करें विश्व-कल्याण नित, भरत-भूमि के कर्म ।।
रखे देश दुख-सुख समय, सदा राम को याद ।
तव रहते, पालन करे, जन-जन श्रुति-मर्याद ।।"

सोरठा

गोप्रतार शुभ-क्षेत्र, सरयू - मध्य सु-द्वीप में ।
अधमुंद प्रमुदित नैत्र, हुए राम निज रूप लय ।।
साथी-पंथी शेष, करते प्रिय का अनुसरण ।
पाते मूल स्ववेष, ब्रह्म-मार्ग हरि-पुर चले ।।

दोहा

"हा प्रसवनि ! यह क्या हुआ, कहां गये प्रभु राम ।
ऐसे दृश्य ललाम का, ऐसा अंत अनाम ।।

उठा मालती - कुंज से, हम क्यों लाये, हाय ।
हो सनाथ फिर हो गये, मां ! अनाथ निरुपाय ।।"
"एक बार रघुनाथ प्रभु, रखते जिस पर हाथ ।
होता प्रलयों तक नहीं, वह प्रिय ! दीन-अनाथ ।।
भूप-नाट्य का दृश्य लघु, लखकर हुआ उदास ।
सम्मुख लख, परिकर सहित, बैठे रमानिवास ।।"

छप्पय

देखा, सज शुभ मुकुट, वाम-दिशि शोभित श्रीजी ।
भरीं मधुर मुस्कान, युगल दृग-माल पसीजी ।।
सेवा - रत त्रय-अनुज, छहरता छत्र शीश पर ।
चरण चांपते पवन-तनय पद-वसन उठाकर ।।
ऋद्धि-सिद्धि दिग्पालगण, भेंट थाल के थाल भर ।
खड़े, देखते स्वामी-दृग, कण-कण पाणि पसार कर ।।

दोहा

"अरे बिठा मत सुत ! मुझे, उठा-उठा तत्काल ।
कोसलपाल कृपालु के, गा गुण-ग्राम विशाल ।।"

हरिगीतिका

जय राम राघव ! राम राघव ! राम राघव ! राम ! हे ।
जय सीय स्वामिनि ! सीय स्वामिनि ! जननि ! सिद्धि-सुधाम हे ।।
अशरण-शरण ! दूषण-हरण ! रघुवंश-भूषण ! श्याम हे ।
वात्सल्यमयि ! कारुण्यमयि ! लावण्यमयि ! प्रभु-वाम हे ।।
यह पंक घोर प्रपंचनी - कृकलास-संस्कृति की हरे ।
आकंठ डूबा जीव लघु, मुख एक क्या तव स्तुति करे ।।
जो कर न पाये शेष-हर-विधि-वेद-सुर-ऋषि-शारदा ।
शिशु-वंदना स्वीकार करिये, वंदनीय ! सुखप्रदा ।।

इस क्षण कहूँ क्या, क्या न, कितना उचित-अनुचित मौन है ।
यदि मौन रखलूँ, मौन कर्ता जग, सुकर्ता ! कौन है ।।
पीड़ा हृदय की कौन तव बिन, जानकर भी जानता ।
अद्‌भुत-प्रथा जग की, रुदन को रागिनी यह मानता ।।
हरि ! बार-बार उघाड़ कर यह उदर, किसके द्वार पर ।
जाऊँ, दिखाऊँ, देख आऊँ निज हँसी मन मारकर ।।
रघुसिंह ! शावक भेजिये अपना न द्वार शृगाल के ।
यह हाथ चाहे नाथ ! हाथ स्वहाथ सौंपो काल के ।।
उपहास अपना और अपने का कराना क्या उचित ।
जल नीच-गृह निमिनंदिनी-शिशु से भराना क्या उचित ।।
देखो, न देखो ओर मेरी, नाथ ! इच्छा आपकी ।
पर, एक बार सुहार मां के छवि, स्वरूप-सुदाप की ।।
सियपति-कृपाकर ! कर कृपा निमिषार्द्ध देखो तो सही ।
भर कर नयन, तव दिशि निरखती, अंबिका क्या कह रही ।।
यदि योग्य होता आपके, तो आप ही से बोलता ।
है रीति 'मंद-मलीन-कुतनय अंब-द्वार टटोलता' ।।
सब दोष-दूषणदुर्ग हूँ, हूँ, किन्तु किसका, आपका ।
पितु-कोष्ठ में कहिये लिखा दूं नाम अब किस बाप का ।।
दंडक-विपिन के कंटकों के, भर गये सब घाव क्या ।
किस हेतु कोमल-चित्त में आया निठुर सा भाव, क्या ।।
अब भी समय सम्हलो, सम्हालो देव ! अपने दास को ।
राजाधिराज ! कृपालु ! तज निज प्रकृतिगत-परिहास को ।।
अपनी कथा, अपना बना माध्यम रची जो आपनें ।
निज कर-कमल अब लीजिये, शिशु शीश धारे सामनें ।।
तव अन्य गाथाओं-सरिस, लघु सी कथा यह आपकी ।
हो भक्तजन-हिय हार, हरले तपन जगत-त्रिताप की ।।
तव चरित-सुमनस संचयन-रत सु-मन मालाकर सा ।
विचरण करूँ संसार में, तव दिव्य गंधागार सा ।।

यह है निवेदन आपसे, सुनिये ! सहस्त्रों दे श्रवण ।
यह है निवेदक, देखिये, शतदलनयन ! शत-शत नयन ।।
यह चित्त चंचल, कल्पतरु पदपद्म कीलक बाँधिये ।
कपिनाह ! हुहु - चरवाह राह स्वबांह-छांह सुधारिये ।।

दोहा

दी चींटी प्रह्लाद को, द्रुपद - सुता को चीर ।
त्यों धीरज दो दीन को, कृपासिंधु रघुवीर ।।
ज्यों धाये गजराज - हित, त्याग तुरत खगराज ।
ज्यों ली बनकर सारथी, वल्गु पार्थ के काज ।।
ज्यों भारत-रण में रखे, अक्षत कुररी-अंड ।
त्यों रखिये इस दास को, राम अखंड ! अखंड ।।
ज्यों यमदूतों से लिया, नाथ ! अजामिल छीन ।
त्यों जगतानल भस्म से, लो प्रवीण कण बीन ।।
उठा लिया गिरिराज ज्यों, बचा लिया व्रज-क्षेत्र ।
किया सुदामा निज सरिस, भर कर करुणा नेत्र ।।
त्यों क्या देखोगे नहीं, रघुपति ! मेरी ओर ।
साहूकारी त्यागते, साहु, देख क्या चोर ।।
मम दोषों के नाम पर, छूटोगे अवधेश ।
किस दिन किस खल को निरख, गई गंग तज देश ।।
एक कान, दो कान या, सुनो सहस्त्रों कान ।
छोड़े छूटोगे न, मैं, छँटा हुआ, लो जान ।।
भस्म, भस्म - कर्ता किया, किया भस्म को शक्र ।
देव ! आज वह चक्र तव, घिरा कौन से चक्र ।।
मैं तुम और न तीसरा, कहना सच श्रीरंग ।
आई इतनी निठुरता, किसके कठिन कु-संग ।।
झेली, गिरती दीन घर, कैसे खल की सेल ।
बोलो, इस कलिकाल में, मैं कि आप अनमेल ।।

कनकभवन यदि विजन से, लिया न बुला कृपालु ।
किसे नचाओगे कहो, कहकर 'मेरा-भालु' ।।
समझ रहे मेरी हँसी, हँसी तुम्हारी नाथ ।
मात-पिता कंचन लदे, नंगा बालक साथ ।।
उपालंभ दे आपको, क्या सीता का पूत ।
राम् ! न केवल नृप बनो, सुधि लो कपि-दृग-दूत ।।
अब अपने की आप ही, क्षुधा हरो अवधेश ।
किसका झूठा पय पिये, क्षीर-सिंधु का शेष ।।
बल दशकंधर दलन के, गुह-प्रिय की आशीश ।
राम-प्रिया पदपद्म-श्री, जगदीशों का ईश ।।
कनकभवन की स्वामिनी, दशरथ-राजकिशोर ।
युगल चंद्रिका चन्द्रमा, करिये चित्त चकोर ।।

सोरठा

श्रीहरि! श्री! सुखधाम, भरत! लखन! रिपुदमन! कपि ।
बारम्बार प्रणाम, दास-दास का लीजिये ।।

दोहा

रत्न दिखे यदि पंक में, तजते नहीं सुजान ।
प्रमुदित मन, तन धारते, करा स्नान, कर स्नान ।।
राम-रँगीले सज्जनो ! त्यों न देख मम दोष ।
गाओ श्रीश्रीप्रिय-कथा, ऋद्धि-सिद्धि-निधि कोष ।।

इति श्री शुभम्

(परिशिष्ट)

मेरे प्रेरणा स्रोत

जो इस उत्तर साकेत यज्ञ के साधन-समिधा-शाकल्य और बलि-पशु बन गये---

नातो नेह राम के मनियत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं ।
अंजन कहा आंखि जेहिं फूटैं, बहुतक कहौं कहां लौं ।।
विनय-पत्रिका

'सूरदास' खल कारि कामरी, चढ़त न दूजो रंग ।।

दम्पति-रस अरु विषय रस, सेवा पूजा ध्यान ।
तिनते परे बखानिये, सुद्ध प्रेम रसखान ।।

जब-जब होत कष्ट अपारा ।
तब-तब देह धरत अवतारा ।।
इनमें श्रेष्ठ सो दस अवतारा ।
जिनमें रमैया राम हमारा ।।

आदि ग्रंथ । पंचम महल्ला

दशमेश पिता श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज ।।

११७४+४८+१४+१६=१२५२

सकल जगत मँह खालसा पंथ गाजे ।
जगे धर्म हिन्दू सबै भंड भाजे ॥

दशमेश पिता

धर्मासाठीं मरावें, मरोनि अवघ्यांसी मारावें ।
मारितां मारितां ध्यावें । राज्य आपुले ॥
येविशीं न करितां तकवा । पूर्वज हासती ॥

समर्थ स्वामी श्री रामदास जी (मराठी)

धर्म हेतु प्राण विसर्जित करो । मृत्यु का आलिंगन करते-करते भी शत्रुओं का संहार करो । राज्य प्राप्ति (अस्तित्व की रक्षा) के लिये प्राण भी विसर्जित कर दो । यदि तुम अपने कर्तव्य से च्युत हुए तो पूर्वजों के परिहास के पात्र बनोगे ।)

ऐसे अवघेंची उठता । परदलाची कायती चिंता ।
हरिणे चलती उठतां चित्ता । चहुँकडे ॥

(समर्थ स्वामी)

हमारी आस्था और धर्म संरक्षण पर दृष्टिपात् कर—

(इसी भांति यदि सम्पूर्ण विश्व भी हमारा विरोध करने पर उतर आये, तब भी कोई चिंता नहीं । शत्रु सेना से भयभीत न होकर, शत्रुओं की सेना को यत्र-तत्र भाग कर खड़े होने वाले तुच्छ हरिणों के तुल्य ही समझो ।)

"शस्त्रेण रक्षितः राष्ट्रः शास्त्र चिंता प्रवर्तते"

(शस्त्र द्वारा संरक्षित राष्ट्र में ही शास्त्र चिंतन शोभा पाता है)

बोडन चेयर के आचार्य होरेस हेमन विलसन का कथन 'हिन्दुओं की धार्मिक और दार्शनिक पद्धति' पुस्तक की भूमिका में—

These lectures were written to help candidates for a prize of £ 200 given by John Muir, a wall known old Haileybury man and great Sanskrit scholar,—for the best refutation of the Hindu Religious System. Eminent Orientalists, Madras, p. 72.

(ये व्याख्यान जान मूर के दो सौ पाउण्ड के पारितोषक के लिये छात्रों को सहायता देने के निमित्त लिखे गये थे। यह मूर एक बड़ा संस्कृत विद्वान् और हेलिबरी का प्रसिद्ध वृद्ध पुरुष था। पारितोषक का उद्देश्य था—हिन्दू धार्मिक-पद्धति का अति श्रेष्ठ खंडन)।

लार्ड मैकाले द्वारा भारतीय संस्कृति को नष्ट-भ्रष्ट करने के उद्देश्य से भारतीय-शिक्षा का निर्धारित लक्ष्य-सन् १८३५—

Indian in blood and colour, but English in tastes, in opinion, in morals and in intellect. quoted in C.H.I Vol. VI, p. III.

भारत में एक ऐसी श्रेणी उत्पन्न की जानी चाहिये जो कि 'रक्त और रंग में भारतीय हो परन्तु रुचियों, सम्मति, सदाचारों जोर बुद्धि में अंग्रेजियत से ओतप्रोत हो।' इसी दृष्टि से भारतीय ढंग की बातों को—

Uncritical (तर्क विरुद्ध) Unscientific (अवैज्ञानिक) Unhistorical (इतिहास-रिरुद्ध) Irrational (बुद्धि विरुद्ध) Legendry (प्रमाण शून्य कहानी, गप्प) Mythology (मिथ्या-कथा)—

इसे राथ, ह्विटलिंग, वैबर, बैनफी, मैक्समूलर ह्विटने, विल्सन,

कर्न, बूहलर, फ्लीट, मैकडानल, कीथ, पार्जिस्टर, लूडर्स, रैप्सन, ह्यापकिन्स, ह्यूम आदि पाश्चात्यों ने अपने-अपने ढंग से कहा है।

ब्रिटिश लोक सभा में मैकाले के १८ घंटें के भाषण (जिसे स्वयं महारानी विक्टोरिया ने विशिष्ट दीर्घा में बैठ कर सुना) का सारांश—

"भारतवर्ष में अंग्रेजी राज्य की जड़ जमाने के मार्ग में सबसे बड़ा विघ्न वहां की धार्मिक-आस्था है, जिसको संरक्षण ब्राह्मणों के द्वारा मिल रहा है। जनता को उन पर कितना अटूट विश्वास है कि एक अधनंगा भिखारी ब्राह्मण काशी में कुछ रेखायें खींचकर यह तय कर लेता है कि अमुक तिथि को अमुक समय सूर्यग्रहण पड़ेगा और लोग बिना किसी प्रचार-प्रसार के उस पर विश्वास करके कुरुक्षेत्र पहुँच जाते हैं कीचड़ के उन गड्ढ़ों में लोटने (नहाने) जिन्हें सूअर के बच्चे (pigs) भी देखना पसन्द नहीं करेंगे और आश्चर्य तो यह है कि उस जाहिल को सच्चा साबित करने के लिये उसी समय उसी ता० को सूर्य भी मुँहकाला करके आकाश में खड़ा हो जाता है।"

मैक्समूलर का स्वप्न

The ancient religion of India is doomed and if Christianity does not step in, whose fault will it be ?

(भारत का प्राचीन धर्म नष्ट प्राय है, और यदि ईसाई धर्म उसका स्थान नहीं लेता तो यह किसका दोष होगा।)

१६ दिसम्बर सन् १८६८ को भारत-सैक्रेटरी, डयूक आफ आर्गाइल के नाम पत्र से—

He (Dayanand) may possibly convince the Hindus that thair modern Hinduism is altogether in opposition to the Vedas—if once they become

thoroughly convinced of this radical error, they will no doubt abandon Hinduism at once—they can not go back to the vedic state; that is dead and gone, and will never revive. Something more or less new must follow. We will hope it may be Christianity....
A.F.R.H. Quoted in "The Arya Samaj" by L. Lajpat Rai, 1932 p. 42.

"वह (महर्षि दयानन्द जी सरस्वती) संभवतः हिन्दुओं को यह विश्वास दिला सकता हैं कि उनका वर्तमान धर्म सर्वथा वेद-विरुद्ध है।.........यदि एक बार उन्हें इस मौलिक भूल का पूर्ण विश्वास हो जाये तो वे हिन्दू-धर्म को निस्संदेह तत्काल त्याग देंगे। वे वैदिक परिस्थिति की ओर तो नहीं जा सकते, वह मृत है और जा चुकी है, और कदापि पुनर्जीवित नहीं होगी। कुछ न्यूनाधिक नूतनता अवश्य आयेगी। हम आशा करेंगे कि वह ईसाईयत हो।"

बनारस क्वीन्स कालिज के प्रि० रुडल्फ हर्नलि सन् १८६९ में म० दयानंद जी से काशी में कई बार मिलने के पश्चात् एक लेख में...

(इसके अतिरिक्त हमारी संस्कृति में प्राणप्रतिष्ठा करने वाले एवं उसे नष्ट करनें का दिवास्प्न लेनें वाले अनेकानेक प्रामाणिक प्रमाण हैं; जिन्हें स्थानाभाव से यहां देना संभव नहीं है। कृपया अत्यन्त सूक्ष्म सारांश ग्रहण करें।)

लेखक की अन्य रचनायें

श्रीकल्कि प्रदीप्ति
श्रीकल्कि-तत्त्व (विभिन्न शैलियों में)

रावण वध
खंडकाव्य (मुक्त छंद)

नवरंग-मान-मर्दन
औरंगजेब द्वारा ज्वाला-मुखी पर चढ़ाई एवं पराजय
(ब्रजभाषा में कवित्त छंद)

सत्य श्री अकाल
गुरु बालकों की बलिदान-गाथा (पद्यबद्ध)

अग्निपत्र
ऐतिहासिक पत्रावलि (पद्यबद्ध)

पंचानन
फुटकर कवितायें

भरत भूमि का भाट
पद्यबद्ध प्रशस्ति माला

भरत का सेवक
कहानी संग्रह

कविराज भूषण
नाटक